देव ग्रंथावली

लक्षण-ग्रंथ

प्रथम खण्ड

लक्ष्मीधर मालवीय
एम० ए०, डी० फिल्०



नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७

प्रथम सस्करण
सितम्वर, १९६७

प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
'चन्द्रलोक', जवाहरनगर, दिल्ली–७
बिक्री-केन्द्र · नई सडक, दिल्ली–६
मुद्रक राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स, दिल्ली–६

पूज्य पितामह
स्वर्गीय पंडित मदनमोहन मालवीय
की
पावन स्मृति को
समर्पित

आभार

'देव ग्रंथावली—लक्षण ग्रथ—प्रथम खड' प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिये स्वीकृत मेरे शोध-प्रवन्ध का अर्ध भाग है। वृहदाकार होने के कारण प्रकाशन की सुविधा से देवकृत सात लक्षण ग्रथो—भाव विलास, रस विलास, सुमिल विनोद, काव्य रसायन, भवानी विलास, कुशल विलास तथा सुजान विनोद—मे से केवल प्रथम तीन इस खड मे प्रकाशित हो रहे है। अन्य ग्रथ एव छदो की तुलनात्मक प्रतीक सूची अगले खडो मे प्रकाशित करने का विचार है। इनमे से 'सुमिल विनोद' सपादित होकर प्रथम वार प्रकाश मे आ रहा है। इन ग्रंथो के सपादन के व्याज से देव की जीवनी तथा उनकी रचना-प्रक्रिया एव उनके कतिपय ग्रथो की प्रामाणिकता पर नई दृष्टि से विचार किया गया है।

मैने यह शोध-कार्य डॉ० माताप्रसाद गुप्त, सचालक, के० एम० इस्टीट्यूट, आगरा, के निर्देशन मे, जव वह प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे थे, किया था, उनके निर्देशन के लिये मै उनका अत्यत आभारी हू। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिदी विभाग के अध्यक्ष डॉ० रामकुमार वर्मा तथा अन्य प्राध्यापको का, विशेप रूप से पडित उमाशकर शुक्ल, डॉ० जगदीश गुप्त एव डॉ० पारसनाथ तिवारी का, जो मेरे कार्य मे निरतर रुचि लेते रहे है, मै कृतज्ञ हू। केवल धन्यवाद देकर ऋषि-ऋण से मुक्त नही हुआ जा सकता, इसे मै भली-भॉति जानता हू, अत यह रस्म-अदायगी नही करता।

मेरे लिये हस्तलिखित पोथियाँ सुलभ कराने मे विशेप रूप से डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० राजवली पाडेय ने जो सहायता की है उसके लिये मै चिरकाल तक उनका ऋणी रहूँगा। यदाकदा मार्ग मे कठिनाइयॉ भले ही आयी हो, सभी ने मेरे लिये सामग्री सुलभ कराने मे यथासम्भव सहयोग दिया है। एतदर्थ काशिराज श्री विभूतिनारायण सिह, नीलगाव के राजकुमार श्री भानुप्रतापसिह, गधौली के पडित कृष्णविहारी मिश्र, पडित विपिनविहारी मिश्र, डॉ० व्रजकिशोर मिश्र, हिदुस्तानी एकेडमी के डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, बीकानेर के श्री अगरचद नाहटा, काशी के पडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र, इलाहावाद के श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, कुसमरा के पडित मातादीन दुवे, इडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय तथा प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय के अधिकारियो का आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य व्यक्तियो ने अनेक रूपो मे मेरी सहायता की है, मै उन सवका उपकृत हू।

इस कार्य को वर्तमान रूप देने मे मेरे मित्र डॉ० बालकृष्ण मालवीय, मेरे वाल्यकाल के

साथी श्री ईश्वरचद्र व्यास तथा नेशनल टाइपराइटिग इस्टीट्यूट, इलाहाबाद के श्री जगदीश-नारायण अग्रवाल ने जो व्यावहारिक सहायता दी है उसके लिये वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र है।

आज से लगभग सात वर्ष पूर्व एक दिन डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने यह कार्य-भार मुझे सौपा था। मै उनके दिये उत्तरदायित्व का अपनी सीमा भर वहन कर सका, मै इतने मे ही सतुष्ट हूँ। इतना निस्सकोच कहूँगा कि आज हिंदी को इस प्रकार के कार्य की बहुत अधिक आवश्यकता है। कवि देव समृद्ध ब्रजभाषा साहित्य के एक समर्थ कवि थे, अत देश-काल के असीम विस्तार मे यदि मेरे इस कार्य को एक रेणुका कण का भी स्थान प्राप्त हो सका तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

३ अप्रैल, १९६४ —लक्ष्मीधर मालवीय

प्रवास के कारण मै ग्रथ पर मुद्रण के दौरान निगाह नही रख पाया हूँ, अत सभव है कि प्रमादवश कुछ अशुद्धियाँ रह गई हो। मैं उनके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

३० ७ ६६

ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु, —ल. ध. मा.
ओसाका, जापान

विषयानुक्रमणिका

विषय-प्रवेश

सीमा और उपलब्ध सामग्री

सुमधुर ब्रजभापा के कवियो मे देव का स्थान अत्यत गौरवपूर्ण है। हमने प्रस्तुत अध्ययन मे उनके लक्षण-ग्रथो के पाठ तथा उनसे सम्बद्ध पाठ-समस्याओ पर विचार किया है अत कवि के अन्य ग्रथो का उपयोग केवल सहायक सामग्री के रूप मे हुआ है। इन अन्य ग्रथो के सम्बन्ध मे अपने विचार हम यहाँ नही प्रकट कर रहे है।

हमने कवि के केवल उन्ही ग्रथो को लक्षण-ग्रथ की सीमा के अतर्गत माना है जिनमे रस, अलकार, पिगल अथवा नायिका-भेद का निरूपण तथा वर्णन मिलता है। कवि देव ने समकालीन अन्य कवियो की भाँति अपने किसी एक ग्रथ मे उपरोक्त विषयो मे से एकाधिक पर एक साथ विचार किया है, जैसे कि 'भाव विलास' मे शृगार रस, नायक-नायिका-भेद तथा अलकारो का वर्णन है, 'रस विलास' मुख्य रूप से नायिका-भेद का ग्रथ है परन्तु 'काव्य रसायन' मे कवि ने इन विपयो के अतिरिक्त शब्द-शक्ति, रीति तथा पिगल आदि का भी विवेचन किया है। इस आधार पर हमने देवकृत निम्नलिखित सात ग्रथो को लक्षण-ग्रथ मानते हुए उनका पाठ-सपादन किया है —

१ काव्य रसायन	—६६३ छद
२ कुशल विलास	—३०६ छद
३ भवानी विलास	—३८४ छद
४ भाव विलास	—४१७ छद
५ रस विलास	—४६६ छद
६ सुजान विनोद	—३५६ छद
७. सुमिल विनोद	—२७७ छद
	कुल २८६९ छद

इन ग्रथो के देवकृत होने मे हमे सदेह नही है क्योकि इनमे से एक भी ग्रथ ऐसा नही है जिसमे देवकृत दूसरे ग्रथो के समान दोहे अथवा उदाहरण छद न मिलते हो। देव के एक दूसरे ग्रथ मे समान छद मिलने की यह विशेपता इतनी व्यापक है कि हमने इसे भापा अथवा शैली की अपेक्षा ग्रथ के देवकृत होने का अधिक पुष्ट प्रमाण माना है। भापा अथवा शैली को विश्वसनीय प्रमाण न मानने का कारण स्पष्ट है। रीतिकाल तक आते-आते साहित्यिक ब्रजभापा इस सीमा तक विभिन्न प्रादेशिक [illegible] त हो चुकी थी और प्रत्येक क्षेत्र मे अनेक कवियो ने

परस्पर प्रभावित होते हुए अथवा प्रभावित करते हुए काव्य-रचना की थी कि केवल भापा अथवा शैली के आधार पर किसी ग्रंथ को एक कवि की रचना मान वैठना खतरे से खाली नहीं। देव तथा देवकीनन्दन की भापा वहुत कुछ समान है—यहाँ तक कि देव कवि के पश्चात् किसी ने इस ओर लक्ष्य करते हुए कहा था "देव गए भए देवकीनन्दन"। इस काल मे मुख्य रूप मे कवित्त तथा सवैया छदो मे रचना हुई है, दो छदो मे पूर्वापर सम्बन्ध भी नही है इस कारण भी भापा-शैली का साक्ष्य निर्णायक नही हो सकता। 'सुदरी सुदर' जैसे किसी सग्रह मे कवि-छाप रहित छदों के रचयिता का नाम केवल भापा के आधार पर निश्चित करने पर उपरोक्त कथन की सारवत्ता प्रमाणित होगी। अत भापा का प्रमाण केवल सहायक प्रमाण माना जा सकता है। उदाहरण के लिए केवल भापा के आधार पर 'राग रत्नाकर' को देवकृत ग्रंथ मानने के कारण ही डा० नगेन्द्र भ्रान्ति के शिकार हुए है। 'राग रत्नाकर' मे देव के किसी अन्य ग्रंथ के छद नही है, न किसी अन्य ग्रंथ मे 'राग रत्नाकर' के छद है। देव के अन्य सर्वमान्य ग्रंथो की तुलना मे यह इस ग्रंथ की असाधारण विशेपता है। डा० नगेन्द्र ने 'देव और उनकी कविता' मे पृ० १३ पर प्रसिद्ध कवि देव से भिन्न देव नामधारी एक अन्य कवि का उल्लेख किया है, और उनका केवल एक ही ग्रंथ ज्ञात वताया है 'रागमाला'। सन् १९०६-८ की खोज रिपोर्ट मे भी देव नामधारी कवि के नाम से इसी ग्रंथ की सूचना है, सन् १९०५ की खोज रिपोर्ट मे 'रागरत्न प्रकाश' नामक एक ग्रंथ की भी सूचना दी है, इसी प्रति को मैंने सभा के सग्रह मे (सभा-सग्रहँ १९१-१११) देखा है, यह 'राग रत्नाकर' की ही प्रति है। अत सभव है कि 'रागमाला' तथा यह 'राग रत्नाकर', जिसे डा० नगेन्द्र हमारे आलोच्य कवि की रचना समझ वैठे है, किसी अन्य देव कवि द्वारा रचित एक ही ग्रंथ के दो नाम हो।

सभा की खोज रिपोर्ट मे हमे ऐसे ही कुछ अन्य 'नवीन' ग्रंथ मिले है। हम सक्षेप मे उनका उल्लेख कर रहे है।

सभा-सग्रह मे १०८० सख्या पर **'सकुन आर्या'** नामक 'ग्रंथ' इसी प्रकार का है। यह किसी ग्रंथ का केवल अतिम ९०वाँ पत्र है। विपय शकुन-विचार है, दोहा छद मे निवद्ध होने के कारण इसे आर्या सज्ञा दी गई है। इसके साथ देव का नाम आने का भ्रम इस अश के कारण सभव है "इति देवकृत सकुन आर्या सपूर्णम्—।" इसका एक अश इस प्रकार है—"इतवार के दिन तवोल खाजे। सोमवार के दिन काच देखजे। वुधवार के दिन दही खाजे।"

दूसरा ग्रंथ **'वैद्यक'** है। १९२०-२३ की खोज रिपोर्ट (पृष्ठ ४७७) के अनुसार यह भिनगा राजपुस्तकालय मे है। इस ग्रंथ के सम्बन्ध मे लोग वहुत लम्वे समय से उत्कर्ण है। खोज रिपोर्ट मे दिया 'देवकृत' इस ग्रन्थ का परिचय देखे —"अलख अमूरत अलख गति किनहि न पायो पार। जोरि जुगल कर कवि कहै देव देव सत सार॥ अथ वैद्यक लिख्यते तत्र प्रथम पित्तज्वर को काढा। प्रमाण सज्ञा रसो का विचार, जलधर रोग, भगदर चिकित्सा, गुल्म, कृमि—मदाग्नि, अड रोग, अपस्मार—"

मेरे विचार से उपर्युक्त उद्धरण से पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि 'रस विलास' के रचयिता तथा 'वैद्यक' के प्रणेता एक ही देव नही है।

तीसरा **'इद्रजाल'** नामक ग्रंथ प्रयाग म्युनिसिपल सग्रहालय मे ३४।१५७ सख्या पर है।

अप्रकाशित खोज रिपोर्ट (१९४१-४३) मे भी इसका उल्लेख है। इसकी प्रतियाँ हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, तथा नागरी प्रचारिणी सभा के आर्य भाषा पुस्तकालय मे भी है। सभवत एकेडमी की प्रति सभा वाली प्रति की प्रतिलिपि है। ग्रथ का प्रारम्भिक अश इस प्रकार है —
"जत्र तावे के पात्र मे लिखि के मसान मै गाडे तो शत्रु दिमाना होय—"

यह वताने की आवश्यकता नही कि समान छन्दो के प्राप्त होने के आधार पर देव के ग्रथो की प्रामाणिकता का सिद्धान्त विशेष रूप से केवल देव के ग्रथो पर लागू होता है अत. इसे व्यापक सिद्धान्त नही मानना चाहिए।

हमने देवकृत लक्षण-ग्रथो की सूची मे 'जाति विलास', 'प्रेम तरग', 'प्रेम चद्रिका' तथा 'सुख सागर तरग' जैसे ग्रथ नही सम्मिलित किए है क्योकि इनमे से कुछ नाम किसी स्वीकृत ग्रथ के प्रथम सस्करण अथवा प्रथम सस्करण की खडित प्रतिलिपि तथा कुछ केवल सग्रह ग्रथ है।

'जाति विलास' अब तक देव के स्वतत्र ग्रथ के रूप मे स्वीकृत होता रहा है परन्तु वर्तमान अनुसधान के अनुसार यह 'रस विलास' के प्रथम सस्करण की पचम विलास तक खडित प्रतिलिपि है। इस कारण इसका उपयोग 'रस विलास' की खडित प्रति के रूप मे किया गया है। हमने इस प्रश्न पर विस्तार से 'जाति विलास' की प्रामाणिकता शीर्षक के अतर्गत विचार किया है।

इसी प्रकार 'प्रेम तरग' 'कुशल विलास' का कविकृत प्रथम सस्करण है। देव ने इसी 'प्रेम तरग' के आधार पर कुशलसिंह को समर्पित करने के हेतु 'कुशल विलास' की रचना की थी अत इस दूसरे ग्रथ मे 'प्रेम तरग' का सपूर्ण आकार समाविष्ट होने के कारण इसका पृथक सपादन करना अनावश्यक है। 'कुशल विलास' तथा 'प्रेम तरग' शीर्षक के अतर्गत हमने इन दोनो ग्रथो के परस्पर-सम्बन्ध की परीक्षा की है।

'प्रेम चद्रिका' तथा 'सुख सागर तरग' ग्रथ इनसे भिन्न कारणो से इस कार्य की परिधि से बाहर माने गए है। 'प्रेम चद्रिका' शुद्ध प्रेम-काव्य है। यत्र-तत्र मुग्धा, मध्या, प्रौढा का नामोल्लेख इसके शीर्षको मे भले ही हो परन्तु कवि का मुख्य लक्ष्य इनका भेद-प्रभेद करना न होकर केवल इन नायिकाओ के प्रेम का वर्णन है।

'सुख सागर तरग' सग्रह-ग्रथ होने के कारण अस्वीकृत हुआ है। इसमे नख-शिख तथा अष्टयाम के छद होते हुए भी प्रकृति से यह सग्रह-ग्रथ ही है। इसमे नायिका-भेद के केवल उदाहरण होने से यह लक्षण-ग्रथ नही हो सकता—वैसे ही जैसे विहारी 'सतसई' के अनेक दोहो का विपय नायक-नायिका-भेद होने के कारण उसे लक्षण-ग्रथ नही माना जाएगा। 'सुख सागर तरग' मे केवल उदाहरण छद सकलित है एव प्राय. सभी उदाहरण अन्य ग्रथो मे भी मिलते है। इन कारणो से हमने इस ग्रथ के पाठ पर विचार करना अनावश्यक समझा है।

खोज रिपोर्ट मे देव के नाम से प्राप्त 'गण-विचार' तथा 'रस रत्नाकर' ग्रथ ऐसे है जो लक्षण-ग्रथ की सीमा के अतर्गत आ सकते है। अत हम खोज रिपोर्ट का इन ग्रथो से सम्बद्ध अश नीचे दे रहे है —

"८९ के गण विचार'—सब्सटेंस—कंट्रीमेड पेपर। लीव्स—४। साइज़—१२-४ इचेज।

लाइन्स पर पेज—७२। एक्सटेंट—२१६ अनुष्टुप श्लोकाज। एपियरेंस—ओल्ड। कैरेक्टर—नागरी। डेट आव मेन्युस्क्रप्ट—सवत् १९१७-१८६० ए० डी०। प्लेस आव डिपाजिट—ठाकुर अनरुद्धसिहजी, एसिस्टेंट मैनेजर आव राज्य नीलगाव, पोस्टआफिस नीलगाव, डिस्ट्रिक्ट सीतापुर।

बिगिनिग—श्रीगणेशाय नम। अथ गण विचार लिख्यते। छप्पै॥ सूर अनल रजनी निसा विप शिव लोचन सजिये। तितिहि प्रगट गुरु तीनि सकल मिलि मगन उपजिये। बहुरि यगन रस नगन जगन अरु भगन मगन पुनि। क्रम ही अष्ट प्रकार एक तह येक उदित गुनि॥ नृप सिह सुरूप सुजान सुनि पढि सरस सोहित करिये॥ तुव कीरति विमल कवि कुल बरनि सुहृद वृद भूतल भरिये॥ मगन जानि गुरु तीनि यगन लघु आदि बखानिय। रगन मध्य लघु सचि सगन गुर दृष्टि नगन लघु सकल निरतर॥ गण अष्ट स्वरूप सुजान सुनि इमि छद बहु ग्रथन भरिये। तुव कीरति विदित अलख सो भाँति-भाँति सुरपुर चढिये॥

एण्ड—अथ शिशिर॥अरुणनीलससीलित सदल प्रचुर फुल्ल समुल्ल सनैश्रिय वाहनि कचन काचनकाननवतरानि तरा शिशिरागमे॥ अपटु तिग्म मरीचिभिर्नहि तथा शिशिरे निशिर क्षिति॥ निमिजथोप्पलपीन घनस्तनी॥ भुजन पीडनत स्वपतानृणा॥इति शिशिर पूर्ण॥ सवैया भेद॥ सैल पगा वसु भा मुनि भाग गसात भगोल लसैल भगा॥ लै मुनि भाग गही ललसत्त भगोल लसत्त भगग पगा॥ पी मदिरा ब्रजनारि करी सुभ मालति चित्र पदम्र मगा॥ मल्लिक माधवि दुर्मिलिका कमला ससवे पय शुक मगा॥ ललसत्त भगाय मुनि कै धुनि चात्रिक मोरनि की चहूँ ओरनि कोकिल कूकनि सो। अनुराग भरे हरि बागनि मे सपि रागति राग अचूकनि सो। कवि देव घटा जु नई उनई वन भूमि भई जल दूकनि सो। रगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर की झूकनि सो॥ जाहि जोह निपटहि भटू लटू भयो नदनद। मुख मयक तेरो सखी बिनु कलक को चद॥ इति श्री गण विचार ग्रथ कवि देव कृत सम्पूर्णम् शुभमस्तु लिपिते गिरधारी-लाल वैश्य चुरहट लखनऊ निवासी सवत १९१७

सब्जेक्ट—गणो का विचार तथा उनके भेद।"

'खोज रिपोर्ट' १९२३-२५, पृष्ठ ४५०-५१

रेखाकित अश से ज्ञात होता है कि देव ने सुजानसिह के लिए इस ग्रथ की रचना की थी।

'रस रत्नाकर' के सम्बन्ध मे खोज रिपोर्ट की सूचना इस प्रकार है—

"८९ वी रस रत्नाकर बाइ देव। सब्सटेंस—कट्रीमेड पेपर। लीव्स—४८। साइज—८-३1२ इच। लाइन्स पर पेज ८। एक्सटेंट—३७२ अनुष्टुप श्लोक। एपियरेंस—आर्डिनरी। कैरेक्टर—नागरी। डेट आव मैन्युस्क्रप्ट—सवत् १८८१—ए० डी० १८२४। प्लेस आव डिपाजिट—नागेश्वर वक्श प्रमोद, विलेज नुनरा, लम्हा, डिस्ट्रिक्ट सुल्तानपुर औध।

बिगनिग—श्रीगणेशायनम॥ दोहन हो यह कीजियु रस रतनाकर ग्रथ॥ जाके जाने जानिये रस ग्रथन के पथ॥१॥ प्रीति सदा निज पतिहि सो स्वीया की यह रीति। परकीया पर पुरुष सो दुरै जो राखै प्रीति॥२॥ स्वकीया को उदाहरण। कैसे धौ या वदन की कढत जाल मग जोति। जाकी सुसक्यानी नही ओठन बाहिर होति॥३॥ परकीया के उदाहरण॥ डौल रहत कत रोकि तुम कौन खेल यह आहि। चलत देह सो देह छ्वै नेकु कहूँ डर नाहि॥४॥ सामान्या लक्षणम्

।।प्रीति जो राखै सबनि सों धन धनही के काज। तासौं सामान्या कहै सुकविन के सिरताज ।।५।।
यथा ।। अथ प्यारे सों बोलिहौ कहु वरपाइप कवार। कनक जँभीरन सौं जरित लै हीरन को हार।।६।।

एण्ड—अथ वितर्क जह सदेह ते तरजनी भौहै सीस नवाइ। कीजे कछू विचार तहँ वितरक दियौ बताइ ।। यथा—कौन न फूलत रैनि दिन चदन जाति सराहि। जगमगातु दिन रैनि यह ताते तिय मुख आहि।। इति सचारिन। अथ सात्विक—थभ भेद रोमाच सुरभगो वेपथु मानि। विवरनता असुया प्रलय आठौ सात्विक जानि।। आठहू को उदाहरण—विवरण असुया मूरछा थभ कटकित अग। देखत भये दुहून के कप सेद सुर भग।। इति सात्विक।। इति रस रत्नाकर ग्रथ समाप्त ।। शुभम्भूयात ।। ईश्वरी दस्तेनालेखि बधु हेतवे पुस्तकमिदम् ।।

सब्जेक्ट— १ पृ०१ से १८ तक—नायिका-भेद, स्वकीया, परकीया, सामान्या, मुग्धा, अज्ञात तथा ज्ञात यौवना, विश्रब्ध नवोढा, प्रगल्भा, धीरा, अधीरा, धीराधीरा, मध्या धीरा, प्रौढा धीरा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, परकीया—ऊढा, अनूढा, भूत सुरतगोपना, भविष्य सुरतगोपना, क्रिया विदग्धा, वाक्य विदग्धा, कुलटा, मुदिता, लक्षिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, लघु मान, मध्य-मान, अष्ट नायिका।

२ पृ० १९ से २४ तक—नायक लक्षण, त्रिविधि नायक, पति, उपपति, वैसिक, दक्षिण नायक, धृष्ट, शठ, वैष्टिक, मानी, वचन चतुर, क्रिया चतुर, प्रोषितपति नायकाभास।

३ पृ० २५ से २६ तक—सखा वर्णन, पीठमर्द, विट, चेट, विदूषक।

४ पृ० २७ से ३१ तक—तीन प्रकार के दर्शन, स्वप्न, चित्र, दर्शन। सखियो के चार कार्य, उपालभ, मडन, शिक्षा, परिहास। उत्तम, मध्यम और अधम दूती वर्णन। दासी दूती, सखी दूती, चुरिहारिन, मालिन, नाइन, तमोलिन, धाई, धाई सुता, शिल्पिनी, भगतिन।

५ पृ० ३२ से ३५ तक—हाव वर्णन।

६ पृ० ३६ से ४२ तक—रस वर्णन, चारो अगो समेत।

नोट—इस 'रस रत्नाकर' नामक ग्रथ मे देवजी ने दोहो मे नायिका-नायक, दूती, सखी, सखादि का वर्णन करके नवरसो का सूक्ष्म वर्णन किया है। साथ ही विभाव, अनुभाव, सचारी भाव तथा स्थायी भावो का भी वर्णन किया है। यह पुस्तक १८८१ मे अपने भ्राता के लिए ईश्वरी प्रसाद ने लिखी है। पुस्तक मे कवि ने अपना, अपने कुटुम्ब तथा ग्र थ निर्माण काल के सबध मे कुछ भी कथन नही किया है। पुस्तक के अत मे निम्नलिखित दोहा है जिससे उसका सवत् १८८१ मे लिखा जाना सिद्ध होता है —

'इदु नाग वसु वसुमति मास दयो गुरुवार।
असित पक्ष तिथि पञ्चमी रस सागर लिखि पार।।' "

—खोज रिपोर्ट १९२३-२५, पृष्ठ ४६९-७०

खेद है कि इन स्थानो पर जाने पर भी हमे ये प्रतियाँ उपलब्ध न हो सकी अत इनकी प्रामाणिकता के विषय मे कुछ कहना सभव नही।

ग्रन्थो का क्रम

'रस विलास' के द्वितीय संस्करण को छोडकर कवि देव ने अपने किसी ग्रथ मे उसका

रचनाकाल नही दिया है अत देव के ग्रथों का रचनाक्रम निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। डा० नगेन्द ने अपने ढग से देव के ग्रथो का क्रम निर्धारित करने की चेष्टा की है परन्तु अप्रामाणिक सामग्री तथा कल्पना पर आश्रित होने के कारण उनके अनेक निष्कर्ष भ्रमात्मक हैं। उदाहरण के लिए, 'भाव विलास' के जिस 'सवत सत्रह सै' दोहे के आधार पर उन्होंने सवत् १७४६ मे इस ग्रथ की रचना, १७३० मे कवि का जन्म तथा देवकृत ग्रथो का क्रम निश्चित किया है वह इस दोहे के प्रक्षिप्त सिद्ध होने के कारण अशुद्ध है। हम अभी कह आए है कि 'जाति विलास' देवकृत 'रस विलास' की अपूर्ण प्रतिलिपि है परन्तु पडितो मे प्रचलित मत को विस्तार देते हुए डा० नगेन्द्र ने अपनी ओर से कल्पना कर ली है कि देव को देशव्यापी अपनी यात्रा मे १०-१५ वर्ष लगे होगे, जिसके उपरात उन्होने 'जाति विलास' की रचना की होगी। ('देव और उनकी कविता'—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४६) अत इस पद्धति से निर्धारित क्रम अवैज्ञानिक होने के कारण अमान्य है। वास्तव मे देव के ग्रथो का रचनाक्रम निश्चित करना यदि असभव नही तो कठिन अवश्य है। केवल समस्त ग्रथो के प्रामाणिक पाठ के आधार पर इन छदो की तुलनात्मक प्रतीक-सूची निर्मित कर, ऐसी दो प्रतियो का युग्म निर्धारित करते हुए, जिन दो ग्रथो मे समान छद मिलते है, ग्रथो का रचनाक्रम निश्चित किया जा सकता है। कहना न होगा कि इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण कडी 'सुख सागर तरग' ग्रथ के दोनो सस्करण हैं। यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न अपने-आप मे अध्ययन का स्वतन्त्र एव विस्तृत विषय है तथा देव के समस्त ग्रथो का पाठ-सम्पादन किये बिना इसका अध्ययन नही हो सकता अत हम इस प्रश्न को भविष्य के लिए छोड रहे है।

'सुख सागर तरग' से सम्बद्ध एक भिन्न सभावना कवि की रचना-पद्धति से सम्बन्धित होने के कारण यहाँ उल्लेखनीय है।

यह तो निश्चित है कि देव ने अपने विभिन्न ग्रथो से छद-सकलन करते हुए 'सुख सागर तरग' का निर्माण किया है। 'सुख सागर तरग' के सम्बन्ध मे क्या यह सभव नही है कि कवि स्फुट छदो की रचना करने के पश्चात् उन्हे किसी लक्षण-ग्रथ मे रखने के बजाय किसी एक ग्रथ मे सकलित करता गया हो एव इसी सग्रह मे स्वय उसने अथवा उसके आदेश पर उसके किसी शिष्य या प्रतिलिपिकार ने अन्य ग्रथो मे छन्द सकलित किये हो—तथा 'सुखसागर तरग' के दो सस्करण इसी सग्रह के सुनियोजित सग्रह हो? कवि के विभिन्न ग्रथो मे इतनी अधिक सख्या मे समान छन्द मिलने पर, सुगम तथा व्यावहारिक होने के कारण, यह सभावना हमे अधिक उचित मालूम देती है। इस सभावना के पक्ष मे निम्नलिखित तर्क है —

(१) "ईठ रस बातनि" छन्द 'काव्य रसायन' मे ७ ४३, 'प्रेम चन्द्रिका' मे ४ ४७ तथा 'सुख सागर तरग' मे ४०५ सख्या पर आया है। इस छन्द के तृतीय चरण का स्वीकृत पाठ इस प्रकार है—

"गैयन गोहन प्रेम गुन के पोहन देव मोहन अनूप रूप रुचि के राखन चोर।"

इन तीनो ही ग्रथो की सभी प्राचीन प्रतियो मे 'के' त्रुटित है, यद्यपि अर्थ तथा पिगल के विचार से 'के' का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। ये सभी प्रतियाँ इतनी दूरस्थ है कि इनमे परस्पर पाठ-मिश्रण सम्भव नही है और तीन-तीन ग्रथो की सभी प्रतियो मे एक शब्द

का न्यून होना पाठ-मिश्रण की अपेक्षा इन प्रतियो मे किसी प्रकार के प्रतिलिपि-सम्बन्ध के कारण अधिक सम्भव है। इससे भी हमारी उपरोक्त धारणा पुष्ट होती है कि इन ग्रथो मे छन्द के आगम का आधार कोई केन्द्रीय सग्रह रहा होगा, जिससे कवि के आदेश पर उसके किसी शिष्य अथवा प्रतिलिपिकार ने छन्दो को समाविष्ट किया होगा।

(२) यदि देव का एक छन्द उनके तीन ग्रथो मे भी आया है तो इन तीनो ग्रथो मे छन्द के एक ही स्थल पर पाठ-विकृतियाँ मिलती है। यह भी केवल पाठ-मिश्रण के कारण सम्भव नही हो सकता। यदि विभिन्न ग्रथो के समान छन्द किसी लिखित सग्रह से न लिये जाकर सर्वथा स्वतन्त्र रूप से आये होते तो एक ही निरर्थक विकृति एकाधिक ग्रथो की अनेक प्रतियो मे क्यो मिलती अथवा इन प्रतियो मे एक ही स्थल पर विकृति क्यो उत्पन्न होती। स्थान-सकोच के कारण मै ऐसा केवल एक उदाहरण दे रहा हूँ—

'मन भावन के' छन्द का अन्तिम चरण है "तिय बारहि बार सँवारहि के निरवारति बार किवार दिये।" छन्द मे 'के लिए' के सक्षिप्त रूप मे 'के' आया है परन्तु 'भाव विलास' (४ ३१) की का० सा० प्रतियो एव 'रस विलास' (८ १४) की ब्र० प्रति मे 'सँवारहि की' पाठ है, 'भाव विलास' की भा० एव 'रस विलास' की सा० प्रति मे 'सँवारति ही' पाठ है, 'भाव विलास' की ज० प्रति मे 'सँवारहि केश' तथा 'सुजान विनोद' की का० प्रति मे 'सँवारति बार' पाठ है। यह सभव नही है कि इन सभी प्रतियो मे एक ही स्थल पर एक-दूसरे मे पाठ-मिश्रण हुआ हो। पाठ-मिश्रण की एक सीमा होती है। इस उदाहरण से यह प्रगट होता है कि यह छन्द जिस प्रति मे था या तो उसमे इस स्थल पर कवि द्वारा पाठ-सशोधन हुआ था अथवा अपठ होने के कारण या लिपि मे भ्रम की सम्भावना होने के कारण यहाँ प्रतिलिपिकार को भ्रम हो सकता था। दोनो ही प्रकार से छन्द के आगम के केन्द्रीय आधार की सम्भावना पुष्ट होती है।

'सुख सागर तरग' मे समान छन्दो की तुलनात्मक सूची देखते हुए हमे यह ग्रथ भी इसी सग्रह-ग्रथ का सकलित-सुसयोजित सस्करण लगता है। जो भी हो, किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इस पर और अधिक गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

इन सभी प्रश्नो का समाधान 'सुख सागर तरग' के दोनो सस्करणो के सम्पादन के बाद ही मिल सकता है क्योकि यह महत्त्वपूर्ण ग्रथ कवि की रचनाओ मे एक रहस्यपूर्ण कडी है।

छन्दो का परस्पर आदान-प्रदान

मध्य युग के अनेक कवियो मे अपने एक ग्रथ के छन्दो को दूसरे ग्रथ मे सम्मिलित करने की विशेपता पायी जाती है। तुलसीकृत 'दोहावली' के दोहे इस कवि की अन्य कृतियो मे भी मिलते है, कवि केशवदास के अनेक छन्द उनके दो-दो ग्रथो मे मिलते है और मतिराम के 'ललित ललाम' के अनेक दोहे उनकी 'सतसई' मे पाए जाते है। इस प्रकार अपने ही छन्दो को एकाधिक ग्रथो मे रखने की प्रवृत्ति अकेले देव मे नही अन्य कवियो मे भी पायी जाती है। नवीन ग्रथ तैयार करने की आवश्यकता भी इस प्रवृत्ति के मूल मे विद्यमान एक कारण हो सकता है परन्तु इससे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण सम्भवत यह था कि एक ही छन्द एकाधिक लक्षणो का उदाहरण हो सकता था। देव ने इन दोनो ही कारणो से अपने छन्दो को एकाधिक

ग्रंथों मे स्थान दिया है। परन्तु इसमे कदापि सन्देह नहीं कि देव मे यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर है। यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कम से कम सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य मे किसी अन्य कवि ने अपने छन्दो को हेरफेर कर उतने अधिक स्थलो पर नहीं रखा है, अन्य भाषाओ के किसी कवि ने भी ऐसा किया होगा, कहा नही जा सकता। देव के कुल छन्दो मे से प्राय आधे एक से अधिक स्थलो पर आये है। एक ही छन्द तीन-चार स्थलो पर तो साधारणतः मिल जाता है, 'आपुस मैं रस' छन्द पाँच स्थलों पर, 'देव मैं सीस' एव 'बालम बिरह' जैसे छन्द, सात स्थलो पर मिलते है। कुछ छन्द इनसे भी अधिक स्थलो पर आए है। छन्द-प्रतीको की सूची का इस दृष्टि से विश्लेषण करने पर रोचक निष्कर्ष निकलते है। देव के आलोच्य ग्रंथो में छन्दो की तुलनात्मक स्थिति निम्नलिखित सारणी मे स्पष्ट होती है —

ग्रंथ	दोहे जो केवल इस ग्रंथ मे है	अन्य छद जो केवल इस ग्रंथ मे है	योग	दोहे जो अन्यत्र भी आए है	अन्य छद जो अन्यत्र भी आए है	योग	कुल योग
१ 'सुमिल विनोद'	८८	७४	१६२	२७	८८	११५	२७७
२ 'सुजान विनोद'	१०१	६५	१६६	९	१८१	१९०	३५६
३ 'काव्य रसायन'	३७३	२०३	५७६	१	११६	११७	६९३
४ 'रस विलास'	१३२	१११	२४३	३७	१८६	२२३	४६६
५ 'भाव विलास'	—	१७६	१७६	१९६	४५	२४१	४१७
६ 'भवानी विलास'	७०	६५	१३५	७६	१७३	२४९	३८४
७ 'कुशल विलास'	४५	५१	९६	७६	१३४	२१०	३०६
	८०९	७४५	१५५४	४२२	९२३	१३४५	२८९९

—अर्थात् इन सात ग्रंथों के कुल २८९९ छदो मे से १५५४ छद अन्यत्र नही मिलते तथा १३४५ छद एक से अधिक स्थलो पर आये है। यह संख्या अभूतपूर्व है।

पाठ-मिश्रण—देव के ग्रंथों के अधिकतर छद अन्यत्र भी मिलने से जहाँ पाठ-सपादन मे अत्यधिक सहायता मिलती है, इसी सामर्थ्य पर जहाँ कुछ ग्रंथो का केवल एक प्रति के पाठ से सपादन सभव हुआ है, वहाँ इन छदो मे परस्पर पाठ-मिश्रण भी धड़ल्ले से होने के कारण कठिनाई भी कम नहीं होती। किसी भी सग्रह की प्रतियो मे जहाँ देव के एक से अधिक ग्रंथ हो, उनमे परस्पर पाठ-मिश्रण की सभावना पर निगाह रखना आवश्यक हो जाता है। वैसे पाठ-मिश्रण के लिए आधार-रूप मे केवल 'सुख सागर तरग' की एक प्रति का होना पर्याप्त है।

विभिन्न ग्रंथो की प्रतियो मे हुए पाठ-मिश्रण की सपूर्ण सूची यहाँ देना असभव है इस कारण केवल थोडे से उदाहरण दिये जा रहे है —

१ "जावक के रग रपटी सी लपटी सी लील पटी झपटी सी काम केहरी।"

—'सुजान विनोद' ४ २३ ४

'लील पटी' पाठ 'नीलपृष्ठी' अर्थात् अग्नि के अर्थ मे सगत है परन्तु 'सुजान विनोद' की

केवल ग० प्रति एव 'सुख सागर तरग' मे ६४२ पर 'लाल परी' पाठ है।

२ "आइ हुती अन्हवावन नाइन सोधो लिए बहु सूधे सुभाइन।
ह्वै रही ठौरही ठाढी ठगी सी हँसै कर ठोढी धरे ठकुराइन।।"

—'काव्य रसायन' ५ ३५

'वहु' के स्थान पर 'कर' पाठान्तर ग० हि० प्रतियो मे मिलता है। 'अष्टयाम' मे २ २ पर विभिन्न प्रतियो मे 'कर' तथा 'बहु' दोनो पाठ है। 'काव्य रसायन' की ग० प्रति तथा हि० प्रति का आदर्श एक ही सग्रह की प्रतियाँ है अत इनमे पाठ-मिश्रण हुआ है। 'काव्य रसायन' की नी० प्रति तथा 'सुख सागर तरग' की नी० प्रति मे 'वह' पाठ मिलता है। 'अष्टयाम' की कुछ प्रतियो मे 'वह' तथा 'बहु' पर्याय है। 'धरे' के स्थान पर 'अष्टयाम' की कुछ प्रतियो मे 'दिये' पर्याय भी मिलता है। 'काव्य रसायन' की हि० प्रति मे 'दिये' पाठ है।

३ "कमल सुनैन जोरे जब ते सुनैन तुम तबते सुनै न स्यामा सखिन के सोरए।"

—'रस विलास' ७ ८७

'रस विलास' की केवल ब्र० प्रति तथा 'सुजान विनोद' की का० प्रति मे 'स्यामा' के स्थान पर 'स्याम' पाठ है।

४ "जगर-मगर होत सहज जवाहिर से अति ही उज्यारे जब नैसिक उबटियत।"

—'रस विलास' १ ४८

'सहज' के स्थान पर 'सहन' विकृत पाठ 'सुजान विनोद' (३ ३१) की का० प्रति मे एव 'रस विलास' की नी० प्रति मे मिलता है। 'अति ही' के स्थान पर 'नग से' पाठ 'रस विलास' की नी० ग० गजा० प्रतियो मे एव 'सुजान विनोद' की ग० प्रति मे है।

५ "भीर मै भूले भए सखि मै जब ते जदुराइ की ओर कियो रुख।"

—'भाव विलास' २ २८

'ओर' के स्थान पर 'राइ' विकृत पाठ 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियो मे एव 'सुख सागर तरग' (५४२) की नी० प्रति मे मिलता है।

६ "नैकु चितौत नही चित दै रस हास कियेहू हियेहू न खोलै।"

—'भाव विलास' ३ ३२

'हियेहू न' के स्थान पर 'हियो नहि' पाठ 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियो मे तथा 'सुजान विनोद' की ग० अ० प्रतियो मे है।

देव के ग्रथो मे परस्पर पाठ-मिश्रण की समस्या सबसे जटिल है। सामान्यतया यदि कोई एक छद एक से अधिक स्थलो पर आया है तो दोनो स्थलो पर प्राप्त पाठ, ग्रथो के मूल स्रोत का पाठ होने के कारण कवि कृत माना जा सकता है परन्तु देव की प्रतियो मे प्रत्येक स्तर पर पाठ-मिश्रण होने के कारण दो ग्रथो की प्रतियो मे प्राप्त छद का समान पाठ भी स्वीकृत करते हुए सतर्क रहने की आवश्यकता है। इस पाठ-मिश्रण का पता पाना भी प्राय कठिन है क्योकि अधिकतर पाठ-मिश्रण प्रतियो के विकृत पाठो के न होकर सगत तथा सार्थक पर्यायो के हुए है। इसी कारण हमने 'देव पीयूष' तथा 'सुन्दरी सिंदूर' जैसे सग्रहो का उपयोग करना उचित नही समझा है।

सहायक संपादन-सामग्री

इन आलोच्य ग्रथो के अतिरिक्त हमने देवकृत निम्नलिखित ग्रथो का उपयोग सहायक सपादन-सामग्री के रूप मे किया है —

१ 'सुख सागर तरग'—श्री वालदत्त मिश्र द्वारा मपादित तथा मन् १८९८ मे अयोध्या मे प्रकाशित सस्करण, जिसका आधार ब्रजराज पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति है। इस प्रति मे अत्यधिक पाठ-मिश्रण हुआ है अत सपादित सस्करण के अनुसार छद-सख्या देते हुए हमने नील-गाँव राजपुस्तकालय की सवत् १९३२ की हस्तलिखित प्रति को उपयोग मे लिया है।

२ 'सुख सागर तरग' के कवि कृत द्वितीय मस्करण की नागरी प्रचारिणी मभा की प्रति (मख्या ५७३।१२) का उपयोग भी हुआ है।

३ 'प्रेम चद्रिका'—श्री मिश्र वधुओ द्वारा सपादित तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'देव ग्रथावली' के अन्तर्गत प्रकाशित सस्करण। इस सस्करण के अनुसार छद-सख्या देते हुए, वाद मे उपलव्ध काशिराज सरस्वती भडार की सवत् १८५७ की प्रति के पाठ का हमने उपयोग किया है।

४ 'देव शतक'—श्री गोविन्दशरण द्वारा सपादित एव 'भाव विलास' के साथ वालचद्र यत्रालय, जयपुर से प्रकाशित ग्रथ का सस्करण।

५ 'देव चरित्र'—हिंदी साहित्य सम्मेलन सग्रहालय, प्रयाग, मे मिश्रवधु की प्रति मे सवत् १९९९ मे तैयार प्रतिलिपि।

६ 'अष्टयाम'—भारत जीवन प्रेस का सस्करण तथा दशाधिक हस्तलिखित प्रतियो का पाठ।

उपरोक्त सहायक सामग्री के अतिरिक्त श्री अगरचद नाहटा के सग्रह मे 'शृगार सग्रह', श्री रायकृष्णदासजी के सग्रह मे 'देव पीयूष' तथा कवित्त-सवैये के कतिपय अन्य छोटे-बडे सग्रह सपादक के देखने मे आए है परन्तु इनके देवकृत छदो का आगम-स्रोत ज्ञात न होने के कारण पाठ-मिश्रण के भय से हमने इन ग्रथो का उपयोग नही किया है। इसी कारण 'सदरी सिदूर' को भी छोड दिया गया है।

सपादन-प्रणाली

देवकृत उपर्युक्त लक्षण ग्रथो मे से केवल दो ग्रथो का सपादन अकेली प्रति के पाठ के आधार पर तथा अन्य का सपादन एकाधिक प्रतियों के आधार पर किया गया है।

'सुमिल विनोद' तथा 'भवानी विलास' के सपादन का आधार अकेली प्रतियाँ है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने वनारसीदास कृत 'अर्धकथानक' का पाठ अकेली प्रति के आधार पर सपादित करते हुए इस प्रकार के सपादन की जो प्रणाली निर्धारित की है, सपादक ने उससे इन ग्रथो के सपादन मे पर्याप्त सहायता ली है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्राप्त प्रति के पाठ मे वही अपनी ओर से विशेष सशोधन किया है जहाँ पाठ निश्चित रूप से विकृत है। उन्होने विशेष सशो-धन भी कवि के अन्य प्रयोग, उसकी शैली तथा उसकी प्रकृति के आधार पर किये है। देव के सबध मे स्थिति इससे थोडी भिन्न है क्योकि देव के छद अन्य ग्रथो मे भी मिलने के कारण बहुधा

छद का सगत पाठ देवकृत किसी अन्य ग्रथ मे मिलता है। अत देव के अन्य ग्रथो मे प्राप्त पाठ का उपयोग अकेली प्रति के आधार पर सपादित ग्रथो के सपादन मे किया गया है परन्तु यहाँ भी आलोच्य ग्रथ मे केवल ऐसे ही स्थलो पर अन्य ग्रथ के पाठ की सहायता ली गई है जहाँ पहली प्रति का पाठ निश्चित रूप से विकृत है। यदि यह छद किसी अन्य ग्रथ मे नही मिलता तभी कवि की शैली का ध्यान रखते हुए अपनी ओर से विशेष सशोधन किया गया है। दूसरे ग्रथो के सभी पाठ पर्याय दो कारणो से आलोच्य ग्रथ मे नही स्वीकृत हुए है। एक तो, सभव है कि कवि ने दूसरे ग्रथ मे स्वत पाठ-परिवर्तन किया हो अत सभी पर्यायो का समिश्रण करने से बाद मे कविकृत-पाठ-सशोधन का अध्ययन करना असभव होगा। दूसरे, अन्य एकाकी प्रति का पाठ-पर्याय, कविकृत न होकर प्रतिलिपिकार कृत सशोधन भी हो सकता है अत सभी पाठ-पर्यायो को सपादित प्रति मे समाविष्ट कर लेना हमारे विचार से अवैज्ञानिक है।

जिन ग्रथो का सपादन एकाधिक प्रतियो के आधार पर हुआ है उनकी सपादन-विधि का विस्तार से वर्णन सम्बद्ध भूमिका मे है। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि जिन दो प्रतियो मे पर्याप्त सख्या मे पाठ-विकृतियाँ समान है, उनमे ये समान विकृतियाँ इन दो प्रतियो के एक ही आदर्श से प्रतिलिपि होने के कारण आई है। अत ऐसी प्रतियो की परपरा, जसमे इन प्रतियो से समान पाठ-विकृतियाँ नही मिलती, इन समान विकृतियो वाली प्रतियो की परपरा से स्वतत्र होगी। इन्ही समान पाठ-विकृति-सम्बन्ध द्वारा सम्बन्धित प्रतियो के समुच्चय निर्मित करते हुए हमने प्रतियो के वश-वृक्ष का निर्माण किया है। इस वश-वृक्ष की दो स्वतत्र शाखाओ मे उपलब्ध पाठ को हमने मूल प्रति का माना है।

इन ग्रथो के सपादन मे देवकृत अन्य ग्रथो के पाठ का उपयोग व्यापक रूप से परन्तु केवल सहायक सामग्री के साक्ष्य के रूप मे हुआ है। यहाँ भी अन्य ग्रथो के समस्त पाठ-पर्याय उपरोक्त कारणो से मिश्रित नही किये गए है। यदि इन पर्यायो को एक स्थल पर रखा जाता तो अत्युत्तम था परन्तु ऐसा विस्तारभय से नही किया गया है। जिज्ञासु सहृदय छद-प्रतीक की सहायता से अन्य ग्रथो मे आए छद के पाठ की तुलना कर इन पाठ-पर्यायो का अध्ययन कर सकते है।

हमने इस सपूर्ण सपादन-कार्य मे अपनी ओर से किसी स्थल पर सशोधन किया है तो उसका उल्लेख ग्रथ की भूमिका मे भी कर दिया है।

इधर आधुनिक वैज्ञानिक विधि से हिन्दी के अनेक ग्रथो का पाठ-सपादन हो चुका है अतः इस प्रणाली एव इसमे व्यवहृत अधिकतर शब्दावली से पाठक परिचित हो चले है। फिर भी प्रस्तुत सपादन के सदर्भ मे हमने जिन शब्दो का प्रयोग विशेष अर्थ मे किया है उनका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। स्मरण रहे कि हमारा उद्देश्य परिभाषा देना नही, केवल अपने मतव्य का स्पष्टीकरण है।

विकृत पाठ——सामान्यरूप से हम उस पाठ को विकृत मानते है जो मूल पाठ मे प्रतिलिपिकार के दृष्टि-भ्रम के कारण, लिपि-भ्रम के कारण अथवा अनेक अन्य सभव कारणो मे से किसी कारण से विकृत हुआ हो तथा जिसे निश्चित रूप से अशुद्ध कहा जा सके। प्रस्तुत कवि की रचनाओ मे विकृत पाठो की स्थिति पूर्णतया स्पष्ट नही है क्योकि विभिन्न प्रतियो मे पाठान्तरो की सख्या-बहुलता के कारण निश्चित रूप से विकृत अथवा असगत पाठ बहुत कम मिलते है।

अत एक पाठान्तर को सहसा सुविधा से विकृत सिद्ध कर सकना कठिन है। इसका एक कारण प्रतिलिपिकार की सजगता है। व्रजभापा काव्य से सामान्यतया परिचित होने के कारण यदि प्रतिलिपिकार की आदर्श प्रति मे किसी स्थल पर अशुद्ध पाठ भी है तो उसने उसके स्थान पर अपनी ओर से दूसरा सार्थक तथा यथासभव सगत पाठ रख दिया है। प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त इस पाठ को हम केवल शब्दार्थ अथवा प्रसग की सगति-असगति के आधार पर मूल प्रति का अथवा विकृत नही सिद्ध कर सकते। ध्यान रहे कि रीतिकाल तक आते-आते व्रजभापा इतनी विकसित हो चुकी है, उसका शब्द-समूह इतना सवर्द्धित होकर सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो को अनोखी रीति से अभिव्यक्त करने मे समर्थ है कि केवल शब्दार्थ के आधार पर विकृतियो का निर्धारण करना कठिन है। कुछ उदाहरण ले। स्वीकृत पाठ है "केसर केसु कदव कुरौ कचनारनि की रचना उर मूली।"—'सुजान विनोद' ४ १४ १। इस ग्रथ की केवल का० प्रति मे 'रुरौ' पाठ मिलता है, जो वास्तव मे 'क' के प्राचीन रूप मे भ्रम होने के कारण सभव है। परन्तु 'रुरौ' शब्द की व्युत्पत्ति एक फलदार वृक्ष के अर्थ मे 'रुरु' से मानी जा सकती है अत का० प्रति का पाठ केवल अर्थ के आधार पर असगत नही कहा जा सकता। 'कुरौ' पाठ प्रतियो के पाठ-साक्ष्य पर तथा कवि मे अनुप्रास का आग्रह होने के आधार पर अनुप्रास-युक्त होने के कारण मूल प्रति का माना गया है। ऐसा ही दूसरा उदाहरण है—"गुलगुली गोल मखमल कैसो **गेंदुआ** गडै न गडी जो मे जऊ करत ढिठाई सी।"—'रस विलास' ५ ११। 'रस विलास' की कुछ प्रतियो मे प्राप्त 'गेडुआ' पाठ 'दु' मे 'ड' का भ्रम होने से सभव है परन्तु तकिया के अर्थ मे सस्कृत के 'गेन्डक' शब्द से इन दोनो शब्दो की व्युत्पत्ति होने के कारण दूसरा पाठ केवल शब्दार्थ के आधार पर विकृत नही सिद्ध हो सकता। यहाँ हमने प्रतियो के साक्ष्य पर 'गेंदुआ' पाठ स्वीकृत माना है।

उपर्युक्त कारणो से हमने किसी पाठ को विकृत मानने के लिए शब्दार्थ के साथ-साथ प्रसग मे उसकी सगति-असगति पर भी विचार किया है क्योकि बहुधा अर्थ के विचार मे सगत पाठ भी उस प्रसग मे असगत होता है।

पर्याय—प्रतिलिपिकार बहुधा अपनी प्रति मे कठिन शब्द के स्थान पर उसका सरल पर्याय रख देते है। एक शब्द के स्थान पर किन्ही दो प्रतियो मे समान पर्याय मिलने मे भी उनके बीच प्रतिलिपि सम्बन्ध सभावित माना जाता है। छद मे चमत्कार लाने के लिए, अथवा अनेक अन्य कारणो से बहुधा प्रतिलिपिकार एक पाठ के स्थान पर समानार्थी दूसरा पाठ रख देता है। उदाहरण के लिए "घाघरो घनेरो लाँबी लटैं **लटे लॉक पर**" ('रस विलास' ७ ५२) के स्थान पर कुछ प्रतियो मे 'लक पातरे पै' पाठ मिलता है। दोनो पाठो का भाव एक ही है। प्रतियो मे शब्द-पर्याय के अभाव मे समान पाठ-पर्यायो से भी प्रतियो का सम्बन्ध समझने मे सहायता मिलती है अत हमने पाठ-पर्यायो के कुछ स्थलो को भी पर्याय के साथ रखा है।

लिपिजन्य विकृति—सत कबीर, जायसी तथा गोस्वामी तुलसीदास के ग्रथो की प्रतिलिपि-परपरा मे नागरी लिपि के अतिरिक्त कैथी, गुरुमुखी तथा फारसी लिपियो का योग होने के कारण लिपिजन्य अनेक विकृतियाँ पायी जाती है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी तथा तुलसीदास की रचनाओ के सपादन मे तथा डा० पारसनाथ तिवारी ने कबीर ग्रन्थावली के सपादन मे विस्तार मे इन विकृतियो का विश्लेपण किया है। कवि देव का यह सौभाग्य नही रहा कि उनको

रचनाएँ नागरी के अतिरिक्त किसी अन्य लिपि मे प्रतिलिपि हो अत प्रस्तुत सपादन मे हमे निरपवाद रूप से केवल नागरी लिपि से उत्पन्न विकृतियाँ मिलती हे। ये विकृतियाँ वर्ण के किसी अपरिचित प्राचीन रूप-रूपान्तर मे प्रतिलिपिकार को किसी अन्य वर्ण का भ्रम होने के कारण हुई है। 'झ' के अनेक रूप विभिन्न प्रतियो मे पाये जाते है अत इसमे 'ह' तथा 'क' का भ्रम प्रतिलिपिकारो को हुआ है। ("झिलमिली झालरनि-हिलमिली हालरनि"—'सुजान विनोद' ७ ३८, "सूझै-सूहै"—वही ७ ३६) इसी प्रकार 'रु' के प्राचीन रूप मे 'नू' का भ्रम एव प्राचीन 'ओ' मे 'ड' का भ्रम भी सम्भव है। यद्यपि प्रतिलिपिकार का दृष्टि-भ्रम प्रत्यक्ष मे इन पाठ-विकृतियो का कारण जान पडता है परन्तु इस भ्रम का मूल वर्ण के रूपान्तर मे निहित है अत हमने उस प्रकार की विकृतियो को लिपिजन्य विकृति शीर्षक के अन्तर्गत माना है।

प्रतियाँ : सामान्य परिचय : देवकृत लक्षण-ग्रथो की विभिन्न प्रतियाँ मुख्य रूप से केवल कुछ सग्रहो मे प्राप्त हुई है एव एक तथा दूसरे सग्रह की प्रतियो मे निश्चित सम्वन्ध मिलता है अत यहाँ इन सग्रहो के परस्पर-सम्वन्ध तथा उनकी विश्वसनीयता पर विहगम दृष्टि डालने से आगे के विस्तृत विवेचन को समझने मे सहायता प्राप्त होगी।

१ **का०—काशिराज सरस्वती भडार, रामनगर दुर्ग, काशी,** की जितनी प्रतियो का हमने उपयोग किया है वे सभी प्राचीन, सवत् १८५७ के आस-पास की तथा विश्वसनीय हैं। पाठ-विकृतियो की परीक्षा करने पर ये अपने ग्रन्थ के मूल आदर्श से कुछ ही पीढी आगे की प्रतियाँ मालूम देती है।

२. **नी०—नीलगाँव राजपुस्तकालय, नीलगाँव, जिला सीतापुर,** की प्रतियाँ भी अत्यन्त प्राचीन तथा कवि की उन पोथियो की परपरा मे है, जिनमे कवि के पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति ने छदो का प्रक्षेप तथा पाठ-सशोधन किया था। इस सग्रह की प्रतियाँ सवत् १९४२ के लगभग की है। इस सग्रह की प्रतियो मे ग० सग्रह की प्रतियो के समान परस्पर पाठ-मिश्रण नही हुआ है।

३ **गं०—व्रजराज पुस्तकालय, गधौली, सीतापुर,** की प्रतियो मे पाठ-मिश्रण खूब हुआ है अत ये प्रतियाँ पाठ के विचार से विश्वसनीय नही है। ये प्रतियाँ नीलगाँव सग्रह की प्रतियो की समकालीन—सभवत उनकी प्रतिलिपियाँ है।

४ **नागरी प्रचारिणी सभा, याज्ञिक संग्रह** की प्रतियाँ प्राचीन, १८७५ के लगभग की तथा सामान्य रूप से विश्वसनीय है। ये सभी प्रतियाँ भरतपुर के आसपास से प्राप्त हुई है अत राजस्थान से प्राप्त अन्य प्रतियो के साथ इस सग्रह की प्रतियो का सम्बन्ध पाया जाता है।

५. **नागरी प्रचारिणी सभा, आर्य भाषा पुस्तकालय,** की हस्तलिखित प्रतियाँ आधुनिक समय मे सवत् १९७७ के लगभग ग० सग्रह की प्रतियो से तैयार प्रतिलिपियाँ है।

६ **हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद,** की प्रतियाँ आर्य भाषा पुस्तकालय की प्रतियो से प्रतिलिपि की गई हैं। ग० प्रति से प्रतिलिपि होने के कारण इन दोनो सग्रहो की प्रतियाँ विश्वसनीय नही है।

७ **हिन्दी साहित्य सम्मेलन सग्रहालय, इलाहाबाद,** की प्रतियाँ राजस्थान से प्राप्त हुई है, सवत् १८७५-८० के आसपास की है एव विश्वसनीय है। राजस्थान से प्राप्त अन्य प्रतियो के साथ इन प्रतियो का सम्बन्ध मिलता है।

कवि-प्रवृत्ति—किसी भी कवि के ग्रथो का सपादन उसकी प्रवृत्तियो को समझे विना नही हो सकता अतएव सुविधा के लिए हम कवि देव की भापा-शैलीगत कुछ विशेपताओ की ओर इगित कर रहे है।

अनुप्रास—कवि देव पर भापा का स्वरूप विकृत करने का आरोप अनेक समालोचको ने लगाया है तथा शब्दो की तोड-मरोड का लाछन भी उन पर है। वास्तव मे देव ने यह सब केवल अनुप्रास तथा यमक के प्रवल आकर्पण के कारण किया है। "देव दुति **गात** नव जोवन जगमगात लरजि **लजात** जल**जात** पर**भात** के" जैसी ध्वनि-योजना देव के छदो मे पग-पग पर मिलेगी। और ध्यान दे, इसमे केवल अनुप्रास का निर्जीव आग्रह नही, समान ध्वनियो का वारम्वार प्रतिध्वनित होता नाद-सौंदर्य है, जो परम सुन्दर-सुकुमार भावो के आयतन-रूप मे कवित्त-सवैया छद की परमोपलब्धि है। डा० नगेन्द्र ने ध्वनि-योजना के इस प्रश्न को वडे ही सुन्दर ढग से स्पप्ट किया है। ('देव और उनकी कविता'—पृप्ठ २४३-४६)। इसी आकर्पण के कारण देव ने यत्र-तत्र-सर्वत्र शब्दो के प्रचलित रूप को छद की ध्वनि-योजना के अनुरूप ढाल कर रखा है। उचित-अनुचित का निर्णय करना विज्ञ समालोचको का कार्य है, कवि से परिचित होना हमारा कर्त्तव्य है। देव की रचनाओ मे 'फीके' के साथ 'नेकु मै' के लिए 'नीके' ("नीके मै फीके ह्वै"—'काव्य रसायन' २ ५७), 'इठाइ' के साथ 'वढाइ' के लिए 'वठाई' ('देव दुहूँ सो इठाइ वठाइ"—'कुशल विलास' ६ ६) जैसे प्रयोग अनेक मिलेगे।

इसमे सन्देह नही कि देव ने शब्दो का रूप परिवर्तित करने मे अन्य कवियो से अधिक स्वतन्त्रता दिखलायी है। उनकी रचनाओ मे 'लीला सहित' के लिए 'सलील' ("पनि निसि अनत सलील"—'कुशल विलास' ७ २) तथा 'पूरने' के अर्थ मे 'पूजै' ("देखतहू दिखसाध न पूजै"—'सुजान विनोद' १ ५६) जैसे प्रयोग भी कम नही है। देव के "भाग भरे **भाल** पै सुहाग वरसत है" प्रयोग पर कवि दूलह ने आपत्ति की थी कि "भाग भरे मुख" पाठ होना चाहिए। "ऐसी रसीली अहीरी अहो कहौ क्यो न लगै **मन मोहनै** मीठी" पर अभी तक विवाद समाप्त नही हुआ है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कहना है कि 'मन मोहनै' के स्थान पर 'री गोपालहि' पाठ होना चाहिए। ('विहारी'—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र—पृप्ठ ६९-७०) असभव नही जो केवल अनुप्रास के मोह से देव ने यह पाठ रखा हो।

सक्षेप—वर्ण-लोप तथा शब्द-लोप के द्वारा सक्षेप कवि की दूसरी महत्वपूर्ण विशेपता है। "सके ग्वा र रन" ('कुशल विलास' ५. १३) मे 'सग के' का एक वर्ण लुप्त है। "सव लोगनि के **हीरा** वाके हाथ ह्वै विकात है" ('रस विलास' १. ३२) मे 'हियरा' का एक वर्ण नही है—'हीरा' मे श्लेप भी है। "वाही के **जैये** वलाइ ल्यो वालम" ('भाव विलास' ४ ५७) मे 'जाइये' का एक वर्ण लुप्त है। "आजु मिले वहुतै दिन भावते" ('काव्य रसायन' २ ५५) अर्थात् वहुत दिन वाद—'वाद' लुप्त है। "सग के **न जाने** गए डगर डराने देव" ('काव्य रसायन' २ ४०) अर्थात् न जाने कहाँ गए—परन्तु 'कहाँ' प्रच्छन्न है। 'के लिए' के लिए केवल 'के' आया है "कुजन केलि **के** वेली नवेली—" ('सुजान विनोद" ६ ५)—यहाँ 'वाले' के अर्थ मे 'के' नही आया है।

दूरान्वय—कवि देव के छदो मे दूरान्वय की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। कदाचित् यह

भी ध्वनि-सयोजन पर अधिक वल देने के कारण है। अनेक स्थलो पर अर्थ की सगति वैठाने के लिए पदो को असाधारण रूप से भग करना होता है। "कोटिक मार कुमारनि" का अर्थ मिश्र वधुओ ने "कामदेव के कुमार" किया है परन्तु हमारे विचार से इसका अन्वय इस प्रकार करना उचित है "कोटिक कुमार मारनि" अर्थात् 'नि' सबधकारक का चिह्न न होकर वहुवचन का सूचक है। इसी प्रकार "कोविद काम कला सकलानि" ('रस विलास' ५ ३४) मे भी अर्थ की सगति के लिए 'नि' को 'कला' से मिलाकर 'कलानि' वहुवचन का रूप वनाना होगा।

इन प्रवृत्तियो को समझे विना कवि के अभीप्ट भाव तक पहुँच सकना सभव नही है। आश्चर्य है कि देव मे अनुप्रास का यह आग्रह स्वीकार करने पर भी डा० नगेन्द्र ने 'दुहुप' जैसे शव्दो को निरर्थक शव्दो की श्रेणी मे डाल दिया है —"देव के काव्य मे ऐसे शव्द भी सैकडो है जिनका कोई अर्थ ही नही मिलता। तीभ, धील, वावस, हुद्र, सीजी, वसीकने, गमार्यो, दुहुव, तरावक, हूप आदि आदि।"

—'देव और उनकी कविता', पृ० २०६

इनमे से न जाने कितने शव्द उन प्रतिलिपिकारो अथवा सपादको के हैं, जिनकी सामग्री के आधार पर डा० नगेन्द्र ने यह निर्णय दे दिया है। 'वावस' यदि 'वायस' का विकृत रूप है तो यह 'कौवे' के अर्थ मे 'काव्य रसायन' मे आया है—"वायस चामु चबात"। 'दुपुव' विकृति 'दुहुप' से हुई है जो 'पुहुप' के अत्यानुप्रास पर 'रुहुप' तथा 'मुहुप' शव्दो के साथ 'दुहू' के लिए आया है। ('कुशल विलास' ५ २१) 'तरावक' विकृति 'रति मानत रावक' का अशुद्ध रूप से पद-भग करने के कारण हुई है। इसी प्रकार 'हूप' भी "निरगुनहू पुहै" ('रस विलास' ४ १७) को अशुद्ध रूप से भग करने के कारण हुई विकृति है।

शब्द-रूप—अनेक वर्ष हुए 'माधुरी' मे एक हस्तलिखित पत्र देव के हस्तलेख के नाम से छपा था। हमने यह प्रतिकृति गधौली मे देखी थी। इस लेख मे छोटी-छोटी अशुद्धियाँ होने के कारण यह देव के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का हस्तलेख हो सकता है—यद्यपि इसमे भी शव्दो के औकारान्त की अपेक्षा ओकारान्त तथा उकारान्त की अपेक्षा अकारान्त रूप अधिक हैं। कुसमरा के देव वशजो के पास सग्रहीत प्रतियाँ भी देव का स्वहस्तलेख नही है। यद्यपि इसमे भी ओकारान्त तथा अकारान्त रूप अधिक है। फिर भी हमने समस्त शव्दो को एक ही रूप मे ढालने की अपेक्षा ग्रथ की अनेक हस्तलिखित प्रतियो मे प्राप्त रूप अथवा ग्रथ की प्राचीनतम प्रतियो मे प्राप्त रूप सपादित पाठ मे दिया है। हमारे विचार से एक ही कवि मे शव्दो का एक ही रूप सर्वत्र मिले, यह अनिवार्य रूप से आवश्यक नही है।

शब्द-रूपो को निश्चित करना अत्यत आवश्यक है। एक ही काल के अनेक कवियो की भिन्न-भिन्न क्षेत्रो से प्राप्त एकाधिक प्रतियो से एकत्रित सभी शव्द-रूपो के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उस काल मे शव्द-रूपो की स्थिति निश्चित की जा सकती है। परन्तु यह प्रस्तुत कार्य से स्वतत्र कार्य है।

भाव विलास

भूमिका

प्रतियाँ : प्रतियो की बहिरंग परीक्षा—'भाव विलास' के पाठ-सपादन मे प्रयुक्त विभिन्न प्रतियो का विवरण इस प्रकार है —

१ **ज०—अर्थात् जयपुर से प्रकाशित 'भाव विलास' का संस्करण।** जयपुर के श्री गोविद-शरण ने सन् १९१६ ई० मे अपने निजी पुस्तकालय की सवत् १९१३ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर यह सस्करण प्रकाशित किया था। सपादक ने प्रतिलिपि-सवत् के अतिरिक्त प्रति के सबध मे अन्य सूचनाएँ नही दी है। इस सस्करण मे पचम विलास, जिसमे अलकारो का विवेचन है, नही है।

सामान्य लेखन-प्रमादो के होते हुए भी प्रति का पाठ अत्यत विश्वसनीय है।

२ **भा०—अर्थात् भारत जीवन प्रेस का संस्करण।** 'भाव विलास' का एक अन्य सस्करण भारत जीवन प्रेस, काशी, के सचालक श्री रामकृष्ण वर्मा ने सन् १८९३ ई० मे सपादित कर प्रकाशित किया था। ग्रथ के मुख-पृष्ठ पर प्रकाशित सूचना से ज्ञात होता है कि सपादक ने इसे "रियासत सूर्यपुरा से हाथ की लिखी प्रति पाकर अत्यत परिश्रम से शुद्ध कर छपवाया है।" आदर्श प्रति के विषय मे अन्य सूचनाओ का यहाँ भी अभाव है। सपादक की ओर से काफी शुद्धीकरण होने के कारण प्रति का पाठ अधिक विश्वसनीय नही है।

३ **सा०—अर्थात् हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग, की संवत् १८७१ की हस्तलिखित पोथी।** सग्रहालय मे यह पोथी १९५७। २०९५ सख्या पर है। इस प्रति मे ११६ पत्र तथा प्रति पृष्ठ १८ पक्तियाँ है। लेखन मे काली तथा लाल स्याही का प्रयोग हुआ है। प्रति की चौडाई ६ इच तथा लबाई ११ इच है। कुछ स्थलो पर किसी अन्य व्यक्ति ने प्रति का पाठ शुद्ध किया है, ऐसे सशोधन दूसरी कलम से पार्श्व पर अकित है। प्रति की अतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"भाव विलासे—पचमो विलास ॥ सवत् १८७१ मिति द्वितीय भाद्रपद वदि मिति आसाढ पचमी। दीतवाण सवत् १९१३ ॥" यह प्रति सग्रहालय को बूदी के श्री राव मुकुन्दसिह से प्राप्त हुई है। प्रति का पाठ सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

४ **हि०—अर्थात्, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, के सग्रह की संवत् १९७७ की हस्तलिखित प्रतिलिपि।** काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने गधौली के श्री ब्रजराज पुस्तकालय की 'भाव विलास' की प्रति से यह प्रतिलिपि एकेडमी के निमित्त तैयार कराई थी। यह प्रति सफेद लाइनदार कागज पर लिखी है तथा इसमे ७२ पत्र एव प्रति पृष्ठ पर ३२ पक्तियाँ है। प्रति की लबाई १३ इच तथा चौडाई ९ इच है। प्रति की अतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"वटुकप्रसाद कायस्थ श्री काशी जी मे नागरी प्रचारिणी सभा के निमित्त लिखा। मार्गशीर्ष कृष्ण सात सवत्

१६७७।"

यद्यपि हि० प्रति नी० समूह की ही एक आधुनिक प्रति है परन्तु नी० प्रति अत्यधिक जर्जर एव स्थान-स्थान पर अपठ है इसलिए हमने इस प्रति का उपयोग किया है।

इस प्रति का पाठ अधिक विश्वसनीय नही है।

५ नी०—अर्थात् नीलगाँव राजपुस्तकालय, जिला सीतापुर, की 'भाव विलास' की अपूर्ण प्रति। इस प्रति की एक उल्लेखनीय विशेषता है कि इसके आदि मे तथा प्रत्येक विलास के अत की पुष्पिका मे ग्रथ-नाम 'भाव प्रकाश' मिलता है। यह अत्यत नष्ट-भ्रष्ट अवस्था मे मुझे प्राप्त हुई थी। अनेक स्थलो पर पाठ दीमको द्वारा नष्ट हो गया है। पत्रो की सख्या ४७ एव प्रति पृष्ठ पक्तियो की सख्या १६ है। यह प्रति 'जाति विलास', 'उमराउ कोष' आदि ग्रथो के साथ एक जिल्द मे बँधी है। इनमे से अतिम ग्रथ, अर्थात् 'उमराउ कोष' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि गौरीशकर दुबे ने सवत् १६४३ मे इन ग्रथो की प्रतिलिपि की थी। 'भाव विलास' की प्रति की अतिम पुष्पिका इस प्रकार है "इति श्री देवदत्त विरचिते भाव प्रकाशे पचमो बिलास ॥५॥ जदपि बहुत असुद्ध प्रति तदपि सुद्ध बहु कीन। ताहि को पुनि सोधिहैं सज्जन महा प्रवीन ॥"

प्रति मे केवल श्लेष लक्षण दोहे ५ ४२ तक ही पाठ है। यह प्रति 'बहु सुद्ध कीन' होने के कारण अधिक विश्वसनीय नही है, ऊपर से दीमको द्वारा पुन सोधने के कारण अनेक स्थलो का पाठ अपठ भी है।

६ का०—अर्थात् काशिराज सरस्वती भडार, रामनगर दुर्ग, काशी, की सवत् १८५७ की हस्तलिखित प्रति। इस प्रति की सूचीपत्र सख्या साहित्य १२-३६ है। पत्र-सख्या ६६ तथा प्रति पृष्ठ पक्तियो की सख्या १२ है। प्रति की चौडाई लगभग ६ इच तथा लबाई ४ इच है। प्रति अपनी चौडाई मे खुले पत्रो पर लिखी है। लेखन मे काली तथा लाल स्याही का उपयोग हुआ है। कागज पुराना तथा मटमैला है। पाठ "—सो अकुर होइ" १ ५ मे प्रारभ होता है, इसके पूर्व एक पत्र सादा छूटा है। प्रति मे कुछ स्थलो पर उसी हस्ताक्षर से पार्श्व पर पाठान्तर सकलित है। प्रति की अतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"सवत् १८५७ मिति पोषे १ मासे शुक्ल पक्षे रवि वासरे लिखित श्री काशी जी मध्ये ईश्वरीप्रसाद गौड ब्राह्मण अपने पठनार्थ ॥"

प्रति का पाठ विश्वसनीय है।

अन्य प्रतियाँ—'भाव विलास' की उपर्युक्त प्रतियो के अतिरिक्त मुझे इस ग्रथ की अन्य प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं किंतु उसी शाखा की एक अन्य प्रति सपादन-कार्य के निमित्त स्वीकृत हो चुकने के कारण इन प्रतियो का उपयोग नही किया गया है। इन प्रतियो का विवरण इस प्रकार है —

७ काअ०—अर्थात् काशिराज सरस्वती भंडार की दूसरी प्रति। यह प्रति भडार के साहित्य १३-४० विडा मे है। प्रति की चौडाई ८ इच तथा लम्बाई लगभग १० इच है। पत्रो की सख्या ५२ तथा प्रति पृष्ठ पक्तियो की सख्या १७ है। प्रति बगल से जिल्दबन्द है। कागज मोटा तथा सफेद है। इस सुलिखित प्रति के लेखन मे काली-लाल स्याही प्रयुक्त हुई है। प्रतिलिपिकार का नाम-स्थान, प्रतिलिपि-सवत् आदि प्रति मे नही दिये है। प्रति का पाठ का० प्रति के समान आदि मे खडित है एव "जो नव रस के आदि मे पहिलो अकुर होइ"—१ ५ से प्रारम्भ होता है।

इसी शाखा की का० प्रति प्राप्त होने तथा इन प्रतियो मे समान विकृतियाँ मिलने के कारण हमने इस प्रति का उपयोग नही किया है।

८ ग०—अर्थात् **श्री ब्रजराज पुस्तकालय, गंधौली, जिला सीतापुर की संवत् १६३५ की हस्तलिखित प्रति**। लगभग १२ इच लम्बाई तथा ८ इच चौडाई वाले रजिस्टर मे यह प्रति अन्य ग्रन्थो के साथ जिल्दवन्द है। ग्रन्थ का नाम आदि मे तथा विलास के अन्त की पुष्पिकाओ मे पहले 'भाव प्रकाश' था परन्तु प्रतिलिपिकार ने बाद मे 'प्रकाश' को काली स्याही से सशोधित कर 'विलास' बनाया है। केवल ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका के 'भाव विलास' पर काली स्याही से सशोधन नही हुआ है।

इस प्रति मे "श्लेप लक्षण—बरनत सत विहत"—५ ४२ तक का पाठ एक हस्तलेख मे है, इससे आगे ग्रन्थ के अन्त तक का पाठ दूसरे हस्तलेख मे है। ५ ४२ तक का लेखक सादे कागज पर पेसिल से शिरोरेखा खीचे विना लिखता था परन्तु दूसरे लेखक ने "—बरनत सत विहत" पाठ (जो पक्ति के मध्य मे समाप्त होता है) से आगे, यही अधूरी पक्ति से पहले पेसिल से शिरोरेखा खीचकर लिखना प्रारम्भ कर दिया है। इसी स्थल पर नी० प्रति के भी खडित होने के सदर्भ मे यह तथ्य विशेष रूप से स्मरणीय है।

इस प्रसग मे श्री ब्रजराज पुस्तकालय मे सग्रहीत 'टिकैत राय प्रकाश' की अपूर्ण प्रति के अन्त मे प्रतिलिपिकार की निम्नलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है "यतना ही ग्रन्थ मिला सो लिखा गया और जब मिलेगा तब लिखेगे—जुगल किशोर।" ऐसा मालूम देता है कि 'भाव विलास' की आलोच्य प्रति का आदर्श भी ५ ४२ से आगे खडित था अत प्रति के स्वामी ने ग्रन्थ का शेपाश किसी अन्य प्रति से पूर्ण किया है। ग० प्रति मे "मालती सो" ५ २०छद "जानि है सुजानि" छद के पहले, पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख मे है। इस प्रति मे तथा का० प्रति मे "जानि है सुजानि" छद के केवल प्रथम तीन चरण ही मिलते है। सशय लक्षण ५ ११ दोहा भी, जो नी० प्रति मे प्रमादवश त्रुटित है, इस प्रति मे पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख मे है।

हमने उपर्युक्त तथ्यो पर विचार करते हुए इसी शाखा की नी० हि० प्रतियाँ प्राप्य होने के कारण ग० प्रति का उपयोग सपूर्ण रूप से न करके हि० प्रति से इसके पाठान्तर का मिलान कर लिया है।

६ दा०—अर्थात्, **तरुण भारत ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग से प्रकाशित सस्करण**। श्री लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी ने सवत् १६६१ मे 'भाव विलास' का यह सटीक सपादन प्रकाशित किया है। सपादकीय भूमिका मे पाठ के आदर्श का कोई उल्लेख नही है परन्तु भा० प्रति से इसके पाठ की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दा० प्रति का आधार यह भा० मुद्रित सस्करण ही है। विस्तारभय से हम केवल थोडे से प्रमाण दे रहे है —

४ १२ दोहा केवल भा० दा० प्रतियो मे त्रुटित है। केवल इन्ही प्रतियो मे उत्कठिता नायिका लक्षण दोहा ४ ८६ के पश्चात् स्थान-विपर्यय से कलहतरिता नायिका का उदाहरण मिलता है, जो असगत है। ४ १११ का सामान्य पाठ है "नाह सो नेह को नातो न नेकु **जऊ पर** पाड प्रतीति वढावै।" भा० प्रति मे अशुद्ध पद-भग करने से **'ज ऊपर'** पाठ मिलता है एव यही अशुद्ध रूप दा० प्रति मे भी है। ५ २६ सामान्य पाठ है "कौन के होइ **न ही** मै हुलास।" भा० प्रति

मे 'नहीं' पाठ हे तथा पाठ का यही रूप दा० प्रति मे भी मिलता है।

भा० प्रति की प्रतिलिपि होने के कारण दा० प्रति का उपयोग हमने नही किया है।

१० ना०—अर्थात् नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के आर्य भाषा पुस्तकालय की संवत् १९७७ की प्रति। इस प्रति की सूचीपत्र सख्या ११८ हे तथा यह लम्बाई-चौडाई मे ६॥ इच एव ७ इच है। पत्र-सख्या ११८ तथा प्रति पृष्ठ पक्तियो की सख्या १६ है। प्रति बगल मे जिल्दबन्द हे। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार हे "हस्ताक्षर बटुकप्रसाद कायस्थ श्री काशी जी मे नागरी प्रचारिणी सभा के निमित्त लिखा। मार्गशीर्ष कृष्ण ७ सवत् १९७७।"

यह प्रति बिलकुल आधुनिक है। श्री मिश्र बन्धुओ ने सभा के अपने मत्रित्वकाल मे गधौली वाली प्रति से सभा के लिए यह प्रतिलिपि तैयार कराई थी। ग० तथा ना० प्रति मे समान पाठान्तर एव पाठ-विकृतियाँ मिलने से भी यही सिद्ध होता है। इस प्रति की पूर्वज ग० एव वशज हि० प्रति उपलब्ध होने के कारण हमने इस प्रति को परिहार्य माना है।

११ इ०—अर्थात् इंडिया आफिस लाइब्रेरी, लंदन, की प्रति। सपादक को उक्त पुस्तकालय के सौजन्य से 'भाव विलास' की एक प्रति की माइक्रोफिल्म प्रतिलिपि प्राप्त हुई है। माइक्रोफिल्म प्रतिलिपि होने के कारण इसकी आदर्श प्रति का आकार-प्रकार ज्ञात नही हो सका है। प्रति मे कुल १०९ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर ११ पक्तियाँ हैं। प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि-सवत् प्रति के अन्त मे नही है।

इ० तथा का० प्रति मे समान पाठ-विकृतियाँ मिलने के कारण इस प्रति से पाठान्तर केवल प्रथम विलास तक दिये गए हे।

प्रतियों की अंतरंग परीक्षा : नी० हि० प्रतियाँ : प्रक्षेप :

'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियो मे अन्य प्रतियो की अपेक्षा लगभग ६० छंद अधिक हैं। कवि देव ने बहुधा अपने ग्रथो का आकार परिवर्धन कर एक नवीन ग्रंथ अथवा उनका नया सस्करण तैयार किया है, इस सभावना के सदर्भ मे नी० हि० प्रतियो के इन अधिक छदो की परीक्षा होना आवश्यक है। इन छदो की प्रतीक सूची इस परिच्छेद के अत मे दे दी गई है।

जहाँ 'भाव विलास' की अन्य प्रतियो मे एक लक्षण का एक उदाहरण है, वहाँ नी० हि० प्रतियो मे इस उदाहरण के पश्चात् पुनर्यथा शीर्षक से दूसरा उदाहरण-छद भी मिलता है। इन अधिक छदो के देवकृत न होने का सदेह इसलिए नही हो सकता क्योकि इनमे से अधिकतर छद देवकृत अन्य ग्रथो मे भी मिलते है तथा इनमे से कुछ ऐसे छद भी, जो अन्य ग्रथो मे नही आए हैं, देवकृत है क्योकि ऐसे अनेक छन्दो मे भी देव की छाप है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि ये अधिक छद नी० हि० प्रतियो मे निरपवाद रूप से लक्षण के द्वितीय उदाहरण होकर आए है, जैसे कुट्टमित हाव का उदाहरण "नाह सो नाही" ३ ३४वा छद नी० हि० प्रतियो सहित सभी प्रतियो मे मिलता हे किंतु इसके पश्चात् केवल नी० हि० प्रतियो मे पुनर्यथा शीर्षक से "छतिया छुवत" छद भी है। यह छद देवकृत किसी अन्य ग्रथ मे नही आया हे। कही-कही सभी प्रतियो मे समान रूप से मिलने वाले उदाहरण छद के बाद नी० हि० प्रतियो मे एकाधिक अधिक छद आए हे, जैसे प्रथम विलास के अत मे नी० हि० प्रतियो

मे पन्द्रह छद एक साथ अधिक है। कही-कही इन अधिक छदो के द्वारा नी० हि० प्रतियो मे विषय के किसी भेद अथवा उपभेद को सम्मिलित करने का प्रयास हुआ है, जैसे रोमाच सचारी उदाहरण के साथ इन प्रतियो मे उसके एक उपभेद स्मरण रोमाच का उदाहरण अधिक है। यह सत्य है कि कवि ने हाव-भाव के परस्पर सयोग से अनेक सचारियो की उद्भावना मानी है। 'रस विलास' के सप्तम विलास मे विस्तार से इनका विभाजन तथा वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए देव ने स्मरण सात्विक भाव के ही स्वेद स्मरण, स्तभ स्मरण, प्रलय स्मरण आदि नौ भेद किये है। किंतु नी० हि० प्रतियो मे अधिक छद के द्वारा केवल एक रोमाच स्मरण को 'भाव विलास' मे सम्मिलित किया गया है। कही-कही अधिक छन्दो से किसी नवीन विषय का भी प्रवर्तन हुआ है, जैसे प्रथम विलास के अत मे वैभव का लक्षण-उदाहरण, भूषण का उदाहरण, अष्टागवती नायिका का उदाहरण आदि।

इन अधिक छदो की परीक्षा करने पर यह भी ज्ञात होता है कि ये छद सभी प्रतियो मे प्राप्त उदाहरण की अपेक्षा लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा उसके अनुपयुक्त उदाहरण है। जैसे १ २९ के पश्चात् चल चितवन के दूसरे उदाहरण के रूप मे नी० हि० प्रतियो मे निम्नलिखित छद अधिक है —

"ग्वालि गई इक ह्याँ कि उहाँ मधि रोकि सु तौ मिसु कै दधिदान कौ।
वौ तो भटू वहि भेटी भुजा भरि नातो निकासि कछू पहिचानि कौ।
आई निछावरि कै मन मानिक गौ रस दै रस लै अधरानि कौ।
वाहि दिना ते हिये मै गडौ वह ढीठ बड़ौ री बडी अँखियानि कौ॥"

परतु चल चितवन अथवा नेत्र सचालन की ओर छद मे कही सकेत भी नही मिलता। नेत्रो से सबधित शब्द केवल अतिम चरण के "ढीठ बडौ री बडी अँखियानि कौ" पदाश मे है परन्तु वह भी ढीठ नायक का विशेषण है, उसमे नेत्रो का कोई कार्य-व्यापार नही है।

इस अधिक छद की तुलना मे चल-चितवन का सभी प्रतियो मे प्राप्त उदाहरण द्रष्टव्य है :—

"हरि को इत हेरत हेरि उतै उर आलिन के उर सो परसै।
तन तोरि कै जोरि मरोरि भुजा मुख मोरि कै बैन कहै सरसै।
मिस सो मुसक्याइ चितै समुहै कवि देव दरादर सो दरसै।
दृगकोर कटाच्छ लगे सरसान मनो सर सान धरे बरसै॥" १ २९

—परस्पर हेरने मे, मुख मोडने मे, अतिम चरण मे—सपूर्ण छद मे नेत्र सचालन की प्रमुखता स्पष्ट है।

इसी प्रकार वैवर्ण्य सात्विक भाव के दूसरे उदाहरण के रूप मे नी० हि० प्रतियो मे आये निम्नलिखित अधिक छद की सगति भी चित्य है —

"धाई के अक मे सोई निसक ह्वै पकज सी अँखियानि झकाझकी।
त्यो सपने मे लख्यो अपने पिय प्रेमपने छवि ही सो छकाछकी।
ठाढे ही ठाढे भरी भुज गाढे सु बाढी दुहू के हिये मे सकासकी।
देव जगी रतियाहू गई न तिया की गई छतिया की धकाधकी॥"

इस छद मे कही वैवर्ण्य का सकेत नही है। इसके विपरीत द्वितीय चरण मे स्वप्न दर्शन का वर्णन स्पष्ट है अत यह छद स्वप्न दर्शन का उदाहरण हो सकता है। 'सुजान विनोद' तथा 'भवानी विलास' मे यह छद इसी शीर्षक के अतर्गत आया भी है।

अब इस छद की तुलना मे सभी प्रतियो मे मिलने वाला २ १६वा छद देखे—

"सुदरि सोवति मदिर मैं कहुँ सापने मैं निरख्यो नदनद सो।
त्यो पुलक्यो जल सौ झलक्यो उर औचक ही उचक्यो कुच कदु सो।
तौ लगि चौकि परी कहि देव सु जानि पर्यो अभिलाष अमद सो।
आलिन कौ मुख देखत ही मुख भावती कौ भयो भोर को चद सो।।"

छद वैवर्ण्य सात्विक भाव का सगत उदाहरण है।

सभी प्रतियो मे प्राप्त उद्वेग उदाहरण के पश्चात् केवल नी० हि० प्रतियो मे निम्नलिखित छद अधिक है—

"इभ से भिरत चहूँघाई से घिरत घन आवत भिरत झीन झुर सो झपकि झपकि।
सोरन मचावै नचै मोरन की पाँति चहुँ ओरन तैं कौधि जाति चपला लपकि लपकि।
बिन प्रान प्यारे प्रान न्यारे होत देव कहै नैननि तैं रहैं असुवा टपकि टपकि।
रतिया अँधेरी धीर न तिया धरति मुख बतिया कढत उठै छतिया तपकि तपकि।।"

यह छन्द उद्वेग कामदशा का अनुपयुक्त उदाहरण है। छन्द मे पावस का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है एव इसी शीर्षक के अन्तर्गत यह 'सुजान विनोद' तथा 'सुखसागर तरग' मे मिलता है। अब इस उदाहरण के साथ सभी प्रतियो मे प्राप्त निम्नलिखित उदाहरण की तुलना करे—

"बिरह के घाम ताई बाम तजि धाम पाई प्रतिकूल कूल कालिदी की लहरी।
याते न अन्हाइ जरै जोवत जुन्हाई ताते चितैं चहुँ ओर देव कहै यहे हहरी।।
बारिज बरत बिन बारे बारि बारु बीच बीच बीच बीचिका मरीचिका सी छहरी।
चड मारुतड कै अखड बिधु मडल है कातिक की राति किधौ जेठ की दुपहरी।।" ३ ५८

कवि द्वारा निरूपित लक्षण "भली वस्तु नागा लगै सो उद्वेग बखान" के अनुसार कालिदी की धार, जुन्हाई, बारिज तथा कार्तिक की रात्रि जैसी सुखदायिनी वस्तुएँ भी विरह के कारण दु खद हो रही है।

इस विश्लेषण से यह प्रगट होता है कि नी० हि० प्रतियो मे प्राप्त अधिक उदाहरण छद स्वीकृत लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा अनुपयुक्त उदाहरण है।

नी० हि० प्रतियो मे जहाँ भी अधिक छदो के द्वारा आलोच्य विषय के किसी उपभेद का वर्णन हुआ है वहाँ उसके सभी उपभेदो को नही वरन् उसके कुछ भेदो को ही सम्मिलित किया गया है। स्मरण के केवल स्मरण रोमाच भेद को सम्मिलित करने से यह स्पष्ट है। इसी प्रकार 'रस विलास' मे वर्णित दूती के दस कर्मो मे से विरहास्वासन आदि केवल तीन कर्मो को ही नी० हि० प्रतियो मे अधिक छदो के द्वारा सम्मिलित करने से भी यही प्रगट होता है।

कही-कही इन अधिक छदो के द्वारा किसी नवीन विषय को ग्रथ मे सम्मिलित करने का भी प्रयास हुआ है परन्तु इस नवीन विषय का सदर्भ अनुपयुक्त है। जैसे ग्रथ के द्वितीय विलास मे सचारी भावो के विवेचन के मध्य अष्टागवती नायिका का उदाहरण तथा दूती-भेद का विस्तार

हुआ है। वास्तव मे इनके विवेचन का उपयुक्त स्थल चतुर्थ विलास है, जहाँ नायक-नायिका भेद विस्तार से वर्णित है, द्वितीय विलास नही।

इन प्रतियो मे अधिक छदो की उपस्थिति केवल तीन प्रकार से सभव है (१) ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के प्रथम सस्करण की प्रतियाँ है, इस कारण ये छंद कवि की अप्रौढ रचनाएँ है, (२) ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के आकार-परिवर्धित सस्करण की प्रतियाँ है, तथा (३) ये छन्द इन प्रतियो मे प्रक्षिप्त है। हम इन सभावनाओ पर इसी क्रम से विचार करेगे।

(१) कवि देव ने अपने ग्रथो का एकाधिक सस्करण किया है अत असभव नही जो उन्होने 'भाव विलास' ग्रथ के भी दो सस्करण किये हो तथा आलोच्य प्रतियाँ इनमे से प्रथम सस्करण की वशज प्रतियाँ हो। 'भाव विलास' की प्रौढता देखते हुए श्री मिश्र बधुओ ने अनुमान लगाया है कि देव ने सोलह वर्ष की अल्पायु मे रचित अपने इस ग्रथ का परिष्कार वय प्राप्त करने पर किया होगा तो "उन्होने इसके निकम्मे छद निकालकर उनके स्थान पर पीछे से बने हुए उत्कृष्ट छद रख दिये होगे।" ('हिंदी नवरत्न' पृ० २७६) और डा० नगेन्द्र का भी ऐसा ही मत है ('देव और उनकी कविता' पृ० ३६-३९)। इन प्रतियो के ये अधिक छद ही, जो लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा अनुपयुक्त उदाहरण सिद्ध हुए है, तथा जो अन्य प्रतियो मे नही मिलते हे, 'निकम्मे' छद हो सकते है।

इस सम्भावना पर मेरी निम्नलिखित आपत्तियाँ है। सर्वप्रथम तो 'भाव विलास' के सोलह वर्ष की अवस्था मे रचे जाने का कोई प्रमाण नही मिलता। 'चढत सोरही वर्ष' दोहा प्रक्षिप्त है। (देखे ' 'भाव विलास' के अन्तिम दोहो की प्रामाणिकता' शीर्षक। यह कल्पना इस दोहे को प्रामाणिक मानने तथा 'भाव विलास' के छदो की उत्कृष्टता को देखते हुए की गई है अत उपर्युक्त दोहा के प्रक्षिप्त सिद्ध होने के बाद कवि के वय तथा अनुभव प्राप्त करने पर इसके निकम्मे छन्द निकालने की सम्भावना भी केवल कल्पना पर आधारित रह जाती है। कोई भी कवि अपनी अल्पायु मे रचित कृति का परिमार्जन करेगा तो वह केवल हलके छन्दो को ही निकालकर सन्तुष्ट नही होगा, वरन् वह स्वीकृत छन्दो के पाठ मे भी सशोधन-परिवर्तन करेगा क्योकि अल्पवय के प्रभाव से ग्रथ के केवल कुछ ही छन्द ग्रसित नही होते अपितु ग्रथ के लक्षण दोहे तथा सभी उदाहरण छन्द इससे समान रूप से प्रभावित होते है। यदि कवि ने छन्दो को अस्वीकृत करने के साथ-साथ पाठ-सशोधन भी किया होता तो वह 'भाव विलास' की अन्य प्रतियो मे अवश्य दृष्टिगोचर होता। परन्तु 'भाव विलास' की इन तथाकथित दो कोटि की प्रतियो मे पाठ के स्तर के आधार पर ऐसा कोई अन्तर नही मिलता।

हम देख चुके है कि अधिक छन्दो मे अनेक अपने लक्षण के अनुपयुक्त उदाहरण है, अनेक उदाहरण सदर्भ-भ्रष्ट है तथा अनेक स्थलो पर नवीन विषय का विवेचन भी अधूरा है। सस्करण चाहे प्रथम हो अथवा द्वितीय, चाहे कवि की अल्पायु मे रचित हो अथवा प्रौढता प्राप्त करने पर, सोलह वर्ष की आयु मे ही अष्टागवती नायिका के शास्त्रीय लक्षण मे विज्ञ कवि अष्टागवती नायिका तथा दूती का उदाहरण छन्द सचारियो के मध्य नही रख देगा, ना ही वह दूती-कर्म के दस भेदो मे से केवल दो-तीन भेदो का ही उदाहरण देकर रह जाएगा। इस प्रकार भी ये छन्द कवि द्वारा इस ग्रथ मे समाविष्ट हुए नही लगते।

(२) पहली सम्भावना के विपरीत दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि जैसे कवि देव ने 'रस विलास' आदि अपने अनेक ग्रथो के आकार मे छन्दो को समाविष्ट कर ग्रथ का नया सस्करण तैयार किया है उसी प्रकार उसने 'भाव विलास' के भी दो सस्करण किये हो। अत ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के ऐसे ही आकार-सर्वधित सस्करण की प्रतियाँ हो सकती है।

हम इस सम्भावना को निम्नलिखित कारणो से अमान्य समझते है। इसमे सन्देह नही कि 'रस विलास', 'कुशल विलास', 'सुजान विनोद' तथा 'सुख सागर तरग' आदि ग्रथो के आकार सर्वधित द्वितीय सस्करण भी हुए है परन्तु कवि ने इन सभी ग्रथो का आकार-परिवर्धन किसी आश्रयदाता को समर्पित करने के हेतु किया है। 'भाव विलास' की स्थिति इन ग्रथो मे भिन्न है क्योकि यह तथाकथित आकार-सर्वधित सस्करण किसी आश्रयदाता को समर्पित नही है—आजमशाह को भी नही क्योकि आजमशाह से सम्बन्धित प्रक्षिप्त दोहे (देखे, ' 'भाव विलास' के अतिम दोहो की प्रामाणिकता' शीर्षक मे भी केवल आजमशाह को 'भाव विलास' सुनाने का उल्लेख है, उन्हे यह ग्रथ समर्पित करने का नही। अत इस ग्रथ की पाठ-वृद्धि करने का कोई कारण नही है। कवि देव ने अकारण अपने ग्रथो का पाठ-परिवर्धन कभी नही किया है—कोई कवि नही करेगा। फिर, यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाए कि इन प्रतियो मे कवि-कृत पाठ-परिवर्धन के कारण अधिक छन्द मिलते है तो भी असगत उदाहरणो, भ्रष्ट-संदर्भ तथा अपूर्ण विषय-विवेचन का कोई सतोषप्रद कारण नही है। पाठ-वृद्धि करते समय देव-जैसा समर्थ कवि उन्ही छन्दो को ग्रथ के मूल आकार मे सम्मिलित करेगा जो छन्द ग्रथ मे विद्यमान उदाहरणो की तुलना मे उत्कृष्ट होगे, वह उसी नवीन भेदोपभेद का विवेचन इस सस्करण मे करेगा जिनसे ग्रथ मे निरूपित विषय पूर्ण होता हो। केवल कुछ-एक भेदो की चर्चा कर वह पहले ही सम्पूर्ण ग्रथ का विषय-विवेचन अपूर्ण तथा खडित नही करेगा। एक बार ग्रथ के आकार-परिवर्धन मे प्रवृत्त होने पर वह पुन सयम द्वारा भी बाधित न होगा।

इस प्रकार इन प्रतियो मे ये अधिक छन्द 'भाव विलास' के किसी सस्करण की प्रति मे कवि द्वारा समाविष्ट सिद्ध नही होते अत हम इन छन्दो को नी० हि० प्रतियो मे प्रक्षिप्त मानते है।

(३) इन अधिक छन्दो की असगति तथा लक्षण के अनुयुक्त उदाहरण होने आदि की जिन विशेषताओ का हमने ऊपर वर्णन किया है वे सभी विशेषताएँ इन छन्दो के प्रक्षिप्त होने का प्रमाण है। अधिक छन्दो मे पा०-विकृतियो की तुलनात्मक स्थिति मे भी ये छन्द प्रक्षिप्त सिद्ध होते है क्योकि 'भाव विलास' की सभी प्रतियो मे मिलने वाले नी० हि० प्रतियो के छन्दो मे अत्यधिक पाठान्तर तथा पाठ-विकृतियाँ मिलती है परन्तु इन अधिक छन्दो मे पाठ-विकृतियो की सख्या अत्यन्त अल्प है। अनेक अधिक छन्दो मे तो केवल सामान्य पाठान्तर मिलते है। स्मरण रहे कि यदि ये अधिक छन्द प्रतिलिपि परम्परा मे कही प्रक्षिप्त न होकर सभी प्रतियो मे मिलने वाले नी० हि० प्रतियो के अन्य छन्दो की भाँति ग्रथ की मूल पाठ-परम्परा मे चले आए 'भाव विलास' के किसी भी सस्करण के मौलिक छन्द होते तो अन्य छन्दो मे तथा इन अधिक छन्दो मे पाठ-विकृतियो की सख्या मे इतना अन्तर कदापि नही हो सकता था। एक ग्रथ की एक ही पाठ-परम्परा मे चली आई नी० हि० प्रतियो मे छन्दो के इन दो समूहो के मध्य पाठ-विकृतियो

का यह असाधारण अन्तर पाठ-वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार असामान्य तथा इस कारण अविश्वसनीय है।

हमने ऊपर यह भी देखा है कि अधिक छन्द लक्षण के निरपवाद रूप से द्वितीय अथवा तृतीय उदाहरण के रूप मे नी० हि० प्रतियो मे मिलते हैं। इन अधिक छन्दो मे ऐसे भी एक-दो छन्द है जो प्रथम उदाहरण की अपेक्षा लक्षण के अधिक उपयुक्त उदाहरण कहे जा सकते हैं। अत यह भी नही माना जा सकता कि कवि ने छन्दो को उत्कृष्टता के क्रम से रक्खा है। इस प्रकार अधिक छन्दो का सर्वदा द्वितीय उदाहरण के रूप मे सम्मिलित किया जाना भी प्रक्षेप की सम्भावना को पुष्ट करता है।

कवि प्रत्येक नये विषय का निरूपण करने के पूर्व एक दोहे मे उसका विस्तार तथा उसकी रूपरेखा स्पष्ट करता आया है परन्तु नी० हि० प्रतियो मे इन अधिक छन्दो के द्वारा जिन नये विषयो का समावेश किया गया है, ग्रथ मे पहले उनका कही किसी प्रसग मे उल्लेख नही मिलता अत इस प्रकार भी इन प्रतियो की पूर्व परम्परा मे ये अधिक छन्द किसी प्रक्षेपकार द्वारा प्रक्षिप्त सिद्ध होते है।

बहुत सभव है कि काव्य-शास्त्र का अध्ययन करते हुए किसी योग्य व्यक्ति ने अभ्यास कौतुकवश 'भाव-विलास' मे देवकृत अन्य ग्रथो से समान लक्षण के उदाहरण छद खोज-खोजकर प्रति के पार्श्व पर एकत्र किये हो तथा यह पाठ-वृद्धि प्रतिलिपि परपरा मे मूल पाठ के साथ मिल गई हो। हमारा अनुमान है कि यह कार्य सभवत देव के पौत्र तथा कवि, 'बखतेसु विलास' के रचयिता श्री भोगीलाल द्वारा सपन्न हुआ है। भोगीलाल समर्थ कवि थे, देवकृत प्राय सभी ग्रथ उन्हे सुलभ थे तथा उन्होने इन सभी ग्रथो का गभीरता से अध्ययन किया होगा अत इन ग्रथो से लक्षण के समान उदाहरण खोज-खोजकर एक स्थल पर सग्रहीत करना भी उन्ही के वश की बात थी। कोई सामान्य प्रतिलिपिकार तो यह दुस्तर कार्य करने मे समर्थ भी नही हो सकता। अधिक छदो वाली नी० हि० प्रतियो की पाठ-परम्परा अन्य प्रतियो की अपेक्षा प्राचीनतर भी है, तथा सवत् १८५७ मे प्रतिलिपि हुई का० (तथा इसी समय की इडिया आफिस की प्रति) मे ये विवादास्पद छद नही है अत यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि का० प्रति अथवा उसकी आदर्श प्रति के प्रतिलिपि होने तक अधिक छद प्रक्षिप्त नही हुए थे। सवत् १८५७ तक प्रक्षेप न होने तथा भोगीलाल द्वारा इस वर्ष 'बखतेसु विलास' की रचना होने के आधार पर भी उन्ही के द्वारा इन अधिक छदो के प्रक्षेप की सभावना मानी गई है।

प्रक्षेप का एक और कारण सभव है। नी० हि० प्रतियो मे प्राप्त पाठ की परीक्षा से यह ज्ञात होता है कि ग्रथ का मूल आदर्श प्रतिलिपि के समय अत्यत नष्ट-भ्रष्ट अवस्था मे था। इसी कारण अन्य उपलब्ध प्रतियो मे भी ग्रथ के अतिम अश मे पाठ-विकृतियो तथा पाठान्तरो की सख्या उत्तरोत्तर बढती जाती है। नी० प्रति तो अत मे खडित ही है। इस प्रति के अत मे आया "जद्यपि बहुत असुद्ध प्रति तदपि सुद्ध बहु कीन" दोहा भी आदर्श प्रति के अत्यत नष्ट-भ्रष्ट होने पर किसी प्रतिलिपिकार का साक्ष्य है। स्मरण रहे कि इस सग्रह की न केवल 'भाव विलास' की प्रति वरन् 'जाति विलास', 'प्रेम तरग' आदि ग्रथो की प्रतियाँ भी मूल आदर्श के नष्ट-भ्रष्ट होने का प्रमाण देती है। कहना न होगा कि ये सभी प्रतियाँ अपने ग्रथ की प्राचीनतम शाखा

की प्रतियाँ है। मेरा ऐसा अनुमान है कि 'भाव-विलास' मे अधिक छदो के प्रक्षेप का एक कारण इसके मूल आदर्श का स्थल-स्थल पर खडित तथा जर्जरित अवस्था मे होना भी है। प्रतिलिपिकार ने अपने ग्रथ का खडित रूप छिपाने के लिए अथवा उसकी क्षतिपूर्ति करने के हेतु अन्य ग्रथो से छद लेकर सम्मिलित किया हो तो कोई आश्चर्य नही।

ऊपर उद्धृत दोहे के शब्द इसी सभावना की ओर इगित करते प्रतीत होते है। स्पष्ट है कि प्रक्षेपकार ने प्रक्षेप के लिए देवकृत एक से अधिक ग्रथो का आश्रय ग्रहण किया है। सभव है कि इन ग्रथो मे कोई ऐसा भी ग्रथ रहा हो जो आज उपलब्ध नही है तथा अन्य ग्रंथो मे न मिलने वाले छद इसी ग्रथ से आये हो। देवकृत एक नवीन ग्रथ 'सुमिल विनोद' इन पक्तियो के लेखक को मिला है। सभव है कि भविष्य मे नवीन ग्रथो के प्रकाश मे आने पर सभी अधिक छदो का आगम-स्रोत ज्ञात हो सके। इन अधिक छदो वाली प्रतियो मे ग्रथ का 'भाव प्रकाश' नाम भी इसी प्रक्षेपकार का दिया हुआ है।

प्रक्षिप्त छदो की सूची नीचे दी जा रही है। छद के पूर्व दी हुई सख्या इस सपादित सस्करण के अनुसार उस स्थल का निर्देश करती है जिसके अनन्तर नी० हि० प्रतियो मे प्रक्षेप हुआ है —

१ ३० "ग्वालि गई"। १ ३२ "जहाँ साज", "पावरिन पाउडे", "फटिक सिलान", "गोरे मुख गोल", "थोरिये वैस", "जगमगे जोवन", "काहू की वक", "नद कुमार उतै", "नील के सागर", "कानन कुडल", "ऐपन की ओप", "बरुनी बघवर", "नेहु लली", "देव तजी गुन", "वारिये वैस"। २ १० "हरषि हरषि", "इगुर सो मिलि"। २ १६ "धाइ के अक"। २·१७ "आइ नही तन"। २:४० "कछु ओर उपाय", "वैरी बसत के", "खोरि मैं खेलन"। २ ६० "मानमई अबही"। २ ८१ "घाघरो घनेरो", "मोरे ते भूरिक"। २ ८२ "देह तज्यो"। २ ८८ "ना यहु नद को","धुनि धुनि सीस"। २ १०३ "सुख दु ख मैं","रीझि रीझि", "ठकुराइन सब", "उज्ज्वल अखड"। ३ १४ "आई हौ देव"। ३ २४ "सहर सहर सोधो", "आली झुलावत"। ३ ३४ "छतिया छुवत"। ३ ३८ "परम सलोनी", "बरसाने की ओर"। ३ ५२ "मूरनि जो मन"। ३ ५४ "गूजरी ऊजरे", "कैसेऊ कोऊ करौ", "देव मैं सीस", "नाखिन टरत"। ३ ५६ "देखे अनदेखे", "प्रेम की पीर", "कान्ह मई"। ३ ५८ "इभ से भिरत", "कत बिन वासर"। ४ ७ "झूलनहारि अनोखी"। ४ ११ "भोरही श्री वृषभान"। ४ १६ "बैठी कहा घरि"। ४ १८ "मोसो कहो सो"। ४ २२ "भौन भरे सिगरे"। ४ २७ "वलि वाम लोचन"। ४ २६ "रँग लाल जरी"। ४ ३० "वैरिनि मेरि"। ४.३२ "वालापन को मेटि", "लहलही बैस"। ४ ३३ "सावन मास सखीन"। ४ ३८ "हाथी दे निसक", "होरी मैं आजु", "लोग लोगायन होरी"। ४ ४२ "कुज मे ह्वै"। ४ ४६ "जत्रा झमकावति", "महल ते आई", "वै दिन नाहि"। ४ ६० "खेलत आँख मिहीचनि"। ४ ६५ "वार दुवारन"। ४ ६७ "वृदावन चारन को"। ४ ६६ "ऐहौ भरे रस"। ४ ८२ "आजु गई हुती"। ४ ८३ "देखु री दरपन दौरि", "कुदन मे अग", "जोवन लौ जुवतीन", "आँखिन मैं पुतरी", "बूझो वडेन को", "गौत गुमान उतै"। ४ ८८ "रूप चुवै चपि"। ४ ६४ "सखी के सोच"। ४ १०० "वालम विरह", "पीछे पँखा चौर"। ४ १०२ "सूझत न", "वात कही मो", "कल न परति", "नौल वधू नव", "हाँसी करी स्याम",

'आवन सुन्यो है" । ४ १०७ "रावरे पायन ओट" । ४ १०९ "कौन भयो दिन" ।

जैसा कि हम ऊपर कह आए है, नी० हि० शाखा की आदर्श प्रति का पाठ अत्यत भ्रष्ट अवस्था मे था अत प्रतिलिपिकार ने अपनी ओर से स्थल-स्थल पर पाठ सशोधन तथा प्रक्षेप किया है। यही कारण है कि नी० हि० प्रतियो मे सगत तथा असगत दोनो प्रकार के पाठान्तर बडी सख्या मे मिलते है परन्तु प्रतिलिपिकार द्वारा सशोधित होने के कारण स्पष्ट पाठ-विकृतियाँ बहुत कम मिलती है। यहाँ हम यथासम्भव केवल ऐसे ही उदाहरण दे रहे है जो अर्थ अथवा प्रसग के विचार से असगत तथा अग्राह्य है।

त्रुटित पाठ :

१ ३१ अग भग उदाहरण।

"जानति हौ भुजमूल उचाइ दुकूल लचाइ लला ललचैयत।"

अग भग के प्रस्तुत प्रसग मे उपरोक्त चरण सगत है तथा 'भवानी विलास' मे २ ४४ एव 'सुख सागर तरग' मे ७८६ पर इसी छन्द मे भी मिलता है। कदाचित् नी० हि० प्रतियो के समान आदर्श मे यह चरण त्रुटित होने के कारण इन प्रतियो मे इसके स्थान पर निम्नलिखित पाठ है "ता रस सिधु गई बुधि वूडि न वोहित धीरज कैसे वचैयत।" स्वीकृत पाठ से तुलना करने पर यह पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

२ १०

"अचल झीन झकै झलकै पुलकै कुच कुद **कदंब** कली सी।"

नी० हि० प्रतियो मे **'कदंब'** शब्द त्रुटित होने के कारण मत्तगयद सवैया के प्रस्तुत चरण मे २३ के स्थान पर २० वर्ण ही रह जाते है और छन्दोभग होता है।

२ ३०

"**गोकुल** गाँव की गोपवधू वनि कै निकसी दुरि दै दै बुलायो।"

नी० प्रति मे "गाँव की गोपवधू वनि कै दुरि कै सवदै दै बुलायो" तथा हि० प्रति मे "गाँव की गोपवधू निकसी बनिकै दुरि कै सव दै दै बुलायो" पाठ है। तीन वर्णो का **'गोकुल'** शब्द इन दोनो ही प्रतियो मे त्रुटित है तथा दोनो ही प्रतियो मे चरण की गति शुद्ध करने के हेतु **"कै सव"** पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त हुआ है। यह पाठ प्रस्तुत प्रसग मे असगत होने के कारण प्रक्षिप्त माना गया है।

२.३२

"**आजुही** भाजि गई सव लाज हँसै अरु मोहन को मुख जोवै।"

नी० हि० प्रतियो मे इसके स्थान पर पाठ है "भाजि गई सव लाज हँसै अरु—रूप कै—नी०, रोय कै—हि०—मोहन को मुख जोवै।" इन दोनो ही प्रतियो मे तीन वर्णो का **'आजु ही'** शब्द त्रुटित है तथा इसके स्थान पर प्रतिलिपिकार द्वारा "रोय कै" असगत पाठ-प्रक्षेप हुआ है।

३ १७ प्रच्छन्न सयोग का उदाहरण छन्द केवल नी० हि० प्रतियो मे नही है। इसके पूर्व शृगार रस के भेदो का वर्णन करते हुए कवि ने स्वय कहा है "द्वै प्रकार सिगार रस है सयोग वियोग। सो प्रच्छन्न प्रकास करि कहत चारि विधि लोग॥"—३:१५। ३·१८ सख्या पर

प्रकाश सयोग का उदाहरण नी० हि० प्रतियों मे भी मिलता हे अत इन प्रतियो मे प्रच्छन्न सयोग का उदाहरण प्रतिलिपिकार की भूल से छूट गया मालूम देता है।

४ ४५ रतिकोविदा उदाहरण छन्द केवल नी० हि० प्रतियो मे नही है। ४ ४३ सख्या के दोहे मे कवि ने प्रौढा नायिका के निम्नलिखित भेद माने है "लब्धापति रति कोविदा क्रान्त नाइका सोइ।" रतिकोविदा के अतिरिक्त अन्य भेदो के उदाहरण नी० हि० प्रतियो मे भी मिलते है अत यह स्पष्ट हे कि यह छन्द भी इन प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के प्रमाद से छूट गया है।

४ ८१

"सीरी बयार छिदै अवरा उरझै उर झाँखर झार मझाइ कै।"

'झार' का 'र' वर्ण त्रुटित होने के कारण नी० हि० प्रतियो मे 'झाम झाई के' पाठ मिलता हे। यह पाठ निरर्थक हे तथा इससे छन्दोभग भी होता है अत यह पाठ विकृत माना गया है।

५ ४२ से आगे नी० प्रति खडित है तथा हि० प्रति मे इस स्थल से आगे का पाठ भिन्न हस्तलेख मे है। जैसा कि हमने अन्यत्र कहा हे, यह प्रति भी नी० प्रति के समान ५ ४२ पर खडित थी परन्तु किसी दूसरी प्रति के पाठ की सहायता से इसे पूर्ण किया गया है।

स्थान विपर्यय :

१ ७

"नेक जु प्रियजन देखि मुनि आन भाव चित होइ।
अति कोविद पति कविन के सुमति कहत रति सोइ॥"

नी० हि० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के दृष्टिभ्रम से दोहे के द्वितीय पद के स्थान पर १ ५ दोहे का द्वितीय पद "सो ताको थिति भाव हे कहत सुकवि सब कोइ" आ जाने से रति लक्षण के स्थान पर भाव का लक्षण दूसरी बार वर्णित होता है।

१ १६वे छन्द के पश्चात् छन्दो का स्वीकृत क्रम नी० हि० प्रतियो मे इस प्रकार है—२२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, १७, १८, १६, २०, २१, ३१, ३२। इस क्रम के अनुसार छन्दो की विषय-सूची इस प्रकार होगी—उद्दीपन के अन्तर्गत नृत्य-उदाहरण के पश्चात् वन-वेलि उदाहरण, अनुभाव लक्षण, अनुभाव के आनन नयन प्रसन्नता आदि उदाहरण, पुन. उद्दीपन के अतर्गत उपवन गमन-उदाहरण। उद्दीपन वर्णन के मध्य अनुभाव का वर्णन तथा पुन उद्दीपन की पूर्वोल्लिखित ऋतुओ का वर्णन छन्दो के स्थान-विपर्यय के कारण हुआ है। इसे दुष्क्रम मानते हुए हमने नी० हि० प्रतियो मे प्राप्त क्रम को अग्राह्य माना है।

२ ४०

"मोही सो रूठि के वैठि रहै किधौं कोऊ कहूँ कछू सोध न पावै।"

केवल नी० हि० प्रतियो मे शब्दो के क्रम-विपर्यय से पाठ इस प्रकार मिलता हे "कोउ कछू कहूँ सोध न पावै।"

३ ६

"सोइ गई अभिलाख भरी तिय सामने मै निरखे नँदनदन।"

केवल नी० हि० प्रतियो मे **"सापने मे तिय"** पाठ मिलता हे।

४ ५

"कान लगी कवि देव ह्वै कुडल वाँसुरी लौं अधरान धरी है।"

केवल नी० हि० प्रतियो मे शब्दो के विपर्यय से पाठ है **"देव जू कुडल ह्वै लगी कानन्नि** ·····।"

४ ११ नी० हि० प्रतियो मे धृष्ट नायक उदाहरण छद के चरणो का क्रम स्वीकृत क्रम की अपेक्षा तृतीय-द्वितीय है, यद्यपि इस चरण-विपर्यय से छद के अर्थ मे कोई असगति नही उत्पन्न होती।

४ ४६ प्रौढा सुरतान्त उदाहरण।

"आगे धरि अधर पयोधर सबर जानि जोरावर जघन सघन लरै लचि कै।
बार बार देति बकसीस जैतवारनि को बारनि को बाँधे जे पिछारे दुरे बचिकै।
उरुन दुकूल दै उरोजनि को फूलमाल ओठनि उठाए पान धाइ खाइ पचिकै।
देव कहै आजु मानो जीतो है अनगरिपु पी के सग सग रस रति रग रचि कै।।"

केवल नी० हि० प्रतियो मे चरणो का क्रम तीसरा-चौथा होने के कारण असगति उत्पन्न होती है क्योकि छद के प्रथम तीन चरणो मे सुरति-सगर का जो रूपकात्मक वर्णन है, अतिम चरण मे उस रूपक का स्पष्टीकरण "मानो जीतो है अनगरिपु······" आदि शब्दो से होता है। अत मे आने पर तीसरा चरण रूपक से उच्छिन्न हो जाता है।

४ ७४ स्वीकृत पाठ

"झूमि अटा उझकै कहुं देव सु दूरि तैं दौरि झरोखनि झूली।
हास हुलास विलास भरी मृग खजन मीन प्रकासनि तूली।
चारिहू ओर चलै चपलै सु मनोज की तेगैं सरोज सी फूली।
राधिका की अँखियाँ लखिकै सखियाँ सब सग की कौतिक भूली।।"

केवल नी० हि० प्रतियो मे चरणो का क्रम चौथा-तीसरा होने से छद के अर्थ मे भी असगति उत्पन्न होती है।

लिपिजन्य विकृति :

१ ६

"नव रस के तिथि भाव **नव**।"

नी० हि० प्रतियो मे 'न' मे 'त' का भ्रम होने से पाठ हे 'तिथि भाव **तव**।' स्थिति भावो की सख्या नौ हे अत 'नव' पाठ सगत तथा 'तव' पाठ असगत है।

१ १७

"बाग चली वृषभान लली सुनि कुजनि मैं पिक पुज पुकारनि।
तैसिय नूतन **नूत लतान** मैं गुजत भौंर भरे मधु भारनि।
मोहि लई कवि देव उतै अति रूप रचे विकचे कचनारनि।
हेरति ही हरिनी नयनी को हर्‍यो हियरा हरि के हिय हारनि।।"

'ल' मे 'न' का भ्रम होने से नी० हि० प्रतियो मे 'नूतन तान' पाठ मिलता है। यह पाठ असगत है क्योकि प्रथम तो नवीन के अर्थ मे 'नूतन' शब्द पहले ही आ चुका है अत उसी शब्द की आवृत्ति अनावश्यक है। दूसरे, नूतन तान मे मधु भार से भरे भ्रमरो का गुजन करना और भी असगत अर्थ है। सगत पाठ "नूतन नूत लतान" ही है।

आश्चर्य है कि 'नूत' शब्द का अर्थ समझने मे अनेक विद्वानो ने भूल की है। पडित कृष्ण-विहारी मिश्र ने इसे 'नवीन' का पर्याय माना है—

"देवजी ने टेसू के लिए किसु और नवीन के लिए 'नून' शब्द का प्रयोग किया है। इस पर आक्षेप यह है कि देवजी को 'किशुक' का 'क' उडाकर 'किसु' रूप रखने का कोई अधिकार न था। इसी प्रकार 'नूतन' के 'न' को हटाकर 'नूत' रखना भी अनुचित हुआ है।······सस्कृत मे 'नूतन' और 'नूत्न' ये दो शब्द है। हिन्दी मे ये दोनो शब्द क्रम से 'नूतन' और 'नूत' रूप मे व्यवहृत होते है। "अरुन नूत पल्लव धरे रँग भीजी ग्वालिनी" और "दूत विधि नूत कबहूँ उर आनही" इन दो पद्याशो मे क्रम से सूरदास और केशवदास ने 'नूत' शब्द का प्रयोग किया है।·· ·"

—'देव और विहारी'—पृ० २७४-७५।

(डा० जानकीनाथ सिह 'मनोज' भी 'नूत' का अर्थ 'नवीन' मानते है—'शब्द रसायन' पृ० ग।)

परन्तु 'नूत' नवीन का पर्याय नही है। हम इस शब्द के देव कृत जो प्रयोग नीचे दे रहे है उनमे अनेक स्थलो पर 'नूतन नूतन' प्रयोग मिलता है। हमारे विचार से यह पुनरुक्तिप्रकाश के रूप मे न आकर 'नूत' का सबधकारक रूप है।

श्री मिश्र बधुओ के मत से 'नूत' का अर्थ नवीन होने के अतिरिक्त 'आम' भी होता है—"नूत न नूत—जो नए नही अर्थात् पुराने है, और जो नए है, ये दोनो दावानल से जले हुए दिखाई देते है। **नूत आम को भी कहते है।**" —'देव सुधा', पृ० १२८।

कदाचित् श्री मिश्रबधुओ ने सस्कृत के 'च्युत' शब्द से भ्रान्त होकर 'नूत' का अर्थ 'आम' माना है। "आम्रश्चूत रसालश्च"। परन्तु सस्कृत के इस शब्द से हिन्दी मे जो शब्द निर्मित हुआ है उसमे भी 'न' के स्थान पर 'च' वर्ण है। स्मरण रहे कि व्रज-प्रदेश मे आम्र-वृक्षो का वर्णन व्रज वाणी मे प्राय नही हुआ है, इस कारण भी 'नूत' का आम्रवाची होना सभव नही लगता।

काशी के प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि 'नूत' आम को ही कहते है और यह सस्कृत के 'चूत' शब्द से ही व्युत्पन्न है परन्तु इस शब्द के अश्लील अर्थ होने के कारण चकार का नकार कर दिया गया है। प० विश्वनाथ प्रसादजी के अनुसार राजस्थान के सस्कृत के पडित सस्कृत मे भी इस शब्द का चकार सहित नही, नकार सहित ही उच्चारण करते है। राजस्थान मे कई पुराने पडितो से पूछने पर इस मत की पुष्टि नही हुई अत यह मान्य नही प्रतीत होता। वैसे यह व्याख्या अटपटी सी लगती है।

मेरे विचार से 'नूत' शब्द वृक्षवाची है। देवकृत ग्रथो मे यह शब्द निम्नलिखित स्थलो पर आया है—

"आजु गुपाल जू वाल बधू सग नूतन **नूत** निकुज वसे निसि ।"

—'भवानी विलास'—८.३४

"नतन गुलाल **नूत** मजरी की मालनि सो कीजे गजमुख सनमुख सनमान को।"

—'भाव विलास'—५ ३६

"कोकिल रागनि **नूत** परागनि देखु री वागनि फागु मची है।"

—'सुजान विनोद'—६:२२

"चपक दाडिम **नूत** महाडर पाडर डार डरावनी फूली।"

"तैसिय नूतन **नूत** लतान मे गुजत भौर भरे मधु भारनि।"

—'भाव विलास'—१ १७

"नूतन महल **नूत** पल्लवनि छ्वै छ्वै स्वेद लवनि सुखावत पवन उपवनसार।"

"केतकी हेत न **नूत** सो नेह कदव न कुद न लौग सो लेख्यो।"

—'सुमिल विनोद'—२ २०

"घोर लगै घर वाहिरहू डर **नूत** पलास लगै पजरे से।"

—'रस विलास'—७ ६२

"नूतन **नूतन** के बन त्रेष न देखन जाती तो हौ दुरि दौरी।"

—'भाव विलास'—३.७३

इन सभी उदाहरणो मे 'नूत' शव्द किसी वृक्ष के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। मॉनियर विलियम्स कृत सस्कृत कोष मे एक शब्द मिलता है 'नुत्त', अर्थ है 'एक पौधे का नाम।' इसी शब्दकोष मे दूसरा शव्द है 'नूद', अर्थ है 'शहतूत के वृक्ष का एक प्रकार'। हिंदी मे शहतूत के लिए 'तूत' शब्द प्रयोग मे आता ही है अत मेरे विचार से यह 'नूत' शव्द की व्युत्पत्ति 'नुत्त' अथवा 'नूद' शब्द से है तथा यह शहतूत के किसी प्रकार के वृक्ष के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

१ १६

"न्हात पमारी सो प्यारी के ओठ ते छूटो मजीठ निहारि **नजीक सों**।"

नी० हि० प्रतियो मे 'ज' 'न' का भ्रम होने से **'ननीक'** पाठ हो गया है। निहारने के साथ निकट अथवा नज़दीक के अर्थ मे 'नजीक' पाठ ही सगत है।

२ ७

"क्रोध हर्ष सताप श्रम घातादिक **भय** लाज।
इनते सजल शरीर सो स्वेद कहत कविराज ॥"

'य' मे 'म' का भ्रम होने के कारण 'भम' तथा इसे सशोधित करने के कारण **'भ्रम'** पाठ नी० हि० प्रतियो मे मिलता है। 'भ्रम' के कारण शरीर का सजल होना असगत है अत हमने इस पाठ को लिपिजन्य विकृति माना है।

२:३८

"मैंन सर जोर **मारे** पवन झकोरनि सो आई है उमगि छिति छाती नीर भरिये।"

'मारे' मे दृष्टि-भ्रम होने से नी० हि० प्रतियो मे **'मोर'** पाठ मिलता है। यह पाठ इस प्रसग मे असगत है।

२ ५८

"देव ह्वै पथ आइ मनो चढि बाई मनोरथ के रथ ऊपर ।"

'ह्' मे 'ह्व' का भ्रम होने के कारण नी० हि० प्रतियो मे "देव ह्वै दै" पाठ मिलता है। कहना न होगा कि यह पाठ निरर्थक है।

२ ६८

"कोकिलऊ कल कोमल बोल विसारि कै आपु अलोप कहै है।"

'प' मे 'य' का भ्रम होने के कारण नी० हि० प्रतियो मे 'अलीय कहै है' पाठ मिलता है। कोकिला की मधुर वाणी ही प्राय सुनाई देती है परन्तु स्वय पक्षी पत्रो के झुरमुट मे बैठने के कारण बहुधा दिखलायी नही देता, इसकी मधुर वाणी ही सुनाई देती है। दूसरे, आम्र मजरियो के बीच मे छिपी कोकिला की वाणी सुनाई देती है—वह भी ग्रीष्म ऋतु मे ही। अन्य ऋतुओं मे यह पक्षी अदृश्य हो जाता है। इस अर्थ मे 'अलोप' पाठ सर्वथा सगत है एव उपर्युक्त प्रतियो का 'अलीय' पाठ निरर्थक है।

३ ६१ गुरु मान उदाहरण।

"सौति की माल गुपाल गरे लखि बाल कियो मुख रोष उज्यारो।"

कवि ने इस उदाहरण के पूर्व मान भेद दोहे मे गुरु मान का लक्षण इस प्रकार दिया है —

"पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुरु मान।
मध्यम ताको नाम सुनि ता दरसन लघु जान।"

—३ ६०

तदनुसार उपर्युक्त उदाहरण छन्द मे नायिका के रोष का कारण गोपाल के कठ में सौत की पहनाई माला को देखना है अत 'सौति की माल' पाठ सगत है परन्तु 'स' मे 'म' का भ्रम होने से नी० हि० प्रतियो मे "मोती की माल" पाठ है। हमने इस पाठ को इसलिए असगत माना है क्योकि गोपाल के कठ मे मोती की माल देखकर नायिका के कुपित होने का कोई कारण नही रह जाता।

पर्याय :

१ १७

"तैसिय नूतन नूत लतान मैं गुजत भौंर भरे मधु भारनि।"

नी० हि० प्रतियो मे "रस भारनि" पाठ मिलता है।

१ १९

"न्हात पमारी सो प्यारी के ओठ तें छूट्यो मजीठ निहारि नजीक सों।"

नी० हि० प्रतियो मे 'तमोर' पाठ है। स्नान करते समय किसी रेशमी वस्त्र से ओठ मलने पर उसमे लगी लाल मजिष्ठा का छूटना भी सगत पाठ है तथा ओठ मे लगे पान की लाली का निकलना भी सगत है।

१:२०

"कवि देव सखी के सिखाये मरू कै **नह्यो** हिय नाह को नेह नयो।"

नी० हि० प्रतियो मे 'नह्यो' के स्थान पर पाठ का सरलीकृत रूप दिया हुआ है "**भयो** हिय नाह के···।"

२:८

"हेलिन खेलन के मिस सुदरि **केलि के मंदिर** पेलि पठाई।"

नी० हि० प्रतियो मे "**केलि के भौन मै**" पर्याय है।

२·५२

"नूपुर पॉइ उठे झननाइ सु जाइ लगी **धन धाइ** झरोखे।"

नी० हि० प्रतियो मे पाठ का पर्याय है "जाइ लगी **अतुराइ** झरोखे।"

३ २०

"एहि भाँति विविध विधि **विबुधवर**।"

नी० हि० प्रतियो मे पाठ मिलता है "विविध विधि **कविराज वर**।"

३ ३२

"स्याम के अग सो **अंग लगावै न**···।"

नी० हि० प्रतियो मे पाठ है "**अंग छुआवै न**।"

३·४२

"**वियोग चौविधि जान**।"

नी० हि० प्रतियो मे पाठ-पर्याय है "**विप्रलंभ यों जान**।"

४ ६२ परकीया भेद।

"**ताहि परोढ़ा** कन्यका द्वै विधि कहत प्रवीन।
गुपित चेष्टा परोढा कन्या पितु आधीन ॥"

नी० हि० प्रतियो मे 'परोढा' का पर्याय है "**ताही ऊढ़ा**"। 'परोढा' का अर्थ भी 'ऊढा' होता है, निम्नलिखित उदाहरण से यह प्रमाणित है —

"तासो परऊढा कहत और अनूढा नारि।
मात पिता आधीन जो तरुनि सु काम कुमारि ॥"

—'सुमिल विनोद'—२ २५

पाठ-विकृति :

१ ८

"**देव मुरझाइ उरमाल उरझाइ कह्यो** दीजो सुरझाइ वात पूछी छल छेम की।"

उलझी हुई उरमाल को सुलझाना तो श्रीकृष्ण से वार्तालाप करने का केवल एक व्याज है। परन्तु नी० हि० प्रतियो की परम्परा की किसी आदर्श प्रति मे 'मुरझाय' शब्द पार्श्व पर होने के कारण 'उरझाय' के पश्चात् दृष्टि-भ्रम से 'सुरझाय' होकर आया है अत इन प्रतियो मे चरण का पाठ है "**देव उरमाल उरझाय सुरझाय कह्यो**···।" लेकिन यदि नायिका ने अपनी

उलझी हुई माला स्वयं ही सुलझा ली तो फिर कृष्ण से कहने को रह क्या गया ?

१ ६

"गौने के चार चली दुलही गुरु लोगन भूपन भेप वनाये।"

'चली' के सान्निध्य के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से नी० हि० प्रतियों मे "गौने की चाल चली" पाठ हो गया है। गौने की चाल कोई विशिष्ट प्रकार की मंद अथवा तीव्र नही होती अत हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकार की प्रमादजन्य पाठ-विकृति माना है। यहां 'चार', शब्द रीति के अर्थ मे 'आचार' का सक्षिप्त रूप है।

१ १६

"कालिंदी कूल कदव के कुज करै तम तोम तमासो मो तामें।"

'तम तोम' का अर्थ है 'घनावकार', देखे "दूरि धरो दीपक झिलमिलात झीनो सेज के समीप छहरान्यो तम तोम सो।"—'सुजान विनोद'—२ १४ १। कदाचित् 'तोम' (सस्कृत 'स्तोम') का अर्थ ढेर अथवा समूह न समझ सकने के कारण नी० हि० प्रतियो के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रति मे पाठ-प्रक्षेप किया हे "करत मनोज तमासो सो तामें।" यहाँ रति-प्रसग की चर्चा अप्रासगिक है अत' हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त माना है।

२ २३ निर्वेद लक्षण।

"चिंता अश्रु प्रकाश करि अपनोई अपमान।
उपजहि तत्वज्ञान जहँ सो निर्वेद बखान॥"

नी० हि० प्रतियो मे दोहे का पाठ विकृत रूप मे इस प्रकार मिलता है "चिंता अश्रु प्रकाश करि अति अनग उर आन। उपजहि सात्विक भाव जहँ सो निर्वेद बखान॥" अपने हृदय मे कामदेव को स्थापित कर ऊपर से चिंता करना एव आँखो मे आँसू भरना निर्वेद का असंगत लक्षण है अत हमने इस पाठ को भी प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त माना है।

२ २८ तृतीय-चतुर्थ चरण।

"भीर मे भूले भए सखि मैं जव तें जदुराई की ओर कियो रुख।
मोहि भटू तव ते निसि द्यौस चितौतही जात चवाइन को मुख॥"

प्रस्तुत प्रसग मे 'ओर' पाठ सगत हे परन्तु प्रतिलिपिकार की दृष्टि भूल से 'जदुराइ' के अतिम दो वर्णो पर पडने से नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'राइ' पाठ मिलता है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण असगत है।

२ ३१ मद लक्षण।

"सो मद जहँ आसव पिये हरप होय हिय वीच।
नीद हास रोदन करै उत्तम मध्यम नीच॥"

नी० हि० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त पाठ मिलता हे "सो मद जहँ आसवत पिय''।" यह पाठ मद सचारी का असगत लक्षण होने के कारण विकृत माना गया है। अगले उदाहरण छद से भी इन प्रतियो का पाठ असगत तथा स्वीकृत पाठ पुष्ट होता हे —

"आसव सेइ सिखाये सखीन के सुदरि मदिर मैं सुख सोवै।
सापने मैं विछुरे हरि हेरि हरेई हरे हरिनीदृग रोवै।

देव कहै उठि कै विरहानल आनँद के अँसुवान समोवै।
आजुही भाजि गई सब लाज हँसै अरु मोहन को मुख जोवै ।।"

२ ३३ श्रम लक्षण ।

"अति रति अति **गति** तें जहाँ उपजै अति तन खेद।
सो श्रम जामै जानिये निस्सहता प्रस्वेद ।।"

नी० हि० प्रतियो मे 'गति' के स्थान पर पुन. 'रति' पाठ होने से उसी शव्द की असगत पुनरुक्ति होती है।

२ ३४

"खरी दुपहरी बीच **तरुन तरु नगीच** सही परे तरनि के करनि की जोति है।"

दोपहर के समय 'सूर्यातप इतना तीव्र हो चला है कि केवल हरे-भरे वृक्षो के नीचे ही किसी प्रकार ठहरा जा सकता है परन्तु ऐसे भीषण आतप मे भी नायिका केवल श्याम के अनुराग से आकृष्ट होकर अपने घर से निकल पडती है। नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य-स्थल पर **"तरुन तरुन गावै"** पाठ मिलता है। कहना न होगा कि अर्थ के विचार से यह पाठ प्रस्तुत प्रसग मे सर्वथा असगत तथा अग्राह्य है। इन प्रतियो की आदर्श प्रति मे इस स्थल पर पाठ भ्रष्ट होने के कारण यह विकृति उत्पन्न हुई है।

३ ३६ चिता लक्षण ।

"इष्ट वस्तु पाये विना व्यग्र चित्त अति होइ।
स्वाँस ताप वैवरन जहँ चिता कहिये सोइ।।"

आलोच्य स्थल पर नी० हि० प्रतियो मे पाठ है **"स्याम ताप ह्वै रैन दिन"**। 'स्याम ताप' का सगत अर्थ नही बैठता तथा यह विकृति 'स्वॉस ताप' से ही सभव है अत यहाँ भी प्रतिलिपिकार ने अपने आदर्श प्रति के खडित होने के कारण यह पाठ-प्रक्षेप किया है।

२ ५५ दु ख लक्षण ।

"उत्तम मध्यम नीच क्रम लघु चिता अप्रसाद।
महा सोक ये **धन गये** हित ससो सु विपाद ।।"

नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर **"वनुग को"** पाठ मिलता है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण विकृत माना गया है।

२ ७२

"मानति नाहि तिरीछेहि **तानति** वान सी आँखै कमान सी भौहै।"

नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर असगत पाठ है **"तान औ।"**

२ ९२ त्रास लक्षण ।

"घोर स्रवन **दरसन** सुमृति तंभ पुलक भय गात।
होइ छोभ जो चित्त मैं त्रास कहत कवि तात।।"

अर्थात् भयावनी वस्तु देखने से, उसकी आवाज सुनने से अथवा उसका स्मरण होने से जव मन विचलित हो जाय तो उसे त्रास कहते है। इस लक्षण के उदाहरण छद में भी ऐसा ही वर्णन है। परन्तु नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर असगत पाठ मिलता है **"देर सब"**।

२ ६८

"काम कमान तें वान उतारिहै देव नहीं मधु माधव रैहै।"

अर्थात् कामदेव भी सर्वदा इसी प्रकार मन-मथन न करते रहेंगे और यह मधुऋतु भी सदा नही वनी रहेगी, इसका भी कभी अत होगा ही। स्मरण रहे कि 'मधुऋतु' के अर्थ मे केवल 'मधु' शब्द का प्रयोग कवि ने अन्यत्र भी किया है। केवल एक स्थल उदाहरण के लिए प्रस्तुत है —

"केतकी रजनि अरगजनि मधुर मधु राका की रजनि राजे रजित चहुँ कोदनि।"

—'कुशल विलास'—५:१५

नी० हि० प्रतियो मे "मधु मावव रैहै" के स्थान पर विकृत पाठ मिलता है "मधु व्याधव रैहे।" अर्थ के विचार से यह पाठ असगत है।

२ १०३

"देव कहै दुरि दौरि कुटीर मैं आपनो वैर वधू उहि लीन्हो।"

"उहि लेने" का अर्थ है उगाह लेना, वसूल कर लेना। परन्तु प्रतिलिपिकार के प्रदेश की वोली मे 'वहि' का रूपांतर है अत. नी० हि० प्रतियो मे 'वहि लीनो' पाठ मिलता है। 'वहि' शव्द 'वधू' के साथ सलग्न मानने पर भी अर्थ की सगति नही वैठती है।

३ ३७

"मन प्रसाद पति वस करन चमतकार अति होइ।
सकल अग रचना ललित ललित वखानैं सोइ॥"

आदर्श प्रति का पाठ इस स्थल पर अपठ होने के कारण प्रतिलिपिकार ने अपनी ओर से पाठ सशोधित किया है—"अति वास कर" परन्तु यह ललित हाव का असगत उदाहरण है अत. यह पाठ अग्राह्य माना गया है।

३ ५६ मान लक्षण।

पति परपतिनी रति करत पतिनी करति जु मान।
गुरु मध्यम लघु भेद करि ताहू त्रिविधि वखान॥"

अर्थात् अपने पति के शरीर पर पररति के चिह्न देखकर पत्नी जो मान करती हे उसके गुरु, मध्यम तथा लघु, ये तीन भेद होते हे। अत उपर्युक्त दोहे का पाठ सगत है परन्तु नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर विकृत पाठ इस प्रकार मिलता है "ताहि अवध्य वखान"। यह पाठ मानभेद के प्रसग मे अर्थ के विचार से असंगत है अतः हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकारकृत प्रक्षेप माना है।

४ ६१ परकीया लक्षण।

"जाकी गति उपपति सदा पति सो रति मति नाहिं।
सो परकीया जानिये ढकी प्रीति जग माहिं॥"

नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'उपजै' पाठ होने से परकीया का लक्षण स्पष्ट नही हो पाता। पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से अनुरक्त होना परकीया की मुख्य विशेपता है अत 'उपपति' पाठ सगत एवं 'उपजै' पाठ प्रस्तुत प्रसग मे असगत माना गया है।

४ ६५

"झँझरी के झरोखनि ह्वै कै झकोरति रावटीहू मैं न जाति सही।"

परकीया गुप्ता नायिका अपना परपुरुष प्रसग छिपाने के हेतु अपने हार टूटने तथा अधर के क्षत-विक्षत होने का कारण तीव्र गति से बहती बयार को बताती है। यह बयार रँग-रावटी मे बने वातायन से सीधे नही आती, वातायन मे लगी झँझरी से अशत अवरुद्ध होकर उसका वेग कुछ मन्द पड जाता है परन्तु फिर भी उसकी गति असहनीय है। इस प्रकार "झँझरी वाले झरोखे" के अर्थ मे "झँझरी के झरोखनि" पाठ संगत है परन्तु निकट के 'झकोरति' शब्द के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से नी० हि० प्रतियो मे "झँझरी के झकोरन ह्वै कै झकोरति" पाठ मिलता है। इसका अर्थ "झँझरी की झकोर" करने पर दूसरे 'झकोरति' के साथ इस अर्थ की सगति नही बैठती अत हमने इस पाठ को विकृत माना है।

४ ७५

"चित्र स्वप्न परतच्छ करि दरसन त्रिविधि बखानु।
देस काल भंगीनु करि श्रवन तीनि विधि जानु।।"

कवि देव ने श्रवण तथा दर्शन के उपर्युक्त तीन-तीन भेद अपने 'कुशल विलास' आदि अन्य ग्रथो मे भी माने है किंतु नी० हि० प्रतियो मे सम्भवत 'भगीन' के वर्णो मे विपर्यय होने से 'गमीन' तथा इससे 'गभीर' पाठ हो गया है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण अग्राह्य है। इसी प्रकार इन प्रतियो मे 'तीन' के स्थान पर 'चारि' पाठ मिलता है। जब कवि ने श्रवण के केवल तीन ही भेद किये है तो पाठ भी 'तीनि' होना चाहिए। 'चारि' पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा लेखन-प्रमाद से हो गया मालूम देता है।

४ ७७

"ऊँची अटा चढि सेज सजी तो कहा हरि जो न यहाँ निसि जागे।"

चरण का अर्थ तथा प्रसग दोनो स्पष्ट है परन्तु प्रतिलिपिकार के प्रमाद से हुआ नी० हि० प्रतियो का 'सेज चढ़ी' पाठ 'चढी' शब्द की अनावश्यक पुनरावृत्ति होने के कारण अनुचित है। अर्थ के विचार से भी 'सेज चढने' से प्रायः सुरति का भाव लिया जाता है परन्तु यहाँ सुरति का कोई प्रसग नही है। प्रतिलिपिकार द्वारा यह प्रमाद इसके पहले "अटा चढि" पाठ होने के कारण सम्भव है।

४·११० अधमा लक्षण।

"बिनु दोषहि रूठै तजै बिना मनाये मानु।
जाको रिस रस हेतु बिनु अधमा ताहि बखानु।।"

अर्थात् जो नायिका अकारण बैर-प्रीति मान ले उसे अधमा कहते है। रेखाकित स्थल पर प्रतिलिपिकार के प्रमाद से 'होत' असगत पाठ मिलता है। इस पाठ मे अर्थ की असगति है अत· हमने इसे अग्राह्य माना है।

भा० सा० प्रतियाँ : त्रुटित पाठ :

५.१-२

"कविता कामिनि सुखद पद सुवरन सरस सुजाति।
अलंकार पहिरे निकट अद्भुत रूप लखाति।।

ताही तें कवि देव कहि अलकार की भाँति।
मुनि मत के अनुसार तें लै कछु लच्छन जाति ॥"

केवल भा० सा० प्रतियो मे उपर्युक्त दोहे नही है, ज० प्रति मे पचम विलास न होने के कारण इस प्रति की स्थिति अनिश्चित हे। कवि ने अन्य विलासो के प्रारम्भ मे प्रत्येक नवीन विपय का समारम्भ करते हुए प्राक्कथन के रूप मे दोहे दिये है तथा उपर्युक्त दोहों मे से प्रथम काव्य रसायन' मे अलकार सम्बन्धी नवम विलास का भी प्रथम दोहा है अत हमने माना है कि ये दोहे भा० सा० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के प्रमाद से छूट गये हैं।

५.१८　　"राधे के रूप" अतिशयोक्ति उदाहरण छद केवल भा० सा० प्रतियो मे त्रुटित है। इसके पूर्व कवि ने ५.१६-१७ सख्या के दोहो में रूपक तथा अतिशयोक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है :—

"सम समान जैसे जनो जिमि ज्यो मानो तूल।
और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल ॥
जहँ उपमा मैं ये न पद सोई रूपक जान।
सीमा तें अति वरनिये अतिसै ताहि वखान ॥"

अन्य प्रतियो मे इन दोनो अलकारो के उदाहरण पृथक्-पृथक् छद मे दिये है परन्तु केवल भा० सा० प्रतियो मे अतिशयोक्ति का उदाहरण नही है। रूपक उदाहरण से अतिशयोक्ति अलकार का लक्षण स्पष्ट नही होता अत यह नही कहा जा सकता कि कवि ने एक ही उदाहरण में दोनो अलकारो का उदाहरण समाविष्ट कर लिया होगा।

प्रक्षेप :

१:१　　वदना के पूर्व केवल भा० सा० प्रतियो मे निम्नलिखित दोहा अधिक है :—

"राधाकृष्ण किसोर जुग पग वदौ जगवद।
मूरति रति शृगार की शुद्ध सच्चिदानन्द ॥"

यही दोहा 'प्रेम चन्द्रिका' मे १ ३ तथा 'कुशल विलास' मे १ २ सख्या पर भी आया है। आलोच्य ग्रथ मे "श्री वृदावन चन्द" १.१ छप्पय मे भी कवि के आराध्य श्रीकृष्णचद्र की वन्दना होने से यह दोहा अनिवार्य रूप से आवश्यक नही है। भा० सा० प्रतियो के अतिरिक्त अन्य सभी प्रतियो मे प्रक्षेप अथवा प्रतिलिपि-सबन्ध न मिलने के कारण हमने भा० सा० प्रतियो मे इस दोहे को देव कृत उपरोक्त अन्य ग्रथो से प्रक्षिप्त माना है।

स्थान-विपर्यय :

२४०

"जानति नाहि रहे हरि कौन के ऐसी धौ कौन वधू मन भावै ॥"

चरण मे 'रहे' शब्द का प्रयोग कुछ विचित्र अवश्य है क्योकि इसे नायिका के लिए प्रयुक्त मानने पर पदान्वय इस प्रकार होगा "हौं जानति नाहि रहे" परन्तु इसमे लिग सम्बन्धी असगति है। इसके विपरीत इसे हरि के साथ जोडने पर अन्वय इस प्रकार होगा "हौं जानति नाहि

कि हरि कौन के ह्वै रहे है"। इस प्रकार अर्थ करने मे निश्चय ही शब्दो की खीचतान होती है परन्तु कवि मे दूरान्वय की विशेषता अन्य स्थलो पर भी मिलने के कारण हम चरण का अर्थ इसी प्रकार करना उचित समझते है। सभवत अर्थ करने मे कठिनाई होने के कारण भा० सा० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के सचेष्ट प्रक्षेप से अथवा प्रमादवश 'रहे' के स्थान पर **'हरे'** पाठ मिलता है। 'हरि' के साथ उसके सबोधन कारक का रूप 'हरे' असगत है।

३:३५ बिब्बोक लक्षण।

"प्रिय अपराध धनादि मद उपजै गर्व **विकार**।
कुटिल डीठि अवयव चलन सो बिब्बोक विचार।।"

यहाँ 'विकार' शब्द गर्व की दूषित वृत्ति के अर्थ मे सगत है परन्तु भा० सा० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के लेखन-प्रमाद से वर्णो का विपर्यय हो गया है **'किवार'**। हमने इस पाठ को प्रस्तुत प्रसग मे अर्थ के विचार से असगत होने के कारण विकृत माना है।

पाठ-विकृति :

२ १०० प्रथम-द्वितीय चरण।

"कहु कौन की चपक चारु लता यह देखि सबै जन भूलि रहे।
कवि देव ए **तामै** कहा बिलसै त्रिवि श्रीफल से धरि धूलि रहे।।

कवि ने नायिका के रूप का साग रूपक मे वर्णन किया है। यह छद तर्क-वितर्क का उदाहरण है अत द्वितीय चरण का अर्थ इस प्रकार होगा "इस स्वर्ण लता मे यह कौन सी वस्तु शोभायमान हो रही है जो आकार एव कठोरता मे श्रीफल को भी लज्जित करने वाली है।" अत "उस चारु चपक लता मे" के अर्थ मे 'तामै' पाठ सगत है परन्तु भा० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर **'तीमै'** पाठ होने से असगति उत्पन्न होती है। 'तीमैं' को 'तिय मैं' का रूपान्तर भी नही स्वीकृत किया जा सकता क्योकि तब छद मे रूपक का चमत्कार नष्ट हो जाता है।

३.२७ विभ्रम लक्षण।

"उलटै जहँ भूषन **वसन** भेष हँसै जन जाहि।
भाग रूप अनुराग मद विभ्रम बरनहु ताहि।।"

भा० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर प्रतिलिपिकार के प्रमाद से **'वचन'** असगत पाठ मिलता है। विभ्रम हाव मे 'वचन' नही बदलते वरन् हडबडी मे वसन ही बदल जाते है, यह इस लक्षण के निम्नलिखित उदाहरण से भी प्रगट होता है —

"स्याम सो केलि करी सिगरी निसि सोत ते प्रात उ्ठी थहराइ कै।
आपने चीर के धोखे बधू पहिर्‌यो पट पीत भटू भहराइ कै।।"

३ ४६

"**देह** दुहू की दहै बिनु देखे सु देखि दसा निसि सोवत को ती।"

भा० सा० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के प्रक्षेप से 'देह' के स्थान पर **'देव'** पाठ मिलता है। यह पाठ कविकृत नही हो सकता क्योकि 'देह' के अभाव मे चरण सज्ञा पद से रहित हो जाता है और व्याकरण-दोष आता है तथा चरण का अर्थ करने मे भी असगति उत्पन्न होती

है—फिर कौन सी वस्तु दहती है ?

३ ७६ प्रथम दो चरण ।

"सुधाधर से मुख बानि सुधा मुसक्यानि सुधा बरसै रदपाँति ।
प्रवाल से पानि मृनाल भुजा कहि देव लता तन कोमल काँति ॥"

द्वितीय चरण मे उपमेय-उपमान के युग्म है प्रवाल-पाणि, मृणाल-भुजा, लता-तन। परन्तु भा० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'लतान की' पाठ होने से छद मे कवि की वर्णन शैली के विपरीत "लतान की कोमल काँति" पद मृणाल भुजा का विशेषण पद हो जाता है। कवि ने नायिका के सुन्दर सुलप शरीर की तुलना लता से अनेक स्थलो पर की है, केवल 'काव्य रसायन' के नवम विलास मे निम्नलिखित पाँच स्थलो पर ऐसे प्रयोग मिलते है :— ९ ३८, ९ ४२, ९ ४७, ९ ७३ तथा ९ ७९ ।

४ २७ अतिम दो चरण ।

"भेटि वियोग समेटि सबै सुख सो भटू भेटि भटू जुग जीहै ।
या मुख सुद्ध सुधाधर ते अधरा रस धार सुधारस पीहै ॥"

सखी नायिका से कह रही है, नायक जब तुम्हे अपने हृदयालिगन मे आविष्ट करेंगे तो वह तुम्हारे समस्त दु खो को एकत्रित कर नष्ट कर देगे। ऐसे भटू नायक युग-युग जियें। (तुलना- "मन के न मेटे दुख सुख वयो समेटे जाहि मदन भपेटे जो न भेंटे भुज भरि कै।"—'कुशल विलास'—८ १२।) भा० सा० प्रतियों मे प्रतिलिपिकार ने 'भटू' की आवृत्ति को अनावश्यक मान कर 'सुख सो भरि भेटि भटू जुग जीहै" पाठ सशोधित किया है। "भर भेंटना" पाठ उपरोक्त व्याख्या की तुलना मे प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है अत हमने इस पाठ को अग्राह्य माना है।

४ ११४ सखी उदाहरण ।

"चाइ सो चित्त प्रसन्न करै रस रग मे सग सयान सिखावै ।"

'सयान' का अर्थ हे 'सयानपन'—"मेरो अयान सयान तिहारो ।", "देव रच्यो अग अगनि रग वढ्यो सु सयान अयान न लून्यो ।"—'कुशल विलास'—४ ३२ । आलोच्य चरण का अर्थ इस प्रकार होगा "वह चतुर सखी अपने स्नेह से नायिका का मनोरंजन भी करती, उसे रस-रग की शिक्षा भी देती है और साथ ही साथ उसे सयानपन भी सिखलाती है।" भा० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'सयानि' पाठ मिलने से इसके सखी के विशेपण रूप मे प्रयुक्त होने का भ्रम होता है।

लिपिजन्य विकृति .

२ २९ असूया लक्षण ।

"क्रोध कुबोध विरोध तै सहै न पर अविकार ।
उपजै जहँ जिय दुष्टता सो असूया अवधार ॥"

भा० सा० प्रतियो मे 'पर' के स्थान पर 'यह' असंगत पाठ मिलता है। यह पाठ-विकृति 'प' मे 'य' तथा 'र' मे 'ह' का भ्रम होने से सभव है।

२ ३८

"मैंन सर जोर मारे पवन झकोरनि सो आई है उमगि छिति छाती नीर भरिये ।"

'धरती' के अर्थ मे 'छिति' शब्द यहाँ प्रसग-सगत है परन्तु भा० सा० प्रतियो मे 'त' में 'न' का भ्रम होने से 'छिनि' विकृत पाठ मिलता है।

२ ५०

"तौ लगि आइ गयो उत तें सु नगीच मनो चित बीच परे च्वै ।"

वन कुज मे खेलते-खेलते राधिका का हार किसी झाडी मे उलझ गया। तभी वहाँ रसिक कन्हाई आ पहुँचे—ऐसे जैसे हृदय मे बैठे रहे हो और वहाँ से निकल पडे हो। इस प्रसग मे प्रस्तुत स्थल पर रेखाकित पाठ सगत है परन्तु भा० सा० प्रतियो के इसके स्थान पर 'छ्वै' पाठ मिलता है। यह पाठ-विकृति सयुक्ताक्षर मे भ्रम होने से सभव है। अन्तिम चरण के "छल सो छतिया छ्वै" पाठ मे भी यही शब्द होने के कारण यह शब्द यहाँ सगत नही माना गया है।

२:६७ विप्रतिपति उदाहरण के अन्तिम दो चरण।

"कवि देव कहै कहिये जुग जो जलजात रहे जलजात मैं ध्वै ।
न सुने **न पै** काहू कहूँ कबहूँ कि मयक के अक मै पकज द्वै ।।"

कवि नायिका के कमल सदृश नेत्रो को देख कर मन ही मन तर्क-वितर्क कर रहा है, "कमल के समान ये नेत्र युग्म चन्द्रमडल मे सुशोभित हो रहे है। पर नही, चन्द्रमा के अक मे तो मृग शावक की ही स्थिति लोक-प्रसिद्ध है। यह तो किसी ने कही-कभी नही सुना कि चन्द्रमा मे दो सुन्दर कमल खिले है। वास्तव मे नकारात्मक 'न पै' से ही कवि-कथन की विप्रतिपति सिद्ध होती है। 'न' मे 'त' का भ्रम होने के कारण सा० प्रति मे 'तपै' एव इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण भा० प्रति मे 'तबौ' पाठ मिलता है। सा० प्रति के पाठ की निरर्थकता स्पष्ट है, भा० प्रति का पाठ भी अर्थ के विचार से असगत है क्योकि इस अर्थ मे यह चरण के वक्तव्य का खण्डन नही करता।

तुलना—

"रूप के मन्दिर यो मुख मै मनि दीपक से दृग द्वै अनुकूले ।
दर्पन मैं मनि मीन सलील सुधा सर नील सरोज से फूले ।
देव जू सूरमुखी मृदु फूल मैं भीतर भौर मनो भ्रम भूले ।
अंक मयंकज के दल अंकज पंकज मै मनो पंकज फूले ।।"

—'काव्य रसायन'—९.३०

३·२६

"मोहनलाल को मोहन को यह पैन्हति मोहनमाल अकेली ।।"

'न्ह' संयुक्ताक्षर मे 'ध' का भ्रम होने के कारण भा० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'पैंधति' पाठ मिलता है। यह पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत माना गया है।

नी० हि० का० प्रतियाँ : स्थान-विपर्यय :

५ १५-१६

"सम समान जैसे जनो जिमि ज्यो मानो तूल ।
और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल ।।
जहँ उपमा मै ये न पद सोई रूपक जान ।
सीमा तें अति वरनिये अतिसै ताहि बखान ।"

नी० हि० का० प्रतियो मे प्रथम दोहे के वाद रूपक उदाहरण ५.१७ वां छन्द है। इस प्रकार "और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल" के बाद रूपक का उदाहरण तथा उसके वाद रूपक का लक्षण आना स्पष्ट दुष्क्रम है।

पाठ-विकृति :

१ १८

"देव दुहून के देखत ही उपज्यो उर मै अनुराग अनूनो ।
डोलत है अभिलाख भरे सुलग्यो विरहज्वर अग अभूनो ।
तौ लौ अचानक ह्वै गई भेट इत उत ठौर निहारत सूनो ।
प्रीति भरे अरु भीति भरे बन कुज मै कपत दपति दूनो ।।"

वेपथ सात्विक भाव शीत, क्रोध, भय तथा श्रम आदि से होता है एव इसमे कप अनुभाव होता है। आलोच्य स्थल पर नी० हि० प्रतियो मे **'प्रीति भरे अनुराग भरे'** तथा का० प्रति मे **'प्रेम भरे अरु प्रीति भरे'** पाठ है। प्रेम, प्रीति तथा अनुराग प्राय समानार्थी शब्द है, इसके विपरीत अन्य प्रतियो मे प्राप्त पाठ के अनुसार कप का कारण भीति तथा अनुराग दोनो है अतः यही पाठ सगत माना गया है।

५. २६.सहोक्ति उदाहरण।

"प्यारी के प्रान समेत पिया परदेस पयान की वात चलावै ।
देव जू छोभ समेत छपा छतिया मैं छपाकर की छवि छावै ।
वोलि अली वन बीच वसत को मीचु समेत नगीच वतावै ।
काम के तीर समेत समीर सरीर मैं लागत पीर बढ़ावै ।।"

छद सहोक्ति अलकार का उदाहरण है अत. अर्थोत्कर्ष के लिए सहित शब्द अथवा उसका समानार्थी शब्द आना चाहिये। अत सहित शब्द अन्य चरणो मे भी है किन्तु नी० हि० का० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर **'काम के तीर समान समीर'** पाठ होने से, सगत अर्थ के होते हुए भी अलकारिक चमत्कार लुप्त हो जाता है अत. हमने इस पाठ को विकृत माना है।

पर्याय :

३ ४८ राधिका पूर्वानुराग।

"साँसन ही सो समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि ।
तेज गयो गुन ले अपनो अरु भूमि गई तन की तनुता करि ।

देव जियै मिलिबेई की आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि ।।"

पचतत्त्व निर्मित शरीर का एक-एक तत्त्व अपने मूल तत्त्व मे जा मिला। एक प्राण बच रहा क्योकि वह जिस शून्य से निर्मित हुआ है वह जड़ता के रूप मे नायिका के चतुर्दिक छाय। हुआ है। का० नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'जीव रह्यौ' पाठ पर्याय मिलता है। यह छद 'सुखसागर तरग', 'सुजान विनोद', 'भवानी विलास' एव 'प्रेम चद्रिका' ग्रथो मे आया है परन्तु अन्तिम ग्रथ को छोडकर सभी ग्रथो मे "देव जियै" पाठ है।

३ ७५

"व्याकुल ही विरहज्वर सौ सुभ पावन जानि जनीनु जगाई।
घोरि घनोरग केसरि को गहि गोरी गुलाल के रग रँगाई।
त्यों तिय सॉस लई गहिरी कहि री उनसो अब कौन सगाई।
ऐसे भये निरमोही महा हरि हाय हमैं बिनु होरी लगाई ।।"

का० नी० हि० प्रतियो मे तृतीय चरण का पाठ इस प्रकार मिलता है :—

"सॉस लई गहिरी कहि री उनसो हमसो अब कौन सगाई।"

४ २६

"मोरिये छाती छुवै छिपि के मुख चूमि कहै कोउ और न जानै।"

नी० हि० का० प्रतियो मे आलोच्य पाठ का पर्याय मिलता है—'कोई दूजो न जानै'। दोनो ही पाठ समानार्थी है।

५ २६ व्यतिरेक लक्षण दोहा।

"जहँ समान विवि वस्तु को कीजै भेद बखान।
अलकार व्यतिरेक सो देवदत्त उर आन ।।"

का० प्रति मे 'द्वै वस्तु' तथा हि० प्रति मे 'ह्वै वस्तु' पाठ मिलता है, नी० प्रति मे इस स्थल का पाठ दीमको द्वारा नष्ट हो गया है। हि० प्रति का 'ह्वै' पाठ निस्सन्देह का० प्रति के 'द्वै' पाठ से सभव है। जहाँ दो समान वस्तुओ मे एक को बढाकर अथवा दूसरे को घटाकर वर्णन करते है वहाँ व्यतिरेक अलकार होता है। इस प्रकार 'विवि' तथा 'द्वै' पाठ समानार्थी होने के कारण सगत है परन्तु 'काव्य रसायन' मे व्यतिरेक के निम्नलिखित लक्षण से 'विवि' प्रयोग की सगति सिद्ध होती है —

"बरनि वस्तु विवि सम कहै जे विशेष व्यतिरेक।"
—'काव्य रसायन'—९ ६१

५ १७ रूपक उदाहरण।

"ऐसो अदभुत रूप भावती को देखौ देव जाके बिनु देखे छिन छाती न सिराति है।"

आलोच्य स्थल पर नी० हि० का० प्रतियो मे 'जाहि देखे कौन की न छतिया सिराति है' पाठ मिलता है। ये दोनो पाठ भी प्राय समानार्थी है।

५ ३२

"मीठी लगै बतियॉ मुख सीठिओ सुने सब सौतिन को दपटै सी।"

आलोच्य स्थल पर का० प्रति मे 'सु अमीठिअै वातै' नी० प्रति मे 'अनमीठिऔ वातै' तथा हि० प्रति मे 'अनईठिऔ वातै' पाठ मिलता है। सीठी अथवा सार रहित वातो का भी मीठा लगना अथवा गैर मीठी वातो का भी मीठा लगना प्राय समानार्थी है। हि० प्रति का "अन ईठिओ वातै" जो प्रतिलिपिकार के प्रक्षेप के कारण सम्भव है, अर्थ के विचार से असगत है।

का० सा० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति

२ ५८ आवेग उदाहरण।

"देव हृदै पथ आइ मनौ चढि धाई मनोरथ के रथ ऊपर।"

श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार सुनते ही सभी गोपागनाएँ उनके दर्शन को अत्यन्त आकुल हो उठी। आकुलता के कारण वह शीघ्रता से चल तो सकती न थी परन्तु उनके हृदय मे श्याम की मूर्ति आकर पहले से ही विराजमान हो गयी—मानो चलने मे असमर्थ होने के कारण वे अभिलाषा के रथ पर आरुढ हो हृदय-मार्ग से होती हुई अपने प्रिय से मिल गयी। का० सा० प्रतियो मे 'हृ' सयुक्ताक्षर मे भ्रम होने के कारण 'हूदै' पाठ मिलता है। यह पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत माना गया है।

पाठ-विकृति :

१ २४

"जिनको निरखत परसपर रस को अनुभव होइ।
तिनही को अनुभाव पद कहत सयाने लोइ।।"

अर्थात् वे चेष्टाएँ जिनको देखने से रस का अनुभव होता है, अनुभाव कहलाती हैं। का० प्रति मे 'परप्रति जिनको परसपर' तथा सा० प्रति में 'परसत जिनको परसपर' पाठ हैं। अनुभाव का 'स्पर्श' प्राप्त कर उसका आस्वाद लेना असंगत है अत यह पाठ हमने विकृत माना है। दोनो प्रतियो मे 'जिनको' का समान स्थान-विपर्यय भी द्रष्टव्य है।

४ ४७

"तैसी चद्रमुखी के वा चद्रमुख चद्रमा सो होड़ परै चाँदनी औ चाँदनी से चीर सो।"

चरण का अर्थ स्पष्ट है परन्तु 'होड परै' के स्थान पर का० प्रति मे 'होय परै' पाठ है तथा यही पाठ सा० प्रति मे पार्श्व पर मिलता है। 'होय परै' पाठ प्रस्तुत प्रसग मे सर्वथा असगत है।

५·२६

"याही ते प्यारी तिहारी मुखद्युति चद समान वखानत है कवि।"

इसके स्थान पर का० सा० प्रतियो में "वखानत तो कवि" पाठ होने से असगति होती है क्योकि 'मुखद्युति' के लिए 'तो' तथा 'तिहारी' दो सम्वन्धवाचक सर्वनाम अनावश्यक है।

पर्याय :

१ २०

"चित चावते चैत की चंद्रिका और चितै पति को चित-चोरि लयो।"

का० सा० प्रतियो मे '**चाँदनी**' पर्याय मिलता है।

४ १०६

"सापराध पति **देखि कै**..."

केवल का० सा० प्रतियो मे "सापराध पति **पेखि कै**..." पाठ है।

नी० हि० सा० प्रतियाँ पाठ-विकृति :

१.२१

"हेरत ही हरि लीनो हियो **इन आल रसाल सिरीष** जम्हीरनि।"

नी० हि० प्रतियो मे स्थान विपर्यय तथा लिपिभ्रम से '**इन आली सिदाष रसाल**' पाठ मिलता है। 'सिदाष' पाठ अर्थहीन होने के कारण असगत है परन्तु सा० प्रति के आदर्श मे 'सिदाष' पाठ कदाचित् पार्श्व पर अकित होने के कारण सा० प्रति मे इस प्रकार आ गया है '**आली सिदाष सिरीष**'। नी० हि० प्रतियो का 'सिदाष' विकृत पाठ 'सिरीष' मे भ्रम होने से सम्भव है।

२ १०५

"आलस ग्लानि निर्वेद श्रम उत्कठा जड जोग।
संकापसुमृति अवबोधोन्माद वियोग॥"

कवि के मतानुसार विप्रलभ शृगार मे उपर्युक्त सचारियो का वर्णन होना चाहिये। ध्यान रहे कि दोहे के तृतीय चतुर्थ चरण मे दोहे के तथाकथित लक्षण के अनुसार मात्राएँ नही है—पाठ को भग करके पढने पर भी मात्राएँ पूर्ण नही होती। इस प्रसग मे यह भी स्मरण दिलाना अनुचित न होगा कि यह पाठ कथ्य के विचार से पूर्ण है, अर्थात् किसी शब्द के त्रुटित होने के कारण मात्राएँ कम नही हुई है। अत यही पाठ कविकृत होगा। नी० हि० प्रतियो मे मात्रा पूर्ति के हेतु पाठ सशोधन हुआ है '**संका सुमृति सु स्वास औ यो उन्माद विशोग**'। इस पाठ से दोहे मे वाछित मात्राएँ तो पूर्ण हो जाती है किन्तु इसमे स्वास, औ, यो आदि निरर्थक शब्द होने के कारण इसे प्रतिलिपिकार कृत प्रक्षेप माना जाएगा। सा० प्रति मे नी० हि० प्रतियो की सहायता से पाठ-सशोधन हुआ है—'**संका सुमृति सुस्वास औ बोधोन्माद विसोग**'। इस पाठ की असगति भी उसी प्रकार स्पष्ट है। हमने 'काव्य रसायन' तथा 'रस विलास' आदि ग्रथो मे प्राप्त न्यून मात्रा वाले प्रामाणिक दोहो की चर्चा यथास्थान की है, 'भाव विलास' मे प्राप्त केवल एक ऐसा उदाहरण हम यहाँ दे रहे है :—

"प्रिय दर्शन सुमिरन श्रवन होत अचल गति गात।
सकल चेष्टा रुकि रहै प्रलय कहै कवि तात॥" २ १६

तृतीय चरण मे एक मात्रा कम है परन्तु लक्षण इसी रूप मे पूर्ण तथा स्पष्ट है।

स्थान-विपर्यय :

२ ५७

"प्रिय अप्रिय देखे सुने **गात पात संवेग**।
होइ अचानक भूरि भ्रम सो वरनहु आवेग॥"

नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर **'तेन ताप सवैग'** तथा सा० प्रति मे **'तेन तपै संवेग'** पाठ है। दोनो ही पाठ अशुद्ध है। इन पाठो की 'ताप' विकृति पात' के वर्णो मे विपर्यय होने से सभव है।

लिपिजन्य विकृति :

४ १६

"जांहि जपै **त्रिपुरारि मुरारि** सव असुरारि सुरारि हने है।"

'म' मे 'स' का भ्रम होने के कारण नी० हि० सा० प्रतियो मे **'त्रिपुरारि सुरारि'** पाठ मिलता है। आगे भी 'सुरारि' पाठ होने से यहाँ यह पाठ असगत है।

४ ३९

"झिल्लिन सो **झहनाइ** के किंकिनि बोलै सुकी सुक ली सुख दैनी।"

'न' मे 'र' का भ्रम होने से नी० हि० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर **'झहराइ'** पाठ प्राप्त होता है। 'झहरने' का अर्थ "आग की लपट अथवा तेज वायु का शब्द" होने के कारण किंकिणी बोलने के प्रस्तुत प्रसग मे यह पाठ यहाँ असगत है। तुलना—"झहर झहर झुकि झीनो झर लायो देव छहर छहर छोटी बुदनि छहरिया।"—सुजान विनोद'—४ ८; "ककन झनित अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिले मनित सुहात है।"—'भाव विलास'—३·१८

नी० हि० ज० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

३ १८ द्वितीय-तृतीय चरण।

"ककन **झनित** अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिले मनित सुहात है।
कुडल हलत मुखमण्डल झलमलात **झूलत** दुकूल भुजमूल भहरात है।"

यह पाठ 'भवानी विलास मे ५ ४० तथा 'सुख सागर तरग' मे ५०० सख्या पर भी मिलता है परन्तु केवल नी० हि० ज० प्रतियो मे द्वितीय चरण मे 'झनक' तथा तृतीय चरण मे 'झलक' पाठ मिलता है। नायिका के झूमने अथवा हिलने के कारण उसका दुपट्टा कधे पर से गिर जाता है अत 'झूलत' पाठ ही सगत है। 'झनित' पाठ 'रनित' तथा 'मनित' के अनुप्रास से तथा झूलत' पाठ 'हलत' के अनुप्रास मे पुष्ट भी है।

३ ७९

"व्याकुल ह्वै बिरहानल सो **तचि** घूमि गिरि गुनगौरि गली पर।"

नी० हि० प्रतियो मे लिपिभ्रम से 'तब' पाठ मिलता है। यह छन्द 'भवानी विलास' मे ६ ३१ पर भी है परन्तु यहाँ 'जरि' पर्याय मिलता है। कहना न होगा कि प्रस्तुत प्रसग मे "तचि" पाठ सगत तथा 'तब' पाठ विकृत है।

भा० सा० ज० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

३·२९

"श्रम मद भय अभिलाष अरु सुमृति गर्व इक बार।"

भा० सा० ज० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के दृष्टि-भ्रम से असगत पाठ मिलता है "अभि-लाष रुख।"

३ ५६

"न मानति और कछू तब ते मन माँहि वहीये रही छवि छाई।"

'य' मे 'प' का भ्रम होने से भा० सा० ज० प्रतियो मे 'वही पे' विकृत पाठ मिलता है। यह पाठ अर्थ के विचार से असगत है।

४ . ८६ उत्कठिता नायिका लक्षण।

"हेतु विचारै चित्त मे उत्कठिता कहु ताहि।"

'उत्कठिता' पाठ से चरण मे एक वर्ण की नियम-विरुद्ध वृद्धि होती थी अत केवल भा० सा० ज० प्रतियो के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रतियो मे 'उत्कंठा' पाठ रक्खा है। दोहे मे उत्कठिता नायिका का लक्षण होने के कारण यह पाठ असगत तथा 'उत्कठिता' पाठ ही सगत है।

प्रतियों का प्रतिलिपि सम्बन्ध :

'भाव विलास' की उपलब्ध प्रतियो मे पाठ-मिश्रण होने के कारण इनका परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त उलझा हुआ है। विकृतियो के आधार पर प्रतियो का सूक्ष्म अध्ययन करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते है :—

नी० हि० प्रतियाँ एक ही प्राचीन आदर्श की दो प्रतियाँ है। यह आदर्श मूल प्रति के निकट की कोई ऐसी प्रति थी जिसका पाठ भ्रष्ट एव खडित अवस्था मे था। इन प्रतियो मे अपनी-अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ भी मिलती है अत ये प्रतियाँ एक-दूसरे की प्रतिलिपि नही हो सकती।

भा० सा० प्रतियाँ एक आदर्श की दो प्रतियाँ है। इन प्रतियो मे भी अपनी-अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ मिलती है अत ये प्रतियाँ एक दूसरे की प्रतियाँ नही हो सकती।

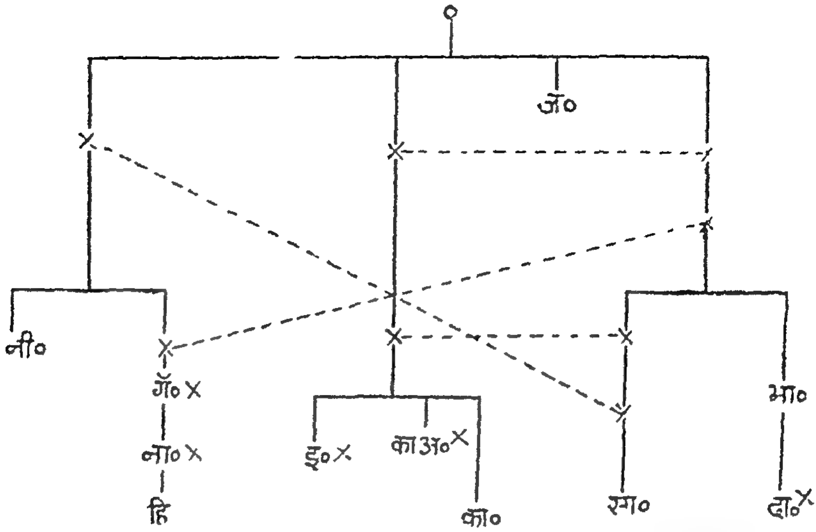
प्रतियो के उपरोक्त समुच्चय के अतिरिक्त शेप समुच्चय प्रतियो मे पाठ-मिश्रण के कारण निर्मित होते है अथवा इनमे सदिग्ध प्रतिलिपि-सम्बन्ध है।

का० प्रति तथा नी० हि० प्रतियो मे परस्पर पाठ-मिश्रण हुआ है। इन दो शाखाओ की प्रतियो मे परस्पर स्वतत्र विशेपताएँ भी मिलने के कारण ये पाठ-परपरा मे निम्न स्तर से सम्बन्धित प्रतियाँ नही है।

इसी प्रकार सा० प्रति मे का० प्रति एव नी० हि० प्रतियो की पूर्व-परपरा की प्रतियो से पृथक्-पृथक् पाठ-मिश्रण हुआ है।

ज० प्रति तथा नी० हि० प्रतियो मे केवल दो स्थलो पर पाठ-विकृतियाँ समान है एव भा० सा० ज० प्रतियो मे भी दो ही स्थलो पर समान विकृतियाँ मिलती है अत हम नी० हि० ज० तथा भा० सा० ज० प्रतियो को विकृति-सम्बन्ध से सम्बन्धित प्रतियाँ नही मानते है।

'भाव विलास' की समस्त प्रतियो के अतर्सम्बन्ध को इस प्रकार स्पप्ट किया जा सकता है .



× अंकित प्रतियों का उपयोग आंशिक रूप मे हुआ है अथवा इन्हे छोड़ दिया गया है।

संपादन-सिद्धान्त :

प्रतियो के निम्नलिखित परस्पर स्वतत्र समुच्चयो मे प्राप्त पाठ प्रामाणिक होगा :—
सभी प्रतियो मे प्राप्त सगत पाठ,
नी०, हि० तथा ज० प्रतियो मे प्राप्त पाठ, भा०, ज० तथा का० प्रति मे प्राप्त पाठ, भा० सा० ज० प्रतियो के शीर्षक के अतर्गत आए कुछ स्थलो को छोड कर इन प्रतियो तथा नी०, हि०, का० प्रतियो मे प्राप्त समान सगत पाठ।

अन्य ग्रथो की तुलना मे 'भाव विलास' मे दूसरे ग्रथ के समान छद कम मिलते है तथा सहायक सामग्री के रूप मे अन्य ग्रथो के पाठ का उपयोग भी कम हुआ है, यदि हुआ है तो भूमिका मे उसका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।

अपवाद .

निम्नलिखित स्थलो पर केवल एक प्रति का पाठ अन्य प्रतियो के पाठ के स्थान पर स्वीकृत हुआ है .

केवल नी० हि० प्रतियो में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ

५ ६ उपमेयोपमा लक्षण।

"उपमा अरु उपमेय जहँ क्रम तें एकै होइ।
सोई उपमेयोपमा कहत सुकवि सब कोइ॥"

ऊपर स्वीकृत पाठ केवल नी० हि० प्रतियो मे मिलता है। का० सा० प्रतियो मे इसके स्थान पर "उपमा अरु उपमेय जहँ जहँ क्रम एकै होइ" तथा भा० प्रति मे "उपमा अरु उपमेय को जहँ क्रम एकै होइ" पाठ है। इन दोनो ही पाठो के अनुसार दोहा उपमेयोपमा अलकार के बजाय क्रमालंकार का लक्षण हो जाता है। उपमेयोपमा मे उपमेय की समता जिस उपमान से की जाती है वह उपमान तुरन्त ही उपमेय होकर प्रथम को अपना उपमान बना लेता है।

जैसे, "पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोसी उज्यारी है पूरनमासी।" परन्तु क्रमालकार मे जिस क्रम से उपमेयो का वर्णन किया जाता है, उपमेय के अनन्तर उसी क्रम से उपमानो का भी वर्णन होता है। जैसे 'भाव विलास' के ५ ६४ छद मे पहले केश, भाल, भृकुटी, नयन आदि के बाद उसी क्रम से उनके उपमान कुहू-तम, चद-चाप, खजन आदि का वर्णन हुआ है। इस प्रकार किंचित भ्रम होने से दोहे मे उपमेयोपमा के स्थान पर क्रमालकार का लक्षण वर्णित हो गया है। भा० सा० का० प्रतियो का पाठ उपमेयोपमा अलकार का अनुपयुक्त लक्षण होने के कारण अग्राह्य हे अत केवल नी० हि० प्रतियो मे प्राप्त पाठ सगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है।

केवल ज० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

२ ३९ चिता लक्षण दोहा।

"इष्ट वस्तु पाये बिना व्यग्र चित्त अति होइ।"

रेखाकित पाठ केवल ज० प्रति मे मिलता है, अन्य प्रतियो मे पाठ की स्थिति इस प्रकार है **"एक अग्र चित होइ"**—सा०का० प्रतियाँ, **"बहु व्याकुल चित होइ"**—नी०हि० प्रतियाँ, **"एक आस चित होइ"**—भा० प्रति। का० सा० प्रतियो का 'अग्र' पाठ दृष्टि-भ्रम से 'व्यग्र' से सभव है, इसी प्रकार नी० हि० प्रतियो का पाठ भी 'व्यग्र' का पर्याय है एव भा० प्रति का पाठ प्रसग के विचार से असगत है अतः केवल ज० प्रति मे प्राप्त पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ ५८

"देव हृदै पथ आइ मनो चढि धाई मनोरथ के रथ ऊपर।"

रेखाकित पाठ केवल ज० प्रति मे तथा भा० प्रति मे 'सुदै', का० सा० प्रतियो मे 'हु दै' एव नी० हि० प्रतियो मे 'ह्वै दै' पाठ है। ज० प्रति के अतिरिक्त सभी पाठ असगत है तथा ज०प्रति के पाठ से ये विकृत पाठ सभव है अत केवल ज०प्रति मे प्राप्त पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

केवल सा० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

३:७९

"व्याकुल ह्वै बिरहानल सो तचि घूमि गिरी गुनगौरि गली पर।"

रेखाकित पाठ केवल सा० प्रति मे है। ज० नी० हि० प्रतियो मे इसी पाठ मे भ्रम होने के कारण **'तव'**, का० प्रति मे **'बरि'** पर्याय तथा भा० प्रति मे **'तजि'** पाठ मिलता है। 'भवानी विलास' मे इस छद मे 'जरि' पर्याय मिलता हे। प्रसग पर विचार करते हुए भा० प्रति का 'तजि' पाठ असगत तथा नी० हि० ज० प्रतियों का 'तव' पाठ भी अग्राह्य मालूम देता है एव ये दोनो ही पाठ मूल मे 'तचि' पाठ होने की सभावना पुष्ट करते है अत. प्रस्तुत स्थल पर केवल सा० प्रति मे प्राप्त 'तचि' सगत पाठ स्वीकृत हुआ हे।

केवल का० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

५ ७८-७९-८० सख्या के दोहे, जो केवल का० प्रति मे प्राप्त होते है, मूल प्रति के माने गये हैं। कारणो के लिए देखे " 'भाव विलास' के अतिम दोहो की प्रामाणिकता" शीर्षक पृ० ५४। इन दोहो का पाठ इस प्रकार है —

"अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार।
ताते मो पर करि कृपा लेंहै सुमति सुधार॥

या साहित्य समुद्र को बडेन न पायो पार।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार॥
द्यौसरिया कवि देव को नगर इटाए वास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास॥"

विशेष संशोधन :

निम्नलिखित स्थलो पर सभी उपलव्ध प्रतियो का पाठ अग्राह्य होने के कारण सपादक ने अपनी ओर से पाठ सशोधन किया है

४ १८

"ऊक सो ह्वै रहिहै अबै इन्दु विलोकत भूमि पै घूमि गिरौगी।"

सदिग्ध स्थल के पाठान्तर विभिन्न प्रतियो मे इस प्रकार मिलते है—"ऊक सो है वै रही है"—ज० प्रति, "ऊक सो वो रहि है"—सा० प्रति, "इक सो विरहै रहिहै"—का० प्रति, "ऊक सो वै रहिहै"—नी० हि० प्रतियाँ, "ऊँक सो वो रहि है"—भा० प्रति। 'सुख सागर तरग' मे ८२६ पर नी० हि० प्रतियो के समान आदर्श से पाठ-मिश्रण होने के कारण "ऊक सो वो रहि है" पाठ मिलता है। कहना न होगा कि यह पाठ 'ह्वै' का विकृत रूप है तथा अर्थ के विचार से असगत है। अन्य प्रतियो के विभिन्न पाठान्तर भी इसी 'ह्वै' से सभव हैं तथा नायक से अलग रहकर उल्का के समान प्रज्वलित हो उठने के प्रसग मे यह पाठ सगत है अत सपादक ने 'ह्वै' पाठ सशोधन अपनी ओर से किया है।

४ ३१ मध्या सुरतान्त।

"मन भावन के ढिग तें उठि भामिनि भोरही भूपन हाथ लिये।
रँगभौन के भीतर भाजि परी भय भार भरी अति लाज हिये।
सजनीजन तें दुरि कै कवि देव निहारति हार विहार किये।
तिय वारहिबार सँवारहि के निरवारति वार केवार दिये॥"

आलोच्य स्थल पर विभिन्न प्रतियो के पाठान्तर इस प्रकार हे—निरवारहि के—नी० हि० प्रतियाँ, सँवारहि की—का० सा० प्रतियाँ, सँवारति हो—भा० प्रति, सँवारहि केश—ज० प्रति। 'सुजान विनोद' मे ३ ३८ पर इसी छद मे "सँवारहि के" पाठ मूल मे एव "सँवारहि वार" पाठान्तर का० प्रति मे है। 'रस विलास' मे ८ १४ पर केवल ग० प्रति मे प्राप्त "सँवारहि के" पाठ मूल का माना गया है, यहाँ सा० प्रति मे "सँवारति हो" एव का० प्रति मे "सँवारहि की" पाठान्तर मिलते है।

कवि का आशय स्पष्ट है, नायिका सुरति मे उलझे हुए अपने हार आदि आभूपणो को सँवारने अर्थात् सजा कर पहनने के हेतु उन्हे अलग-अलग करके सुलझा रही है। सखियाँ उसे देख न ले इसलिए उसने दरवाजे के किवाड दे दिये है। अत "निरवारति वार" पाठ विलकुल सगत है। तुलना—"कबहूँ कान्ह आपने कर सो केसपास निरवारत—" सूर।

ऊपर 'भाव विलास' की विभिन्न प्रतियो मे पाठान्तर होने का कारण 'के' शब्द से उत्पन्न भ्राति है। वास्तव मे कवि ने 'के लिए' के सक्षिप्त रूप मे 'के' का प्रयोग किया है।

ऐसे प्रयोग उसकी रचनाओ मे अन्यत्र भी मिलते है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है —

"कुजनि केलि के वेली नबेली वुलावति वालम लाल हसतहि।"

—'सुजान विनोद'—६.५

"मूँदि मूँदि लोचन चितौति नीद मोचन के मोचत सकोच सोच सकल वढत है।"

—'रस विलास'—७ ४६

ज० प्रति के प्रतिलिपिकार ने यह समझ कर कि उसके आदर्श मे 'केश' का 'श' वर्ण प्रमादवश छूट गया है, 'केश' पाठ अपनी ओर से वना दिया है। नी० हि० प्रतियो के "निरवारहि के निरवारति वार किवार दिये" पाठ मे "निरवारहि" की आवृत्ति असगत है। द्वितीय "निरवारहि" की प्रतिध्वनि प्रतिलिपिकार के मस्तिष्क मे होने के कारण भी यह विकृति सभव है। का० अथवा सा० प्रति मे सामान्य लेखन प्रमाद से 'के' का 'की' पाठ हो गया है। स्मरण रहे कि 'रस विलास' की का० प्रति मे भी इन दोनो ग्रथो की प्रतियो मे परस्पर पाठ-मिश्रण होने के कारण 'की' पाठ मिलता है। यह पाठ असंगत है।

आठ सगण वाले दुर्मिल सवैया के लक्षण तथा छद के प्रसग को ध्यान मे रखते हुए अन्य ग्रथो मे प्राप्त पाठ की सहायता से "संवारहि के" पाठ सशोधन सपादक ने अपनी ओर से किया है।

'भाव विलास' के अंतिम दोहों की प्रामाणिकता

'भाव विलास' की कुछ प्रतियो मे मिलने वाले "सवत् सत्रह सै" आदि दोहो के आधार पर अब तक देव का जन्म-सवत्, 'भाव विलास' का रचनाकाल तथा आजमशाह के साथ कवि का सम्बन्ध निश्चित होता आया है। इस ग्रथ की कुछ प्राचीन प्रतियो मे इन दोहो के स्थान पर अन्य दोहे मिलने के कारण हम इस प्रश्न पर यहाँ पृथक् रूप से विचार कर रहे है।

'भाव विलास' के अतिम दोहो का पाठ प्रतियो के उल्लेख सहित नीचे दिया जा रहा है :—

अलकार ये मुख्य है इनके भेद अनंत।
आन ग्रथ के पथ लखि जानि लेहु मतिमत ।।७७।।

यहाँ तक हि० भा० सा० का० प्रतियो मे पाठ समान है। इसके पश्चात् हि० भा० सा० प्रतियों मे निम्नलिखित दोहे मिलते है —

सुभ सत्रह सै छियालिस चढत सोरही वर्ष।
कढी हर्ष मुख देवता भाव विलास सहर्ष ।।
दिल्लीपति अवरग के आजमशाहि सपूत।
सुन्यो सराह्यो ग्रथ यह अष्टयाम सयूत ।।

परन्तु सवत् १८५७ की का० प्रति तथा प्राय इतनी ही प्राचीन इडिया आफिस लाइब्रेरी की इ० प्रति मे उपर्युक्त दोनो दोहे नही मिलते। इन प्रतियो मे इन दोहो के स्थान पर निम्नलिखित तीन दोहे है :—

अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार।
ताते मो पर करि कृपा लैहे सुमति सुधार ॥७८॥
या साहित्य समुद्र को वडेन न पायो पार।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार ॥७९॥
द्यौसरिया कवि देव को नगर इटाए वास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास ॥८०॥

अर्थात् इन प्रतियो मे जन्म-सवत् तथा आजमशाह वाले दोहे नही हैं। सपादन-कार्य मे व्यवहृत उपर्युक्त प्रतियो के अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट से प्राप्त 'भाव विलास' की अन्यान्य प्रतियों के विवरण के आधार पर अन्तिम दोहो की स्थिति इस प्रकार है :—

१ खो० रि० १९०६-११, पृ० ११०—महाराज वलरामपुर की सवत् १९०५ की प्रति। ग्रन्थ का नाम 'भाव प्रकास' है तथा यह प्रति भी नी० प्रति के समान श्लेप लक्षण दोहे पर खण्डित है अत आलोच्य दोहे इस प्रति मे नही हैं।

२ खो० रि० १९२३-२५, पृ० ४४६—मुन्नू मिश्र, नीलगाव, जिला सीतापुर की प्रति। यह प्रति भी उपरोक्त प्रति के समान श्लेप लक्षण पर खण्डित है तथा इसमे भी ग्रथ-नाम 'भाव प्रकास' है। नी० प्रति तथा इस प्रति के प्रतिलिपिकार भी एक ही व्यक्ति, गौरी शकर दुबे हैं। अन्त मे खण्डित होने के कारण अन्तिम दोहे इस प्रति मे भी नही हैं।

३ खो० रि० १९२३-२५, पृ० ४४६—महराजदीन चौवे, कसराया, जिला रायवरेली, की प्रति। इस प्रति मे यद्यपि ग्रन्थ-नाम 'भाव विलास' है परन्तु यह प्रति भी श्लेप लक्षण पर खडित है अत अन्तिम दोहे इस प्रति मे भी नही है।

४ खो० रि० १९२३-२५, पृ० ४४४—श्री मिश्रवन्धुओ की गोलागज की प्रति। ग्रन्थ का नाम 'भाव विलास' है तथा यह प्रति पूर्ण भी है अत केवल इस प्रति मे भा० सा० हि० प्रतियो मे प्राप्त 'सुभ सत्रह सै' तथा 'दिल्लीपति अवरग के' दोहे मिलते है।

इन प्रतियो की केवल बहिरग परीक्षा से प्रगट है कि उपरोक्त प्रतियो मे प्रथम तीन प्रतियाँ तथा नी० प्रति एक ही शाखा की प्रतियाँ हैं। प्रक्षिप्त छदो वाली ग० प्रति पूर्ण है, एव ग० तथा मिश्रवन्धुओ की प्रति मे अन्तिम दोहे भी मिलते है। स्मरण रहे कि मिश्रबन्धुओ की अधिकाश हस्तलिखित सामग्री उनके परिवार के गन्धौली स्थित व्रजराज पुस्तकालय के ग्रथो से तैयार प्रतिलिपियाँ है। अत मिश्रवन्धुओ की प्रति की पूर्णता तथा उस प्रति मे प्राप्य अन्तिम दोहे, किसी स्वतन्त्र शाखा की प्रति मे प्राप्त न होने के कारण, महत्त्वपूर्ण नही है। गन्धौली की ग० प्रति की पूर्णता भी सदिग्ध है क्योकि इस प्रति मे श्लेप लक्षण दोहे, जहा से इस समूह की अन्य सभी प्रतियाँ खण्डित है, से आगे का पाठ भिन्न हस्तलेख मे मिलता है। ग० प्रति का विवरण देते हुए हमने यह स्पष्ट किया है कि ग० प्रति मे इस स्थल से आगे का पाठ किसी अन्य प्रति से लेकर पूर्ण किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि ग० प्रति मे प्राप्य ग्रन्थ के अन्तिम दोहे इस दूसरी प्रति के पाठ के साथ आए है। ग० से हि० प्रति की प्रतिलिपि होने के कारण हि० प्रति मे भी यही दोहे मिलते है। नी० हि० प्रतियो मे वडी सख्या मे प्राप्त समान पाठ-विकृतियो तथा

प्रक्षेपो से यह प्रगट होता है कि नी० तथा ग० हि० प्रतियाँ एक ही आदर्श से प्रतिलिपि हुई है। इस स्थिति मे जब नी० प्रति श्लेप लक्षण पर खडित है, ग० प्रति मे ग्रथ के अन्त तक का पूर्ण पाठ मिलना, ग० प्रति मे पाठ-मिश्रण के बिना सम्भव नही हो सकता। हमने यहाँ ग० प्रति की पूर्णता की परीक्षा इसलिए विस्तार से की है क्योकि नी० ग० हि० प्रतियाँ भा० सा० प्रतियो की शाखा से स्वतन्त्र शाखा की प्रतियाँ है,और यदि एक स्वतन्त्र शाखा की हि० प्रति मे तथा दूसरी स्वतन्त्र शाखा की भा० सा० प्रतियो मे भी आलोच्य दोहे मिलते है तो पाठ सपादन के मान्य सिद्धान्तो के अनुसार ये दोहे मूल प्रति के होने चाहिये। ग० हि० प्रतियो के उपरोक्त विवेचन से यह प्रगट है कि वस्तुस्थिति इससे भिन्न है अन्य प्रति से पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप हि० प्रति मे ग्रथ का पूर्ण पाठ मिलता है। अब यह देखना है कि ग० प्रति मे श्लेप लक्षण से आगे का पाठ किस शाखा की प्रति से पूर्ण किया गया है।

'भाव विलास' का "मालती सो" ५२०वा छद नी० हि० का० प्रतियो मे नही है, इन प्रतियो मे इस छन्द के स्थान पर "जानि है सुजानि" छन्द मिलता है—नी० हि० प्रतियो मे "जानि है" छन्द के केवल तीन ही चरण है। केवल ग० प्रति मे "मालती सो" छन्द "जानि है सुजानि" छन्द के पूर्व प्रति के पार्श्व पर उसी दूसरे हस्तलेख मे लिखा मिलता है, जिस हस्तलेख मे श्लेप लक्षण से आगे का पाठ पूर्ण किया गया है। ग० प्रति की हि० प्रतिलिपि मे ये दोनो ही छन्द मिलते है। हमारे विचार से इस स्थल पर समासोक्ति अलकार के दो उदाहरण अपेक्षित नही है अत इन दोनो उदाहरणो को मूल प्रति का नही माना जा सकता। इस प्रति मे यह छन्द निस्सन्देह भा० सा० समूह की किसी प्रति से प्रक्षिप्त हुआ है—ग० प्रति सवत् १९३५ की है, भा० प्रति सवत् १९५० मे प्रकाशित हुई है अत यह भी सम्भव है कि भा० प्रति के प्रकाशित होने पर उसी के पाठ से ग० प्रति का पाठ पूरा किया गया हो और "मालती सो" छन्द ग० प्रति के पार्श्व पर लिखा गया हो।

जो भी हो, ग० हि० प्रतियो मे भा० सा० प्रतियो से पाठ-मिश्रण के इस स्पष्ट प्रमाण की उपस्थिति मे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग० प्रति का अपूर्ण पाठ भा० सा० शाखा की किसी प्रति की सहायता से पूर्ण किया गया है। इस पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप ही "सुभ सत्रह सै", "दिल्लीपति अवरग के" दोहे ग० तथा हि० प्रतियो मे मिलते है। इस प्रकार ग० हि० प्रतियो के साक्ष्य का महत्त्व समाप्त हो जाता है। भा० सा० प्रतियाँ विकृति-सम्बन्ध द्वारा सम्बन्धित प्रतियाँ है। अत केवल इन दो प्रतियो मे प्राप्त दोहा प्रतिलिपि की पूर्व परपरा मे किसी प्रक्षेपकार द्वारा प्रक्षिप्त भी हो सकता है।

इन दोहो मे निहित तथ्यो पर पृथक्-पृथक् रूप से विचार करना अप्रासगिक न होगा।

भा० सा० हि० प्रतियो मे प्राप्त "सवत् सत्रह सै" दोहा सोलह वर्ष की अवस्था मे कवि द्वारा 'भाव विलास' के प्रणयन की स्पष्ट घोपणा करता है। परन्तु इस ग्रथ की प्रौढता तथा विपय-निरूपण की स्पष्टता देव कृत अन्यान्य ग्रथो मे भी दुर्लभ है। अत इतनी कम आयु मे कवि द्वारा इसकी रचना होना कठिन जान पडता है। इस अवस्था मे किसी व्यक्ति को सासारिक ज्ञान भले ही हो जाए परन्तु इन अल्पायु मे उसे कवितावद्ध कर किसी लक्षण-ग्रथ मे सुसयोजित रूप से अल-कृत कर सकना प्राय असम्भव है। श्री मिश्रबन्धुओ ने इस प्रश्न पर अपनी ओर से यह कल्पना

की है कि कवि ने प्रौढता प्राप्त करने पर इस ग्रथ के निकम्मे छन्द निकाल दिये होगे। ('हिन्दी नवरत्न'—पृ० २७६) नी० हि० प्रतियो मे प्रक्षिप्त छन्दो का विश्लेपण करते हुए हमने इस सम्भावना की विस्तार से परीक्षा की है एव यह सम्भावना निराधार सिद्ध हुई है। इस प्रकार "चढत सोरही वर्ष" मे 'भाव विलास' की रचना होने का उल्लेख स्वय कवि द्वारा ग्रथ-रचना के वर्षो पश्चात् किया आत्मोल्लेख न होकर कवि को महिमामडित करने के लिए उसके किसी प्रशसक द्वारा किया गया प्रक्षेप है। बहुत सभव है कि मूल प्रति मे विद्यमान शब्दावली "जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास" के आधार पर प्रक्षेपकार ने "चढत सोरही वर्ष" का निश्चित वर्ष अपनी ओर से दे दिया हो।

अपने ग्रथो मे ग्रथ का रचनाकाल देने की देव कवि की प्रवृत्ति भी नही रही है। केवल एक 'रस विलास' के अन्त मे इस ग्रथ का रचनाकाल दिया है—यह भी उस सस्करण की प्रतियो मे मिलता है जो सस्करण सुल्तानपुर के राजा भोगीलाल को समर्पित है।

इस सदर्भ मे 'सुजान विनोद' तथा 'कुशल विलास' ग्रथो के निम्नलिखित दोहे देखें :—

"परम सुजान सुजान की कृपा देव कवि हर्पि।
कियो सुजान विनोद को रचन वचन वसु वर्पि ॥"

—'सुजान विनोद'—१ : १५

"देव विभव रस भाव रस भव रस नव रस सार।
सुख रस वसु वर वरस सुभ वरस रच्यो सिगार ॥"

—'कुशल विलास'—१ : ११

इन दोनो दोहो मे सख्यावाचक शब्दो की बहुलता से सहसा यही भ्रम होता है कि कवि ने इनमे ग्रथ का रचनाकाल दिया होगा परन्तु इनमे दिये हुए सख्यावाचक साकेतिक शब्द केवल ग्रथ के प्रतिपाद्य विषय तथा अध्यायो (वर्ष अर्थात् खड) की संख्या के द्योतक हैं। यहाँ इन दोहो की चर्चा चलाने से भी हमारा अभिप्राय यह स्पप्ट करना है कि यदि इन ग्रथो मे अथवा 'भाव विलास' मे ग्रथ का रचनाकाल देने मे कवि की किंचित भी रुचि होती तो वह इन दोहो मे सुविधा से तिथि दे सकता था।

अब आजमशाह से सम्बन्धित दूसरे दोहे को ले। इसके अनुसार देव ने आज़मशाह के सम्मुख कभी 'भाव विलास' तथा 'अष्टयाम' ग्रथो का पाठ किया था तो उसने इन ग्रथो की सराहना की थी। कवि ने इस तथ्य को प्रशसापत्र के रूप मे 'भाव विलास' के अन्त मे नत्थी करना आवश्यक समझा। परन्तु इस पर भी गम्भीरता से विचार करना चाहिये। देव जब 'भाव विलास' लेकर आजमशाह के पास गए तो ग्रथ किसी को समर्पित नही था (और यह ग्रथ बाद मे भी किसी आश्रयदाता को समर्पित नही हुआ !), आज़मशाह काव्य-रसिक होने के अतिरिक्त गुणग्राही भी था और देव को इन दोनो विशेषताओ से युक्त आश्रयदाता की सर्वदा आवश्यकता रहती थी। ऐसी स्थिति मे 'भाव विलास' ग्रथ आजमशाह को समर्पित करना देव के लिए सबसे अधिक स्वाभाविक था। देव सुविधा से ऐसा कर सकते थे। 'सुजान विनोद' का प्रथम प्रारूप पहले किसी आश्रयदाता के नाम समर्पित नही था परन्तु बाद मे किंचित आकार परिवर्धन के साथ देव ने इसे दिल्ली के कायस्थकुलीन रईस सुजानमणि को समर्पित किया। 'रस विलास'

की भी ऐसी ही स्थिति है। यह ग्रथ भी पहले किसी को समर्पित न था परन्तु वाद मे भोगीलाल से भेट होने पर देव ने उन्हे 'रस विलास' समर्पित किया। देव ने एक ही ग्रथ के छन्दो मे उलट-फेर करके उसे दो आश्रयदाताओं के नाम समर्पित किया है। 'सुख सागर तरग' पिहानी के राजा अली अकवर खान तथा महाराज जसवत सिंह को भी इसी प्रकार समर्पित है। इसकी तुलना मे आजमशाह को 'भाव विलास' समर्पित करने मे देव को कोई कठिनाई नही हो सकती थी। देव उनके पास 'भाव विलास' लेकर गए तो केवल उन्हे ग्रथ सुनाने के लिए, इस पर कठिनता से विश्वास किया जा सकता है।

अब का० प्रति तथा इडिया आफिस लाइब्रेरी की प्रति मे प्राप्त "अपनी वुद्धि समान", "या साहित्य समुद्र" तथा "द्यौसरिया कवि देव" दोहो को ले।

का० प्रति के "अपनी वुद्धि समान" दोहे तथा सभी प्रतियो मे प्राप्त इसके पहले के "अलकार ये मुख्य है" दोहे मे प्रत्यक्ष तारतम्य है—"अलकार के भेद अनन्त हैं, मैंने अपनी वुद्धि-वल के अनुसार उनमे कुछ का वर्णन किया है।" इस कथन का उत्तरार्ध भाग का० प्रति के "या साहित्य" दोहे मे प्रतिध्वनित होता है—"यह साहित्य-सागर अपार है, वडे-वरिष्ठ कवि भी उसका ओर-छोर न पा सके, फिर मुझ जैसे तुच्छ कवि की क्या सामर्थ्य है।"

का० प्रति मे प्राप्त इन दोहो की तुलना मे भोगीलाल को समर्पित 'रस विलास' के सस्करण के अन्तिम दोहे द्रष्टव्य है —

"यहि विधि दरसन श्रवन करि सुमिरैं विधि हरि रुद्र।
पार लहत को वरनि के या साहित्य समुद्र ॥८ ९०॥
अपनी वुद्धि समान मैं वरनि कह्यो रस सार।
रस विलास रस रूप नृप भोगीलाल उदार ॥८ ९१॥"

इन दोहो की "या साहित्य समुद्र" तथा "अपनी वुद्धि समान मैं वरनि कह्यो—" आदि शब्दावली के साथ का० प्रति के दोहों की तुलना करने पर का० प्रति के दोहे कविकृत प्रमाणित होते हैं।

इस समस्त विवेचन के आधार पर हमने केवल भा० सा० हि० प्रतियो मे प्राप्त दोहो को प्रक्षिप्त तथा का० प्रति मे प्राप्त दोहो को प्रामाणिक माना है।

भाव विलास

[मूल पाठ एव पाठान्तर]

श्री वृन्दावनचन्द[1] चरण जुग चरचि[2] चित्त धरि।
दलि मल कलिमल सकल कलुप दुप दोप मोप करि॥
गौरीसुत गौरीस गौरि गुरुजन गुन गाये।
भुवन[3] मातु भारती सुमिरि भरतादिक ध्याये॥
कवि देवदत्त शृगार रस सकल भाव सयुत सँच्यो[4]।
सव नायिकादि नायक सहित अलकार वर्णन रच्यो॥१॥

[1] वृन्दावन वन्दि—नी०। [2] चरण—नी० हि० इ०। [3] भवन—सा०। [4] रच्यो—हि०।

अरथ धर्म ते होइ अरु काम[1] अरथ ते जान।
ताते सुख सुख को सदा रस शृगार[2] निदान॥२॥

[1] धर्म—नी० हि० इ०। [2] ताते है सो सुख के सदा है शृगार निदान—नी० हि०।

ताके कारण भाव है तिनको करत विचार।
जिनहि जानि जान्यो परै सुखदायक सिगार॥३॥
थिति विभाव अनुभाव अरु कहौ[1] सात्विक भाव।
सचारी अरु हाव ये पट विधि बरनौ हाव[2]॥४॥

[1] कहिहौं—नी० हि०। [2] भाव—ज०।

जो जा रस की उपज मैं पहिलो अकुर होइ।
सो ताको थिति भाव है कहत सुकवि सव कोइ॥५॥
नव रस को थिति भाव नव[1] तिनको वहु विस्तार।
तिन मे रति थिति भाव ते उपजत रस सिगार॥६॥

[1] है—भा०, तव—नी० हि० सा०।

नेकु जु प्रियजन देखि सुनि[1] आन भाव[2] चित होइ।
अति कोविद पति क[illegible] के सुमति कहत रति सोइ[3]॥७॥

[1] देखि कै—नी० [illegible] हि०। [2] भाँति—का० इ०। [3] सो ताको थिति भाव है कहत सुकवि सव कोई—न[illegible]० हि०।

प्रिय दर्शन उदाहरण।

सग ना सहेली केलि करत अकेली एक कोमल नवेली वर वेली जैसी[1] हेम की।
लालच भरे से लखि लाल चलि आए सोचि[3] लोचन लचाय[4] रही रासि कुल नेम की।
देव मुरझाइ उरमाल उरझाइ[5] कह्यो दीजो सु[illegible]झाइ वात पूछी[6] छल छेम की।

भायक[७] सुभाय भोरे स्याम के समीप आय गाँठिहि छुडाइ[८] गाँठि पारि गई प्रेम की ।।८।।

[१] मानो—नी० हि० सा० । [२] तहाँ—नी० हि० । [३] लोल—नी० । [४] ललचाय—का० । [५] उरमाल उरझाय सुरझाय— नी० हि० । [६] बूझी—हि० । [७] भायन—सा० । [८] गाँठि छुटकाइ—भा० ।

प्रिय श्रवण उदाहरण ।

गौने के चार[१] चली दुलही गुरु लोगन[२] भूपन भेप बनाये।
सील सयान[३] सिखाय सखीन[४] सबै सुख सासुरेहू के सुनाये।
बोलिये बोल सदा हँसि[५] कोमल जे मनभावन के मन भाये।
यो सुनि ओछे उरोजनि पै अनुराग के अकुर से उठि आये ।।९।।

[१] चाइ—का० इ०, चाल—नी० हि० । [२] गुरु नारिन—नी० हि० ।[३] सुभाय—सा० । [४] सबै सिखयेरु—नी० हि०, सखीन सिखायो—भा० । [५] अति—नी० हि० ।

विभाव लक्षण ।

जे विशेप करि रसनि को उपजावत है भाव।
भरतादिक सतकवि सबै तिनको[१] कहत विभाव ।।१०।।

[१] तिनसो—नी० हि० सा० ।

ते[१] विभाव द्वै भाँति के कोविद कहत बखानि ।
आलबन कहि[२] देव अरु उद्दीपन उर आनि ।।११।।

[१] है—नी० हि० । [२] कवि—का० इ० ।

रस उपजै आलबि जेहि सो आलबन होइ।
रसहि जगावै दीप ज्यो उद्दीपन कहि सोइ[१] ।।१२।।

[१] सो उद्दीपन होइ—नी० हि० ।

उदाहरण ।

चित दै चितऊँ जित[१] ओर[२] सखी तित नन्दकिसोर की ओर ठई।
दसहूँ दिसि दूसरो देखति[३] ना छवि मोहन की छिति माँह छई।
कवि देव कहाँ लौ कछू कहिये प्रतिमूरति हौ[४] उनही की भई।
ब्रजवासिन कौ ब्रज जानि परै न भयो ब्रज री ब्रजराज मई ।।१३।।

[१] चितवै जिहि—नी० हि० । [२] ओरी—इ० । [३] दीसति—नी० हि०सा० । [४] है—इ० ।

उद्दीपन भेद ।

गीत नृत्य[१] उपवन गवन आभूपन जल केलि[२] ।
उद्दीपन शृगार के विधु वसन्त वन वेलि[३] ।।१४।।

[१] नृत्य गान—नी० हि०, गीत नाच—का० इ० । [२] वन केलि—नी० हि० का० भा० ज० सा० । [३] वन केलि—ज० ।

गीत उदाहरण ।

आली अलापी वसत मनोरम मूरतिवन्त मनोज दिखावनि।
पचम नाद निपादहि मै[१] सुर मूरछना गन ग्राम[२] सुनावनि।

देव कहै मधुरी धुनि सो वर बीन ललै कर बीन बजावनि।
बावरी सी हौ भई सुनि आजु गई गडि जी मैं गुपाल की गावनि ॥१५॥

[१] सो—नी० हि०। [२] गुन ग्राम—नी०, गुन तान—हि०, स्रुति गान—का० इ०, स्रुति तान—सा०।

नृत्य उदाहरण।

पीरी पिछौरी के छोर छुटै छहरै छवि मोर पखान की जामैं।
गोधन की गति वेनु बजै कवि देव सबै[१] सुनि कै धुनि आमैं[२]।
लाज तजी गृहकाज तजे मन मोहि रही[३] सिगरी ब्रजवामैं।
कालिंदी कूल कदंब के कुंज करै तमतोम तमासो[४] सो तामैं ॥१६॥

[१] तजै—इ०। [२] धामैं—नी० हि० का०। [३] लई—सा०। [४] करत मनोज तमासो—नी० हि०, करै तुम मूरतिमत—का० इ०।

उपवन उदाहरण।

बाग चली वृषभान लली सुनि कुंजनि मे पिकपुंज पुकारनि।
तैसिय नूतन नूत लतान[१] मे गुंजत भौंर भरे मधु[२] भारनि।
मोहि लई कवि देव उतै[३] अति रूप रचे विकचे कचनारनि।
हेरत ही[४] हरिनी नयनी[५] को हरयो[६] हियरा हरि के हिय हारनि ॥१७॥

[१] नूतन तान—नी० हि०। [२] रस—नी० हि०। [३] कवि देव नते—भा०। [४] हौं—नी० हि०। [५] नयना—इ०। [६] निहरयो—सा०, कह्यो—हि०।

भूषण उदाहरण।

खोरि[१] मैं खेलन ल्याई[२] सखी सब बाल को भेष बनाइ नवीनो।
आरसी मैं निज रूप निहारि अनंग तरंगनि मैं मनु[३] भीनो।
जोति जवाहर हारन[४] की मिलि अंचल को झलक्यो[५] पट झीनो।
हेरि इतै[६] हरिनी नयनी[७] हरि हेरत हेरि हरै[८] हँसि दीन्हो ॥१८॥

[१] पौरि—नी० हि०। [२] आई—हि०। [३] मैं रस—नी० हि०। [४] हीरन—का० इ०। [५] छलक्यो—भा०। [६] उतै—नी० हि०। [७] नयना—भा० सा०। [८] हारे हरे—नी० हि०।

जल केलि उदाहरण।

सोहै सरोवर बीच वधू वर ब्याह को भेष बन्यो वर लीक सो।
लाज गडे[१] गुरु लोगन की पट गाँठ दै ठाढे करै इक ठीक सो।
न्हात पवारी सो[२] प्यारी के ओठ ते[३] छूट्यो मजीठ[४] निहारि नजीक[५] सो।
तीकी रँगी अँखियाँ अनुराग सो पी की वहै[६] पिकवैनी की पीक सो ॥१९॥

[१] गई—का०। [२] एमार से—का० इ०, पमारी सो—भा०। [३] रूठ ते—का० इ०। [४] तमोर—नी० हि०। [५] ननीक—नी० हि०। [६] मनो—का० इ०।

विधु उदाहरण।

दिन द्वैक तें सासुरे आई वधू मन मैं मनु लाज को बीज बयो।

कवि देव[1] सखी के सिखाये मरू कै नह्यो हिय नाह को[2] नेह नयो।
चित चाउ ते[3] चैत की चद्रिका[4] ओर चितै पति को चित चोरि लयो।
दुलही के बिलोचन बानन[5] कौ ससि आजु को सान[6] समान भयो ॥२०॥

[1] कबहूँ—का० इ०। [2] भयो हित ताहू सो—नी० हि, रह्यो हिय नाह को—ज०। [3] चितवावत—भा०, चित पावत—नी० हि०। [4] चाँदनी—का० सा०। [5] बानक —नी० हि०। [6] सोन—नी० हि०।

वसन्त उदाहरण।

हेरत ही हरि लीनो हियो इन आल रसाल सिरीष[1] जम्हीरनि।
चपक वेली गुलाव जुही पिचुमद मधूक कदव कुटीरनि।
खोलत[2] काम कथा[3] पिक वोलत डोलत चदन मद समीरनि।
केसर हारसिगारनहू करना कचनार कनैर करीरनि ॥२१॥

[1] आली रसाल सिरीष—का०, आली सी दाष रसाल—नी० हि०, आली सी दाष सेरीष—सा०। [2] खोजत—नी०। [3] कला—नी हि० सा०। [4] चन्द्रन—हि०। [5] मोरसिरी करना किरवार कुदी—इ०।

वन वेलि उदाहरण।

सुनि कै धुनि चातक मोरनि की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सो।
अनुराग भरे हरि वागन मैं सखि[1] रागत राग अचूकनि सो।
कवि देव घटा[2] उनई जु नई वन भूमि भई दल दूकनि[3] सो।
रँगराती रही हहराती[4] लता झुकि जाती समीर की झूकनि सों ॥२२॥

[1] बन वागन मैं हरि—नी० हि०, हरि भागिन मैं सखि—इ०। [2] छटा—इ०। [3] टूकनि—का०, दूकन—नी० हि०। [4] हरा हरगाती—इ०।

जिन जिन[1] के सयोग ते रस जिय उपजत[2] होइ।
औरो विविध विभाव बहु ते बरनत कवि लोइ[3] ॥२३॥

[1] निज निज—भा०। [2] उपजत जिय—नी० हि०। [3] बरनै कवि सब कोइ—भा०, बहु बरनहु कवि लोइ—नी० हि०।

अनुभाव लक्षण।

जिनको निरपत[1] परसपर रस को अनुभव होइ ॥
तिनही को[2] अनुभाव पद[3] कहत सयाने लोइ ॥२४॥

[1] परसत जिनको—सा०, परप्रति जिनको—का०, जिनको परपति—इ०। [2] तिनही सो—नी० हि०, इनही को—भा०। [3] पट—का०, पटु—इ०।

आपुहि ते उपजाय रस पहिले होंहि विभाव।
रसहि जनावै[1] जो वहुरि तो तेऊ[2] अनुभाव ॥२५॥

[1] जगावै—भा०। [2] सो लहिये—सा०।

आनन नयन[1] प्रसन्नता चल चितौनि मुसक्यानि।
ये अभिनय[2] सिंगार के अग भग जुत[3] जानि ॥२६॥

[१] वचन—नी० हि० । [२] अभिनव—ज०, अभिन्न—नी० हि० । [३] जिय—का० इ० ।

आनन प्रसन्नता उदाहरण ।

ठाढो[१] चितौत चकोर भयो अनतै न इतौत[२] कहूँ चित दीजतु ।
सामुहे नन्द किसोर सखी कबके .मुसक्यान[३] सुधारस भीजतु ।
भाग ते आइ उवो कवि देव[४] सु देखि भटू भरि लोचन लीजतु ।
तेरेई[५] चन्दमुखी मुखचन्द पै पूरन चन्द[६] निछावर कीजतु ।।२७।।

[१] ठाढे—नी० हि० । [२] इनतै—नी० हि० । [३] कब के मुसक्याइ—नी० हि० । [४] उतावलि देव—नी० हि० का० । [५] तेरे री—भा० इ० । [६] पून्यो को चन्द—इ० ।

नयन प्रसन्नता उदाहरण ।

आई ही गाय दुहाइवे[१] को सु चुपाई[२] चली न बछाहू को[३] घेरति ।
नैकु डराय नही कवकी वह[४] माइ रिसाइ अटा चढि टेरति ।
यो कवि देव बडे खन की[५] बडरे दृग बीच बडे[६] दृग फेरति ।
हौ मुख देखति हौ तवकी जवकी[७] यह मोहन को मुख हेरति ।।२८।।

[१] दुहावन—नी० हि० । [२] समुहाय—नी० हि०, सु चुपाय—का० । [३] न बछान को—भा०, नहि लैयुवै—का० इ० । [४] यह—नी० हि० । [५] घर की—नी० हि० । [६] बउरे—नी०, बडडे—का० । [७] हौ तवकी तबकी—नी० हि० ।

चल चितवन उदाहरण ।

हरि को इत हेरति हेरि[१] उतै उर आलिन के उर सो परसै[२]।
तन तोरि के जोरि मरोरि भुजा मुख मोरि के वैन[३] कहै सरसै ।
मिस सो मुसक्याइ वितै समुहै कवि देव दरादर[४] सो दरसै ।
दृगकोर कटाछ लगे सरसान[५] मनो सर सान घरे[६] वरसै ।।२९।।

[१] हरी इत हेरत हेरि—नी० हि० सा० । [२] हरि को इतै हेरत हेरत हेरि उतै उर आलिन को परसै—भा० । [३] बात—सा० । [४] दसादर—नी० हि० । [५] सर सेन—नी० हि० । [६] खर सान धरे—नी० हि० ।

मुसक्यान उदाहरण ।

जबते जदुराइ दई दुहि गाइ गए[१] मुसक्याइ पठै[२] घर कै ।
तबते तन व्याकुल वालवधू लखि लोग लुगाई सवै घर कै ।
कवि देव न पावत वेदन वैद रहे कुलदेवन के डर[३] कै ।
नहि जानत कान्ह तिहारे कटाछ की कोरै करेजन मै[४] करकै ।।३०।।

[१] दये—नी० हि०, गई—का० । [२] पछे—भा० । [३] के उर—ज० । [४] कोर कभेजिन मै—ज० ।

अंग भंग उदाहरण ।

चपक पात से गात मरोरि[१] करोरिक भाइ सुभाइ सचैयत ।
मो मिस भेटि भटू भरि अक मयक से आनन ओठ[२] अचैयत ।
देव कहै विनु वात चले नवनील सरोज से नैन नचैयत ।

जानति हौ भुजमूल उचाइ दुकूल लचाइ लला ललचैयत[3] ॥३१॥

[1] दिखात—का०। [2] रूँठ—का० इ०, ओट—ज०। [3] तारस सिधु गई बुधि बूडि न वोहित धीरज कैसे बचैयत—नी० हि०।

औरो विविध विभाव के[1] वहु अनुभावनि जानु।
जिनते रस जान्यो परै ते कवि देव बखानु ॥३२॥

[1] विविध सिगार के—का० इ०, रस शृगार के—सा०।

आवत जात गली मै लली हरि हेरि हरे हियराहि हरैंगी[1]।
बैरी बमै घर घाल घरी मै घरै घर घेरि घरी उघरैंगी[2]।
हौ कवि देव डरौ मन मै मनमोहनी तू[3] मन मैं न डरैगी।
हाहा बलाइ ल्यो पीठ दै बैठु री काहू अनीठ की दीठ परैंगी ॥३३॥

[1] हियराह हरैंगी—नी० हि० का० भा०। [2] उचरगी—नी०। [3] पै—सा०।

इति प्रथम विलास।

सात्विक अनुभाव।

स्थिति विभाव[1] अनुभाव ते न्यारे अति अभिराम।
सकल रसनि मै सचरै सचारी कहु[2] नाम ॥१॥

[1] स्थिति भावहु—नी० हि०। [2] कउ—भा०।

ते सारीरि अरु आतरिक द्विविधि कहत भरतादि[1]।
स्तभादिक सारीर अरु आतर निरवेदादि ॥२॥

[1] ते सारीर अतर द्विविधि कहत सवै भरतादि—सा०, ते सारीरउ अतरत विविध कहत भरतादि—का०, ते सारीर अतर कहत द्वै विधि सब भरतादि—नी० हि०।

आठ भेद स्तभादि के तिनको सात्विक नाम।
तेई पहिले[1] बरनिये सरस रीति अभिराम ॥३॥

[1] तेई प्रथम अब—नी० हि०।

स्तभ स्वेद रोमाच अरु वेपथु अरु स्वर भग।
विवरनता[1] आँसू प्रलय ये सात्विक रस अग ॥४॥

[1] विवरन ते—हि०।

स्तंभ लक्षण।

रिस विस्मय भय राग सुख दुख विषाद ते होइ।
गति निरोध जो[1] गात मै तभ कहत कवि लोइ[2] ॥५॥

[1] जा—नी० हि०। [2] सोइ—सा० का०।

उदाहरण।

गोरी सी ग्वालिनि थोरी सी बैस जगी तन जीवन जोति नई है।
आवत ही अबही उतते कवि देव सु नैकु इतै चितई है।
योहि[1] कटाछनु मोहि चितौत चितौतहि मोहन मोहि लई है।
व्याध हनी हरिनी लौ वधू वह वा घर[3] लौ भहरात[4] गई है ॥६॥

[१] वेहि—ज०। [२] चितौनहि मैं हमैं—नी० हि०। [३] वाव—ज०। [४] ते यहिरात—नी० हि०, लौं भिहरात—भा० ज०।

स्वेद लक्षण।

क्रोध हर्ष सताप श्रम घातादिक भय[१] लाज।
इनतें सजल सरीर सो स्वेद कहत कविराज ॥७॥

[१] भ्रम—नी० हि०।

उदाहरण।

हेलन खेलन के मिस सुन्दरि केलि के मन्दिर[१] पेलि पठाई।
वालवधू विधु सो मुख चूमि लला छल सो छतियाँ सो[२] लगाई।
लाज तें लोल[३] कपोलनि मैं झलक्यो जल दीपति दीप की झाँई।
आरसी मे प्रतिविंवित ह्वै[४] मनो देव दिवाकर देत[५] दिखाई ॥८॥

[१] भौन मे—नी० हि०। [२] छतिया मो—हि०। [३] लाल के लोल—भा०, लाज तें गोल—नी० हि०। [४] यो—हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे "ह्वै"—सा०। [५] देव दिवाकर देव—का०।

रोमांच लक्षण।

आलिंगन भय हर्ष अरु सीत[१] कोप तें जानु।
उठत अग में रोम जे[२] ते रोमाच वखानु ॥९॥

[१] आलिंगन अरु हर्ष भय भीति—नी० हि०। [२] अग उठत रोमाच जेहि—नी० हि०।

उदाहरण।

कूल चली जल केलि कैं कामिनि[१] भावते के सँग[२] भाँति भली सी[३]।
भीजे दुकूल मैं देह लसैं कवि देव जू[४] चपक चारु दली सी[५]।
वारि के बुद चुवैं[५] चिलकैं अलकैं[६] छवि की छलकैं[७] उछली सी[३]।
अचल भीन झकै[८] झलकैं पुलकैं कुच कुद[९] कदम्ब[१०] कली सी[३] ॥१०॥

[१] लेवे की सुन्दरि—नी० हि०। [२] सव—नी० हि०। [३] से—नी० हि०। [४] कवि देव सु—सा०। [५] वन्द चुभैं—नी० हि०। [६] अलि के—ज०। [७] झलै—नी०, झलकैं—हि०। [८] अचल भीन मैं यो—नी० हि०, झुकैं—का०। [९] कद—भा० ज०, दोऊ—सा०। [१०]—नी० हि०।

वेपथु लक्षण।

प्रिय[१] आलिंगन हर्ष भय सीत कोप ते जानु।
अग कप प्रस्फुरन विनु वेपथु ताहि वखानु[२] ॥११॥

[१] हिय—नी० हि०। [२] अग स्फुरन विनु भये एसो वेपथु मानु—नी० हि०।

उदाहरण।

देव दुहुन के देखत ही उपज्यो उर मे अनुराग अनूनो।
डोलत है अभिलाष भरे सुलग्यो विरहज्वर अग अभूनो।
तौ लौं अचानक ह्वैं गई भेट इत उत ठौर निहारत[१] सूनो।

प्रीति भरे अरु भीति भरे[२] बन कुज मै कपत दम्पति दूनो ।।१२।।

[१] निहार कै—सा० । [२] प्रेम भरे अरु प्रीति भरे—का०, प्रीति भरे अनुराग भरे—नी० हि० ।

स्वरभंग-लक्षण :

जो रिस भय मद मुद भये[१] निकसै गदगद बानि[२] ।
ताही सो[३] स्वरभग कहि कवि कुल कहत बखानि[४] ।।१३।।

[१] रस भय उन्माद भय— नी० हि० । [२] वैन—नी० हि० । [३] को—भा० सा० । [४] बरनत कवि कुल ऐन—नी० हि० ।

उदाहरण :

परदेस ते प्रीतम आये री ए इक[१] आइके आली सुनायी यही[२] ।
कवि देव अचानक चौकि परी सुनतै बतियॉ[३] छतियॉ उमही ।
तबलौ पिय ऑगन आइ गये धन धाइ हिये लपटाइ रही ।
अँसुवा ठहरात[४] गरो घहरात मरू करि आधिक बात कही ।।१४।।

[१] है री इक—ज०, रि माइके—नी० हि०, इतो इक—का० । [२] वही—नी०, जही—हि० । [३] सुनिते बलि वा—भा, सुनिकै बतिया—नी० हि० । [४] ढहरात—नी० हि० का० ।

वैवर्ण्य-लक्षण :

भय[१] विमोह अरु कोप ते लाज सीत अरु घाम ।
मुख दुति औरै देखिये[२] सो विवरनता नाम ।।१५।।

[१] भव—का० । [२] देखि कै—नी० हि० ।

उदाहरण :

सुदरि सोवति[१] मदिर मै कहुँ सापने मे निरख्यो[२] नँद नद को ।
त्यो पुलक्यो जल सो झलक्यो उर औचक ही उचक्यो कुच कदु[३] सो ।
तौ लगि चौकि परी कहि देव[४] सु जानि परयो[५] अभिलाप अमद सो ।
आलिन को मुख देखत ही मुख भावती को भयो भोर को चद सो ।।१६।।

[१] सोहनि—सा० । [२] सापने कहुँ भेट भई—नी० हि०, कितहूँ सपने निरख्यो—का० । [३] कद—भा० हि० । [४] तौ लौ अचानक भेट भई लखि—का० । [५] ज्यो जानि परी—नी० हि० ।

अश्रु-लक्षण :

विपल[१] विलोकत धूम भय हर्प अमर्प[२] विपाद ।
नैनन नीर निहारिये[३] अश्रु कहौ निरवाद ।।१७।।

[१] विकल—नी० हि०, विमल—का०, विपुल—ज० । [२] समर्प—नी० हि० । [३] चढाइये—नी०, नहाइये—हि० ।

उदाहरण :

वोलि उठ्यो पपीहा कहुँ[१] पीउ सु देखिवे को सुनि के धुनि धाई ।
मोर पुकारि उठे चहुँ ओर सु देव घटा विरकी[२] चहुँधाई ।

भूलि गई तिय को तन की सुधि देखि उतै[3] वन भूमि सुहाई।
साँसनि सो भरि आयो गरो अरु आँसुन सो अँखियाँ भरि आई ॥१८॥

[1] कहि—नी० हि० । [2] घिरकै—नी० हि० का० । [3] देखत ही—का०, देखि तहाँ—ज०।

प्रलय-लक्षण :

प्रिय दर्शन सुमिरन[1] श्रवन होत अचल गति गात।
सकल चेष्टा[2] रुकि रहै प्रलय कहै कवि तात[3] ॥१९॥

[1] सभ्रम—नी० हि० । [2] सुद्धि—नी० हि० सा०, सु चेष्टा—का० । [3] वात—सा० का० ।

उदाहरण :

गोरी गुमान भरी गजगामिनि काल्हि धौं को[1] वह कामिनि तेरे।
आई हुती[2] सु चितै[3] मुसक्याइ कै मोहि लई मन मोहन मेरे।
हाथ न पाँइ हलै न चलै अग नीरजनैन फिरै नहि फेरे।
देव सु ठौर ही ठाढी चितौति लिखी मनु चित्र,विचित्र चितेरे ॥२०॥

[1] काहि किधौं—नी० हि०, काहू किधौं—का० । [2] जुती—भा० । [3] सौं चितै—नी० ।

संचारी भाव-लक्षण :

सात्विक होत सरीर ते ताही ते[1] सारीर।
अतर उपजै आतरिक[2] ते तैतिस कहि धीर ॥२१॥

[1] जाही ते—नी० हि०, जाहि कहत—सा० । [2] अन्तरहि—नी० हि०, आतर—का० ।

संचारी नाम :

प्रथम होइ निर्वेद ग्लानि सका सूया कहु[1]।
मद[2] अरु श्रम आलस्य दीनता चिता वरनहु[3]।
मोह सुमृति[4] धृति लाज चपलता हर्ष बखानहु।
जडता दुख आवेग हर्ष उत्कठा जानहु।
अरु नीद अपस्मृति सुपति बोध क्रोध अवहित्थ मति[5]।
उग्रत्व व्याधि उन्माद अरु मरन त्रास अरु तर्कतति ॥२२॥

[1] सका वितर्क कहि—नी० हि०, सका वितर्क कउ—भा० । [2] मृदु—ज० । [3] वरनउ—भा० । [4] सुमृर्त—भा० । [5] अपस्मृति स्वपन कहि क्रोध बोध पुनि मदन गति—नी० हि०।

निर्वेद-लक्षण :

चिता अश्रु प्रकाश करि[1] अपनोई अपमान[2]।
उपजहि तत्व ज्ञान जँह[3] सो निर्वेद बखान[4] ॥२३॥

[1] उपजै तत्व ज्ञान कै—का०। [2] अति अनग उर आन—नी० हि०। [3] चिता अश्रु प्रकाश जहँ—का०, उपजहि सात्विक भाव जहँ—नी० हि०। [4] अपनोई अपमान—नी० हि० ।

उदाहरण

मोह मढ्यो चतुराइ चढ्यो चित गर्व बढ्यो करि[1] मान सो नातो।
भूलि पर्‌यो[2] तवतो मद मन्दिर सुन्दरता गुन जोवन[3] मातो।

सूझि परी कवि देव सबै जब जानि पर्‌यो सिगरो जग जातो।
नेसुक मो मै जो होतो सयान तो होतो कहा करि सो हित हातो ॥२४॥

[१] मोह मढ्यो चित गर्व बढ्यो मनमोहन करि—का०। [२] गयो—ज०। [३] नव जोवन—का०।

ग्लानि-लक्षण :

भूष प्यास अरु सुरति श्रम[१] निरबल होत सरीर।
सिथिल होत अवयव[२] सबै ग्लानि कहत सो[४] धीर ॥२५॥

[१] सुरतादि श्रम—का०। [२] अग जव—का०। [३] सु तब—नी० हि०। [४] सु—नी० हि०।

उदाहरण :

रग भरे रति मानत दपति बीति गई रतिया छिन ही छिन।
प्रीतम प्रात उठे अलसात[१] चितै चित चाहत धाइ गह्यो धन।
गोरी के गात सबै अँगरात जु[२] वात कही न परी सु रही मन।
भौहै नचाइ लचाइ के लोचन चाहि[३] रही ललचाइ लला तन[४] ॥२६॥

[१] अगिरात—नी० हि० का०। [२] अलसात—नी० हि०। [३] चाय—भा० सा० का०। [४] लला मन—भा० सा० का०।

शंका-लक्षण :

अपराधादि अनीति करि कपै करै छिपाइ।
ताही को[१] शका कहै सबै कविन के राइ ॥२७॥

[१] ताही सो—हि०।

उदाहरण :

या डर ही[१] घर ही मै रही[२] कवि देव दुर्‌यो नहि दूतिन[३] को दुख।
काहू की वात कही न सुनी मन माँहि बिसारि दियो सिगरो सुख।
भीर मैं भूले भये सखि मै जबते जदुराइ की ओर[४] कियो रुख।
मोहि भटू तबते निसि द्यौस चितौतही जात[५] चवाइन को मुख ॥२८॥

[१] डर हौं—भा० सा०। [२] रहौ—भा० सा०। [३] दूतन—भा० सा० ज०। [४] वृजराज की राइ—नी० हि०। [५] चितौत ही नात—नी०।

असूया-लक्षण :

क्रोध कुबोध विरोध ते सहै न पर[१] अधिकार।
उपजै जहँ[२] जिय दुष्टता[३] सो असूया अवधार[४] ॥२९॥

[१] सहै न यह—भा० सा०, सहि न परै—ज०। [२] तहाँ—नी०। [३] दु ख बहु—का०। [४] निरधार—नी० हि० का०।

उदाहरण :

गोकुल गाँव की गोप वधू बनि कै निकसी दुरि[१] दै दै बुलायो।
सोरहो साज सिगार सबै वन देखन को वहु भेष बनायो।

राधिका के हिय हेरि हरा हरि के हिय को पिय को पहिरायो[२]।
केती तहाँ तिय ती तिनमौ तिन[३] मोतिन सो तिनको तन तायो ।।३०।।

[१] वनि कै दुरि के सव—नी० हि० । [२] हरि क पहिरायो—का० । [३] ते तिन मोतिन—का०, तीनिन मातिन – नी०, नीनिन मोनिन—हि०, ती तिन मै तिन—सा० ।

मद-लक्षण :

सो मद जहँ आसव पिये[१] हरप होय हिय वीच ।
नीद हास रोदन करै उत्तम मध्यम नीच ।।३१।।

[१] आसवत पिय—नी०, आसक्त पिये—हि० ।

उदाहरण :

आसव[१] सेइ सिखाये सखीन के सुन्दरि मन्दिर मैं सुख सोवै ।
सापने मैं बिछुरे[२] हरि हेरि हरेई हरे हरिनीदृग रोवै ।
देव कहै उठि[३] कै विरहानल आनन्द के अँसुवान समोवै ।
आजुही[४] भाजि गई सब लाज हँसै अरु[५] मोहन को मुख जोवै ।।३२।।

[१] आसन—नी० । [२] सोवत मै सपने—का० । [३] तही जगि—का० । [४] ०—नी० हि० ।
[५] अरु रूप कै—नी० हि० ।

श्रम-लक्षण

अति रति अति गति[१] ते जहाँ उपजै अति तन[२] खेद ।
सो श्रम जामै जानिये निस्सहता प्रस्वेद[३] ।।३३।।

[१] रत—सा० । [२] रति—नी० हि० । [३] निद्रा सहित प्रस्वेद—नी० हि०, विस्सह ताप प्रस्वेद—का० ।

उदाहरण :

खरी दुपहरी वीच तरुन[१] तरु नगीच[२] सही परै[३] तरनि[४] के करनि[५] की जोति है।
तामैं तजि धाम[६] चली स्याम पै बिकल वाम काम सर दाम वपु रूपहि[७] बिलोति है[८] ।
वडे वडे बारन ते हारनि के भारन ते थाकी सुकुमारि अग स्वेद[९] रग धोति है ।
सग न सहेली सु अकेली केलि कुजन मै वैठति उठति टाढी होति चलि होति है ।।३४।।

[१] तरुनि—सा० । [२] तरुन, गावै—नी० हि० । [३] सही न परति—का०, सहि यरे—सा० । [४] रवि—का० । [५] किरनि—नी० हि० का० । [६] धामै—नी० हि० । [७] रुचहि—सा० । [८] चितौति है—नी० हि० । [९] सेत—नी० हि० ।

आलस्य-लक्षण

वहु भूपादिक भार[१] ते कारज कर्यो[२] न जाइ ।
सो आलस्य जहाँ[३] रहै तनहि अछमता[४] छाइ ।।३५।।

[१] भाव—भा० सा० ज० । [२] कह्यौ—भा० । [३] जामै—नी० हि० । [४] अछमद तन—नी०, आमद तन—हि० ।

उदाहरण :

ऊधो आये ऊधो आये[१] हरि[२] को सँदेसो लाये सुनि गोपी गोप धाये धीर न धरत हैं ।

वौरी लगि[3] दौरी उठी भौरी[4] लौ भ्रमति मति गनति न[5] जऊ[6] गुरु लोग निदरत है[7]।
ह्वै गई विकल वाम बालम वियोग भरी जोग की सुनत बात गात त्यों जरत है।
भारे भये भूपन सम्हारे न परत अग आगे को धरत पग पाछे को परत है ॥३६॥

[1] गोकुल तेरे—का०। [2] स्याम—नी० हि०। [3] बोरी लगि—भा०, वोरी लरि—ज०। [4] भोरी—भा०। [5] मानति न—सा०। [6] जाउ—नी० हि०, जनो—भा०, जनऊ—सा०। [7] लोगन डरति—नी० हि०, लोगन दुरत—भा०।

दीनता-लक्षण ·

दुरगति बहु बिरहादि ते उपजै[1] दु ख अनन्त।
दीन वचन मुख ते कढै कहै दीनता सन्त[2] ॥३७॥

[1] होत जो—नी० हि०। [2] सग—नी०।

उदाहरण :

रैन दिन नैन दोऊ मास ऋतु पावस के[1] बरसत बडे बडे बूदनि की[2] झरिये।
मैन सर जोर मारे पवन[3] झकोरनि सो आई है उमगि छिति[4] छाती नीर भरिये।
टूटौ नेह नाव छूटो स्याम सो सहाउ गुन[5] ताते कवि देव कहै कैसे धीर धरिये।
बिरह नदी अपार बूडत है माँझ धार[6] ऊधो अब एक बार खेइ[7] पार करिये ॥३८॥

[1] पाख सब—का०। [2] सो—भा०। [3] मोर पौन की—नी० हि०। [4] छिनि—भा० सा०। [5] सनेह गुन—नी० हि०, सहाव गुनु—का०। [6] ही माँझ धार—नी० हि०। [7] फेरि—नी० हि०।

चिंता-लक्षण :

इष्ट वस्तु पाये बिना व्यग्र चित्त अति होइ[1]।
स्वाँस ताप वैवरन जहँ[2] चिता कहिये[3] सोई ॥३९॥

[1] वहु व्याकुल चित होइ—नी० हि०, एक अग्र चितु होइ—का० सा०। [2] स्याम ताप ह्वै रैन दिन—नी० हि०। [3] बर्नहु—का०।

उदाहरण :

जानति नाहि रहे[1] हरि कौन के ऐसी धौ कौन वधू मन भावै।
मोही सो रूठि के बैठि रहे किधौ कोऊ कहूँ कछु[2] सोध न पावै।
ऐसिये[3] भाँति भटू कवहूँ अव कोहू[4] मिलै कहुँ कोउ[5] मिलावै।
आँसुनि मोचति सोचति यो सिगरो दिन कामिनि काग उडावै ॥४०॥

[1] हरे—भा० सा०। [2] कोऊ कछू कहूँ—नी० हि०। [3] वैसिये—भा० सा०, कैसिये—का०। [4] केहु—हि०, क्योहू—भा०। [5] कोइ—भा०।

मोह-लक्षण :

अदभुत दरसन वेग भय अति चिता अति कोह।[1]
जहा[2] मूर्छा विस्मरन[3] स्तभ ताहि कह मोह[4] ॥४१॥

[1] अदभुत रस आवेग भय चिता सुमिरन कोह—नी० हि०। [2] होइ—का०। [3] मूर्छा विस्मरनता—नी० हि०। [4] लमतादि कह मोह—भा०।

उदाहरण :

औरो कहा कोउ वालवधू है नयो तन जोवन तोहि जनायो।
तेरेई नैन बडे ब्रज मे जिनसो वस कीनो जसोमति जायो।
डोलत है मनो [१] मोल लियो कवि देव न वोलत वोल वुलायो।
मोहन को मन मानिक सो[२] गुन सो गुहि तै उर सो उरझायो[३] ॥४२॥

[१] जनु—नी० हि०। [२] तो—नी० हि०। [३] मै उरझायो—नी० हि०।

स्मृति-लक्षण :

ससकार[१] सपति विपति अधिक प्रीति अति त्रास।
प्रिय अप्रिय सुमिरन सुमृति इकचित मौन उसास [२] ॥४३॥

[१] ससै करि—नी० हि०। [२] कप फेन मुख स्वाॅस—का०, इकचित मानु नदास—सा०, प्राप्त समै सो देव कवि कहि तामै उदास—नी० हि०।

उदाहरण

नीर भरे मृग कैसे वडे दृग देखति नीचे निचाइ[१] निचोलनि[२]।
लै लै उसाॅसै लिखै धरिनी धरि ध्यान रहै करि दीठि अडोलनि[३]।
वैठि रहै कवहूँ चुप ह्वै[४] कवि देव कहै[५] कर चाँपि कपोलनि।
वालम के बिछुरे यह वाल सुनै नहि वोलनि वोलति[६] वोलनि ॥४४॥

[१] नचाइ—नी० हि०। [२] निचोभनि—सा०। [३] तन कप अतोलनि—का०। [४] कै—सा०। [५] रहे—नी० हि०। [६] कानन वोलनि—का०, डोलनि वोलै सु—नी० हि०।

धृति लक्षण :

ज्ञान शक्ति उपजै जहाॅ मिटै अधीरज दोष।
ताही सो धृति कहत है[१] जथा लाभ सतोप ॥४५॥

[१] जहँ—भा० सा०, कवि—का०।

उदाहरण :

रावरो रूप रह्यो भरि[१] नैननि वैननि के रस सो श्रुति सानौ।
गात[२] मै देखत गात तिहारोई[३] बाल[४] तिहारोई[३] बात बखानौ।
ऊधो हहा[५] हरि सो कहियो तुम हौ न इहाँ यह हौ[६] नहि मानौ।
या तन ते विछुरे तो कहा मन तै[७] अनतै जु वसौ तव जानौ ॥४६॥

[१] रमि—नी० हि०। [२] गाढ—का०। [३] तुम्हारे ये—भा०। [४] रीति—का०। [५] कहा—नी० हि०। [६] तौ—नी० हि०, ते—सा०। [७] मै—नी०।

लाज-लक्षण :

दुराचार अरु प्रथम[१] रति उपजै जिय सकोच।
लाज कहै तासो जहाॅ[२] मुख गोपन गुरु सोच ॥४७॥

[१] प्रेम—नी० हि०। [२] सुकवि—नी० हि०।

उदाहरण :

आजु सखी सुख सोई सुतो, सखी साॅचेहु[१] सोच[२] सँकोच के हाते।

हातो भयो कहु कैसे सकोच बढै निसि नाह सो नेह के नाते।
कैसी कही रति मानि रही रति मदिर मे मदिरा मद माते।
मारि हथेरी हरे हिय देव सु दाबि रही अगुरी इक दाते ॥४८॥

[१] साँचे ह्वै—का०। [२] साँच—नी० हि०।

चपलता-लक्षण :

रागरु क्रोध[१] विरोध ते चपल जु चेष्टा होय।
कारज की[२] उत्तालता कहत चपलता सोय ॥४६॥

[१] राग क्रोध सु—नी० हि० सा०। [२] की जु—नी० हि०।

उदाहरण :

खेलत मे बृषभानु सुता[१] कहुँ धाइ[२] धँसी बन कुजन मे ह्वै।
डार सो हार तहाँ उरझ्यो सुरभाय रही कवि देव सखी द्वै।
तौ लगि आइ गयो[३] उत तै सु नगीच[४] मनो चित बीच परे च्वै[५]।
छोहर वा हरवा हरवाइ दै छोरि दियो छल सो छतियाँ छ्वै ॥५०॥

[१] इक गोप सुता—का०। [२] जाइ—भा० सा० का०। [३] आय परे—नी० हि०, आप गयो—भा० का०। [४] सु नजीक—हि०, सुनि जीक—नी०। [५] छ्वै—भा० सा०, म्वै—का०।

हर्ष-लक्षण :

प्रिय दर्शन श्रवनादि ते होय जु हिये प्रसाद[१]।
वेग स्वेद[२] आँसू प्रलय हर्ष लखौ[३] निरवाद ॥५१॥

[१] प्रमाद—नी०। [२] स्वाँस—नी० हि०। [३] सुकहु—का०।

उदाहरण :

वैठी ही सुन्दरि मन्दिर मै पति को पथ पेखि पतिव्रत पोखे।
तौ लगि आए री आइ कह्यो दुरि द्वार ते[१] देवर दौरि[२] अनोखे।
आनँद मैं गुरु की गुरुताहू[३] गनी गुनगौरि[४] न काहु हू[५] ओखे।
नूपुर पाँइ उठे झननाइ[६] सु जाइ लगी धन धाइ[७] झरोखे ॥५२॥

[१] दूरि ते—ज०। [२] आइ—नी० हि०। [३] गुरताइ—ज० सा०। [४] गुनगाठि—का०। [५] काहू है—भा०, काहू के—भा०, काहुहि—ज०, कौनहू—नी० हि०। [६] झनकाइ—भा०। [७] अतुराइ—नी० हि०।

जड़ता-लक्षण :

हित अहितहि देखे जहाँ[१] अचल[२] चेष्टा होइ।
जानि बूझि कारज थके जडता बरनै सोइ ॥५३॥

[१] सुनै—का०। [२] अचलन—नी० हि०।

उदाहरण :

कालिदी के तट काल्हि भटू कहूँ ह्वै गई दोउन भेट भली सी।
ठौरही ठाढे चितौत इतौत न[१] नेकहु[२] एक टकी टहली[३] सी।

देव को[4] देखति देवता सी वृपभान लली न हली न चली सी ।
नद को छोहरा की छवि सो छिनु एक रही छकि[5] छैल छली सी ॥५४॥

[1] इतै तन--नी० हि० । [2] नेक कही—नी०, नेक हिये—हि० । [3] ठगली—का० । [4]देव की—नी०, देव जू—का० । [5] छवि—का० ।

दुःख-लक्षण :

उत्तम मध्यम नीच क्रम लघु चिंता अप्रमाद ।
महा सोक ये घन गये[1] हित[2] रासो सु विपाद[3] ॥५५॥

[1] ये वनुग को--नी० हि० । [2] ह्वै—का० । [3] सतोप विपाद—नी० हि० ।

उदाहरण :

केलि करैं[1] जल मैं मिलि वाल गुपाल तहीं तट गैयनि घेरैं ।
चोरि[2] सबै हरवा हरवाह दै दूरि ते दौरि वछान को फेरैं ।
हार हरे हहरैं हिय मैं[3] तिय धीर धरैं न करैं उक टेरैं ।
राधिका ठाढी हरेई हरे हरिके मुख ओर हँसै अरु हेरैं ॥५६॥

[1] करी—का० । [2] चेरी—का० । [3] हो हरे हिय मैं—नी० हि० ।

आवेग-लक्षण :

प्रिय अप्रिय[1] देखे सुने गात पात सवेग[2] ।
होइ अचानक भूरि भ्रम सो वरनहु[3] आवेग ॥५७॥

[1] अपराध—नी० हि० । [2] तैन तपै मवेग—नी० हि०, तैन तपै सवेग—सा०, गात पात अति वेग—का० । [3] कहिए—का० ।

उदाहरण :

देखन दौरी सबै वृजवाल सु आये गुपाल सुने व्रज भू पर ।
टूटत हार हिये न सम्हारती[1] छूटत वार न किंकिनि नूपुर ।
भार उरोज नितवन को न धरैं[2] कटि को लटिवो दृग दूपर[3] ।
देव ह्वै दै[4] पथ आइ मनो चढि धाई मनोरथ के रथ ऊपर ॥५८॥

[1] सम्हारत—नी० हि० । [2] कैंन वरैं—नी० हि०, कौन डरैं—सा० । [3] लटिवा तन दूपुर—नी० हि० । [4] ह्वै दै—नी० हि०, ह्व दै—का० सा० ।

गर्व-लक्षण :

वहु वल धन कुल रूप ते सिर उन्नत अभिमान ।
गनै[1] न काहू आप सम ताही गर्व वखान ॥५९॥

[1] गुनै—का० ।

उदाहरण :

देव सुरासुर सिद्ध वधून के[1] एतो न गर्व जितो यहि ती को ।
आपने जोवन[2] के गुन के अभिमान सवै जग[3] जानति फीको ।
काम की ओर सिकोरति नाक न लागत नाक को नायक नीको ।
गोरी गुमानिनि ग्वाँरि गँवारि गिने नहि रूप रतीको[4] रती को ॥६०॥

[1] को—भा० सा०। [2] जीवन—नी० हि०। [3] ऊपर ओर सवै रँग—का०। [6] मयक—का०।

उत्कंठा-लक्षण

प्रिय सुमिरन ते गात मै[1] गौरव आरसु होइ।
देस न काल सह्यो[2] परै उत्कठा कहु सोइ ॥६१॥

[1] गर्व ये—नी० हि०। [2] कह्यो—नी० हि०।

उदाहरण :

कैधौ हमारीये बार[1] बडो भयो कै रवि कौ रथ ठौर ठयो है।
भोर ते भानु की ओर चितौत घरी पल ते गनतैही[2] गयो है।
आवत छोर नही छिन को दिन को न अबै[3] लगि जाम[4] गयो है।
पाइये कैसिक साँझ तुरतहि देखु री द्यौस दुरत भयो है ॥६२॥

[1] वेर—नी० हि०। [2] हू गनतौ न—नी० हि०। [3] अभै—भा० सा० नी०। [4] जाय—भा०, घाम—ज०।

नींद-लक्षण

चिता आरस खेद ते बसे तुचा[1] चितु जाय[2]।
सुपन दरस अवयव चलन[3] ते कहु[4] नीद सुभाय ॥६३॥

[1] वैस तुचा—सा०, वसे चाह—नी० हि०। [2] चाय—नी० हि०। [3] अध वचन—नी० हि०। [4] ये कहिये—नी० हि०, एकहु—सा० ज०।

उदाहरण :

सोवत ते सखि जान्यो नही वह सोवत ते घर आयो हमारे।
पीत पटी कटि मै लपटी[1] अरु साँवरो सुन्दर रूप सँवारे।
देव अबै लगि आँखिन तै वह वाँकी चितौनि[2] टरै नहि टारे।
सापने मै चित[3] चोरि लियो वहि चोर री[4] मोर पखौवन वारे ॥६४॥

[1] लपटि पटि मैं—का०। [2] सरूप—नी० हि०। [3] सौ सपने चित्त—का०। [4] उहि चोर री—सा०, चित्त चोर री—नी० हि०, वह चारु री—का०।

अपस्मृति-लक्षण :

अधिक दु ख अति भय असुचि[1] सूनै ठौर निवास।
सु अपस्मृति जहँ भू पतन[2] कप फेन मुख साँस[3] ॥६५॥

[1] असुधि—नी० हि०। [2] सो अपस्मृति है जहाँ भू पतन—नी० हि०, सु अपस्मृति जहँ मूरतन—का०। [3] कप स्वसन उसास—नी० हि०।

उदाहरण :

मोहन माइ चले मथुरा तवतें निसिवासर वीतत ठाढे।
वौरी भई ब्रज की वनिता वहु भाँतिन देव वियोग के वाढे[1]।
भूलि गई गुरु लोग[2] की लाज गए गृह काज ग्रसी[3] ग्रह गाढे[4]।
भीतिन सो अभिरे[5] भहराइ गिरै फिरि धाइ[6] फिरै मुख काढे ॥६६॥

[१] की वाढे—नी० हि० ।[२] कुल लोक—का० । [३] धँसी—ज०, ग्रही—हि०, गली—भा० । [४] ठाढे—नी० हि० । [५] जु भिरै—ज० । [६] झुकि झुकि—का० ।

सुपति-लक्षण :

नीद वढै तव तजि तचा चातुरी ती चितु जाइ ।[१]
अति उसास मुद्रित नयन सुपति[२] कहै कविराइ ॥६७॥

[१] तचित तनु सुख मे चित जो जाहि—नी० हि०, तवनहु चाव रीरि चितु जाइ—भा०, तजित चापु रीति ती चितु जाइ—सा० ज०, तजित चापु रित ताहि चितु जाइ—का०।

[२] सुमृति—भा०, स्वपन—नी० हि० ज० ।

उदाहरण :

साँवरो सोतु सुन्यो सुख सो कहुँ कालिदी कूल[१] कदव के कोरै ।
गोपवधू जुरि[२] आई सवै व्रजभूपन के सव भूपन चोरै ।
काहू लई कर की वँसरी[३] कवि देव कोऊ[४] कर कंकन मोरै ।
काहू हर्‌यो हिय को हरवा हरवाय कोऊ कटि को पट छोरै ॥६८॥

[१] तीर—सा० । [२] मिलि—का० । [३] वनसी—का० । [४] दोऊ—नी० ।

वोध-लक्षण :

नीद गये मीजै नयन[१] अग भग जमुहाइ[२] ।
एक वार इद्रिय जगै तै कहु वोध[३] सुभाइ ॥६९॥

[१] गई भरि जन्म की—नी० हि०, गये मूंदे नयन—का० । [२] जिय आय—नी० हि० ।

[३] ते अविवोध—का०, ते कउ नीद—भा० ।

उदाहरण :

सापने[१] मै गई देखन हौ सुनि[२] नाचत नद जसोमति को नट ।
वा मुसक्याइ कै भाव वताइ कै मेरोई खैचि खरो पकरो पट ।
तौ लगि गाइ रम्हाइ उठी कवि देव वधून मथ्यो दधि को घट[३] ।
जागि[४] परी तव कान्ह कहूँ न कदव कौ कुज न कालिदी को तट ॥७०॥

[१] सोवत—का० । [२] कौ तहाँ—नी० हि० ।[३] मट—नी० हि० । [४] चौकि—भा० ज० ।

क्रोध-लक्षण :

अविक्षेप[१] अपमान ते स्वेद कप दृग राग ।
अहकार जिय मे वढै क्रोध सुनहु वडभाग ॥७१॥

[१] औधि क्षेप—नी० हि० ।

उदाहरण :

देव मनावत मोहन जू कव के मनुहारि करै ललचौहै ।
वातै वनाइ सुनावै[१] सखी सव ताती औ[२] सीरी रिसोहै रसोहै[३] ।
नाह सो नेह तऊ[४] तरुनी तजि राति वितौति चितौति न सौहै[५] ।
मानति नाहि तिरीछेहि तानति[६] वान सी आँखै कमान सी भौहे ॥७२॥

[१] सिखावै—का० सा०, सुनाइ—नी० हि० । [२] ताते औ—भा० । [३] रिसोही रसोहै—

हि०, रसोहै रिसोहै—भा०, रिसोही रसी है—नी०, रसौहे रिसौहे—सा०, बुझाय रसौहै—का० । [४] तजै—का० । [५] मोहै—सा० । [६] तान औ—नी० हि० ।

अवहित्थ-लक्षण

लज्जा गौरव धृष्टता गोपै[१] आकृति कर्म ।
और करै औरै कहै[२] सो अवहित्थ को धर्म[३] ।।७३।।

[१] लाज गौर अरु वधुता गोप—नी० हि० । [२] करै और औरै कहै—का०, और कहै औरै करै—नी० हि० भा० । [३] अवहित्था धर्म—नी० ।

उदाहरण :

देखन को वन को निकसी बनिता वहु बानि[१] बनाइ कै वागे ।
देव कहै दुरि[२] दौरि के मोहन[३] आइ गये उत ते अनुरागे ।
वाल की छाती छुई छल सो घन[४] कुजन मे रस[५] पुजन पागे ।
पीछे निहारि निहारत नारिन हार हिये के सुधारन लागे ।।७४।।

[१] भाँति—सा० । [२] डरि—ज० । [३] कै सौहन—सा० । [४] छपि कै बन—का० । [५] बस—भा० ।

मति-लक्षण :

शास्त्र चितना ते जहाँ होइ[१] जथारथ ज्ञान ।
करै शिष्य उपदेश जहँ[२] मति कहि ताहि बखान ।।७५।।

[१] साँसति मन मे होइ जहँ जहाँ—नी० हि०, शास्त्ररु चितन ते जहाँ होइ—का० । [२] को—का० ।

उदाहरण :

स्याम के सग सदा विलसी[१] सिसुता मे सुता मे[२] कछू नहि जान्यो ।
भूले गुपाल सो गर्व कियो गुन जोवन रूप वृथा अभिमान्यो[३] ।
ज्यो न[४] निगोडो तवै समझ्यो कवि देव कहा अव जो[५] पछितान्यो ।
धन्य जियै जग मे जन ते तिनको मनमोहन सो[६] मन मान्यो ।।७६।।

[१] सदा मिलकै विलसी—का० । [२] ०—का० । [३] अरिमानो—भा० । [४] जो न—नी० हि० । [५] फिरि जो—का० । [६] ते—भा० ।

उपालंभ-लक्षण :

उपालभ अनुनय विनय अरु उपदेश बखान ।
इनको अतरभाव कहि देव मध्य मति जान[१] ।।७७।।

[१] उपालभ द्वै भाँति को वरनत है कविराइ । इनके अतरभाव कहि मध्यम देव सु जाइ—हि०, नी० प्रति मे दोहा त्रुटित है ।

उपालभ द्वै भाँति को बरनि कहे[१] कविराइ ।
एक कहावै कोप ते दूजो प्रनय सुभाइ ।।७८।।

[१] वरनत है—नी० हि०, बरनि कही—का० ।

कोप उपालंभउ-दाहरण

बोलत ही कत वैन वडे अरु नैन वडे वड ऐन वडे हौ[१]।
जानति हौं छल[२] छैल वडे जू बडे खन के डहि गैल गडे[३] हौ।
देव कहे हरि रूप वडे व्रजभूप वडे हमपै[४] उमडे हौ।
जाहु जू जैयै अनीठ वडे अरु ईठ वडे पर[५] ढीठ वडे हौ ।।७६।।

[१] गटाड कै गैल खडे हौ—का०, वडे वडरान अडे है—भा० हौ। [२] छवि---सा०ज०। [३] पैंड परे—नी० हि०। [४] हम सो—नी० हि०। [५] अरु—नी० हि०।

प्रणय उपालंभ-उदाहरण :

लाल भले हौ कहा कहिये कहिये तौ कहा कहु काहू[१] कहैयै।
काहू कहूँ न कही न सुनी मु[२] हमैं कहिये कहि काहि सुनैयै।
नैन परैं न परै कर मैं नहि[३] चैन परै जु पै वैन वरैयै[४]।
देव कहै नित को मिलि खेलि इतै[५] हित को चित को न चुरैयै ।।८०।।

[१] कहो को हौ—नी० हि०। [२] मुनी रु—नी० हि०। [३] सैन—नी० हि०। [४] जब नैन खरैया—नी० हि०। [५] खेलियतै—नी० हि०, खेले इतै—का०।

अनुनय-उदाहरण :

वे वडभाग भरे[१] अनुराग इतै अति भाग सुहाग भरी हौ।
देखी विचारि समौ[२] सुख को तन जोवन जोतिन सो[३] उजरी हौ।
वालम सौ उठि वोलौ वलाइ ल्यो जो कहि[४] देव सयानी[५] खरी हौ।
हेरत वाट कपाट लगे हरि वाट परी[६] तुम खाट परी हौ ।।८१।।

[१] वडे—भा०। [२] समै—नी० हि०। [३] जोत महा—का०। [४] जौ कवि—का०, यो कहि—भा०। [५] सयान—नी० हि०। [६] खरे—भा०, परो—नी० हि०।

उपदेश-उदाहरण .

कोपते[१] वीच परै[२] पिय सो उपजावत रग मै भग सु[३] भारी।
क्रोध निधान[४] विरोध निधान सु मान[५] महा सुख मै[६] दुखकारी।
ताते न[७] मान समान अकारज[८] जाको अयान[९] वडो अधिकारी।
देव कहै कहिहौ[१०] हित की हरि जू सो[११] हितू न कहूँ हितकारी।।८२।।

[१] कोपसें—भा०। [२] पर्‍यो—नी० हि०। [३] जु—का०। [४] विधान—भा० सा०। [५] समान—नी० हि०। [६] मुख ते—का०। [७] तोत न—का०। [८] अकारन—नी०। [९] अपानु—भा०, अवान—हि०, अजान—ज०। [१०] कहियो—नी० ज०। [११] जैसो—नी०।

उग्रता-लक्षण

दोप न कीरत[१] चौरता दुर्जनता[२] अपराध।
निरदयता[३] सो उग्रता जहँ तरजन वध वाध[४] ।।८३।।

[१] कीरत न—नी० हि० भा० सा०। [२] सोई है—नी० हि०। [३] निरजनता—भा०,

निदरैता—नी० हि० । [४] तन जन वध वाध—भा० ज०, तरजना व्याधि—सा० ।

उदाहरण ·

मोहन भाइ भये मथुरापति[१] देव महा पद सो मदमातो[२] ।
कोरे परे अब कूवरी के हरि[३] याते कियो हमसो हित हातो ।
गोकुल गाँव के गोप गरीब है वाँसु बरावर ही को इहाँ तो[४] ।
बैठि रहौ सपनेहू[५] सुन्यो कहुँ राजनि सो परजानि सो नातो ॥८४॥

[१] भये अब भूपति—नी० हि० । [२] मन मातो—का० सा० । [३] अव—भा० । [४] ही के इहाँ तो—सा०, ही को वहाँ तो—नी० हि० । [५] सपने न—नी० हि० ।

व्याधि-लक्षण :

धातु कोप प्रीतम विरह[१] अतर उपजै आधि ।
जुर विकार बहु[२] अग मै ताही[३] वरनै व्याधि ॥८५॥

[१] प्रिय विरह ते—का०, कीतम विरह—नी० । [२] उर—का । [३] ताको—नी० हि०, ताहि सु—का० ।

उदाहरण :

ता दिन ते अति व्याकुल है तिय[१] जा दिन ते पिय पथ सिधारे ।
भूप न प्यास बिना ब्रजभूषन भामिनि भूषन भेप बिसारे ।
पावत पीर नही कवि देव करोरिक मूरि सबै करि[२] हारे ॥
नारि निहारि निहारि[३] चले तजि बैद[४] बिचारि[५] बिचारि विचारे ॥८६॥

[१] जिय—नी० हि० । [२] जबै करि—नी० हि०, सबै फरि—भा० । [३] ०—का० ।
[४] तजै उपचारि—का० । [५] विचारे—नी० हि० ।

उन्माद-लक्षण :

पिय बियोग ते जहँ वृथा वचनालाप[१] विपाद ।
विन बिचार आचार जहँ[२] सो कहिये उन्माद ॥८७॥

[१] वचनन लाय—भा० सा०, वचन विलाप—नी० हि० । [२] कारज जहाँ—का० ।

उदाहरण :

अरिकै वह[१] आज अकेली गयी[२] खरिकै हरि के गुन रूप लुही ।
उनहूँ[३] अपनो पहिराइ हरा मुसकाइ कै गाइ कै गाइ दुही ।
कवि देव कह्यो[४] किनि कोई[५] कछू तवते[६] उनके अनुराग[७] छुही ।
सवही सो इहै[८] कहै वालवधू यह देखो री माल गुपाल गुही ॥८८॥

[१] बहू—नी० । [२] चली—का० । [३] उनही—का० । [४] कहौ—नी० । [५] कोऊ—सा०, काऊ—ज० । [६] तवतौ—सा० । [७] जुअनाग—का० । [८] यही—भा० ।

मरण-लक्षण :

प्रकटहि लक्षन मरन के अरु विभाव अनुभाव ।
जो निदान करि वरनिये तो[१] सिंगार अभाव ॥८९॥

[१] सौ—सा० हि० ।

निर्वेदादिक भाव सब बरने सरस सुभाइ।
ता विधि मरनौ वरनिये जामैं रस न नसाइ[१] ॥९०॥

[१] नहिं जाइ—नी०।

उदाहरण :

राधा के[१] वाढी वियोग की वाधा सु देव अवोल अडोल डरी रही।
लोगन की वृषभानु के भौन मैं भोर ते भारीयै भीर भरी रही।
वाके निदान के प्रान रहे[२] कढि औषधि मूरि करोरि करी रही।
चेति[३] मरू करिकैं चितई जव चारि घरी लौं मरीयै[४] धरी रही ॥९१॥

[१] राधिके—भा०। [२] गये—का० ज०। [३] चेती—ज०। [४] मरी सी—भा०।

त्रास-लक्षण

घोर स्रवन दरसन[१] सुमृति तभ[२] पुलक भय गात।
होइ छोभ जो चित्त मैं त्रास कहत कवि तात ॥९२॥

[१] देर सब—नी० हि०। [२] थभ—नी० हि०।

चित्त छोभ द्वै भाँति को एक त्रास अरु[१] भीति।
अकस्मात ते त्रास अरु विचार[२] भय रीति ॥९३॥

[१] इक—का०। [२] विन विचार—नी० हि०, विचार ते—भा०, अरु अरु विचार—ज०।

त्रास-उदाहरण :

श्री वृषभान लली मिलि कै जमुनाजल केलि को हेलिन आनी।
रोमवली नवली कहि देव[१] सु सोने से गात अन्हात सुहानी।
कान्ह अचानक वोलि[२] उठे उर वाल के व्याल वधू[३] लपटानी।
धाइ कै[४] धाइ गही ससवाइ[५] दुहूँ कर झारत अग अयानी[६] ॥९४॥

[१] कवि देव—का० सा०। [२] टेरि—सा० ज०। [३] वाल वधू—सा०। [४] को—भा०।
[५] ससकाइ—का०, सिसिआइ—ज०। [६] अपानी—भा०।

भय-उदाहरण :

आजु गोपाल जू वाल वधू सँग नूतन नूतनि कुज[१] वसे निसि।
जागर होत उजागर नैननि[२] पाग पै पीरी पराग रही[३] पिसि।
चोज के चदन खोज खुले जहँ[४] ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि[५]।
वोलत वात[६] लजात से जात सु आये इतौत चितौत चहूँ दिसि ॥९५॥

[१] नूतन नूतने कुज—भा०। [२] मैननि—सा०। [३] परी—नी० हि०। [४] कहुँ—का०।
[५] मैं घिसि—भा०, मैं धँसि—का०, सो धिसि—सा०। [६] वाल—सा०।

तर्क-लक्षण

विप्रतिपत्ति[१] विचार अरु ससय अध्यवसाइ।
वितरक चौविधि जानियं भूचलनादिय[२] भाइ ॥९६॥

[१] विपति विचित्र—नी० हि०। [२] भूवल निदक—नी० हि०।

विप्रतिपत्ति-उदाहरण :

यह तौ[1] कछु भामती[2] को सो[3] लसै मुख देखत ही दुख जात है ख्वै[4]।
सफरी मद मोचन लोचन ये परिहै कहुँ मानो चितौत ही च्वै।
कवि देव कहै कहिये जुग जो जलजात रहे जलजात मै ध्वै[5]।
न सुने न पै[6] काहू कहूँ कबहूँ कि मयक के अक मै पकज द्वै[7] ॥९७॥

[1] याहु तो—सा०। [2] राधिका—का०। [3] कैसी—नी० हि०, कैसो—सा०। [4] ह्वै—भा०। [5] द्वै—ज०, ख्वै—का०, छ्वै—सा०, ह्वै—नी० हि०। [6] तबौ—भा०, तपे—सा०। [7] वर वारिधि मैं विवि खजन है पै मयक के अक मैं पकज द्वै—नी० हि०।

विचार-उदाहरण :

काम कमान तै बान उतारिहै देव नही मधु माधव रैहै[1]।
कोकिलऊ[2] कल कोमल बोल बिसारि कै आपु अलोप कहैहै[3]।
मोहि महादुख दै सजनी रजनीकर औ रजनी घटि जैहै[4]।
प्रानपियारेऊ[5] ऐहै घरे पै प्रान पयान कै फेरि न ऐहै ॥९८॥

[1] व्याधव रैहै—नी० हि। [2] कोकिल की—सा०। [3] अलीय कहैहै—नी० हि०। [4] सजनीकर औ रजनी घरि जैहै—सा०, रजनीकर बैर वढे जरि जैहै—नी० हि०। [5] प्रान पियारे तु—भा०, प्रान पियारे जु—नी० सा०, प्रान पियारे को—हि०।

संशय-उदाहरण :

यह कैधौ कलाधर ही की कला अबला किधौ काम की कैधौ सची।
किधौ कौन के भौन की दीपसिखा सखी[1] कौन के भाग के भौनि[2] खँची।
तिहुँ लोक की सुदरताई की एक अनूपम रूप की[3] रासि मची[4]।
नर किन्नर सिद्ध सुरासुरहून की वचि[5] बधूनि बिरचि रची ॥९९॥

[1] विधि—नी० हि०, किधौ—का०। [2] ह्वै भाल—भा०, की भौन—नी० हि०। [3] अनूप सरूप की—सा०। [4] रची—नी० हि०। [5] वीचि—ज०।

वितर्क-उदाहरण :

कहु[1] कौन की चपक चारु लता यह देखि सबै जन भूलि रहे।
कवि देव ए तामै[2] कहा विलसै विवि श्रीफल से[3] धरि धूलि रहे।
तिहि ऊपर को यह सोम उवो[4] तम तोम चहूँ दिसि भूलि रहे।
चितये चित चोरत कोए[5] तहाँ नवनील सरोज से फूलि रहे ॥१००॥

[1] कहि—नी० हि०। [2] तीमै—भा० सा०। [3] सोहे न से—नी०। [4] उदो—नी०, उद्यो—ज०, नवो—भा०। [5] चित मै चित चोरत कोए—भा०, चित चोर क्यो धारहि धीर—नी० हि०

भरतादिक सतकवि कहै बिभचारी[1] तैंतीस।
वरनत छल चौतीसयो एक[2] कविन के ईस ॥१०१॥

[1] सचारी—का०। [2] चौतीसये ए—का०, वरनत पुनि चौतीस ए सकल—नी० हि०।

छल-लक्षण :

अपमानादिक करन को कीजै क्रिया छिपाव।
वक्रउक्ति अतर [1]कपट सो वरनै छल भाव ॥१०२॥

[1] कृपा—नी० हि० का०। [2] कछू—नी० हि०। [3] वरनहु—ज० सा०, वरणन—नी०, वरनत—हि०।

उदाहरण

स्याम सयाने कहावत है कहौ आजु को[1] काहि सयानु है दीन्हो।
देव कहे दुरि दौरि[2] कुटीर मे आपनो वैर वधू उहि[3] लीन्हो।
चूमि गई मुख औचकही पट लै गई[4] पै इन वाहि न चीन्हो।
छैल भले छल[5] ही मैं छले दिन ही मैं छबीली भलो छल कीन्हो ॥१०३॥

[1] कहौ काहे धौ—का०। २ टेर—भा० सा०, ०—नी०, टेरि—हि०। [3] तेहि—नी० हि०। [4] द्रग—सा०। [5] छिन—भा० सा० का०।

सका सूया भय[1] ग्लानि धृति सुमृति नीद मति।
चिंता विस्मय व्याधि हर्ष उत्सुकता[2] जडगति॥
मद विषाद उन्माद लाज अवहित्थहि जानहु।
सहित चपलता ए विशेष सिंगार वखानहु॥
अरु समान मत[3] सभोग मैं सकल भाव वरनन करौ।
आलस्य उग्रता भाव द्वै[4] सहित जुगुप्सा परिहरौ ॥१०४॥

[1] गर्व—ज०। [2] उत्कठा—का०। [3] मति अरु समान—ज०॥ [4] ए—का०।

आलस ग्लानि निर्वेद[1] श्रम उत्कठा जड योग।
सकापसुमृति अववोधोन्माद वियोग[2] ॥१०५॥

[1] अलस ज्ञान निर्वेद—नी० हि०, अल ग्लानि निर्वेद—ज०। [2] सका सुमृति सु स्वास औ यो उन्माद विशोग—नी० हि०, सका सुमरति सुस्वास औ वोधोन्माद विशोग—सा०।

इति द्वितीय विलास।

जो [1]विभाव अनुभाव अरु व्यभिचारिन[2] करि[3] होइ।
थिति की पूरन वासना[4] सुकवि कहत रस[5] सोइ ॥१॥

[1] जे—नी०हि०। [2] सचारिन—का०। [3] के—नी०हि०। [4] थिति के पूरन ते सबै—नी०हि०। [5] है—नी०हि०।

जोहि प्रथम[1] अनुराग मैं नहि पूरव[2] अनुराग।
नो कहिये दपतीन के जन्मान्तर के भाव ॥२॥

[1] जोर प्रथम—ज०, जे प्रथमे—नी०हि०। [2] पूरन—ज०।

ताहि विभावादिकन ते[1] थिति सपूरन जानि।
लौकिक और अलौकिकहि द्वै विधि कहत वखानि[2] ॥३॥

[१] के—ज० हि० । [२] लौकिक ही द्वै विधि कहत कवि भरतादि बखानि—का० ।

नयनादिक इद्रियनि[१] के जो गहि लौकिक जान[२] ।
आतम[३] मन सजोग ते होय अलौकिक ज्ञान[४] ॥४॥

[१] पहिचान—नी०हि० । [२] मानु—नी०हि० । [३] उत्तम—नी०हि०, आत्मा—ज० । [४] आन—ज०, जानु—नी०हि० ।

कहत अलौकिक तीन विधि प्रथम स्वापनिक मान[१] ।
मनोरथ कवि देव[२] अरु[३] उपनायक[४] बखान ॥५॥

[१]स्वप्न को नाम—नी०हि०, स्वापनिक जानु—का० । [२] कहि देव—का० । [३] कहि—नी०हि० । [४] उपनायकहि—ज० ।

स्थापनिक-उदाहरण ।

सोइ गई अभिलाख भरी तिय सापने मे[१] निरखे नँदनदन ।
देव कछू[२] हँसि बात कही पुलके सु हिये झलके जल के कन ।
जागि परी नव ऊढ[३] बधू ढिग ढ़ूँढति गूढ सनेह सनी धन ।
सोच सँकोच अगोचर तीय[४] त्रसै बिलसै[५] बिहँसै मन ही मन ॥६॥

[१] अभिलाखन सौ निसि यो सुपने—का०, सपने मे तिय—नी०हि० । [२] कहै—नी०हि० [३] है नवोढ—नी०हि०, तब जेठ—का० । [४] अगोचति यत्र—नी०हि० । [५] हँसै हुलसै—नी०, हँसै जलसै—हि० ।

मनोरथ-उदाहरण ।

कालिदी कूल भयो अनुकूल कहूँ घरवार घिरै[१] नहि घेर्‌यो[२] ।
मजुल वजुल साल[३] रसाल तमालनि के वन लेत बसेर्‌यो ।
केलि करीर[४] कदबन बीच जु[५] कानन कुज कुटीन मै टेर्‌यो ।
मोहनलाल की सूरति के सँग डोलत माइ[६] मनोरथ मेर्‌यो ॥७॥

[१] घरघेर घिरै—नी०हि०, घरवार घिरो—भा०, घरवा घिरै—का० । [२] नाहिन घेरो—का० । [३] बेत ससाल—नी०, वेत रसाल—हि० । [४] करै री—भा० । [५] सु—का० । [६] माय—ज० ।

उपनायक-उदाहरण ।

झूमक दैन[१] जसोमति के जुवतीन[२] कौ आजु समाज सिधायो ।
स्याम को सुदर भेष बनाइ कै आइ वधू[४] इक वेनु बजायो ।
हास मे रास रच्यो कवि देव बिलास कै[५] ही मे हुलास बढायो ।
नाचत वाहि[६] सखी सबही के हियै[७] सुख सिधु को पार न पायो ॥८॥

[१] रैन—भा० । [२] जु अलीन—ज० । [३] रूप—नी० हि० । [४] सखी—नी० हि० । [५] विलास के—भा० । [६] ताहि—का० । [७] सब ही के उर मे—का० ।

लौकिक रस ।

कहत अलौकिक[१] त्रिविधि विधि[२] यहि विधि बुध बलसार[३] ।
अब[४] बरनत कवि देव कहि लौकिक नव परकार ॥९॥

[१] सुलौकिक—भा०। [२] रस—ज०, वुध—का० सा०। [३] लौकिक कछु वुधि कुवुधि कहि कहियो वुधि वलसार—नी०हि०। [४] अरु—का०।

प्रथम होइ सिंगार दूसरो हास्य सु जानहु।
तीजो[१] करुना कहो चतुर्थी रौद्र सु मानहु[२]।
वीर पाँचवो[३] जानि भयानक छठो वखानहु।
सातवो[४] कहि वीभत्स आठवो अदभुत आनहु[५]।
यहि भाँति आठ विधि कहत कवि नाटक मत भरतादि सव[६]।
अरु सात[७] यूत[८] मत काव्य के लौकिक रस[९] के भेद नव ॥१०॥

[१] तीजे—नी०। [२] बहुरि रौद्र रस जानि—हि०, वीर सु जानहु—नी०, रौद्र मानो—सा०, रौद्र जानो—का०, रौद्रहि मानहु—ज०। [३] वहुरि रौद्र रस—नी०। [४] सप्तम—नी० हि०। [५] मानहु—नी० हि०। [६] नारद भरतादि कहु—नी०हि०। [७] सव अरु—नी०। [८] यतन—भा०, सुरस—नी० हि०, जुते—ज०। [९] अलौकिक रस—का०, लोक कर्म के —नी०हि०।

सकल सार शृगार है सरस माधुरी धाम।
स्यामहि के चरनन वरन[१] दुःखहरन अभिराम ॥११॥

[१] स्यामहि के चरनन वरन—का०, सो याही वरनन करौं—नी० हि०।

याही ते[१] सिगार रस वरनि कह्यो कवि देव।
जाको है हरि देवता सकल देव अधिदेव ॥१२॥

[१] ताही ते—सा० ज०।

शृंगाररस-लक्षण।

आपुस मैं तिय पुरुष के[१] पूरन रति जो होइ।
ताही सो शृगार रस कहत सुकवि सव कोइ[२] ॥१३॥

[१] मिलि—नी० हि०। [२] वरनि कहे कवि लोइ—का०।

उदाहरण।

वारेक[१] द्वार तुम्हे लखि कै सखि लाल के लोइन लोल रहे[२] लुभि।
आजु[३] इतै पर भेट भई यहि[४] रीझि रहे[५] कवि देव खरी[६] खुभि।
तैंसिय तै चितई हँसि वै सु[७] रहे छकि नैनन की[८] छवि सो छुभि।
नेह भरी यह प्यारी तिहारी तिरीछी चितौनि गई चित मे चुभि ॥१४॥

[१] वारके—ज०। [२] लोल भये—नी० हि०। [३] औजु—नी०। [४] लखि—नी० हि०। [५] रही—सा०ज०। [६] सखी—नी०। [७] हँसि को सु—नी०हि०। [८] नैननमे—नी०हि०।

द्वै प्रकार सिंगार रस है[१] सयोग वियोग।
सो प्रच्छन्न प्रकास करि[२] कहत चारि विधि लोग ॥१५॥

[१] है रस—नी० हि०। [२] कहि—नी० हि०।

देव कहै[१] प्रच्छन्न सो जाको दुरो विलास।
जानहि जाको सकल जन वरनै ताहि प्रकास ॥१६॥

[१] सु है—नी० हि० ।

प्रच्छन्नसंयोग-उदाहरण ।

वाजी हरै[१] रसना रसकेलि मै कोमल कै विछियानि[२] की वानी ।
प्यारी रही परजक निसक ह्वै[३] प्यारे के अक महासुख सानी ।
यौ पग[४] चाँपि चढी उतरी रँगरावटी आवत जात न जानी ।
छोलि छिपाइ[५] न खोलि हियो कवि देव[६] दुहूँ दुरि कै[७] रति मानी ।।१७।।

[१] वाजि रही—भा० सा० । [२] कज वियानि—ज० । [३] निसक कै—का० । [४] म्वै पग—सा०, ज्यो पग—ज० । [५] छोडि छिपाइनु—सा० । [६] कहि देव—का० । [७] दुहूँ दरि कै—का० ।

प्रकाश संयोग-उदाहरण ।

सोधे की सुवास आसपास भरि भौन रह्यौ भरत उसास वास वासन[१] वसात है ।
ककन झनित[२] अगनित रव किकिनी के नूपुर रनित[३] मिले मनित[४] सुहात है ।
कुडल हलत[५] मुखमडल झलमलात झूलत[६] दुकूल भुजमूल महरात है ।
करत विहार कवि देव वार वार वार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात है[७] ।।१८।।

[१] वसन—नी० । [२] झनक—नी० हि० ज० । [३] झनक—नी० हि० । [४] भनित—नी० हि० । [५] लहत—सा० । [६] झलक—नी० हि० ज० । [७] कवि देव दत्त दोऊ मिलि छूटि जात वार हार टूटि टूटि जात है—नी० हि० ।

हाव-लक्षण ।

नारिन के संयोग ते होत विविध विधि भाव ।
तिनमे भरतादिक सुकवि वरनत है दस हाव ।।१९।।

हाव-नाम ।

पहिले लीला हाव वहुरि सुविलास वरनिये ।
ताते कहि[१] विछित्ति वहुरि विभ्रम[२] कहि गनिये ।।
किलकिंचित तव कह्यौ[३] वहुरि[४] मुट्टाइत वरनहु[५] ।
ताते कहु कुटमित वहुरि विव्वोकहु मानहु[६] ।।
कवि देव कहै फिरि ललित कहु[७] ताते विहित कहे सरस ।
एहि भाँति विविध विधि विवुधवर[८] वरनत है ए[९] हाव दस ।।२०।।

[१] कऊ—भा०, कहु—सा० । [२] विश्रम—नी० । [३] को वरनि—नी० हि० । [४] तवै—भा० । [५] मानहु—भा० । [६] विहित ता कहि सुनि करनहु—नी० हि० । [७] सु कहत विलोक करि कहे—नी० हि० । [८] विधि वरनिये—ज०, विधि कविराज वर—नी० हि० । [९] कवि वर—भा० सा० ।

लीला-उदाहरण ।

कौतुक ते[१] पिय की करै भूपन भेप उन्हार ।
प्रीतम सो परिहास जहँ[२] लीला लेहु[३] विचार ।।२१।।

[१] तिय—का० । [२] यह—नी० हि० । [३] हाव—नी० हि० ।

उदाहरण ।

कालि्ह भटू वनसीवट के तट खेल[१] बडो इक राधिका कीन्हो ।
साँझ निकुंजनि माँझ बजायो जु स्याम को वेनु[२] चुराइ कै लीन्हो ।
दूरि ते दौरत देव गये सुनिकै धुनि रोम[३] महा चित चीन्हो ।
संग की औरै उठी हँसि कै तव हेरि हरे हरि जू[४] हँसि दीन्हो ॥२२॥

[१] ख्याल—नी॰ हि॰, हास—का॰ । [२] वीनु—नी॰ हि॰ । [३] राम—का॰ । [४] जु हरै—का॰ ।

विलास-लक्षण ।

प्रिय दरसन सुमिरन श्रवन जहँ अभिलाख प्रकास ।
वदन गमन[१] नयनादि कौ जो विशेष सु विलास[२] ॥२३॥

[१] मगन—भा॰ । [२] जो तु सरस विलास—का॰ ।

उदाहरण ।

आजु अटा चढि आई घटानु मैं विज्जुछटा सी वधू वनि कोऊ ।
देव तिया[१] कवि देवन केतिये[२] एतो हुलास विलास न ओऊ ।
पूरन पूरव[३] पुन्यन ते वडभागि विरंचि रच्यो जन[४] सोऊ ।
जाहि[५] लखै लघु अंजन दै दुखभंजन ये[६] दृग खंजन दोऊ ॥२४॥

[१] त्रिया—सा॰ । [२] देवजू केतिय—नी॰, देवन केती पै—का॰ हि॰ । [३] पूरव पूरन—नी॰, पूरव पूरव—हि॰ । [४] सखि—का॰ । [५] वाहि—सा॰, ताहि—ज॰ । [६] दुख-भंजन दै—नी॰ हि॰ ।

विच्छित्त-लक्षण ।

सुहाग रिस[१] रस रूप[२] ते वढै गर्व[३] अभिमान ।
थोरेई भूपन जहाँ सो विच्छित्त वखान ॥२५॥

[१] पिय सोहाग—नी॰ हि॰, अति रिस—का॰ । [२] सो सरूप—नी॰ । [३] गर्भ वढ़ै—नी॰ हि॰ ।

उदाहरण ।

भाग सुहाग को गर्व वढ्यौ सु रहै अभिमान[१] भरी अलवेली ।
वेसरि वेंदी न[२] केसरि खौरि वनावै न[३] सेंदुर सीक[४] सहेली ।
भूलेहू भूपन भेषु न और करै कहि[५] देव विलास की वेली ।
मोहनलाल के मोहन को यह पैन्हति[६] मोहनलाल[७] अकेली ॥२६॥

[१] सु नहै अनुराग—का॰ । [२] वदनि—भा॰ । [३] वनावत—नी॰ हि॰ । [४] रक सुहेली—भा॰, सीक लहेली—नी॰, सीफ सहेली—हि॰ । [५] कवि—नी॰ हि॰ का॰ । [६] पेवति—भा॰ सा॰, पहिरति—ज॰, पहिरे यह—का॰ । [७] मोतिनमाल—नी॰ हि॰ ।

विभ्रम-लक्षण ।

उलटे जहँ[१] भूपन वसन[२] वेप हँसै जन[३] जाहि ।
भाग रूप अनुराग मद विभ्रम वरनहु[४] ताहि ॥२७॥

[1] उलट जाहि—नी० हि० । [2] वचन—भा० सा० । [3] जहँ—का० । [4] वरनै—भा० ।

उदाहरण ।

स्याम सो केलि करी निसि सोत ते[1] प्रात उठी थहराइ कै ।
आपने चीर के धोखे बधू पहिर्यो पटु पीत भटू भहराइ कै ।
बाँधि लई कटि सो बनमालन किंकिनी बाल लई ठहराइ कै ।
राधिका की रस रग की दीपति सग की हेरि हँसी हहराइ कै ॥२८॥

[1] सोवत—नी० हि० ।

किलकिंचित-लक्षण ।

किलकिंचित मै चपलता नहि कारज[1] निरधार ।
श्रम मद[2] भय अभिलाष अरु[3] सुमृत गर्व[4] इकबार ॥२९॥

[1] काज—नी० हि० । [2] सम दम—भा०, श्रम मुद—का० । [3] रुख—भा० सा०ज० । [4] नखमित गई—नी० ।

उदाहरण ।

पाँइ परै पलिका पै[1] परी तिय सकति सौतिन होति न सौही[2] ।
ऐंचि कसी[3] फुफुँदी की फुँदी भुज दाबि दुहूँ छतियाँ हुलसोही ।
काँपि कपोलनि चाँपि हथेरिन्ह[5] झाँपि रही मुख[6] डीठि[7] लसौही ।
त्यो सकुचोही उचोही[8] रुचोही ससोही हँसोही रिसोही रसोही[9] ॥३०॥

[1] पलगा पै—सा० । [2] सकित कपत सोतिन सौही—का०, हीतिन सौही—नी०हि० । [3] औचकही—नी० हि० । [4] अलसौही—सा० । [5] रहै थिर—नी० हि० । [6] हाँथि हथेरिन्ह सो मुख—नी० हि० । [7] योही—नी० हि० । [8] ०—नी० हि० । [9] सिसोही —नी० हि० ।

मोट्टाइत-लक्षण ।

सौति[1] त्रास कुल लाज ते कपट प्रेम मन होइ[2] ।
सुमुख होइ चित विमुख ह्व[3] कहौ मोटायितु सोइ ॥३१॥

[1] सौह—नी० हि० । [2] प्रमान जु होइ—ज०, प्रेम नहि होइ—नी० हि० । [3] सनमुख ह्वै चितवै जु मुख—नी० हि०, सन्मुख ह्वै न विमुख ह्वै—का० ।

उदाहरण ।

राधिका रूठी कछू दिन ते कवि देव कछू[1] न सुनै कछू[2] वोलै ।
नैकु चितौति नही चितु दै रस हास[3] कियेहू हियेहू न[4] खोलै ।
आवति लोक की लाज के काज यही मिस सौतिन को सुख[5] छोलै ।
स्याम के अग सो अग लगावै न[6] रग मै[7] सग सखीन के[8] डोलै ॥३२॥

[1] वधू—भा० । [2] नहि—नी०हि० । [3] हाल—भा० । [4] हियेहू खोलै—सा०, हियो नहि—नी० हि० । [5] सौतिन को मुख—नी० हि०, सौतिन स्वारथ—का० । [6] अग छुआवै न—नी० हि० । [7] रग सो—का० । [8] सखीन मै—का० ।

कुट्टमित-लक्षण ।

कुच ग्रहन[१] रददान ते उत्कठा अनुराग ।
दुखहू मै सुख होइ जहँ कुटमित कहु[२] सभाग ॥३३॥

[१] कुच ग्राहन—भा०, कुच ग्रहनख—नी० हि० । [२] कुटमित कहै—भा०, कहि कुट-मित—हि० ।

उदाहरण ।

नाह सो नाही ककै मुख सो[१] सुख सो रति[२] केलि करै रतिया मैं ।
देत रदच्छद सीसी करै कर ना पकरै[३] पै वकै[४] वतिया मैं ।
देव किते[५] रति कूजित कै तन कप सजै न[६] भजै घतिया[७] मैं ।
जानु भुजानहू को[८] भहरावति आवति छैल लगी छतिया मै ॥३४॥

[१] कढै मुख सो—नी० हि०, ककै सुख सो—भा० । [२] रस—का० । [३] करुना यकरै—सा० ज० हि० । [४] जु वकै—का० । [५] देत किते—नी० हि० देव हिते—सा० । [६] तजै न—नी० हि० । [७] छतिया—भा० । [८] भुजानहू के—का० ।

बिव्वोक-लक्षण ।

प्रिय अपराध धनादि मद[१] उपजै गर्व विकार[२] ।
कुटिल डीठि अवयव चलन[३] सो विव्वोक विचार ॥३५॥

[१] अपराधी होइ जव—नी० हि० । [२] किवार—भा० सा० । [३] अवये वचन—नी० हि०, अरु अथवचन—ज०, अवहित्थ जह—का० ।

उदाहरण ।

स्यामले[१] सौति के सँग वसे निसि अँगन वाहि के रग रचाइ कै ।
आए इतै परभात लजात से वोलत लोचन लोल लचाइ कै[२] ।
देव को देखि कै दोप भरे तिय पीठि दई उत दीठि वचाइ कै ।
ज्यो चितई अरसोहैं रिसोहे सु सोहैं[३] सखीन के भौहै नचाइ कै ॥३६॥

[१] साँवरे—ज० । [२] चलाइ कै—सा० । [३] सो सौहैं—नी०, से सोहै—हि० ।

ललित-लक्षण ।

मन प्रसाद पति वस करन[१] चमत्कार अति[२] होइ ।
सकल अग रचना ललित ललित वखानै सोइ ॥३७॥

[१] अति वास कर—नी० हि०, पिय वस करत—का० । [२] चित—भा० सा० ।

उदाहरण ।

पूरि रहे पहिले पुर[१] कानन पौन के गौन सुगन्ध[२] समाजनि ।
गान सो गुज निकुज उठे कवि देव सु भौरनि[४] की भई[५] भाजनि ।
दूरि ते देखी मसाल सी वाल मिली[६] मुख भूषन वेप विराजनि[७] ।
जानि परी वृपभान सुता जव कान परी विछियानि की वाजनि ॥३८॥

[१] पहिले सुर—नी०, पहिले सुख—हि०, पहिले उर—ज० । २ सगधि—सा० ।
[३] वढै—नी० हि० । [४] सु भौर—सा० । [५] की भय—नी०, पय भय—हि०, भई भय—

सा०। [६] वली सु लला—ज०। [७] मुख की दुति चद बिराजनि— का०।

विहृत-लक्षण।

व्याज लाज ते चेष्टा और[१] और व्यवहार[२]।
पूरैं पिय अभिलाष तिय ताही[३] विहृत विचार ॥३९॥

[१] ऊठ अरु—नी० हि०। [२] विचार—भा० सा०। [३] ते ता कह—नी० हि०।

व्याजविहृत-उदाहरण।

बृषभान की जाई कन्हाई के कौतिक[१] आई सिगार सवै सजि कै।
रस हास हुलास विलासनि सौ कवि देव जू[२] दोऊ रहे रँजि कै।
हरि जू हँसि[३] रग मैं[४] अग[५] छुयो तिय सग सखीनहू को[६] तजि कै।
उठि धाई भटू भय के[७] मिस[८] भावती[९] भीतरे भौन गई भजि कै[१०] ॥४०॥

[१] कौतुक—भा०, केतिक—नी० हि०। [२] कहि देव जू—नी० हि०। [३] हरि हू हरि—नी० हि०, हरि जू हरि—सा०। [४] रग सो—नी० हि०। [५] रग—का०। [६] सखीन को ना—नी० हि०। [७] सबके—नी० हि०। [८] बस—ज०। [९] धावती—नी० हि०। [१०] भजि गई भजि कै—नी० हि०।

लाजविहृत-उदाहरण।

भेट भई हरि भावती सो[१] इक ऐसे मै आली कह्यो विहँसाइ कै।
कीजै लला रस केलि[२] अकेली ए[३] केलि के भौन नवेली को पाइ कै।
भौहै भ्रमाइ कछू इतराइ कछूक रिसाइ कछू मुसक्याइ कै।
खैचि खरी दई दौरि[४] सखी के उरोजनि बीच सरोज फिराइ कै ॥४१॥

[१] भावते सो—नी० हि० भा०। [२] रस रीति—का०। [३] अकेली कै—नी० हि०। [४] दोरि—ज०, हेरि—का०।

वियोग-शृंगार।

सुखद श्रवन दरसन परस जहाँ परस्पर नाहि।
सो वियोग शृगार जहँ मिलन आस मन माहि[१] ॥४२॥

[१] श्रवन कदाचित कै दरस परै परस्पर नाहि। मिलै न सुहृद सनेह सो जहँ सु वियोग वदाहि—का०।

वियोग-शृंगार-भेद।

कहु पूरब अनुराग अरु मान प्रवास बखान।
करुनातम[१] एहि भाँति करि वियोग चौविधि जान[२] ॥४३॥

[१] करुणा भृम—नी० हि०। [२] चारि वियोग विधान—का, विप्रलभ यो जान—नी० हि०।

पूर्वानुराग-लक्षण।

दपतीन के[१] देखि सुनि[२] बढै परस्पर प्रेम।
सो पूरब अनुराग जहँ मन मिलिवे को नेम ॥४४॥

[१] दपतीन मै—का०। [२] देखे सुने—हि०।

दर्शन-उदाहरण।

देव जू दोऊ मिले पहिले दुति देखत ही ते[1] लगे दृग गाढे।
आगे ही ते गुन रूप सुने तवही ते हिये अभिलाप ह्वै[2] वाढे।
ता दिन ते इत राधे उतै हरि आधे भये जु वियोग के वाढे।
आपने आपने[3] ऊँचे अटा चढि द्वारन दोऊ[4] निहारत ठाढे ॥४५॥

[1] देखत ही जु—का०। [2] अभिलापहि—भा०, अभिलाखनि—ज०। [3] ०—का०।
[4] दोऊ कुमार—का०।

श्रवण-उदाहरण।

सुदरता सुनि देव दुहूँ के रहे गुन सो गुहि कै मन मोती।
लागे हैं देखिवे को दिन-रात गिने गुरुहू नहिं सौ किन गोती[1]।
देह[2] दुहूँ की दहै विनु देखे सु देखि दसा निसि सोवत कोती।
होती कहा हरि राधिका सो कहूँ नैकौ दई पहिचान जो होती ॥४६॥

[1] न हँसै किन गोती—नी० हि०, न हँसौ किन गोती—सा०। [2] देव—भा० सा०।

कृष्ण-पूर्वानुराग-उदाहरण।

वारा लतान[1] मैं वाल को वोल सुन्यो कहुँ सग सखीने के टेरत[2]।
काहू कही हरि राधा यही दुरि[3] देवजू देखि इतै मुख फेरत।
है तवते पल एक नही कल लाखनि लौं[4] अभिलाखनि घेरत।
वाही[5] निकुजहि नद कुमार घरीक मैं वार हजारक हेरत ॥४७॥

[1] लोल लतान—का०। [2] हेरत—ज०। [3] डरि—ज०, कवि—नी० हि०। [4] लाखनि हू—का०। [5] पाही—भा० सा० का०।

राधिका-पूर्वानुराग-उदाहरण।

साँसनि ही सौ समीर गयो अरु आँसुन ही सव नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तन की तनुता करि।
देव जियै[1] मिलिवेही की आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन ते मुख फेरि हरै[2] हँसि हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि ॥४८॥

[1] जीव रह्यो—नी० हि० का०। [2] हरे—सा० ज० हि०।

दस दशा-नाम।

प्रथम कहो अभिलाप वहुरि चिंता सुमिरन कहु।
ताते है[1] गुन कथन वहुरि उद्वेगहि वरनहु।
फिर[1] प्रलाप उन्माद व्याधि अरु जड़ता जानौ।
वहुरि मरन यहि भाँति दसावस्था[2] उर आनौ।
ए होंइ[3] पूर्व अनुराग मैं दोउन के कवि देव कहि।
अरु[4] मरन न वरनत एक[5] कवि जो वरनै तो रसहि गहि ॥४९॥

[1] पुनि—नी० हि०। [2] अवस्था दस—भा० सा०। [3] यहि—नी० हि०। [4] अरु एक—भा०। [5] ०—भा०।

चिता जडता व्याधि अरु सुमिरन मरनुन्माद[१]।
सचारिन मै है कहे दपति विरह विषाद ॥५०॥

[१] जडनुन्माद—नी०, ऊ उन्माद—हि०।

अभिलाष-लक्षण।

प्रीतम जन के मिलन की इच्छा मन मे[१] होय।
आकुलता सकल्प बहु[२] कहु अभिलाष जु सोय ॥५१॥

[१] मन की—ज०। [२] सकुलय बहु रि—ज०।

उदाहरण।

पहिले सतराइ रिसाइ सखी जदुराइ पै पाइ गहाइये तो।
फिरि भेटि भटू भरि अक निसक बडे खन लौ उर लाइये तो।
अपनो दुख औरनि[१] कौ उपहास सबै कवि देव बताइये तो।
घनस्यामहि नेकहु[२] एक घरी कौ इहाँ लगि जो करि पाइये तो ॥५२॥

[१] औरति—ज०। [२] तेकहि—ज०। यायतो—ज०।

गुणकथन-लक्षण।

पिय के सुदरतादि गुन बरनै प्रेम[१] सुभाइ।
साभिलाष सो[२] गुन कथन[३] बरनत कोविदराइ[४] ॥५३॥

[१] सबै—नी० हि०। [२] साभिलाप जो—भा०। [३] गुन कथा—सा०। [४] कोविद गाइ—हि०।

उदाहरण।

दामिनि ह्वै रहिये[१] मन आवत मोहन को घन सो तन घेरे।
देव[२] को देखिये री दिन रातिहू कोई करौ किन कोटि कटेरे[३]।
स्याम की सुदरताई कहौ कछु होहि जो जीभ हजारक[४] मेरे।
केवल वा मुख की सुषमा पर सौक[५] ससी गहि वारि के फेरे ॥५४॥

[१] रहिजो—नी० हि०। [२] वाही—भा० सा०। [३] करेरे—भा०, कहेरे—नी०।
[४] हजारन—भा०। [५] कोटि—भा० सा०।

प्रलाप-लक्षण।

अति उत्कंठा मन भ्रमन पिय जनही को जाप[१]।
देव कहै कोविद सबै बरनत[२] ताहि प्रलाप ॥५५॥

[१] लाप—भा०। [२] वाचहु—का०।

उदाहरण।

पुकारि कही मै दही कोउ लेहु यही सुनि आइ गयो उत धाई[१]।
चितै कवि देव चलेई चले[२] मन मोहन[३] मोहनी तान सी गाई।
न जानति और कछू तवते मनमाहि वहीयै[४] रही छवि छाई।
गई तौ हती दधि वेचन बीच[५] गयो हियरा हरि हाथ बिकाई ॥५६॥

[१] इत धाई—नी० हि०, जदुराई—ज०। [२] चितैइ चलै—नी० हि०, चलौई चलौ—

का० सा० । [३] मोहनी—भा० । [४] वही पै—भा० सा० ज० हि० । [५] वीर—भा०, कौसु—का०, नीच—नी० हि० ।

उद्वेग-लक्षण ।

जहँ प्रियजन के अनमिले होइ अनादर प्रान ।
भली वस्तु नागा लगे सो उद्वेग वखान ।।५७।।

उदाहरण ।

विरह के धाम ताई वाम तजि धाम धाई पाई प्रतिकूल कूल कालिदी की लहरी ।
याते न अन्हाई[१] जरै जोवत[२] जुन्हाई ताते चितै[३] चहूँ ओर देव कहै यहै हहरी ।
वारिज वरत[४] विन वारे वारि[५] वारु वीच वीच वीच वीचिका[६] मरीचिका सी छहरी ।
चड[७] मारुतंड कै[८] अखड विधु मडल[९] है कातिक की राति किधौ जेठ की दुपहरी ।।५८।।

[१] या तेज अन्हाति—नी०, याते न अन्हाति—हि० । [२] जोवन—भा० ज० । [३] तचिलकै—नी०, न चिलकै—हि० । [४] वरज—नी० हि०, वरन—ज० । [५] वीर—नी० हि० । [६] कामरी—ज०, कामकी—सा० । [७] चद्र—ज० । [८] सो—का० । [९] व्रज मडल—भा० का० ।

मान-लक्षण ।

पति परपतिनी रति करत[१] पतिनी करति जु मान ।
गुरु मध्यम लघु भेद करि ताह्र त्रिविधि[२] वखान ।।५९।।

[१] करन—ज० । [२] ताहि अवध्य—नी० हि० ।

मान-भेद ।

पति पर परतिय[१] चिन्ह लखि करति त्रिया गुरु मान ।
मध्यम ताको नाम सुनि ता दरसन[२] लघु जान ।।६०।।

[१] रति तिय—नी० हि०, पति तिय—ज० । [२] दरसन ता—नी० हि० ।

गुरु मान-उदाहरण ।

सौति की[१] माल गुपाल गरे लखि वाल कियो मुख रोप[२] उज्यारो ।
भौही भ्रमी करिकै[३] अधरा निकस्यो रँग नैननि के मग न्यारो ।
यो[४] कवि देव निहारि निहोरि दोऊ कर जोरि पर्‌यो पग प्यारो ।
पी को उठाइ के प्यारी कह्यो तुमसे कपटीन को काहि[५] पत्यारो ।।६१।।

[१] मोती की—नी० हि० । [२] रोजु—नी० हि० । [३] भ्रमै फरकै—नी० हि० । [४] ज्यो—का०, त्यो—भा० । [५] कौन—नी० हि० ।

मध्य मान-उदाहरण ।

वाल के सग गोपाल कहूँ निसि सोवत[१] सौति को नाम उठे पढि ।
यो[२] सुनि के पटु तानि परी तिय[३] देव कहै मन[४] मान गयो वढि ।
जागि परी[५] हरि जानी रिसानी सी सौहै प्रतीति करी चित मै चढि ।
आँसुन सो सताप[६] वुझ्यो अरु साँसन सो सव कोप गयो कढि ।।६२।।

[१] मिस सोत मैं—भा० सा० । [२] प्यो—सा० । [३] कवि—का० । [४] इमि—भा० ।

[5] परे—सा० । [6] तन ताप—नी० हि० ।

लघु मान-उदाहरण ।

बैठे हुते रँगरावटी मै जिनके अनुराग रँगी ब्रजभूम्यो ।
किंकिनी काहू कहूँ झनकाई सु झाँकन कान्ह[1] झरोखा ह्वै झूम्यो ।
देव परत्रिय देखत देखि कै[2] राधिका को मन मान सो घूम्यो ।
बातै बनाइ मनाइ कै लाल हँसाइ के बाल हरे मुख चूम्यो ॥६३॥

[1] काहू—भा० सा० का० । [2] दोष कै—नी० । [3] कामिनी—नी० हि०, भावती—का० ।

मान-मोचन-उपाय ।

साम दाम अरु भेद करि[1] प्रनति उपेच्छा भाइ ।
अरु प्रसग विभ्रस[2] ये मोचन मान उपाइ ॥६४॥

[1] पुनि—का०, अरु—ज० । [2] विध्वस—नी० हि० सा० ।

साम छमापन सो[1] कह्ै इष्ट दान[2] सो[1] दान ।
भेद सखी सम्मत[3] मिलै प्रनति नम्रता[4] जान ॥६५॥

[1] को—भा० सा० । [2] हर्ष दान—नी० हि०, दष्ट्र दान—ज० ।। [3] समते—का०, समता—नी० हि०, सम्मति—ज० । [4] ऊनता—का० ।

वचन अन्यथा अर्थ जहँ सो उपेक्षा की रीति[1] ।
सो प्रसग विभ्रस[2] जहँ अकस्मात[3] सुख भीति ॥६६॥

[1] होइ उपेक्षा रीति—ज०, सुनुपेक्षा की रीति—भा० । [2] विध्वस—नी० हि० का० सा० । [3] अकर्मादि—का० ।

उदाहरण ।

आपनोई अपमान कियो पहिराइबे को मनिमाल मँगाई ।
लै मिलई मिस सो कुसखी[1] करि[2] पाय परेहू न[3] प्रीति जगाई ।
केतिक कौतिक[4] बातै कही[5] कवि देव तऊ तिय[6] तोरी सगाई[7] ।
आजु अचानक आइ लला डरवाइ कै[8] राधिका कठ लगाई ॥६७॥

[1] सौ सौ सखी—नी० हि० । [2] फिरि—सा०, यह—ज० । [3] परेऊ न—भा०, दुहुन की—नी० हि० । [4] कौतुक—ज० हि०, कौतिग—सा० । [5] कहै—नी० हि० । [6] तिया तव—नी० हि० । [7] तारी सजाई—नी० हि० । [8] उरलाइ कै—ज० ।

या विधि छऊ[1] उपाय है न्यारे न्यारे जान ।
लाघव ते एकत्रही[2] सबको कियो बखान ॥६८॥

[1] घनै—ज०, छुवै—हि० । [2] लाघवता इकबार ही—नी० हि० ।

देसकाल सविशेष लखि देखि नृत्य सुनि गान ।
जात मनाये हू बिना मानिनीनु को मान ॥६९॥

[1] मानिनि तिय—नी० हि० ।

उदाहरण।

रूठि रही दिन द्वैक ते भामिनि मानी[१] नही हरि हारे मनाइ कै।
एक दिना कहुँ कारी[२] अँध्यारी घटा घिरि आई घनी घहराइ कै[३]।
ओर चहूँ पिक चातक मोर के सोर सुनी सु उठी अकुलाइ कै।
भेटी भटू[४] उठि भावते को धन[५] धोखे ही धाम अँधेरे मै धाइकै ॥७०॥

[१] मानै—नी० हि० का०। [२] राति—सा०। [३] गहराइ कै—सा०। [४] वहू—भा०। [५] इन—का०।

प्रवासवियोग-लक्षण।

प्रीतम काहू काज दै अवधि गयो[१] परदेस।
सो प्रवास जहँ दुहुन को[२] कष्ट कहै[३] विवुवेस ॥७१॥

[१] कियो—नी० हि०। [२] दुहू तन—का०। [३] दुख कहै—नी० हि०।

उदाहरण।

लाल विदेस सु वालवधू वहु भाँति वरी[१] विरहानलही मैं।
लाज भरी गृहकाज करै कहि[२] देव परै न कहूँ[३] कल ही मैं।
नाथ के हाथ के हेरि हरा हिय लागि गई हिलकी गलही मैं।
आँखिन के अँसुवा लखि लोग न लीलि लजीली लिये पलही मै ॥७२॥

[१] वह जात जरी—नी० हि०। [२] कवि—नी० हि०। [३] कहैं न परै—नी० हि०। [४] वाल—का०।

देव कहै बिन कत वसत न जाहु कहूँ घर वैठि रहौरी।
हूक हिये[१] पिक कूक सुने[२] विष पुज निकुजनि[३] गुजति[४] भौरी।
नूतन नूतन के वन वेषन देखन जाति तौ हौ[५] दुरि दौरी।
वीर बुरो मति मानौ वलाइ ल्यो होहुँगी वौर[७] निहारत वौरी ॥७३॥

[१] हो कहिये—ज०। [२] कूकन सा—सा०। [३] कुजनि के जनि—नी० हि०। [४] बोलति—का०। [५] ही तौ—नी० हि०, हु हौ—सा०। [६] जनि—नी० हि०। [७] वौरी—नी० हि०, वौर—ज०।

जागी न जुन्हैया यह आगी[१] मदनज्वर की[२] लागी लोक तीनो हियो हेरे[३] हहरतु है।
पारि[४] परजारि जल जतु जारि[५] वारि वारि वारिधि ह्वै[६] वाडव पताल पसरतु है।
धरनि ते[७] धाइ झर फूटी[८] नभ जाइ[९] कहै देव जाहि जोवत[१०] जगत ज्यो जरतु है।
तारे चिनगारे ऐसे चमकत चारो ओर वैरी विधु मडल भभूको सो वरतु है ॥७४॥

[१] जुन्हाई लागी आगि—नी० हि०। [२] मनोभव की—नी० हि०, मदन की—का०। [३] हेरि हेरि—नी० हि०, हियो हेरे—सा०। [४] वारि—नी० हि०, पीर—सा०। [५] जरे जलजात जरि—नी० हि०, जारि जलजत जारि—ज०। [६] वारिद के—नी० हि०, वारिधि हू—सा०। [७] धरती ते—भा० सा०। [८] झुर रवि फूटी—ज०, लाई झरि छूटी—नी० हि०। [१०] जाहि जोवन—ज०, याहि जियत—नी० हि०।

व्याकुल ही[१] विरहज्वर[२] सो सुभ पावन जानि जनीनु[३] जगाई।
घोरि[४] घनो रग केसरि कौ[५] गहि बोरी गुलाल के रग रँगाई[६]।
त्यो तिय[७] साँस लई गहरी कहि री उनसो[८] अब कौन सगाई।
ऐसे भये निरमोही महा हरि हाय हमै बिनु[९] होरी लगाई ॥७५॥

[१] है—नी० हि०। [२] विरहानल—का०। [३] सखीन—नी० हि०। [४] घेरि—नी० हि०। [५] केसरि की—सा०। [६] गुलाल मे वाल लगाई—नी० हि०। [७] सौतिय सास—सा०, ०—नी० हि० का०। [८] उनसो हमसो—नी० हि० का०। [९] हरि—नी० हि०।

नायकवियोग-उदाहरण।

सुधाकर[१] से मुख बानि सुधा मुसक्यानि सुधा बरसै रदपाँति।
प्रवाल से पानि मृनाल भुजा कहि देव लता तन[२] कोमल काति।
नदी त्रिवली कदली जुग[३] जानु सरोज से नैन रहे रस माति।
छिनो भर ऐसी तिया बिछरे[४] छतिया सियराइ कहौ केहि भाँति ॥७६॥

[१] सुधासर—का०। [२] लतान को—भा० सा०। [३] जनु—नी०। [४] छिनो भरि ऐसी छबीली छुटे—का०, जुपै बिछुरै छिन ऐसी तिया—नी० हि०।

करुणात्मक वियोग-लक्षण।

दपतीन मै एक को विषम मूरछा होइ।
जहँ अति व्याकुल दूसरौ[१] करुनातम कहि[२] सोइ ॥७७॥

[१] दूजो अति व्याकुल जहँ—का०। [२] कहि करुणा रस—नी० हि०।

उदाहरण।

कत की वियोगिनि बसत की सुनत बात व्याकुल ह्वै जाति विरहज्वर[१] सो जरिकै।
देव जू दुरत[२] दुखदाई देखो आवतु सो तामै तुम्है[३] न्यारी भई[४] प्यारी जैहै[५] मरिकै।
ऐती सुनि प्यारे कह्यो हाय हाय ऐसी होय[६] अपराधी कौन कहौ सो[७] सुधरि कै।
हरि जू तो हेरे जौ लौ फेरि कहै दूती[८] कछु टेरि उठी तूती तौ लौ[९] तुही तुही करि कै ॥७८॥

[१] विरहानल—नी० हि०। [२] दुरत—नी० हि०। [३] तिन्है—ज०। [४] न्यारी होत—नी० हि०। [५] जैसे—ज०। [६] ऐसी भई—ज० सा०, ऐसी ह्वै—नी० हि०। [७] कहो जू—नी० हि०। [८] कहौ दूरही ते कछू—नी० हि०। [९] ०—नी० हि०।

गोकुल गाँव ते गौन गुपाल को बाल कहूँ सुनि आई अली पर।
व्याकुल ह्वै[१] विरहानल सो तचि[२] घूमि गिरी गुनगौरि गली पर।
हाइ पुकारत आइ[३] गए न सम्हारत वे थिरु नाहि[४] थली पर।
जानि न काहू की कानि करी हरि आनि[५] गिरे बृपभान लली पर ॥७९॥

[१] देव कहै—का०। [२] तब—नी० हि० ज०, तजि—भा०, बरि—का०। [३] धाइ—भा०। [४] ताहि—सा० हि०। [५] हाय—नी० हि०।

कालिय काल महा विष व्याल[१] जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिनु।
ऊरध के अध के उबरे नहि जाकी बयारि बरै तरु ज्यो तिनु[२]।

ता फनि की फन फाँसिनु पै फँदि जाइ फँसे उकसे[3] न कहूँ[4] छिनु।
हा[5] व्रजनाथ सनाथ करी हम होती है नाथ अनाथ[6] तुम्हैं विनु ॥८०॥

[1] महा विकराल—सा०। [2] तनु—का०। [3] फँस्यो उकस्यो—नी० हि०। [4] अजौ—नी० हि०। [5] हे—सा०। [6] अनाथ पै नाथ—भा०।

जहाँ आस जिय जियन[1] की सो करुनातम[2] जानु।
जामैं निहचै[3] मरनु को करुना ताहि वखानु[4] ॥८१॥

[1] जान—नी० हि०। [2] करुणारस—नी० हि०। [3] परचै—का०। [4] सो करुणा रस जानु—नी० हि०।

करुणातम[1] सिगार जहँ रति अरु सोक निदान।
केवल[2] सोक जहाँ तहाँ भिन्न[3] करुण रस जानु ॥८२॥

[1] करुणात्मक—सा०। [2] रति विनु—का०। [3] सुद्ध—का०।

या विधि[1] वरनत चारि विधि रस वियोग सिगार।
याते कहं न और रस वाढत[2] वहु विस्तार ॥८३॥

[1] याते—का०। [2] वाढै—भा०।

रस सयोग वियोग को यहि विधि करहुँ वखान।
या रस विनु सव रस विरस कवि सव[1] नीरस जान ॥८४॥

[1] सो—ज०।

इति तृतीय विलास।

भाव सहित सिंगार को जो कहियत[1] आधार।
सो हैं[2] नायक नायिका ताको करत विचार[3] ॥१॥

[1] कहियतु है—सा०, ता कहियतु—का०। [2] सोई—सा०। [3] कहत उचार—नी० हि०।

नायक कहियतु चार विधि सुनत जात सव खेद[1]।
चौरासी अरु तीन सै कहत नायिका भेद ॥२॥

[1] कहत सुनत श्रुति खेद—का०।

नायक-भेद।

प्रथम होइ[1] अनुकूल अरु दक्षिन अरु सठ धृष्ट।
या विधि नायक चार विधि वरनत ज्ञान[2] गरिष्ट ॥३॥

[1] कहौ—सा०। [2] वुद्धि—का०

अनुकूल-लक्षण।

निज नारी सनमुख सदा विमुख विरानी वाम।
नायक सो अनुकूल है ज्यो सीता को राम[1] ॥४॥

[1] श्री सीताराम—का०।

उदाहरण।

पीत पटी लौ कटी[१] लपटी रहै छैल छरी लौ खरी पकरी है।
कान्ह के कठ की कठी भई बनमाल ह्वै वाल हिये पसरी है।
कान लगी कवि देव ह्वै कुडल[२] बाँसुरी लौ[३] अधरान धरी है।
मूड चढी सिरमौर ह्वै री[४] गहनो सब ग्वालि गोपाल करी है ॥५॥

[१] ल कुटी—ज०, लै कुटी—भा०। [२] देव जू कुडल ह्वै लगी काननि—नी० हि०। [३] वासुरी लै—नी०। [४] सिर मोहन ह्वै री—ज०।

दक्षिन-लक्षण।

सब नारिन अनुकूल सो[१] यही दक्ष की रीति।
न्यारे[२] ह्वै सब सो मिलै करै एक सी प्रीति[३] ॥६॥

[१] अनुकूल लौ—नी०। [२] न्यारी—भा०। [३] रमै दक्षिण की यह प्रीति—नी०।

उदाहरण।

सौगुने सील सुभाइ भरे जिनके जिय औगुन एक न पावै।
मेरिये वात सुनै समुझै मनभावन मोहि महा मन भावै।
देव कौ चित्त चितौनि न चचल चचलनैनी कितौ चितवावै[१]।
आँखिहू राखेहू ना खरकै[२] हरि क्यो तिन्है लोक अलोक[३] लगावै ॥७॥

[१] ये चचलनैनी कितोक चितावै—सा०। [२] आँखिहू आँखि नही खरकै—नी०। [३] लीक अलीक—भा०।

शठ-लक्षण।

आगे आपुन[१] ह्वै रहै पीछे करै चवाव।
दोष भरो कपटी कुटिल सठ को यही[२] सुभाव ॥८॥

[१] अपनो—नी०। [२] याको यहै—नी०।

उदाहरण।

राति रहै रति मानि कहूँ अरु दोप[१] भरो नित ही इत आवै।
जो कहिये कि कहा है कहौ[२] तव झूठी हजारक वातै बनावै।
और सी[३] और के आगे कहै कवि देव जू मोरी सी मोहि सुनावै।
या[४] सठ को हटको न भटू उठि भोर की[५] बार किवार खुलावै[६] ॥९॥

[१] अपराध—का०। [२] कहा वक हौ—का०। [३] और से—नी०। [४] वा—का०। [५] भोरहि—का०। [६] ऐसौ सुभाव परौ हरि कौ अब युक्ति अनैकन आइ बतावै—नी०।

धृष्ट-लक्षण।

दोप[१] भरो प्रत्यक्ष ही सदा कर्म अपकृष्ट।
सहै मार गारी रहै[२] निलज पाँइ परि धृष्ट ॥१०॥

[१] दो नष—नी, दोषन—हि०। [२] लहै—नी० हि०।

उदाहरण ।

द्वार ते दूरि करी[१] वहु वारनि हारनि बाँधि मृनालनि मार्‌यो ।
छाँडत[२] ना अपनो[३] अपराध अमाधु सुभाव[४] अगाध[५] निहार्‌यो ।
वैरिनि मेरी हँसै[६] सिगरी जिव पाँइ परै सु टरै नहिं टार्‌यो ।
ऐसे अनीठ सो[७] ईठ कहै यह ढीठ बसीठिनि हो की विगार्‌यो ॥११॥

[१] दौरि कह्यौ—नी० हि० । [२] मानतु—का० । [३] ०—ज० । [४] अमाधु कुभाव—ज० । [५] असाधु—नी० हि० । [६] मे हमै—नी०, मेरी हमे—हि० । [७] अनीठ सो—नी० हि० ।

नर्म सचिव-लक्षण ।

नर्म सचिव[१] नायक सखा[२] तीन भाँति[३] को मोइ ।
पीठ मर्द अरु विट कहे और विदूषक होइ ॥१२॥

[१] मर्म सचिव—का० । [२] सदा—का० । [३] मघातन—का० ।

पीठ मर्द-लक्षण ।

दूर होइ जा बात मैं माननीन[१] को मान ।
सोई सोई जो कहै[२] पीठि मरद सु बखान ॥१३॥

[१] मानिनिहू—नी०, मानवतिन—हि० । [२] करै सदा—का० ।

उदाहरण ।

देखि जिन्हे उमगै अनुराग सु फूलि रह्यो बन बाग चहूँ है[१] ।
मानु तजौ री पुकारि पिकी कहै[२] जोवन की करिवे न अहूँ है[३] ।
सोर करै सब ओर[४] अलीगन कोप कठोर हिये अजहूँ है ।
देखौ जु बूझि[५] मनै अपनेह को ऐसो समो सपनेहु कहूँ है ॥१४॥

[१] वहू है—सा० । [२] मान तजोरि पुकेरि पुकी कहै—ज० । [३] करिये नृपहू है—नी० हि०, करिवे न कहू है—सा० । [४] कुज गलीनु मैं गुजै—का० । [५] जौ वाहि—नी० हि० । अपनेहू—नी० हि० ।

विट-लक्षण ।

वचन चातुरी को रचै जानै सकल कलानि ।
ताही सो विट सचिव कहि कविवर कहत बखानि ॥१५॥

उदाहरण ।

जाहि जपै त्रिपुरारि मुरारि[१] सबै असुरारि मुरारि हने है ।
जाके प्रताप त्रिलोक तचै न बचै[२] मुनि[३] सिद्ध समाधि सने है ।
ताहि डरै नहिं तू सजनी[४] उत[५] आतुर वे कवि देव घने है ।
मेरो मनायो तू मानि लै मानिनि मैन महीप के मान मने है ॥१६॥

[१] सुरारि—नी० हि० सा० । [२] नचै न—ज० । [३] मुर—नी० हि० । [४] सजनी न तुही—नी० हि० । [५] अरि—सा० ।

विदूषक-लक्षण।

अग भेप भापानुकरि[1] करै अन्यथा भाइ[2]।
ताहि विदूपक कहत जो देइ हास कै दाइ ॥१७॥

[1] भूपननुकरि—सा०। [2] करि अन्यथा सुभाइ—का०।

उदाहरण।

ऊक जो ह्वै रहिहै[1] अबै[2] इदु विलोकत[3] भूमि पै घूमि[4] गिरौगी।
तीर सो मीरो समीर लगे ते सरीर मै पीर घनीये घिरौगी।
मेरो कह्यो किनि मानती मानिनि आपुही ते उतको उनरौगी[5]।
भौन के भीतर ही भ्रमि भौरी लौ बौरी लौ नेक मै दौरी फिरौगी ॥१८॥

[1] ऊक सो है वै रही है—ज०, ऊग सो वो रहिहै—भा० सा०, इकसो विरहै रहिहै—का०, ऊक सो वै रहि है—नी० हि०। [2] अभई—भा०। [3] ऊ विलोकत—भा०, इदु निहारत—नी० हि०। [4] पै भूमि के घूमि—का०। [5] उतरौगी—का०।

नायक-भेद।

नायक नर्म सचिव कहे यहि विधि सब कविराइ[1]।
अव वरनत हौं नायका लक्षण भेद सुभाइ[2] ॥१९॥

[1] सबहि कराइ—ज०। [2] बनाय—नी०, बताय—हि०।

तीन भाँति कहि नाइका प्रथम स्वकीया होइ।
परकीया सामान्या वहुरि[1] कहत सुकवि सव कोइ[2] ॥२०॥

[1] सामान्य पुनि—सा०। [2] लोइ—सा०।

स्वकीया-लक्षण।

जाके तन मन वचन करि निजि नायक सो प्रीति।
विमुख सदा पर पुरुष सो सो स्वकीया[1] की रीति ॥२१॥

[1] यह सुकिया—का०।

उदाहरण।

कवि[1] देव हरे बिछियानु[2] वजाइ लजाइ रहे[3] पग डोलनि पै।
गुरु डीठ वचाइ लचाइ कै लोचन सोचनि[4] सौ मुख खोलनि पै[5]।
हँसि हौंस भरे अनुकूल विलोकनि लाल के लोल कपोलनि पै।
बलि हौ बलिहारी हौ बार हजारक बाल की कोमल वोलनि पै ॥२२॥

[1] कहि—का०। [2] छविपानि—नी०। [3] हरे—का० ज०। [4] लोचन सोच सकोचन—का०। [5] लोचन सो मन सोमन सो मुख खोलनि वोलनि पै—नी०। [6] हौ सिगरे—नी० हि०।

स्वकीया-भेद।

मुग्धा मध्या प्रगरभा स्वकीया त्रिविधि वखान।
सिसुता मे जोवन मिले[1] मुग्धा सो उर आन ॥२३॥

[1] झलक—नी० हि०।

मुग्धा-भेद ।

वय सधि[१] अरु नव वधू नवजोवना विचार।
नवल अनगा सलज रति[२] मुग्धा पाँच प्रकार ॥२४॥

[१] वय सधित—नी० हि। [२] तिय—नी० हि० ।

वयःसंधि-उदाहरण ।

औरन के अग भूपन देखि[१] सु हौसनि भूपन भेप सकेलै[२] ।
मद अमद चलै चितवै कवि देव[३] हँसैं बिलसै[४] वपु वेलै।
फूल बिथोरि कै बारनु छोरि कै हारन तोरि उतै गहि[५] मेलै।
भूरि[६] के भाव बिसूरि सखीन को[७] दूरि ते दौरि के[८] धूरि मै खेलै ॥२५॥

[१] पेखि—नी० हि० । [२] निकेलें—का० । [३] चितवै चितवै मु—नी० हि। [४] बिहँसै—नी० हि० सा० । [५] उतै महि—नी० हि० । [६] मूरि—भा० । [७] सखीन सो—सा० । [८] दूरि ते दूरि—भा०, दूरि ते घेरि—नी० हि० ।

नववधू-उदाहरण ।

गोकुल गाँव की गोपसुता कवि देव न[१] केतिक कौतिक ठानै।
खेलत मोही पै नद कुमार री[२] वारहि वार वडाई वखानै।
मोरीये छाती छुवै[३] छिपि कै मुखि चूमि कहै कोइ और न[४] जानै।
काहे ते माई कछू दिन ते मन मोहन को मन मोही सो मानै ॥२६॥

[१] को तकै नहि० —नी० हि० । [२] नद कुमार सु—का० । [३] छुई—नी० । [४] कोई दूजो न—नी० हि० का० ।

नवयौवना-उदाहरण ।

जानति ना वह कौ वड भाग[१] बिरचि रच्यो रसिकाई कमी[२] है।
देव कहै नव वेप[३] वमत लता फल[४] जाके नखक्षत छीहै[५]।
मेटि वियोग[६] समेटि सबै सुख सो भटू[७] भेटि भटू[८] जुग जीहै[९]।
या मुख सुद्ध[१०] मुधाधर ते अधरा रस धार सुधारस[११] पीहै ॥२७॥

[१] जौन दिना वहि कौ वय भाग—नी० हि० । [२] रसिकाई वसी—भा० सा० का० । [३] वैस—सा० ज० । [४] फुल—सा० । [५] नवक्षत दीहै—भा० । [६] भेटिवी अग—नी० हि० । [७] भरि—भा० सा० । [८] भले—नी० हि० । [९] जुग लीहै—नी० हि०, जग जीहै—ज० । [१०] जो मुख—नी० हि० । [११] सुधार से—भा० ।

नवल-अनगा उदाहरण ।

कालि परौ लगि[१] खेलतही कवहूँ न कहूँ यह[२] घूँघट काढ्यो।
आजुही भौह[३] मरोरि चली तनु तोरि जनावत जोवन[४] गाढयो।
नैननि कोटि[५] कटाक्ष करै कवि देव मु वैननि को रस वाढयो।
नैकु चितै चितवै चितु दै[६] तित मैन मनो दिन द्वैक ते ठाढयो[७] ॥२८॥

[१] पिय कालि परो लखि—नी० हि० । [२] इन—सा० । [३] भाइ—नी० । [४] लोचन—का० । [५] कोरि—नी०, कोर—हि० । [६] चितदै चितवै—सा० । [७] वाढयो—का०

चाढो—नी० हि० ।

सलज्जरति-उदाहरण ।

कूजत है कल हस कपोत सुकी सुक सोर[१] करै सुनि ताहू[२] ।
नैकहू क्यो न लला सकुचौ[३] जिय जागत है[४] गुरु लोग लजाहू ।
हाथ गहौ न कहौ न[५] कछू कवि देव जू भौन मे देखौ दियाहू ।
हाहा रहौ हरि हाथ[६] छुऔ जिनि[७] बोलत बात लजात न काहू ॥२९॥

[१] सुकी रसु सोर—ज० । [२] सुर ताहू—का० । [३] अली सकुचै—नी०हि० । [४] जात है जु—ज० । [५] गहचो न कहचो न—भा० । [६] मोहि—भा०, छाती–सा०, गात—का० । [७] छिनि—का० ।

मुग्धा सुरत-उदाहरण ।

खाट की पाटी रहै लपटाइ करौट की ओट[१] कलेवर काँपै ।
चूमत चौकति चदमुखी कवि देव कपोल निचोलनि[२] चाँपै ।
वाल वधू विछियानि के बाजतै लाज ते मूँदि रहै अँखिया पै ।
आँसू भरे सिसकै रिसकै मिसकै[३] करि झारि[४] झुकै मुख झाँपै ॥३०॥

[१] ओर—भा० । [२] सु लोल कपोलनि—भा० सा० । [३] खिसकै रिसकै—का० । [४] वर-धारि—नी० ।

मुग्धा सुरतांत-उदाहरण ।

मनभावन के ढिग ते उठि भामिनि[१] भोरही भूषन हाथ लिये ।
रँगभौन के भीतर भाजि परी भय भार भरी अति लाज हिये ।
सजनी जन ते[२] दुरि कै कवि देव[३] निहारति हार विहार किये ।
तिय बारहिबार सँवारहि के[४] निरवारति वार[५] केवार दिये ॥३१॥

[१] भावती—का० । [२] सजनी जव ते—ज० । [३] सब वै—नी० हि०, सब—का० । [४] निरवारहि के—नी०हि०, सँवारति ही—भा०, सँवारहि की—का० सा०, सँवारहि केश—ज० । [५] निरवारहि वार—नी० हि० का०, निरजुरति वार—सा० ।

मान-उदाहरण ।

सौति को नाम[१] लियो सपने कहुँ सौति को सग कियो पिय जाइकै ।
देव कहै उठि प्यारे की सेज ते न्यारी परी[२] पिय प्यारी[३] रिसाइ कै ।
नाह निसक गही भरिअक सु लै[४] परजक धरी धन धाइ कै ।
आँसुन पोछि उरोज अँगोछि लई मुख चूमि हिये सो लगाइ कै ॥३२॥

[१] सोतुप मानि—ज० । [२] भई—का० । [३] जिय जाय—नी०हि । [४] सुतो—सा० ।

मध्या-लक्षण ।

जाके होहि[१] समान द्वै एक लज्जा अरु काम ।
ताको कोविद कवि सवै[२] बरनत मध्या नाम[३] ॥३३॥

[१] होत—नी० हि० । [२] ताही को कोविद सवै—नी० हि० । [३] वाम—नी० हि० ।

मध्या-भेद ।

रूढयौवना नाम[१] प्रादुर्भूत मनोभवा ।
प्रगल्भवचना वाम[२] कहि[३] विचित्रसुरता बहुरि ॥३४॥

[१] आरूढ यौवना वाम—नी०हि० । [२] नाम—नी०हि० । [३] अति—ज०, है—भा०सा०, ०—नी० हि० ।

मध्या चार प्रकार की यहि विधि वरनत लोइ ।
उदाहरन तिनको सुनौ जाको जैसो होइ ॥३५॥

रूढयौवना-उदाहरण ।

राधिका सी सुर सिद्ध सुता नर नाग सुता कवि देव[१] न भू पर ।
चंद करौं मुख देखि निछावर केहरि कोटि लटी कटिहू पर[२] ।
काम कमानहू को भृकुटीन पै मीन मृगीनहू को दृग द्वू पर ।
वारौं री[३] कंचन कंज कली पिकवैनी के ओछे उरोजन ऊपर ॥३६॥

[१] कहि देव— का० । [२] लची कटिहू पर—नी०हि०, लटो कटि ऊपर—भा०। [३] वारौ हौं—का । [४] मृगनैनी—का० ।

प्रादुर्भूत मनोभवा-उदाहरण ।

बाल वधू के विचार यही जु गोपाल की ओर विलोकिबो[१] कीजै ।
त्यो चितवै[२] चित चातुरी सो रुचि की रचना वचनामृत पीजै ।
भूषन भेष बनावै सबै अरु केसर के रँग सों अँग भीजै[३] ।
आपने आगे औ पीछे तिरीछे ह्वै[४] देह को देखि सनेह सो भीजै ॥३७॥

[१] चितैवोई—भा० । [२] चितवै चित त्यो—नी० हि० । [३] लीजै—ज० । [४] तिरीछे कै— सा० ।

प्रगल्भवचना-उदाहरण ।

मेरेहू अंक जो आवै निसंक तौ हो उनके परजंकहि जैहौं ।
पान खवाइ उन्हे पहिले तब नाथ के हाथ के पाननि खैहौं ।
ऐसी न होइ[१] जो देह की दीपति देव को दीप समीप दिखैहौं ।
मोहन को मुख चूमि भटू तब हौं अपनो मुख चूमन दैहौं ॥३८॥

[१] होउ—का०, हौं हु—सा० ।

विचित्रसुरता-उदाहरण ।

केलि करै रस पुंज[१] भरी नव कुंज मैं[२] प्यारे सो प्रीति की पैनी ।
झिल्लिनि सो झहनाइ कै[३] किंकिनि बोलै सुकी सुक लौं सुखदैनी ।
यों बिछियानि बजावति बाल मराल के बालनि ज्यो मृगनैनी[४] ।
कोमल कूजि[५] कपोत के पोत[६] लौं कूकि उठै पिक लौं पिकबैनी ॥३९॥

[१] रसवत—नी० हि० । [२] वन कुंजन—भा०, वन कुंज मैं—सा० । [३] सो झनकाइ कै—का०, लौं झहराइ कै—नी० हि० मा० । [४] बाल सु बाल मरालनि कै मृगनैनी— का० । [५] कुंज—भा०, कूकि—नी० हि० । [६] क्रिपोत—नी० हि० ।

मध्या सुरत-उदाहरण।

जागतही सब जामिनि जाइ जगाइ महा मदनज्वर[1] पावक।
अंजन छूटि लगे अधरान मै लोइन लाल रँगे जनु जावक।
कामिनि केलि के मंदिर मै कहि देव करै रति मानत रावक[2]।
संगहि बोलि उठे तजि कावक लावक पोत[3] कपोत के सावक ॥४०॥

[1] मदनाकुर—नी० हि०। [2] मानस रावक—नी० हि०, मानहु रावक—ज०।
[3] छावक छावक पोत—नी० हि०।

मध्या सुरतांत-उदाहरण।

रँगरावटी तें उतरी परभातही भावती[1] प्यारी के प्रेम पगी।
अलसाति जम्हाति सु देव सुहाति रदच्छद मै रदपाँति लगी[2]।
सब सौतिन की[3] छतियाँ छिनही मै सुहागिलु की[4] द्युति देखि दगी[5]।
उतराति सी वै[6] उत राति भई इतराति बधू इतराति जगी ॥४१॥

[1] भामिनि—का०। [2] अलखाति जम्हाति सुहाति रदच्छद गाल मै बाल के है जु लगी—का०। [3] सौतिन को—नी०। [4] सुहागिन की—भा०, सुहागकला—नी० हि०।
[5] देखि रँगी—ज०। [6] सी के—नी०। [7] इतराति भई—नी० हि०।

प्रौढ़ा-लक्षण।

मति गति रति पति सो रचै रतिपति सकल कलान।
कोविद अति मोहित[1] महा प्रौढा ताहि बखान ॥४२॥

[1] मोहन—ज०।

प्रौढ़ा-भेद।

लब्धापति रतिकोविदा क्रान्तनाइका[1] सोइ।
सविभ्रमा[2] यहि भाँति करि प्रौढा चौविधि होइ ॥४३॥

[1] आक्रतिगुप्ता—नी० हि०। [2] सभ्राता—नी० हि०।

लब्धापति-उदाहरण।

स्याम के संग सदा हम डोलै जहाँ पिक बोलै[1] अलीगन गुंजै।
छाहन माहँ उछाहनि सो छहरै जहाँ पीरी[2] पराग की पुंजै।
वेलिन मै रस केलिन कै[3] कवि देव करी[4] चित की गति लुंजै।
कालिंदी कूल महा अनुकूल तै फूलति मंजुल बंजुल[5] कुंजै ॥४४॥

[1] बोलो—सा०। [2] बीरी—भा०। [3] केलिन मै रस केलि चुकै—सा०, बोलनि मै रस केलिन कै—भा०। [4] कछू—नी० हि०। [5] मंजुल मंजुल—भा०।

रतिकोविदा-उदाहरण।

केलि मैं केतिक कौनिक कै रस हास हुलास बिलासनि सोहै[1]।
कोमल नाद कथा रसवादनि काम कला करिकै मन मोहै।
छेदि कटाछ की कोरनि सो गुन सो पति को मन मानिक पोहै।
जानति तू रति की सिगरी गति तोसी बधू रतिकोविद को है ॥४५॥

[१] सौ अति सोहै—ज० ।

आक्रान्तनायिका-उदाहरण ।

हार विहार मै टूटि परे[१] अरु भूपन छूटि परे है समूलनि ।
जोरि सवै पहिरायो[२] सम्हारि के अग सम्हारि[३] सुधारि दुकूलनि ।
सीतल सेज विछाइ कै वालम वाल मृनालनि के दल मूलनि[४] ।
वैंसिये वेनी[५] बनाइ लला गहि गूँथ्यो गोपाल गुलाव के फूलनि ।।४६।।

[१] छूटि परै—भा०, टूटि गये—ज० । [२] पहिरावै—नी० हि० । [३] सँवारि—नी० हि० का० । [४] विछाइ कै वाल मृनालनि के दल कोमल मूलनि—का० । [५] वेली—ज० । [६] गुह्यो—का०, गूधी—नी० हि० ।

सविभ्रमा-उदाहरण ।

हँसत हँसत आई भावते के मन भाई देव कवि[१] कवि छाई सोने[२] से सरीर सो ।
तैंसी[३] चद्रमुखी के वा चद्रमुख चद्रमा सो होड परै[४] चाँदनी औ चाँदनी[५] से चीर सो ।
सोंधे की सुवास अग वास औ उसास वास आसपास वासि रही सुखद समीर सो ।
कुज तजि[६] गुजत गभीर गिरि[७] तीर तीर रह्यो रग भौन भरि भौरनि की भीर सो ।।४७।।

[१] कहै—नी० हि० । [२] छाई वर सोने—भा० । [३] तैती—नी० । [४] ह्वै हो परै—भा०, होय परै—हाशिये पर—सा०, होय परै—का० । [५] सूँ चादनी से—सा० । [६] कुजत सी—भा० । [७] गीर—भा० ज०, वीर—नी० हि० ।

प्रौढ़ा सुरत-उदाहरण ।

साजि सिंगारनि सेज चढी तवही ते सखी सव सुद्धि भुलानी ।
कचुकी के वद टूटत[१] जाने न नीवी की डोरि न छूटत[२] जानी ।
ऐसी विमोहित ह्वै गई हौ जु न[३] जानति राति किते[४] रति मानी ।
साजी कवै रसना रस केलि मैं वाजी कवै विछुवानि की वानी ।।४८।।

[१] छूटत—भा० । [२] डोरि न टूटत—भा०, गाँठिओ छूटत—नी० हि०, गाँठि न छूटत —का० । [३] जनु—भा० ज० का० । [४] राति कै मै—ज०, राति कवै—सा०, राति कै मै—भा० ।

प्रौढ़ा सुरतान्त-उदाहरण ।

आगे धरि अधर पयोधर सधर जानि जोरावर जघन सघन लरे लचिकै ।
वार-बार देति वकसीस जैतवारनि को वारनि को वाँधै जे[१] पिछारे दुरे वचिकै[२] ।
उरनि[३] दुकूल दै उरोजनि[४] को फूलमाल[५] ओठनि उठाए पान धाइ खाइ[६] पचि कै ।
देव कहै आजु मानो[७] जीत्यो है अनग रिपु पी के सग सगर सुरति रग रचिकै[८] ।।४६।।

[१] जौ—भा० । [२] से सु वचिकै—भा०, डरे बचिकै—ज०, जोर दुरे जात वचिकै—का० । [३] दसन—हाशिये पर—का० । [४] द्वरेयन—का० । [५] फूलमनि—भा० । [६] खाइ खाइ—का० भा० । [७] इहि—सा० । [८] पी के सग प्यारी सुरति रग रचिकै—का०, पी के सग संग रस सुरत रग रचिकै—भा० ।

मध्या प्रौढ़ा मान-लक्षण।

मध्या औ प्रौढा दुऔ होहि त्रिविधि[१] करि मान।
धीरा अरु मध्या कहै[२] और अधीरा[३] जानु ॥५०॥

[१] विविध—भा०। [२] अधीर जहँ—नी० हि०। [३] सभीता धीरा—का०।

वक्र उक्ति[१] पति सो कहै मध्या धीरा नारि।
मध्या देहि[२] उराहनौ वचन अधीरा गारि[३] ॥५१॥

[१] वक्र युक्ति—भा०। [२] धीराधीरा—नी० हि०। [३] अधीरा नारि—ज०।

मध्या धीरा-उदाहरण।

भारे हौ[१] भूरि भराई भरे अरु[२] भाँतिन भाँतिन[३] के मन भाए।
भाग वडो वहि भामती[४] को जिहि भामते लै रँगभौन[५] बसाए।
भेप भलोई भली विधि सो करि[६] भूलि परे किधौ काहू भुलाए।
लाल भले हौ भलो सुख दीनो भली भई आजु भले बनि आए ॥५२॥

[१] भारे हू—सा०। [२] उर—का०। [३] भाँति सभाँतिन—भा०। [४] वही भामते—का०।
[५] रँगभौन के भीतर जाय—का०। [६] कहि—का०।

मध्या मध्या-उदाहरण।

आजु कछू अँसुवान भरे दृग देखिये सो न कहौ जिय जो है[१]।
चूक परी हमही ते कछू किधौ जापर[२] कोप कियो वह कोहै।
चूक अचूक हमारियै है कहौ[३] को नहि जोवन के मद मोहै।
स्याम सुजान सुजानै[४] वलाइ ल्यो[५] जोइ करौ सु तुम्है सब[६] सोहै ॥५३॥

[१] कहे जिय जाहै—नी०, करे जिय जो है—हि०। [२] चूक परै किधौ दोस इतैही को कापर—नी० हि०। [३] चूक अचूकहू कूक करै कहा—नी० हि०। [४] सुजान—सा०।
[५] भली विधि—नी० हि०। [६] सग सोई तौ—नी० हि०।

मध्या अधीरा-उदाहरण।

भोरही भौन मै भावतो आवत प्यारी चितै कै इतै दृग[१] फेरे।
वाल विलोकि कै लाल कह्यो कहु[२] काहे ते लाल बिलोचन[३] तेरे।
वोलि उठी सुनि कै[४] तिय वोल सु देव कहै अति कोप[५] करेरे।
काहू के रग रँगे दृग रावरे रावरे रग रँगे दृग मेरे ॥५४॥

[१] चप—का०। [२] कही कहि—नी० हि०। [३] लोचन लाल भे—ज०। [४] तबही—नी० हि०। [५] सु क्रोध परी कवि देव—का०।

प्रौढ़ा मान-भेद।

उदसीन रति कोप अति[१] पति सो प्रौढा धीर।
तजै मध्य उदास ह्वै[२] ताडन[३] करै अधीर ॥५५॥

[१] राति के समै—नी० हि०। [२] वरजै धीर अधीर तिय—नी० हि०, तजै मध्यम उदास कहै—सा०। [३] तोउन—ज०, ताहि न—भा०।

प्रौढ़ा धीरा उदाहरण।

क्रोध कियो मनभावन सों सु छिपाइ लियो[१] पिकवैनी[२] के बोलनि।
राख्यो हियो अति[३] ईर्षा बाँधि खुल्यो उन घूँघट को पट खोलनि।
ज्यों चितई इत[४] आली की ओर सु गाँठि छुटी भरि भौंह विलोलनि।
लोइन कोइन ह्वै उभक्यो[५] सु बताइ दियो कँपि कोप[६] कपोलनि ॥५६॥

[१] सुद्धि पाइ ठियो—सा०। [२] इक वैनी—भा०। [३] तेहि—नी० हि०। [४] अति—का०। [५] उचक्यो—ज०। [६] कँपि गोल—नी० हि०, कत्रि कोप—भा०।

प्रौढ़ा मध्यमा-उदाहरण।

सूधिये बात सुनौ समुझौ[१] अरु सूधी कहौ करि[२] सूधौ सबै अंग।
ऐसी न काहू के चातुरता[३] चित जो चितवै[४] कवि देव ददै संग।
वाही के जैयै[५] बलाइ ल्यों[६] वालम हौ तुम्हैं नीको[७] बतावति[८] हौ ढंग।
देव कहै[९] यह जाको सनेह महा उर बीच महाउर को रंग ॥५७॥

[१] सुनै समुझै—नी० हि०। [२] कहै कहि—नी०, करै कहि—हि०। [३] जातुरता—सा०। [४] चतुराइ चितै—का०। [५] बोलैं—ज०, जाव—नी० हि०। [६] ज्यों—नी०। [७] तुम पै जु—का०। [८] बताय है—सा०। [९] प्यारो लगै—भा०, करौ न कहौ—नी०, क्यो न कहै—हि०।

प्रौढ़ा अधीरा-उदाहरण।

पीक भरी पलकैं झलकैं अलकैं[१] जु गडी सु लसैं भुज[२] खोज की।
छाइ रही छवि छैल की छाती मैं[३] छाप बनी कहुँ[४] ओछे उरोज की।
ताही चितौति वडी[५] अँखियान तें ती की चितौनि चली अति ओज की।
वालम ओर विलोकि कै वाल दई मनो खैंचि[६] सनाल सरोज की ॥५८॥

[१] अलकैं अवकैं—नी०। [२] सु से सुज—सा०, सु लसैं भय—ज०। [३] कै—ज०। [४] लगी—का०। [५] चितै बड़री—नी० हि०। [६] चोट—नी० हि०।

मध्या प्रौढा दोय विधि ज्येष्ठा और कनिष्ट।
अधिक नून पिय प्यार करि[१] बरनत बुद्धि गरिष्ट[२] ॥५९॥

[१] दुहुन पिय प्यार करि—का०, अधिक प्यार ज्येष्ठा कहै—नी०। [२] बरनत ज्ञान गरिष्ट—भा०, है हित थोर कनिष्ट—नी०, बरनत बुद्धि वरिष्ट—का०।

उदाहरण।

खेलत फाग खिलार खरे[१] अनुराग भरे बडभाग कन्हाई।
एकहि भौन मे दोउन देखि कै[२] देव करी इक चातुरताई।
लाल गुलाल सो लीनी मुठी भरि वाल के भाल की ओर चलाई।
वा दृग मूँदि उतै[३] चितयौ इन भेटी उतै[४] वृषभान की जाई ॥६०॥

[१] खरे—नी०। [२] देखि कै दोउन—नी० हि०। [३] इतै—सा०। [४] उतै—सा०।

परकीया-लक्षण।

जाकी गति[1] उपपति[2] सदा पति सो रति मति[3] नाहि।
सो परकीया जानिये ढकी[4] प्रीति जग माहि ॥६१॥

[1] रति—ज०। [2] उपजै—नी० हि०। [3] रति गति—भा०। [4] जासु—नी०, तासु—हि०।

परकीया-भेद।

ताहि परोढा[1] कन्यका द्वै विधि कहत प्रवीन।
गुपित चेष्टा परोढा[2] कन्या पितु आधीन ॥६२॥

[1] ताही ऊढा—नी० हि०। [2] गूढ की—नी०, रूप सौ—ज०।

परोढ़ा-उदाहरण।

मोहन मोहि न जान्यो इहाँ बलि वाल को बोल सुनायो नजीक ते।
चौकि परी चहुँ ओर चितै गुरुलोगनि देखि उठी नहि ठीक तेँ।
देखियो बात चलै न कहूँ यह छूटिहैगी कुल लोक की[1] लीक ते।
घूमति है घरही मै घनी यह घायल लौ घर घाल घरीक ते ॥६३॥

[1] छूटिगी लाज लखी कुल—ज०, कुला कानि की—नी० हि०।

परोढ़ा-भेद।

तामै गुप्ता विदग्धा लक्षितारु[1] कुलटानु।
अतरभूत बखानिये अनुसयना मुदितानु ॥६४॥

[1] पुनि सुलछिता—ज०।

गुप्ता-उदाहरण।

झँझरी के झरोखनि[1] ह्वै कै झकोरति रावटीहू मै[2] न जाति सही।
कवि देव तहाँ कहौ[3] कैसै कै सोइये[4] जी की[5] बिथा सु परै न कही।
अधरानु को फोरति[6] अग मरोरति हारनि तोरति जोर यही[7]।
घर भीतर बाहिरहू[8] बन वागनि वैरिनि[9] बीर बयारि बही ॥६५॥

[1] झकोरन—नी० हि०। [2] झकोर बढी हियहू मैं—नी० हि०, झुकोर तिए उठिहू मै—ज०। [3] कहौ कहि—ज०। [4] कैसिक सोइये—भा०, कैसै कै आइये—नी० हि०। [5] जाकी—सा०। [6] चोरति—का०, कोरति—भा० सा०, फेरति—ज०। [7] जोय रही—सा०। [8] घर बाहिर जाहिर भीतरहू—भा०। [9] ०—भा०।

विदग्धी-भेद।

कहत विदग्धा भाँति द्वै सकल[1] सुमति वर लोइ[2]।
वाक्‌विदग्धा एक अरु[3] क्रियाविदग्धा दोइ ॥६६॥

[1] सुकवि—सा०। [2] सब कोइ—ज०। [3] बहुरि अरु—भा० सा०, कहि बहुर—ज०।

वाग्विदग्धा-उदाहरण।

व्याह की बीधि[1] बुलाये गये सब लोगन लागि गये दिन दूने।
देव तुम्हारी[2] सौं वैठि अकेलियै हौ[3] अपने उर आनति ऊने।

क्यो तिन्है[४] वासर बीतत वीर वनाये है जे विधि वधु विहूने[५]।
कौन घरी घर के घर आवै लगै घर घोर घरीक के सूने ॥६७॥

[१] व्याह कौ वधु—नी॰ हि॰, व्याह को न्यौति—का॰। [२] तिहारी—नी॰ हि॰। [३] अकेली अहो—नी॰। [४] रोहिन्है—सा॰। [५] विना रजनी वितवे विध वधु विहूने—का॰।

क्रियाविदग्धा-उदाहरण।

बँसुरी सुनि देखन दौरि चली[१] जमुनाजन्न के मिस वेग तवै।
कवि देव सखी के सकोचन मो[२] करि ऊढ सु औसर[३] को वितव।
वृपभान कुमारी मुरारी की ओर विलोचन कोरनि सो चितवै।
चलिवे को घरै न करै मन नैक धरे[४] फिरि फेरि भरै रितवै ॥६८॥

[१] दोर चले—ज॰, वाल चली—नी॰ हि॰। [२] को—नी॰। [३] ऊदम औगर—गा॰, ऊढम औसर—नी॰ हि॰, स्ठन औसर—ज॰। घडै—भा॰, घटै—नी॰ हि॰।

लक्षिता-उदाहरण।

जौ लगि जीवन[१] है जग मैं नहि तौ लगि जीव सुभाव टरैगो[२]।
देव यहै जिय जानिये जू जन[३] जो करि आयो है सोई करैगो।
कोटि[४] करौ कोउ प्रान हरे विनु[५] हारिल की लकडी न हरैगो।
भूलेहू भौर चलावै न चित्त जो चपक चौगुने फूल फरैगो ॥६९॥

[१]जीवत—का॰।[२]डरैगो—ज॰।[३]धन—ज॰।[४] कोरि—नी॰हि॰।[५]।नर | नी॰हि॰

कुलटा-उदाहरण।

छोरि दुकूल सकोरि के अग मरोरि कै[१] वारनि हारनि[२] छूटै।
मीडि नितवहि पीडि[३] पयोधर दावत दत रदच्छद फूटै।
ज्यो कररी करि[४] केलि करै[५] निकरै न कहूँ कुल सो[६] किनि[७] टूटै।
तौ लगि जानै कहा जुवती[८] सुख जो न जुवा[९] दिन जामिनि जूटै ॥७०॥

[१] वगारि कै—नी॰ हि॰। [२] हारति—का॰। [३] पीन—नी॰ हि॰। [४] यो कवि कीरति—नी॰ हि॰, यो करके तिर—सा॰। [५] वोलि कहै—ज॰। [६] घरते—गा॰। [७] कुल कानि को—नी॰ हि॰, कवि—सा॰। [८] जवही—ज॰। [९] जोवन या—ज॰।

अनुशयना-भेद।

थान हानि तिहि हानि भय[१] प्रिय आगम अनुमान[२]।
अनुसयना एहि विधि त्रिविधि वरनत सकल सुजान ॥७१॥

[१] भय है तहाँ—ज॰, भय जहँ हहाति—सा॰। [२] सुमान—सा॰, प्रिय गम अनुमान—मा॰, प्रिय अगमन मान—नी॰ हि॰।

उदाहरण।

सव ऊजरे[१] भौन वसे तवते[२] तरुनी तनताप रही भरिकै।
सुनि चेत अचेत सी ह्वै चित सोचति[३] जैहै[४] निकुज घने झरिकै।
ततकालहि देव गुपाल गये वन ते[५] वनमाल नई[६] धरिकै।
जदुनाथहि जोवत ज्वाल भई जुवती विरहज्वर[७] सो जरिकै ॥७२॥

[१] सब ऊ तहाँ—नी० हि० । [२] जबते—का० । [३] ह्वै रही चित सो—नी० हि० । [४] जोहै—सा०, निकुज सो पत जैहै—ज० । [५] बन है—ज० । [६] लई—सा० ज० । [७] बिरहानल—नी० हि०, बिरहाझर—हाशिये पर 'बिरहाजर'—का० ।

मुदिता-उदाहरण ।

साँझहि[१] कारी घटा घिरि आई महाझर सो बरसे भरि सावन ।
धोरिय कारिय[२] आइ गई सु रम्हाइ कै[३] धाइ के लागी चुखावन ।
माइ कह्यो कोइ जाइ कहै[४] किनि मोहूँ सो आज कह्यो उन आवन ।
यो सुनि आनद ते उठि धाई[५] अकेलिये बाल गुपाल बुलावन ।।७३।।

[१] साँझ की—भा० । [२] धोरिए गाय जु—नी० हि, धोरिहू कारिये—सा०, धोरिय को जु पि—का०, धोरह कोटिए—ज०, धोरिहू कोरिये—भा० । [३] सु फनाइ के—हि०, सु पन्हाइ के—नी०, सुनि माइके—ज०, सु रभ्झाइ कै—सा० । [४] कहै जाइ कोऊ—नी० हि० । [५] दौरि—का० ।

कन्यका-उदाहरण ।

भूमि घटा उझकै कहुँ देव सु दूरि ते दौरि[१] झरोखनि झूली ।
हास हुलास विलास भरी मृग खजन मीन[२] प्रकासनि तूली[३] ।
चारिहू[४] ओर चलै चपलै सु[५] मनोज के तेज[६] सरोज सी फूली ।
राधिका की अँखियाँ लखि कै सखियाँ सब सग की कौतुक[७] भूली ।।७४।।

[१] देखि—का० । [२] सीन—ज० । [३] लूली—नी० । [४] बाहिर—का । [५] जु—भा० ज०, सो—नी० हि० । [६] मनोज की तेगै—भा० सा०, मनोज की मानो—का०, मनोज की मौज—नी० हि० । [७] अग के कौतुक—नी० हि० ।

चित्र स्वप्न[१] परतच्छ करि दरसन त्रिविधि बखानु ।
देस काल भगीनु[२] करि श्रवन[३] तीनि[४] विधि जानु ।।७५।।

[१] स्वप्न चित्र—नी० हि० । [२] गभीर—नी० हि०, भागीन—का०, भृगीन—ज० । [३] वचन—सा० । [४] चारि—नी० हि० ।

दर्शन-उदाहरण ।

चारु चरित्र विचित्र बनाइ कै चित्र मे जे निरखे अवरेखे ।
चोरि लियो जिन चित्त चितौतही त्योही बने सपने महिं पेखे ।
आजु ते[१] नद के मदिर ते निकसे घनसुदर[२] रूप विसेपे ।
हौहूँ[३] अटारी भटू चढी[४] भागतें मै हरिजू भरिजू[५] दृग देखे ।।७६।।

[१] तो—नी० हि० । [२] बन सुदर—का० । [३] देव—नी० हि० । [४] हौहू अटा भरी भारी भटू चढ—सा० । [५] ०—सा० ।

श्रवण-उदाहरण ।

ऊँचे अटा चढि[१] सेज सजी[२] तो कहा हरि जो न इहाँ[३] निसि जागे[४] ।
फूलि रहे बन कुज कहा तौ बसत मै जो न लला अनुरागे[५] ।

देव[६] सबै गहने पहिरे चुनि[७] चाइ सों चारु[८] बनाये है बागे[९]।
सुदरि सुदर[१०] लागिहै तौ कहिहै जब[११] सुदर स्याम सभागे ॥७७॥

[१] सजि—भा०। [२] चढी—नी० हि०। [३] पछितातिं कहो री कहा—नी० हि०। [४] अनुरागे—का०। [५] लखि पागे—का०। [६] दाव—नी० हि०। [७] पुनि—नी० हि०। [८] चाव—सा०। [९] इहि भागे—का०। [१०] मदिर—का०। [११] तव—नी० हि०।

वेश्या-लक्षण।

रीझ नही गुन रूप की सामान्या के जीय[१]।
जौही लौ धन देहि जो तौ लौ ताकी तीय ॥७८॥

[१] जाय—सा०, पीय—ज०।

उदाहरण।

सोहति किनारी लाल बादले[१] की सारी गोरे अगनि उज्यारी कसी कचुकी बनाइ कै।
जेवर[२] जडाऊ[३] जगमगत जवाहिर के जूती जोति[४] जावक की जीती[५] पग पाउ कै।
भौहनि भ्रमाइ भूरि[६] भाइ करि नैननि सो[७] सैननि सो बैननि कहति मुसक्याइ कै[८]।
चीकनी चितौनि चारु चेरे करि चतुरनि[९] वितु[१०] लियो चाहे चित लियो है चुराइ कै ॥७९॥

[१] बादला—भा० सा०। [२] भूपन—का०। [३] जराव—ज०। [४] जुही होत—नी० हि०, होति जोति—का०। [५] जाती—सा०, जोत—का०। [६] भरि—का०। [७] भायक बताइ करि—नी० हि०। [८] बिहसाइ कै—का०। [९] चोर होत चातुरी सों—नी० हि०। [१०] चितु—नी० हि०।

स्वकीया-भेद।

पर रति दुखिता[१] प्रेम अरु रूपगर्विता जान।
मानवती अरु चारि विधि स्वीयादिकन बखान ॥८०॥

[१] पोखित दुखिता—का०।

पररतिदुःखिता-उदाहरण।

साँझही स्याम को लेन गई सु बसी बन मैं सब जामिनि जाइ कै।
सीरी बयार छिदे अधरा उरझे उर झाँखर झार मझाइ कै[१]।
तेरी सी[२] को करिहै करतूत हुती[३] करिबे सो करी तैं[४] बनाइ कै।
भोरही आई भटू इत मो[५] दुखदाइनि काज इतो दुख पाइ कै ॥८१॥

[१] झा मझाइ कै—नी० हि०, झार झराइ कै—का०। [२] सौ—भा०। [३] हती—भा० ज०। [४] करि वेग—ज०। [५] को—का०, नो—ज०।

प्रेमगर्विता-उदाहरण।

ये बिनु गारी दये गुरुलोगन टेरेई सैनन नैन नटेरेई[१]।
देव कहै दुरि द्वार लौ जात कितौ करि हारी तऊ हरि हेरेई।
पाय[२] यही घर बैठि रहौ[३] जु तौ वे मिल खेलन आवत मेरेई।
घेरु करै[४] घर बाहिर के अरु ये सु फिरैं घर बाहिर घेरेई ॥८२॥

[1] टेरिये नैनन सैनन नेरेइ—ज०। [2] आपु—नी० हि०। [3] रही—नी० हि० का०।
[4] घरै—नी० हि०। [5] तो फिरै—नी० हि०।

रूपगर्विता-उदाहरण।

हरि जू सो हहा हटकोरी[1] भटू जनि वात कहै जिय सोचनि की।
कहि[2] पकजनैनी बुलाइ कै मोहि दई सुषमा[3] दुख मोचन की।
उनही सो उराहनो देऊँ ततौ उमगे उर रासि सकोचन की।
वलि वारौ री वीरजु[4] वारिज की जु वराबरि वीर[4] विलोचन की ॥८३॥

[1] टकटोरि—ज०। [2] कहै—का०। [3] उममा—सा०। [4] और जु—नी, वार जु—हि०। [5] होय—सा०।

है सयोग वियोग मै वरन्यो मान[1] प्रकार।
ताही के मत मानिनी कविवर करहु[2] विचार ॥८४॥

[1] नाम—नी०। [2] करत—भा०।

अवस्था-भेद।

स्वाधीना उत्कठिता वासकसज्जा वाम।
कलहतरिका खडिता विप्रलब्धिका नाम[1] ॥८५॥

[1] वाम—भा० सा०।

ताते प्रोषितप्रेयसी अभिसारिका बखान।
आठ अवस्था भेद ये एक एक प्रति जान[1] ॥८६॥

[1] अष्ट नायका ये विधा वरनै सुकवि सुजान—नी० हि०।

स्वाधीना-लक्षण।

वँध्यो रहै गुन रूप सो[1] जाके पति आधीन।
स्वाधीना सो[2] नाइका वरनत परम[3] प्रवीन ॥८७॥

[1] मैं—का०। [2] स्वाधीनपतिका—नी० हि०। [3] सकल—नी० हि०।

उदाहरण।

मालिन ह्वै हरि[1] माल गुहै चितवै मुख चेरी[2] भये चितचाइन।
पान खवावै खवासिन ह्वै कै सवासिन ह्वै सिखवे[3] सव भाइन[4]।
वेदी दै देव दिखाइ कै[5] दर्पन जावक देत भए अव नाइन।
प्रेम पगे पिय पीत पटी पर[6] प्यारी के पोछि पमारी से[7] पाँइन ॥८८॥

[1] रहै—ज०। [2] चोरी—ज०। [3] निखवै—ज०। [4] सिखवे सव भूपन भेष सुभाइन—का०। [5] दिखावत—का०। [6] पीत पिछौरी सो—नी० हि०। [7] पोछि यमारी से—भा०, पोछिय वारी से—ज०।

उत्कंठिता-लक्षण।

पति को गृह आये विना सोच वढे चित जाहि।
हेतु विचारै चित्त मे उत्कठिता कहु नाहि[1] ॥८९॥

[1] उत्कठा कहु ताहि—भा० ज० सा०, उत्कठिता सुभाइ—नी० हि०।

उदाहरण ।

मारग हेरति हौ कब की कही[1] काहे ने आये नहीं अबहूँ हरि ।
आवत हे किधौ ऐहे अबे कवि देव के राखे है काहू कछू करि[2] ।
मोहूँ ते न्यारी को[3] प्यारी गुपाल की हाय[4] विचारिये री चित मैं धरि ।
जो रमनी रमनीय नगे बसि वाके[5] रहे सजनी रजनी भरि ॥९०॥

[1] कहि—नी० हि० । [2] आवत है किधौं आए न देव के राखे है काहू तिया ने कछू करि—नी० हि० । [3] कै—भा० सा० ज० । [4] के—भा० सा० ज० । [5] ताके—नी० हि० ।

वासकसज्जा-लक्षण ।

जानै पिय को आइबो निहचै वार[1] विचारि ।
मग देखै भूषन सजै वासकसज्जा नारि ॥९०॥

[1] चारु—भा० सा० ज० ।

उदाहरण ।

घोरि घनी घनसार सो केसरि चंदन गारि कै अंग सम्हारै[1] ।
मोतिन माँग कै वार गुहे[2] अरु[3] हार गुहे बलि वेगि[4] सँवारै ।
देव कहे सब भेष बनाइ कै आइ कै फूलनि सेज सुधारै ।
बैठी कहा उठि देखी भटू हरि आवत हैं[5] घर आज हमारे ॥९२॥

[1] सवारै—नी० हि० । [2] चारु गहे—मा० । [3] किन—का० । [4] केस—नी०, केस्नि—हि० । [5] आवन है—ज० ।

कलहंतरिका-लक्षण ।

पहिले पति[1] अपमान[2] करि फिर पीछे पछताइ ।
कलहंतरिका नाइका ताहि कहैं कविराइ ॥९३॥

[1] पिय—नी० हि० । [2] सो कोप—का० ।

उदाहरण ।

पिय जा हित प्यारे ही के[1] पदपंकज पूजिबे को पकर्‌यो पन सो ।
सु बिसारि दियो तेहि मोहि निरादर[2] घोर पति गृह को धन सो ।
यह पापन ही[3] विष बौरी[4] भई अरु मीरी[5] बयारि बरै तन सो ।
कहि क्यो न अँगार सो हार लगै हिय मैं घनसार बनो घन सो ॥९४॥

[1] पिय जाय अप्यारी के वे—नी० हि०, पिय जा हित प्यारी के—भा०, पिय जा हित प्यारि ही के—सा०, पिय जानहि प्यारिहि के—का०, पजाइ के प्यारि ही के—ज० । [2] तिहि मेहि निरादरे—भा०, हित मोहि निरादर—नी० हि० । [3] इन पायन ही—भा० सा०, या पापिनि हौं—नी०, यह पापिनि ही—हि०, यह पायन ही—का० । [4] विष बीरी—भा०, विष बीर—नी० हि । [5] मोच— नी० ।

खंडिता-लक्षण ।

जाके[1] भवन न जाइ पति रहै कहूँ रति मानि ।
खंडितवारि सु खंडिता[2] कविवर[3] कहत बखानि ॥९५॥

[1] पीके—सा०। [2] खडिवार सु खडिता—का०, बनिता वाहि सु खडिता—ज०। [3] पडित—नी० हि०।

उदाहरण।

सेज सुधारि सँवारि सबै अग ऑगन[1] के मग मै पग रोपै।
चद की ओर चितौत[2] गई निसि नाह की चाह चढी चित चोपै।
प्रातही प्रीतम आये कहूँ बसि देव कही[3] न परै छवि मोपै।
प्यारी के[4] पीक भरे अधरा ते[5] उठी मनौ कपत कोप की[6] कोपै ॥९६॥

[1] आवन—का०, अगनि—ज०। [2] चितौनि—ज०। [3] वेष कढी—सा०। [4] प्यारे के—नी० हि०। [5] अँगराते—का०।[6] कप की—ज०।

विप्रलब्धा-लक्षण।

जाको[1] पति की दूतिका[2] लै[3] पहुँचै रति धाम।
तहँ पति मिलै न जाहि[4] सो विप्रलब्धिका वाम[5] ॥९७॥

[1] जाके—ज०। [2] दूती सग निज—नी० हि०, पति सकेत वदि—का०। [3] तहि—का०। [4] तहूँ न मिलै पति खेद अति—नी० हि०। [5] विप्रलब्ध कहु नाम—का० नी०, विप्रलब्ध तेहि नाम—हि०।

उदाहरण।

दूती लेवाइ गई तहँ वाल को[1] जा बन वालम[2] सो मिलि खेल्यो।
भेपु बनाइ कै भूषन साजि सुगधि तमोर को साज[3] सकेल्यो।
आनद ही ते इहाँ ते गई तिय[4] देखि उहाँ रति कुज[5] अकेल्यो।
वीरी वगारि[7] सखीन सो रारि कै[7] हार उतारि उतै गहि मेल्यो ॥९८॥

[1] वाम को—सा०। [2] वालहि—ज०। [3] जास—नी० हि०, समूह—का०। [4] वह—नी० हि०। [5] त्यो तह राति कुज—नी०। [6] बिगारि—भा० सा०। [7] गारि दै—का०।

प्रोषितप्रेयसी-लक्षण।

सो तिय प्रोपित प्रयसी जाको पति परदेस।
काहू कारन ते गयो दैकै[1] अवधि प्रवेस ॥९९॥

[1] कहि कै—का०।

उदाहरण।

होरी हरे हरे आइ गई हरि आए न हेरि हियो हहरैगी।
बानि[1] बनी बन बागनि की कवि देव बिलोकि वियोग बरैगी।
नाउ न लेहु[2] बसत कौ री सुनि हाय कहूँ पछिताय मरैगी।
कैसे कै जीहै[3] किसोरी जो केसरि नीर सो बीर अबीर भरैगी ॥१००॥

[1] वेनी—नी०हि०। [2] नहि नाम तु लेउ—ज०। [3] कैसिक जीहौ—सा०, कैसे कहै तु—ज०, कैसे को जीहै—हि०।

अभिसारिका-लक्षण ।

जो घेरी[१] मद मदन करि आपुहि पति पर जाइ[२] ।
वेष अग अभिसारिका समै[४] समान बनाइ ॥१०१॥

[१] पेरी—नी० का० । [२] प्यारे पह तिय जाइ—ज० । [३] सजे—भा० ज० ।

उदाहरण ।

घटा घहराति विज्जु छटा छहराति आधी राति हहराति[१] कोटि कीट रति[२] रुज लौ ।
हूकत उलूक वन कूकत फिरत[३] फेरु भूकत जु भैरौ भूत[४] गावै अलि गुज[५] लौ ।
झिल्ली मुख मूँदि तहाँ[६] वीछीगन गूँदि विप व्यालनि को रूँदि कै मृनालनि के पुज[७] लौ ।
जाई वृपभान की कन्हाई के सनेह वस आई उठि ऐसे मै अकेली केलि कुज लौं ॥१०२॥

[१] अति आत—ज० । [२] कीट रवि—भा०, कोटि रितु—नी० हि०, कोटि रुति—सा० । [३] मयूर—ज० । ४ हूदै—ज० । [५] अति गुज—सा० । [६] झिल्ली मुख कूँ दिखावैं तहाँ—ज० । [७] मुनारनि के—का०, मृनाल पुज—ज० ।

स्वीया तेरह भेद अरु[१] दोइ भेद परनारि ।
एक वेस्या ये[२] सबै सोरह कहौं विचारि ॥१०३॥

[१] करि—भा० । [२] एक एक प्रति ये—सा० ।

एक एक प्रति सोरही आठ[१] अवस्था जान ।
जोरि सबै ये एक सौ अट्ठाईस बखान ॥१०४॥

[१] भेद—ज० ।

उत्तम मध्यम अधम करि[१] ये सब त्रिविधि विचार[२] ।
चौरासी अरु तीन सै जोरे सब विस्तार ॥१०५॥

[१] कहि—नी० हि० । [२] बखान—ज० । [३] ज्यो ज्यो सब विस्तार—नी० हि०, सकल नाइका जान—नी० हि० ।

उत्तमा-लक्षण ।

सापराध पति देखि कै करै न[१] मन मे मान ।
दोप जनावै सहज ही[२] सो उत्तमा बखान ॥१०६॥

[१] करै जु—भा० सा० । [२] सहचरी —नी० हि० ।

उदाहरण ।

केसर सो उवटचो सब अग बडे मुकतान सो माँग सँवारी[१] ।
चारु सु[२] चपक हार हिये उर[३] ओछे उरोजन की छवि न्यारी ।
हाथ सो हाथ गहे[४] कवि देव सु साथ तिहारेई नाथ निहारी[५] ।
हाहा हमारी सौ साँची कहौ वह को हुती[६] छोहरी छीवर वारी ॥१०७॥

[१] सम्हारी—भा०, समारी—सा० । [२] से—नी० हि० । [३] अरु—नी० हि० । [४] गुहे—सा० । [५] हाथ निहारै हौ आज निहारी—नी० हि० । [६] वह कौन ही—नी०, वह कौन सी—हि०, वह थी—भा० ।

मध्यमा-लक्षण ।

जाहि जानि जिय मानिनी कत करैं मनुहारि ।
पाँइ परैं कोपहि तजैं कहौ[1] मध्यमा नारि ।।१०८।।

[1] वहै—नी०हि० ।

उदाहरण ।

नेह सो नीचे निहारि निहोरत[1] नाही कै नाह की ओर चितैबो ।
पीठ दै मोरि[2] मरोरि कै दीठि सकोरि कै सौह सो भौह[3] चढैबो ।
प्रीतम सो कवि देव रिसाइ कै पाइ लगाइ हियें[4] सो लगैबो ।
तेरो री मोहि महा सुख देत सुधारसहू ते[5] रसीलो रिसैबो[6] ।।१०९।।

[1] निहोरनि—ज० । [2] तोरि—नी०हि० । [3] भौह सो सौह—का० । [4] लिये—नी० ।
[5] सुधाधर हूँ ते—क।० । [6] रसीलो चितैवो—का० ।

अधमा-लक्षण ।

बिनु दोषहि रूठै तजै विना मनाये मानु ।
जाको रिस रस हेतु[1] बिनु अधमा ताहि वखानु ।।११०।।

[1] होत—नी० हि० ।

उदाहरण ।

आजु रिमोही न सौही[1] चितौति कितौन सखी पति प्रेम पढावै[2] ।
नाह सो नेह को नातौ[3] न नेकु जऊ पर[4] पाइ प्रतीति बढावै ।
पीठ दै बैठी अमैठि सी डीठ कै कोइन कोप की[5] ओप कढावै ।
तीर से तानि तिरीछे कटाछ कमान सी भामिनि भौहै चढावै[6] ।।१११।।

[1] सी सोहै—नी०हि० । [2] प्रति प्रीत बढ़ावे—भा०, पुनि ताको पढावै—नी० हि० ।
[3] मोहन सो सखि नातो—ज० । [4] तऊ पर—नी० हि० । [5] को बकि—नी० हि० ।
[6] वढावै—ज० ।

सखी-लक्षण ।

वहु[1] विनोद भूपन रचै करै जु चित्त प्रसन्न ।
प्रियहि मिलावै[2] उपदिसै रहै सदा आसन्न[3] ।।११२।।

[1] वन—ज० । [2] प्रियहि मनावै—का०, ऐसी सखी बखानिये—सा० । [3] सखी कहत तिय वात जिय राखै कछू न भिन्न—ज० ।

पति को देइ उराहनो करै बिरह[1] आस्वास ।
ऐसी सखी वखानिये जाके जी विश्वास ।।११३।।

[1] सदा—नी० हि० । सा० प्रति मे द्वितीय चरण त्रुटित है ।

उदाहरण ।

बाल वधू के बिनोद बढाइ भली विधि भूपन भेप बनावै[1] ।
चाइ सो चित्त प्रसन्न करै रस रग मैं सग सयान[2] सिखावै[3] ।

दै कै[४] उराहनो दोउन को मन राखि कै देव[५] दुहून मिलावै ।
नाह सों नेह तनो[६] निबहै जब भाग ते ऐसी सखी करि पावै ॥११४॥

[१] बनाइ कै—ज० । [२] मनानि—भा० सा० । [३] मिलाइ कै—ज० । [४] ०—भा० ।
[५] राखि कहै कवि देव—भा० । [६] नव —नी० हि० का० ।

दूती-भेद ।

धाइ सखी दासी नटी ग्वालि सिलिपनी[१] नारि ।
मालिनि नाइनि बालिका विधवा बधू विचारि ॥११५॥

[१] ग्वालिनि सिलिपनि—नी० हि० ।

सन्यासिनि भिक्षुक बधू नववी[१] की बाम ।
ऐसी होती दूतिका दूतत्वन[२] अभिराम ॥११६॥

[१] अरु नववी—नी० हि० । [२] दूत प्यार—ज० ।

उदाहरण ।

देव जू की दूती वृषभान जू के भौन जाइ राधिका बुलाइ[१] बहु बातनि[२] मिलाइ कै ।
हास रस सानी[३] कुरि आँगन ते द्वार आनी हरि की कहानी कहि हिये[४] सों सिलाइ[५] कै ।
हरे[६] हँसि कह्यो कसे[७] सह्यो यों परन्तु हू[८] कहे[९] नदनद सों वियोग सों[१०] बिताइ कै[११] ।
विरह बढाई प्रेम पद्धति पढाइ[१२] निज आपहि सखाइ दीनी[१३] मोहनै मिलाइ कै ॥११७॥

[१] जगाय—का० । [२] भानिन—नी० हि० का० । [३] हासन रसानी—का०, हास रस सानी—नी० हि० । [४] हाय—का० । [५] हिलाइ—भा० का० । [६] हरि—ना० हारे—का० । [७] कैसे—ना० । [८] परतु हू—नी० हि० । [९] हू—नी० हि० । [१०] बहू—ज० । [११] बिताइ कै—नी० हि० । [१२] बढाइ—नी० हि० । [१३] सखी—नी० हि० ।

इति चतुर्थ विलास ।

कविता कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजानि[१] ।
अलंकार पहिरे निकट अदभुत रूप लखानि[२] ॥१॥

[१] सुजान—का० । [२] बखान—का० ।

ताही ते कवि देव कहि अलंकार की भाँति[१] ।
मुनि मत के अनुसार ते लै कछु लक्षन जाति[२] ॥२॥

[१] के भेद—का० । [२] दूरि होहि जिनके सुनत श्रवननि के सब खेद—का० ।

अलंकार-नाम ।

प्रथम स्वभावउक्ति उपमेय उपमान संशय[१] अनन्वय अरु रूपक बखानिये ।
अतिसय औ[२] समास वक्रउक्ति परयायउक्ति सहित सहोक्ति सविशेषउक्ति[३] जानिये ।
ताते व्यतिरेक औ विभावना[४] उतप्रेक्षा क्षेप दीपक उदात औ[५] अपन्हुत को आनिये ।
पीछे असलेखा व्याम अर्थान्तर व्याजस्तुति अप्रस्तुत अस्तुति सु अलंकार मानिये[६] ॥३॥

[१] उपमेय मेय सस—भा० । [२] ०—भा० । [३] ये विशेष—नी० । [४] है त्रिभाव—भा० सा० । [५] है —भा० सा० । [६] अरु असलेखा व्याजस्तुति अर्थांतर अस्तुति परिकर द्विविधि

अलङ्कृत मैं मानिये—नी० हि० ।
आवृत्ति निदर्सना विरोध[१] परिवृत्ति हेतु रसवत ऊरज समूह्रम[२] बताइये ।
प्रेय क्रमा[३] समाहित तुल्ययोगिता औ लेस भाविक औ सकीरन आसिख सुनाइये ।
अलकार मुख्य उनतालिस ये[४] देव कहे येई पुराननि मुनिमतनि मैं पाइये ।
आधुनि[५] कविन के सम्मत अनेक और[६] इनही के भेद और विविध विधि गाइये[७] ।।४।।

[१] विरोधता—नी०, विरोधा—हि० । [२] प्रेयस्वतमा—नी० हि० । [३] प्रेमक्रम—नी० हि० । [४] हे—भा० । [५] आधुनिक—नी० हि० । [६] भिये—नी० हि० । [७] विविध बताइये—भा० सा० ।

स्वभावोक्ति-लक्षण ।

जहाँ स्वभाव वखानिये स्वभावोक्ति सो[१] नाम ।
सुकवि जाति वर्णन करत कहत सुनत अभिराम[२] ।।५।।

[१] सु स्वभावोक्ति—सा० । [२] काव्य सुमत अभिराम अति शास्त्रन मैं सनमान—नी० हि०, शास्त्रन मैं मान्यो यही कवि मति अति अभिराम—का० ।

उदाहरण ।

आगे आगे आसपास फैलति विमल[१] वास पीछे पीछे भारी भीर भौरनि के गान की ।
ताते अति नीकी किंकिनी की झनकार होति सोहनी है मानो मन[२] मोहन के कान की ।
जगमग होति जात जोति[३] नवजोवन की देखे गति भूले[४] मति देव देवतान की ।
सामुहे गली के जु अली के सग भलीभाँति चली जाति देखो वह[५] लली वृषभान की ।।६।।

[१] विविध—नी० हि० । [२] मद—भा० । [३] जगरमगर होति जोति—भा० सा० । [४] गात भूले—सा०, गति भूली—नी० हि० । [५] चली जाति देखौ वह—भा०, देखौ वह चली जाति—नी० हि० ।

उपमा-लक्षण ।

जेहि जेहि[१] भाँति बराबरी जहाँ वस्तु[२] मैं होय ।
सो उपमा कवि देव कहि वरनत हैं कवि लोय ।।७।।

[१] जेहि तेहि—का० । [२] अर्थ—का० । भा० सा० प्रतियो मे दोहे का पाठ है
"नून गुनहि जहँ अधिक गुन कहिये बरनि समान ।
अलकार उपमा कहत ताही सुमति सुजान ।।"

उदाहरण ।

राति जगी[१] अँगिरात इतै यहि[२] गैल गई गुनकी निधि[३] गोरी ।
रोमवली त्रिवली पै लसी[४] कुसुमी अँगियाहू लसी उर[५] ओरी ।
ओछे[६] उरोजनि पै हँसि कै कसिकै पहिरी गहरी रग बोरी ।
पैरि सिवार[७] सरोज सनाल चढी मनो इन्द्रवधूनि की जोरी ।।८।।

[१] सखी—नी० हि० । [२] गहि—भा० । [३] विधि—भा० का० । [४] भली—नी० हि० । [५] दुति—नी० हि० । [६] ऊँचे—का० । [७] सिवाल—का० ।

उपमेयोपमा-लक्षण ।

उपमा अरु उपमेय जहँ क्रम ते[१] एकै होइ ।
सोई उपमेयोपमा कहत सुकवि[२] सव कोइ ॥९॥

[१] कौ जह क्रम—भा०, जह जह क्रम—का० सा० । [२] करनि कहै—भा० सा० ।

उदाहरण ।

तेरी सी वेनी है स्याम अमा अरु तेरीयै वेनी है स्याम अमा सी ।
पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोभी उज्यारी है पूरनमासी ।
तेरो सो आनन[१] चद लसै तुअ आनन मैं सखि चद समासी[२] ।
तोसी वधू रमनीय रमा कवि देव है[३] तू रमनीय रमा सी ॥१०॥

[१] तियानन—नी० हि० । [२] अभा सी—नी०, प्रकासी०—हि० । [३] कि—का० ।

संशय-लक्षण ।

जहँ उपमा उपमेय को आपुस मै सदेहु ।
ताही सो ससय उकति[१] सुमति जानि सव[२] लेहु ॥११॥

[१] कहत—हि० । [२] सुचि—हि० । नी० प्रति मे सपूर्ण दोहा त्रुटित है ।

उदाहरण ।

श्री वृषभानु कुमारी के रूप की न्यारी कै को उपमा उपजावै ।
चचल नैन कि मैन के वान कि खजन मीन न[१] कोइ वतावै ।
आनँद सो विहँसाति जवै कवि देव तवै वहुधा मन धावै ।
कै[२] मुख कैधौं कलाधर है[३] इतनो निहचोई नही[४] चित आवै ॥१२॥

[१] एती न—का०, से इन—नी० । [२] तो—नी० हि० । [३] कै—सा० । [४] निहचो इतनो—नी०, निहचो जु नही—सा० ।

अनन्वय-लक्षण ।

तैसो सोई[१] वरनिये जहाँ न और समान ।
ताहि अनन्वय नाम कहि वरनत देव[२] सुजान ॥१३॥

[१] तैसोई तहँ—का० । [२] सुकवि—नी० हि० ।

उदाहरण ।

केस सो केस लसै मुख सो मुख नैन से नैन रहे रग सो छकि ।
देव कहै सव अग से अग सुरग दुकूलनि मै[१] झलकै झकि[२] ।
और नही उपमा उपजै जग ढूँढौ सवै सव भाँतिन सो थकि ।
श्री वृषभान कुमारी[३] री तेरी सो तोसी तुही अरु कौन मरै[४] वकि ॥१४॥

[१] सें—हि०, सो—नी०, मै यो—का० । [२] झुकि—का० । [३] राधिका श्री वृखभान कुमारी—भा० । [४] सरै—भा० ।

रूपक और अतिशयोक्ति-लक्षण ।

सम समान जैसे जनो[१] जिमि ज्यो[२] मानो तूल ।
और सदृश[३] कवि देव ए पद उपमा के मूल ॥१५॥

[१] जहा—का०, जतौ—नी०, जतै—हि०। [२] तिमि त्यो—का०। [३] सरिस—भा०, सदा—नी० हि०।

जहँ उपमा मैं ये न पद[१] सोई रूपक जान।
सीमा ते[२] अति बरनिये अतिसय ताहि बखान॥१६॥

[१] जहँ उपमा ये नही—नी० हि०, जहँ उपमा मैं ये नही—का०। [२] सोभा ते—नी० हि०।

रूपक-उदाहरण।

मदहास चद्रिका कौ मदिर बदन चद सुन्दर मधुर बानि सुधा सरसाति[२] है।
इदिरा के ऐन नैन[३] इदीवर फूलि रहे विद्रुम अधर दत मोतिन की पाँति है।
ऐसो अदभुत रूप भावती[५] को देखौ देव जाके बिनु देखे छिन छाती न सिराति है।
रसिक कन्हाइ बलि पूछन[७] हौ आई तुम्हे ऐसी प्यारी पाइ कैसे न्यारी राखी जाति है॥१७॥

[१] के—नी० हि०। [२] रसमाति—नी० हि०। [३] नैन ऐन—नी० हि। [४] धुन मालिनि—नी०। [५] राधिका—भा० सा०। [६] जाहि देखे रावरीयो छतिया सिराति है—सा०, जाहि देखे कौन की न छतिया सिराति है—नी० हि० का०। [७] बूझन—नी० हि०।

अतिशयोक्ति-उदाहरण।

राधे के रूप निहारि सबै कवि मूक भये उपमा नहि आवै।
को करि कुभनि केहरि कीर री[१] कुद कली कदलीन गनावै[२]।
कवन[३] कचन कीन्हो अकचन को चित चपक चोप बढावै।
देव जू निदित इदीवरै सब[४] इदिरा इदु न आदर पावै॥१८॥

[१] कीरनि—का०। [२] गवावै—नी०। [३] कचन—नी०, पचन—का०। [४] देव सुतौ कल कोकिला से वच—का०।

समासोक्ति-लक्षण।

कछू वस्तु चाहै कहौ[१] ता सम वरनै और।
समासोक्ति सो[२] जानिये अलकार[३] सिरमौर॥१९॥

[१] वरन्यो चहै—नी० हि०। [२] सु—समासोक्ति—भा० सा०। [३] वरनत कवि—नी० हि०।

उदाहरण।

मालती सो मिलये[१] निसि द्यौसहू या[२] सुखदानि ह्वै[३] ज्यौ समभैयै।
प्रीति पुरानी पुरैनि के रैनि रहौ नियरे न विपत्ति वहैयै।
ऊपरही गुन रूप अनूप निरतर अतर मैं न पत्यैयै।
ये अलि दूलह[५] भूलेहू देवजू चपक फूल के मूल न जैयै॥२०॥

[१] मलिये—भा०। [२] द्यौसहि प्यौ—हि० सा०। [३] कै—सा०। [४] पुरैन करैन—हि०। [५] हूलहू—सा०।

वक्रोक्ति-लक्षण।

काकु वचन श्लेप करि[१] और अरथ ह्वै जाइ।
सो वक्रोक्ति सु बरनिये[२] बरनि कहत कविराइ॥२१॥

[1] काकु वचनल्लेश करि—सा०, वचन रचना श्लेष करि—का० । [2] वखानिये—नी० हि० [3] उत्तम काव्य सुभाइ—भा० सा० ।

उदाहरण ।

मति कोप करै[1] पति सो कबहूँ मति को पकरे पति सो निबहै ।
कवि देव न मान वधू रत है[2] सब भाषत आन वधू रत है ।
अब लौ न कहूँ[3] अवलोकि तुम्है अब लोक तुम्है सुख देत रहै ।
किनि नाम कहौ हमसो तिनको हम सौतिन को किहि भाँति कहै ।।२२।।

[1] करौ—नी० हि० । [2] तु कहा हम मान वधू बस है—का० । [3] अवलोकनहू—नी० । [4] दै रहौ—हि० ।

पर्यायोक्ति-लक्षण ।

मन की कहे न ताल[1] ये बरने और प्रकार ।
परजायोक्ति सु नाम सो[2] अलकार निरधार ।।२३।।

[1] वाल—का०, ताप—हि० । [2] मु नाम जो—भा०, बखानि जो—हि० । वखानिये जो—हि०

उदाहरण ।

मैं सुनी काल्हि परौ लगि सासुरे[1] साँचेहूँ जैहौ[2] कहौ सखि[3] सोऊ ।
देव कहै केहि भाँति मिलै जाने को[4] काहि[5] कहा कब[6] कोऊ ।
खेलि[7] तो लेहु भटू सँग[8] स्याम के आजु ही कौं,निसि आये है ओऊ ।
हौं अपने दृग मूँदति हौ धरि धाइ के धाय दुरौ[9] तुम दोऊ ।।२४।।

[1] सासुरे कालि परौ लगि—का० । [2] जैहौ सु साँची—भा० सा० । [3] किनि—भा० सा० । [4] को जानै—भा० सा० । [5] काल्हि—सा० । [6] अब—का० । [7] भेटि—भा० सा० । [8] उठि—भा० सा० । [9] आज मिलो—भा०, धाइ मिलो—सा० ।

सहोक्ति-लक्षण ।

जहाँ सहज गुण सो सहित[1] कीजे वस्तु वखान[2] ।
अलकार कवि देव कहि सो सहोक्ति उर आन[3] ।।२५।।

[1] सो सहोक्ति जहँ सहित गुन—भा० । [2] वस्तु विचार—नी० हि, सहज वखान—भा० । [3] सो सहोक्ति पहिचानिये देव कहै लकार—नी० हि० ।

उदाहरण ।

प्यारी के प्रान समेत[1] पिया परदेस पयान की बात चलावै ।
देव जू छोभ समेत[2] छपा छतिया मै छपाकर की छवि छावै ।
बोलि अली बन बीच बसत कौ मीचु समेत नगीच बतावै[3] ।
काम के तीर समेत[4] समीर सरीर मैं लागत पीर बढावै ।।२६।।

[1] समीप—का० । [2] ध्यौस समान—का० । [3] भौंर समेत नगीच न आवै—हि०, भौंर ममेत रगोचन आवै—नी० । [4] समान—नी० हि० का० ।

विशेषोक्ति-लक्षण ।

जाति कर्म गुन भेद की विकलपता करि जाहि[१] ।
वस्तुहि बरनि दिखाइये विशेषोक्ति कहि ताहि ।।२७।।

[१] विकल्यान करि जाइ—हि०, विकलपना करि जाय—नी० ।

उदाहरण ।

जोवन व्याध[१] नही[२] अरु बैननि मोहनी मत्र नही अवरोह्यो ।
भौह कमान न वान विलोचन तानि तऊ पति को चितु पोह्यो[३] ।
देव घृताची[४] सची न रची तू दियौ नहि देवता को तन तोह्यौ[५] ।
तापर वीर अहीर की जाई री तैं मनमोहन को मन मोह्यो ।।२८।।

[१] व्याधि—नी० हि० । [२] नदी—सा० । [३] चोह्यौ—हि० । [४] छताची—का०, धूतची—सा०, घृनाची—हि । [५] तोर्‌यो—नी० हि० ।

व्यतिरेक-लक्षण ।

जहँ समान विधि[१] वस्तु कौ कीजै भेद वखान ।
अलकार व्यतिरेक सो देव सुमति पहिचान[२] ।।२९।।

[१] ह्वै—हि०, ०—नी०, द्वै—का० । [२] व्यतिरेक को देवदत्त उर आनि—नी० हि०, व्यतिरेक सो देवदत्त कवि जान—का० ।

उदाहरण ।

कौन के होइ न ही मै हुलास[१] सु जात[२] सबै दुख देखतही दवि ।
जाहि लखे बिलखे यहि भाँति परै मनु सौति सरोजनि पै पवि[३] ।
याही ते प्यारी तिहारी मुखद्युति चद समान वखानत है[४] कवि ।
आनन ओप न होत मलीन[५] पै छीन ह्वै[६] जाति छपाकर की छवि ।।३०।।

[१] विलास—का० । [२] जो जात—नी० हि० । [३] मै पवि—नी०, पै फवि—का० । [४] तो—का० सा० । [५] मलीन न होति—भा० । [६] कै—भा० ।

विभावना-लक्षण ।

हेतु प्रसिद्ध निरास करि कहिये हेतु सुभाउ ।
अलकार सो देव कवि विभावना कहि गाउ[१] ।। ३१।।

[१] सो विभावना गाउ—भा० ।

उदाहरण ।

ये अँखियाँ विनु काजर कारी अन्यारी[१] चितै चित मै चपटै सी ।
मीठी लगै वतियाँ मुख सीठिओ[२] सुनै सब सौतिन को दपटै सी[३] ।
अगहूराग विना अग अंग[४] झकोरै सुगधन की झपटै सी[५] ।
प्यारी तिहारी ये एडि लसै विनु जावक पावक की लपटै सी ।।३२ ।।

[१] अयाँरी—भा० । [२] मु अमीठिअै वातै—का०, अनमीठिओ बातै—नी०, अन ईठिओ वातै—हि० । [३] सौतिन को सुन कै दपटै सी—सा०, यो मौतिन के उर मै दपटै सी—भा० । [४] अगनि ते विन अगहू राग—नी०, अगहि मै सु विना अँगराग—का० । [५] राग

सुगधहू के लपटै सी—नी०, मुगध झकोरै हिए झपटै सी—का० ।

उत्प्रेक्षा-लक्षण ।

और भाँति की वस्तु को कीजै और वखान[१] ।
सो कहिये उत्प्रेक्षा बहु वितर्क जहँ जान[२] ।। ३३ ।।

[१] और वस्तु को तर्क करि वरनै निहचै और—भा०, और वस्तु को त्याग करि करनै निहचै और—सा० । [२] अनुमानादिक दौर—भा० सा०, जहँ वितर्क जू जान—नी० हि० ।

उदाहरण ।

हियो हरे लेती पसुपच्छी बस करे लेती छिनी विछुरे ते[१] छिदि छिदि उठै छतियाँ[२] ।
सुनि सुनि मोही हौ न[३] जानति हौ कोही अव ओही रूप रही[४] अवरोही[५] दिन रतियाँ ।
पलौ ना[६] परत मोन मान को करै री कौन भूल्यो भौन गौन नई लोक लाज वतियाँ[७] ।
मेरे मन आवत मुनिन मन[८] मोहिवे को मोहनी के मत्र है री मोहन[९] की वतियाँ ।।३४।।

[१] विछुरे ही—भा०सा० । [२] लेत छीन छतियाँ—का० । [३] हिय—भा० । [४] रही—नी० हि० । [५] अतिरुही—का० । [६] रह्यो न—भा सा० । [७] ज्ञान भूलो जात भई लोक छलियाँ —नी०, ज्ञान भूलो जात भई लोक लाज मतियाँ—हि० । [८] गही के मन—नी० हि० ।[९] मोहिनी—भा० सा० ।

आक्षेप और उदात्त-लक्षण ।

करत कहत कछु वस्तु को[१] वर्नन है[२] आक्षेप ।
उदात्त मै[३] अति वरनिये सपति दुति अवलेप ।।३५।।

[१] फेर सो—भा० सा० । [२] वर्जन वच—भा० सा० । [३] ये—नी० हि० ।

आक्षेप-उदाहरण ।

नूतन गुलाल[१] नूत मजरी की मालनि सौ कीजे गजमुख सनमुख सनमान कौ ।
करिहै[२] सकल सुख विमुख वियोग दुख न्यारे जनि जानौ प्यारे प्यारी हू के प्रान कौ[३] ।
वायै वोलै मोर पिय सोर[४] करै सामुहेहूँ दाहिने सुनो जु मत्त मधुकर[५] गान कौ ।
सगुन भले है चलिवे को जो चली हौ कत[६] आवत वसत कत[७] करिये पयान कौ ।।३६।।

[१] गुलाव—का० । [२] करिकै— नी० हि० । [३] जानिये न प्यारे ये हमारे प्रिय प्रान को—भा० सा० । [४] सगुन भले पै वोलै मोर—नी० हि० । [५] भौर भीर—नी० हि० । [६] चलौ चितु—भा० सा० । [७] चित—नी० हि० ।

उदात्त-उदाहरण ।

वाल को न्योति वुलाइवे को वरसाने लौ हौ पठई नँदरानी ।
श्री वृपभानु की सपति देखि थकी गति औ मति औ अति वानी[१] ।
भूलि परी मनि मदिर[२] मे प्रतिविवन देखि विसेप भुलानी ।
चारि घरी लौ चितौत चितौत मरू करि चदमुखी पहिचानी ।।३७।।

[१] अति ही गति औ मति वानी—भा०, अति ही मति औ अति वानी—का० । [२] रग मदिर—नी० हि० ।

दीपक-लक्षण ।

अरथ कहै एकै क्रिया जहाँ आदि मधि अन्त ।
अथवा जहँ प्रतिपद क्रिया दीपक कहत सु सत ।।३८।।

उदाहरण ।

मोहि लई लखि कै हिरनी[1] हरि नीरज सी बडरी अखियानि सो।
सारिका सारसिका रसिका सु[2] कपोत कपोती पिकी मृदुबानि सों[3]।
देव कहै सब भूप सुता अनुरूप अनूपम[4] रूप कलानि सो।
गोप वधू[5] विधु से मुख की मधुसूदन वा मधुरी[6] मुसक्यानि सो ।।३९।।

[1] हिरनी लखि कै—भा० सा०। [2] सार सुवा सो कपोती—नी० हि०। [3] हू सुवारे सुवानि सो—नी० हि०। [4] अरुपक—हि०। [5] पै न वधू—सा०, गोप सुता—का०। [6] घन सुन्दर हेरि हरी—भा०, घन सुन्दर मद मुरे—सा०।

अपह्नुति-लक्षण ।

मन को अरथ छिपाइ कै[1] औरै अर्थ प्रकास ।
देव कहै कीजै तहाँ नाम अपन्हुति तास[2] ।।४०।।

[1] छिपाइये—भा० सा०। [2] श्लेष वचन काकु स्वरनि कहत अपन्हुति तास—भा० सा०।

उदाहरण ।

हौही हौ और कि ये सव और कि डोलत आजु को औरै समीरौ।
याते इन्हे तन ताप[1] सिरात पै मेरे हिये न थिरातु है धीरौ।
ये कहै[2] कोकिल कूक भली सु तौ[3] कान सुने जम[4] आवत नीरौ।
लोग ससी को सराहत है[5] तव ताहू लगै सखी साँचेहू सीरौ ।।४१।।

[1] सनताप—नी० हि० का०। [2] कही—नी० हि०। [3] मुहि—भा० सा०। [4] परे जनु—नी० हि०। [5] री—भा०, है री—सा०।

श्लेष-लक्षण ।

जहाँ कवित्त के पदन मै[1] उपजै अन्त अनन्त।
अलकार अश्लेष सो[2] बरनत है मतिमन्त[3] ।।४२।।

[1] जहाँ काव्य के पदन मैं—भा०, जो है काव्य कछून मैं—सा०। [2] सब—नी० हि० [3] बरनत सत विहत—नी० हि०, वरनि कहै मतिमत—का०।

उदाहरण ।

ऐसी गुनी गरे लागत ही न रहै तन मै सनताप[1] री एकौ।
देव महारस वास निवास[2] वडो सुख वा उर वास किये को[3]।
रूप निदान अनूप विधान सु प्राननि कौ फल जासो जिये को[4]।
साचेहूँ है[5] सखी नन्दकुमार कुमार नही यह[6] हार हिये को ।।४३।।

[1] तनताप—हि०। [2] अवास—का०। [3] वडो मुख जो सुख जा उर वास किये को—हि०। [4] मूरतिमत वसत विलास बढावत ही मै हुलास हिये को—का०। [5] साँचेहूँ री

—हि० । [६] सखि—सा० ।

अर्थान्तरन्यास-लक्षण ।

उक्त[१] अर्थ दृढ करन को वाक्य जु कहिये और[२] ।
अर्थान्तर को न्यास सो अलकार सिरमौर[३] ॥४४॥

[१] युक्त—भा० । [२] आनै अर्थ जु और—का० । [३] सो अर्थान्तर न्यास कहि वरनत वस कवि रस भौर—सा०, सो अर्थान्तरन्यास कहि वरनत रस वस भौर—भा० हि० ।

उदाहरण ।

चैन के ऐन[१] ये नैन निहारत मैन के को[२] कर मै न परै री।
तापर नैसिक अजन देत निरजन ह्व के हिये को हरै री।
साधुओ होहि असाधु कहूँ[३] कवि देव जो कारे के सग परै री।
स्याह हियो[४] अरु स्याम[५] सुतौ[६] सखी आठहू जाम कुकाम[७] करै री ॥४५॥

[१] राय—हि० । [२] कोउ—भा०, क्यो—का० । [३] कोऊ—हि० । [४] स्याह रह्यो—हि०, स्याही रह्यो—भा०, स्याही भरो—का० । [५] स्याह—भा० सा० हि० । [६] सखा—हि० । [७] अकाम—का० ।

अप्रस्तुतप्रशसा और व्याजस्तुति-लक्षण ।

जहाँ सु अप्रस्तु अस्तुति निंदा की अचान[१] ।
निंदा अप्रस्तुत करै जहाँ[२] सो व्याजस्तुति जान ॥४६॥

[१] अप्रस्तुति ता स्तुतिल निंद अचान—सा० । [२] निंदै और जहाँ सराहिये—भा० सा० ।

अप्रस्तुतप्रशंसा-उदाहरण ।

वडभागिनि येई विरचि रची न इतौ[१] सुख आन कहूँ[२] तिय के।
विछुरै न छिनौ भरि वालम ते कवि देव जू सग रहै[३] जिय के।
तृन[४] चारु चरै रुचि सो चहूँ ओर चलै चितवै सुचि सो[५] हिय के।
सव ते सव भाँति भली हरिनी निसि वासर पास[६] रहै पिय के ॥४७॥

[१] रुप तो—हि० । [२] किहूँ—का० । [३] वीच वसै—का० । [४] वन—हि० । [५] सुव सो—हि० । [६] सग—का० ।

व्याजस्तुति-उदाहरण ।

को हमको तुमसे तपसी विनु जोग सिखावन आइहै[१] ऊधो।
पै यहि पूछिये जू[२] उनको सुधि पाछिली[३] आवति है कवहूँ धौ।
एक भली भई भूप भये अरु भूलि गये दधि माखन दूधौ।
कूवरी सी अति सूधी वधू को मिल्यौ वर देव जू स्याम सो सूधौ[५] ॥४८॥

[१] आए है—हि० । [२] अव एती कहौ—का० । [३] पाछिली सुधि—का० । [४] जउ—का० । [५] वर पायो त्रिभगीयै स्याम सो सूधो—का०, कहु पायो भलो घनस्याम सो सूधो—हि० ।

आवृत्तिदीपक-लक्षण ।

आवृत्ति दीपक भेद कै ताहू त्रिविधि वखान ।
आवृति अर्थावृति अरु परपदार्थावृति जानु[१] ॥४९॥

[१] वृत्ति अर्थ आवृत्ति अरु पद पदार्थ जुत जान—हि० ।

उदाहरण ।

वेलि लसै बिलसै नव[१] पल्लव फूल[२] खिले उखिलै[३] नव[४] कोरै ।
मोरत[५] मान को गान अलीन के कूकि पिकी मुनि कौ मन मोरै ।
डोलत पौन सुगध ललै[६] अरु मैन के वान सुगध के डोरै ।
चंचल नैननि सो तरुनी अरु नैन कटाछनु सो चितु चोरै ॥५०॥

[१] वन—का० । [२] भूलि—का० । [३] नखिलै—भा० । [४] मोरन—हि० । [५] चलै—भा०, तलै—हि०, मलै—'म' हाशिये पर—का० ।

निदर्शना-लक्षण ।

औरै वस्तु वखानिये फल तव ताहि[१] समान ।
जहाँ दिखाइये और कहि ताहि निदर्शन जान[२] ॥५१॥

[१] फूलत ताहि—सा० । [२] जहा दिखाइय निदरसन कहत सु ताहि सुजान—का०, जहा दिखाइय और कह ताहि निदर्शन ज्ञान—हि० ।

उदाहरण ।

देखिवे को जिनको दिन राति रहै उर मै अति आतुर ह्वै हरि ।
कोरि उपाइन पाइये जे न रहे जिनके विरहज्वर सो जरि[१] ।
पार न पैयतु[२] आनद कौ तिनि आनि भटू उठि भेटे[३] भुजा भरि ।
जानि परै नहि देव दया विप देत मिली विषया जु मया करि[४] ॥५२॥

[१] खाइ पियै न कहै न सुनै अकुलाइ महा विरहज्वर सो जरि—का० । [२] पाइये पार न—का० । [३] अवही तिन्ह आइकै भेटे—का०, उठि भेटि भटू सु—हि० । [४] भातिन भाग वही मन भावती मीत मिलै जु दया करि—का० ।

विरोध-लक्षण ।

जहाँ विरोधी पदारथ[१] मिलै[२] एकही ठौर ।
अलकार सु विरोध विनु विप पियूप विप कोर[३] ॥५३॥

[१] पद अरथ—हि० । [२] होहि—का० । [३] है वरनत कवि सिरमौर—का०, यह विपय पूष विप कोर—हि० ।

उदाहरण ।

आयो वसत लग्यो वरसावन नैननि ते सरिता उमहै री ।
कौ लगि जीव छिपावै छपा मै छपाकर की छवि छाड रहै री ।
चदन सो छिरके छतियाँ अति आगि उठै दुख[१] कौन सहै री ।
सीतल मद सुगध समीर वहै दिन दूगनी देह दहै री[२] ॥५४॥

[१] उर—का० । [२] देव जू सीतल मद सुगध सु 'गधवहौ लगि देह दहै री—भा० ।

परिवृत्त-लक्षण ।

जहाँ वस्तु[१] वरननि पदनि[२] फिरि आवतु[३] है अर्थ ।
ताही सो परिवृत्त कहि वरनत सुमति समर्थ ।।५५।।

[१] भाव—का० । [२] विषय—का० । [३] आननु—सा० ।

उदाहरण ।

केवली[१] समूढ लाज ढूँढत[२] ढिठाई पैयैं[३] चातुरी अगूढ गूढ मूढता[४] के खोज है ।
सोभा सील[५] भरत अरति[६] निकरत सव मुरि[७] चले खेल पुरि[८]चले चित्त चोज है ।
हीन होति कटि तट पीन होत जघन सघन सोच लोचन ज्यो नाचत सरोज हैं[९] ।
जाति लरिकाई तरुनाई तन आवत सु[१०] वैठत मनोज देव[११] उठत उरोज है ।।५६।।

[१] कै चली—हि० । [२] ऊढती—सा० । [३] पाइ—सा० । [४] गढत—का० । [५] साल—हि० । [६] अरत—हि०, अरुति—सा० । [७] मुहि—भा० । [८] जुरि—का०, पुर—हि० । [९] खीन होति कटि तव पीन होत जघन वदेत सुख नैन लेत उपमा सरोज है—का० । [१०] है—का० । [११] है री—हि० ।

हेतु और रसवत-लक्षण ।

हेतु सहित जहँ अरथ पद[१] हेतु वरनिये सोइ ।
नौहू रस मैं सरसता जहाँ सु रसवत होइ[२] ।।५७।।

[१] वरनिये—का० । [२] अधिक सरस जो वरनिये सो रसवत होइ—का० ।

हेतु-उदाहरण ।

देव यहै दिन राति कहै हरि कैसेहूँ राधे सो[१] वान कहैवी ।
केलि के कुंज अकेली मिले कवहूँ भरिकै भुज भेटि न पैवी ।
आठहू सिद्धि नवो निधि की निधि है विरची विधि सान्निधि ऐवी[२] ।
मेटि वियोग समेटि हियो भरि भेटि कवै सुखचन्द अँचैवी ।।५८।।

[१] वापर—का० । [२] छोरि छिपाइ विछोरि विछोह छिनो छतिया तिया सो छ्वैवी—का० । [३] चूमि सो चपक सी चिवुकै कर चाँपि कै मुखचन्द अँचैवी—का० ।

रसवत-उदाहरण ।

वेली नवेली लतानि सो केलि के प्रात अन्हाइ सरोवर पावन ।
पिजर मजरिका छहराइ[१] रजच्छत छाइ छपाइ छपावन ।
सीतल मद सुगध महा वपुरे विरही वपुरीनि तपावन ।
आजु को आयो समीर सखी री सरोज कँपाइ करेजो कँपावन ।।५९।।

[१] जछराइ—सा० । [२] जुवरैनि तपावन—सा०, विरहीनि तपावन—हि० ।

ऊर्जस्वल और सूक्ष्म-लक्षण ।

अहकार गर्वित वचन सो ऊर्जस्वल होइ[१] ।
सज्ञा सो प्रगटै अरथ सूछम कहिये[२] सोइ ।।६०।।

[१] जहाँ सु ऊरज होइ—का०, ऊर्जस्वत सो होइ—हि० । [२] वरनहु सूछम—का० ।

ऊर्जस्वल उदाहरण।

देव दुरत दवा[१] अँचयो जिहि कालिय कीलै[२] धर्‍यो सु वहै है।
कौ लौ बकौ हौ बकी वक वच्छ अघादिक[३] को अघु कै कै[४] अवैहै।
कान्ह[५] के आगे न काहू को कोप कहूँ कबहूँ निवह्यो न निवैहै।
छाँडि दै मान री मान कह्यो कहुँ भानु पै तेज कृसानु को रैहै[६] ॥६१॥

[१] दमा—सा०, दमी—भा०। [२] केलि—का०, कील—हि०। [३] वक वछ नवारक—हि०, वकवक्ष अघारिक—भा०। [४] कै को—सा०। [५] कोप—हि०। [६] भानु को तेज कृसानु कै रहै—भा०।

सूक्ष्म-उदाहरण।

वैठी वहू गुरलोगनि मे लखि लाल गये करि के कलु ओल्यो[१]।
ना चितई न भई तिय चचल देव इतै न उतै[२] चित डोल्यो।
चातुर आतुर जानि उन्है[३] छलही छल चाहि सखीन[४] सो वोल्यो।
त्योही[५] निसक मयकमुखी दृग मूँदि कै घूँघट को पट[६] खोल्यो ॥६२॥

[१] वोल्यो—हि०। [२] उनते—भा०। [३] ज्ञान वहै—का०। [४] सखान—हि०। [५] सौही—हि०। [६] ते मुख—का० सा०।

प्रेय और क्रम-लक्षण।

कहिये जो अति प्रिय वचन प्रेय[१] वखानौ ताहि।
उपमा अरु उपमेय को क्रम सु क्रमोक्ति आहि[२] ॥६३॥

[१] प्रेम—भा०। [२] सु कहै क्रम जाहि—का०, क्रम सु क्रमोक्ति जु आहि—हि०।

उदाहरण।

केस भाल भृकुटि[१] नयन श्रुति औ कपोल नासिका अधर दत[२] चिवुक विचारिये।
कठ कुच नाभी त्रिवली औ रोमावली कटि भुज कर जानु पग प्यारी के निहारिये।
कुहू[४] तम चद चाप खजन कनक पुट पत्र सुक विव मोती चपकली[५] वारिये।
कवु[६] निवु कूप नदी सैवाल मृनाल लता पल्लव कदलि कज चेरे करि डारिये ॥६४॥

[१] त्रिकुटी—सा०। [२] देत—भा०। [३] त्रौली रोमावली और—भा०। [४] कहू—भा०। [५] कुद कली—का०। [६] कुच—हि०।

समाहित-लक्षण।

जहँ कारज कर्तव्य को साधन विधि वल होइ।
अकस्मात ही देव कहि कहौ समाहित सोइ ॥६५॥

उदाहरण।

गुनगौरि कियो गुरु मान सु मैन लला के हिये लहराइ उठ्यो।
मनुहारि के हारी सखीगन[१] रँगभौनहि ते[२] भहराइ[३] उठ्यो।
तब लौ चहुँधाई घटा घहराइ कै विज्जु छटा छहराइ उठ्यो।
कवि देव जू भाग ते भावती को भय ते हियरा हहराइ उठ्यो ॥६६॥

[१] सखी गुन—भा० सा०। [२] रँगभौनहि मै—हि०। [३] हहराइ—सा०। [४] झहराइ—सा०

तुल्ययोगिता-लक्षण ।

जहँ सम करि गुन दोस कैं[1] कीजै वस्तु बखान ।
स्तुति निंदारथ[2] जहाँ तहाँ[3] तुल्ययोगिता जान ॥६७॥

[1] समान करि उत्कर्ष गुन—का० । [2] स्तुतिन पदारथ कौ—भा० । [3] तहाँ ही—हि० ।

उदाहरण ।

एक तुही वृषभानसुता अरु तीनि हैं[1] वै जु समेत सची हैं ।
देवी रमा[2] कवि देव उमा[3] ये त्रिलोक मैं रूप की रासि मची हैं ।
औरन केतिक राजन के कविराजन की रसना पै[4] नची हैं ।
पै[5] वर नारि महा सुकुमारि ये चारि[6] बिरंचि बिचारि[7] रची हैं ॥६८॥

[1] तीयन है—हि० । [2] उमा—का० । [3] रमा—का० । [4] रसना पै—भा० । [5] ये—हि० । [6] चारु—का० । [7] बिचारि बिरंचि—हि० ।

श्लेष-लक्षण ।

प्रगट अरथ[1] जु लेस करि कीजे ताहि निगूढ़ ।
लेस कहत तासों सुकवि जे बुधि बल आरूढ़[2] ॥६९॥

[1] अर्थ जु प्रगटै—का० । [2] सु अगूढ़—हि० ।

उदाहरण ।

बाल बिलोकत ही झलकी सी[1] गुपाल गरैं जलबिंदु[2] की मालैं ।
आपुस मैं मुसक्यानी सखी हरिदेव[3] जु बात बनाइ बिसालैं ।
साँप ज्यों पौन गिलें[4] उगिलैं बिप ज्यों रवि ऊपम[5] आगि[6] उगालैं ।
जात घुस्यो[7] घर ही मैं घने तप छीन भयो[8] तनु घाम के घालैं ॥७०॥

[1] सो—सा०, जु—का० । [2] अरबिंद—हि० । [3] सब देव—का० । [4] पौ निगरैं—हि० । [5] बिप ग्रीपम ज्यों रवि—का० । [6] आनि—भा० । [7] बस्यो—का० । [8] तपधी उभयो—हि० सा०, तप घीन भयो—भा० ।

भाविक-लक्षण ।

भूतरु भावी[1] अरथ को वर्तमान सु बखान[2] ।
भाविक वस्तु गभीर को सोई भाविक जान[3] ॥७१॥

[1] भूतहु भावी—हि०, भूत भाविक—का० । [2] जहँ कवि करत बखान—का० । [3] कैं गभीर जो वस्तु को भाव सो भाविक जान—का० ।

उदाहरण ।

जा दिन ते बृजनाथ[1] भटू इह गोकुल ते मथुराहि गये हैं ।
छाकि रही तब ते छवि सो[2] छिन छूटति ना छतिया मे छये[3] हैं ।
वैसिय भाँति निहारति ही हरि नाचति कालिंदी कूल ठये हैं ।
सत्रु महारि कै छत्र धरयो सिर देखति द्वारिकानाथ भये हैं ॥७२॥

[1] जदुराइ—हि० । [2] छवि से तब ते—का० । [3] गए—हि० ।

गभीरोक्ति-उदाहरण।

सबही के मनो मृग वा गुरजे[१] दृग मीनन को गुन[२] जाल[३] लिये।
वसुधा सुख[४] सिधु सुधारस[५] पूरन जात[६] चले दृग की गलिये।
कवि देव कहै एहि भाँति उठी कहि काहू की कोई कहूँ अलिये।
तबलौ[७] सबही यह सोर परचो कि चलौ[७] चलिये जु चलौ चलिये ॥७३॥

[१] उरियै—को०। [२] दुति—का०। [३] जानि—हि०। [४] वसुधा धर—हि०। [५] सुधा-धर—का०। [६] जीति—हि०। [७] तव तौ—हि०, तब ही—का०। [८] कब लौ—का०।

संकीर्ण और आशिष-लक्षण।

अलकार जामे बहुत सो सकीरन[१] होइ।
चाह चित्त[२] अभिलाप को[३] आसिख वरनै सोइ ॥७४॥

[१] ससरता—सा०। [२] प्रारथना—का०, चारु चित्त—हि०। [३] की—हि० सा०।

संकीर्ण-उदाहरण।

डोलति है जहँ काम लता[१] सु लची कुच गुच्छ[२] दुरुह दुधा की[३]।
कौल सनाल कि बाल[४] कै हाथ छिपी कटि[५] काँति की[६] भाँति मुधा की[७]।
देव यही मन आवति है सविलास वधू विधि है वहुधा की[८]।
भाल[९] गुही मुक्तालर माल[१०] सुधाधर मै मनो धार सुधा की ॥७५॥

[१] कोमलता—का०। [२] लचि कचन गुच्छ—का०। [३] न कै वरुधा की—का०, दरूह उधा की—भा०। [४] कीधौ प्रवाल कि बाल—का०। [५] छपी करि—हि०। [६] कातिकी—सा० हि०, कॉति कै—का०। [७] भुजा की—का०। [८] कि प्रकास रही तहि रासि प्रभा की—का०। [९] भाग—हि०। [१०] भाल मे मोती की माल लसै—का०।

आशिष-उदाहरण।

भाग सुहाग भरी अनुराग सो राधे जू मोहन को मुख जोवै।
भूपन भेप बनावै नये नित सोतिन के चित वाछित खोवै।
रोधन गोधन पुज चरौ पय दास दुहौ दधि दासी विलोवै।
पूरन काम ह्वै[१] आठहू जाम जु स्याम की सेज सदा सुख सोवै ॥७६॥

[१] है—सा० का०।

अलकार ये मुख्य है इनके भेद अनत।
आन ग्रथ के पथ लखि[१] जानि लेहु[२] मतिमंत ॥७७॥

[१] मतन ते—का०। [२] जाहु—का०।

अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार।
ताते मोपर करि कृपा लैहै सुमति सुधार ॥७८॥
या साहित्य समुद्र को वडेन न पायो पार।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार ॥७९॥

द्योसरिया कवि देव को नगर इटाए वास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास ॥८०॥

इति पचम विलास।
इति भावविलास ॥

रस विलास

प्रतियाँ : प्रतियो की बहिरग परीक्षा : पाठ-सपादन मे प्रयुक्त 'रसविलास' की विभिन्न प्रतियो का विवरण इस प्रकार है :

१ ब्र०—अर्थात् श्री ब्रजवल्लभ की प्रति यह प्रति काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के सग्रह मे है। सभा के सूचीपत्र मे इसकी सख्या ४६७।१२ है। प्रति लगभग १३ इच लम्बी तथा ७ इच चौडी है। प्रति मे १०६ पत्र तथा प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पक्तियाँ है। इसके अक्षर आकार मे साधारण से अधिक वडे है। इसकी प्रतिलिपि भरतपुर के श्री ब्रजवल्लभ ने सवत् १८९७ मे अपने लिए की थी। यत्र-तत्र प्रति मे पहले के पाठ पर हरताल फेरकर पाठ-सशोधन भी किया गया है। ध्यान से परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि प्रति मे पीली तथा गेरुए वर्णो की हरताल का प्रयोग हुआ है। इनमे से पीली हरताल का उपयोग प्रतिलिपिकार ने तथा गेरुए रग की हरताल का उपयोग किसी अन्य सशोधनकर्ता ने किया है। इस प्रति के पष्ठ विलास मे भा० मो० शाखा की किसी प्रति से पाठान्तरो की तुलना तथा पाठ-सशोधन हुआ है। ऐसे सभी पाठ-सशोधन गेरुए रग की हरताल की सहायता से हुए हैं। प्रति मे आठ विलास तथा भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द मिलते है। प्रति की अतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री रस विलास सम्पूर्ण सवत् १८९७ मिती आसाढ़ कृष्ण १ भौम वासरे लिष्य कृत ब्रजवल्लभ वहस्ते स्वात्म पठनार्थम् भरतपुर मध्ये राज्ये बलवत सिघजी शुभ। श्रीरस्तु"

प्रति का पाठ अत्यन्त विश्वसनीय है।

२ मो०—अर्थात् मोहनजी की प्रति : यह प्रति भी नागरी-प्रचारिणी सभा के सग्रह मे है। इसकी सूचीपत्र-सख्या ४९६।१२ है। प्रति मे कुल ४० पत्र है तथा प्रत्येक पृष्ठ पर २१ पक्तियाँ है। प्रति की लम्बाई लगभग १२ इच तथा चौडाई लगभग ८ इच है। सवत् १८८१ मे वालमुकुन्द मिश्र ने मोहनजी फौजदार के निमित्त यह प्रतिलिपि तैयार की थी। इस प्रति मे अनेक स्थलो पर पाठ के एकाध वर्ण प्रमादवश छूट गए है। भोगीलाल-सम्बन्धी छन्द तथा अष्टम विलास इस प्रति मे नही है। अतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री रस विलास कवि देवदत्त कृतौ सकल वियोग दसा वर्णनो नाम सप्तमो विलास ७ मिती श्रावण वदि २ भौमवासरे सवत् १८८१ पोथी फौजदार श्री मोहनजी लिखित मिश्र बालमुकुन्दजी शुभ भवतु श्री॥"

प्रति का पाठ सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

३ भा०—अर्थात् भारतजीवन प्रेस द्वारा प्रकाशित 'रस विलास' का सस्करण : सन् १९०० मे भारतजीवन प्रेस के सचालक श्री रामकृष्ण वर्मा ने 'रस विलास' का स्वसपादित सस्करण प्रकाशित किया था। मो० प्रति के समान इस प्रति मे भी भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द तथा अष्टम विलास नही है। मुखपृष्ठ पर ज्ञापित सूचना के अनुसार श्री वर्मा जी को यह ग्रथ सिहोर-निवासी, गुजरात के प्रसिद्ध कवि श्री गोविन्द गीलाभाई की सहायता से प्राप्त हुआ था। श्री वर्मा जी ने अपनी आधार-प्रति के विषय मे अन्य सूचनाएँ नही दी है।

सम्पादक ने अपनी ओर से पाठ मे अधिक परिवर्तन नही किया है अत इस सस्करण का पाठ भी विश्वसनीय है।

४ सा०—अर्थात् **हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की हस्तलिखित प्रति** सम्मेलन-सग्रहालय के सूचीपत्र मे इसकी सख्या १३४६।२११२ है। प्रति आकार मे लगभग ७ इच चौड़ी तथा १२ इच लम्बी है। प्रति मे केवल ३४ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर ३४ पक्तियाँ है। प्रति जिल्दबद्ध नही है, यद्यपि पत्रो के फर्मे बगल से एक-दूसरे से सिले हुए है। अन्तिम पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि नागपुर-निवासी सीताराम ने बाजीराव भोसले के समय मे सवत् १८९२ मे इसकी प्रतिलिपि की थी। इस प्रति मे भोगीलाल-सम्बन्धी छन्द अधिक तथा अष्टम विलास मिलते है। प्रति मे पचम विलास के अन्त मे पुष्पिका नही है किन्तु षष्ठ विलास मे छन्दो का सख्या-क्रम १-२ से प्रारम्भ होता है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति रस विलास ग्रथ सम्पूर्ण सवत् १८९२ सके १७५७ आषाढ कृष्ण तेरह त्रयोदसी शुभ वासरे भृगु वासरे सीताराम मोतीरामात्मज तेन स्वहस्तेन लिखित पठन पाठनार्थ आत्मा अर्थ परोपकारार्थ। मुकाम नागपुर सहर राजे बाजीवा भोसले। सन् फसली १२४५।"

सा० प्रति का पाठ सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

५ नी०—अर्थात् **नीलगाँव, जिला सीतापुर की अपूर्ण प्रति** . इस प्रति के आरम्भ मे ग्रथ-नाम 'रस विलास' न होकर 'जाति विलास' है। मध्य के विलासो की पुष्पिका मे ग्रथ-नाम का उल्लेख नही है। मुझे यह प्रति राजा नीलगाँव के राजपुस्तकालय से प्राप्त हुई थी। प्रति आकार मे लगभग १० इच लम्बी तथा ७ इच चौडी है। प्रति मे कुल २१ पत्रे तथा प्रत्येक पृष्ठ पर २१ पक्तियाँ हैं। प्रति का अन्तिम अश खडित होने के कारण इस प्रति के प्रतिलिपिकार का नाम, उसका स्थान अथवा प्रतिलिपि-सवत् इस प्रति मे नही है परन्तु 'भाव प्रकाश' तथा 'उमराव कोष' आदि जिन अन्य ग्रथो के साथ यह प्रति एक जिल्द मे बँधी है उनमे से अन्तिम, 'उमराव कोष' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि श्री गौरीशकर दुबे ने सवत् १९४३ मे इन सभी ग्रथो की प्रतिलिपि की थी। इस प्रति मे पाठ केवल 'केरल वधू' ५ ४७ तक मिलता है। भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द इस प्रति मे नही है।

प्रति का पाठ अत्यन्त विश्वसनीय है।

६ गं०—अर्थात् **श्री व्रजराज पुस्तकालय, गंधौली, जिला सीतापुर की हस्तलिखित प्रति** . 'रस विलास' की यह प्रति आकार मे लगभग १४ इच लम्बी तथा ९ इच चौड़ी है। पत्रो की सख्या ५१ तथा प्रति-पृष्ठ पक्तियो की सख्या २२ है। प्रति 'रस साराश'—दास, 'कोष'—व्रजराज, 'उमराव कोष'—सुवश, आदि ग्रथो के साथ एक मोटे रजिस्टर मे बँधी है। कही-कही पैसिल से हाशिये पर पाठान्तर भी सग्रहीत है। ग० प्रति मे पचम विलास के अन्त मे पुष्पिका नही है एव षष्ठ विलास मे छन्दो का सख्या-क्रम १-२ से प्रारम्भ नही होता। (देखे सा० प्रति का विवरण) अन्तिम पुष्पिका के अनुसार स्वय युगलकिशोर मिश्र ने सवत् १९४२ मे इस ग्रथ की प्रतिलिपि की थी। ग्रथ मे भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द तथा अष्टम विलास मिलते है। प्रति की अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री नृप भोगीलाल हित बानी देव प्रकास रस विलास शृगार रस नायिका नायक हाव भाव दस हाव वर्णनो नाम सप्तमो विलास ॥७॥

समाप्त शुभमस्तु। श्री सवत् १६४२ चैत्र शुक्ल १३ शनौ। लिखित मिदं पुस्तक जुगलकिशोर मिश्रेण स्वार्थे ॥"

ग० प्रति के पाठ मे एकाधिक शाखाओ की अनेक प्रतियो से पाठ-मिश्रण हुआ है अत यह प्रति अविश्वसनीय है।

७ गंजा—अर्थात् गंधौली की 'जाति विलास' की अपूर्ण प्रति इस प्रति के आदि मे तथा मध्य मे विलासो की पुष्पिका मे ग्रथ-नाम 'जाति विलास' दिया है। यह प्रति आकार मे 'रस विलास' की ग० प्रति के प्राय समान है। इस प्रति मे ३० पत्र तथा प्रति-पृष्ठ पक्तियो की सख्या १६ है। प्रति का अन्तिम अश अपूर्ण होने के कारण प्रति मे प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि-सवत् नही दिये है।

इस प्रति के पाठ मे अन्य प्रतियो के पाठ का मिश्रण होने के कारण इस प्रति का पाठ भी अधिक विश्वसनीय नही है।

अन्य प्रतियाँ 'रस विलास' की ऐसी प्रतियो का विवरण जिनका उपयोग ग्रंथ के पाठ-सपादन मे आशिक रूप मे हुआ है अथवा जिन्हे अप्रयुक्त छोड दिया गया है, इस प्रकार है'—

८ आ०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के आर्यभापा पुस्तकालय मे इस पोथी की सूचीपत्र-सख्या १२२ है। प्रति कुल ४४ पत्रो की है तथा इसके प्रत्येक पृष्ठ पर ११ पक्तियाँ है। प्रति का आकार लगभग १५ इच तथा ४ इच है। प्रति की अतिम पुष्पिका खडित होने के कारण प्रतिलिपिकार की असावधानी से वर्ण तथा मात्रा अनेक स्थलो पर छूट गए है। प्रति के पाठ मे सशोधन भी कम हुआ है। हाशिये पर पाठान्तर भी एक-दो स्थलो पर ही है तथा हरताल का प्रयोग भी कम हुआ है। भा० मो० प्रतियो मे तथा इस प्रति मे पाठान्तर तथा पाठ-विकृतियाँ समान मिलने के कारण हमने इस प्रति का आशिक उपयोग किया है।

सक्षेप मे इस प्रति की विशेपताएँ इस प्रकार है·

आ० प्रति मे भोगीलाल-सम्वन्धी अधिक छन्द नही है परन्तु अष्टम विलास मिलता है। प्रत्येक विलास के अन्त मे भोगीलाल के नाम सहित अधिक छन्द भी आ० प्रति मे नही है तथा अष्टम विलास के अतिरिक्त किसी भी विलास के अत की पुष्पिका मे भोगीलाल का उल्लेख नही मिलता। प्रति मे षष्ठ विलास के अत मे पुष्पिका नही दी है परन्तु इसके पश्चात् छन्दो का सख्या-क्रम १-२ से प्रारम्भ होता है। सप्तम विलास के आरम्भ मे 'रानी राधा हरि सुमिरि' दोहा नही है यद्यपि अब तक प्रथम, द्वितीय आदि विलासो के आदि मे यह दोहा आया है। इस प्रति मे भोगीलाल का नामोल्लेख केवल अष्टम विलास के प्रथम 'देव जिन्हे मिलि' छन्द मे, अष्टम विलास के अतिम दो छन्दो मे तथा प्रति की अतिम पुष्पिका मे हुआ है।

इस विवरण से यह प्रगट है कि प्रति का षष्ठम विलास तक का पाठ भा० मो० प्रतियो की शाखा से एव इस स्थल के पश्चात् ग्रथ के अत तक का पाठ ब्र०, ग०, सा० प्रतियो की शाखा की किसी प्रति से लिया गया है। इस प्रकार यह प्रति विभिन्न शाखाओ की प्रतियो से पाठ-मिश्रण द्वारा तैयार हुई है। पाठ-मिश्रण के आधार वाली इन दोनो ही शाखाओ की प्रतियो का सपादन-कार्य के निमित्त चयन हो चुका है अत हमने आ० प्रति से पाठान्तर केवल द्वितीय

विलास के अत तक दिया है यद्यपि हमने इसके आगे भी पाठान्तरों की तुलना करके देख लिया है।

९ आर०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की 'रसविलास' की प्रति पुस्तकालय मे प्रति की सूचीपत्र-सख्या ११५ है। प्रति आकार मे लगभग ७ इच लम्बी तथा ६॥ इच चौडी है। प्रति मे ११४ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर १५ पक्तियाँ है। प्रति बिलकुल आधुनिक है क्योंकि सवत् १९७७ मे ग० प्रति से इसकी प्रतिलिपि हुई थी। ग० प्रति की सभी विशेषताएँ तथा पाठ-विकृतियाँ इस प्रति मे मिलती है एव ग० प्रति सपादन-कार्य मे प्रयुक्त हुई है, अत इस प्रति को महत्त्वहीन जानकर हमने छोड दिया है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—"समाप्तम शुभमस्तु। श्री सवत १९७७ श्रावण सुदि पूर्णिमा १५॥"

१० हिर०—अर्थात् हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद की 'रस विलास' की प्रति प्रति आकार मे लगभग १३ इच लम्बी तथा ८॥ इच चौडी है। प्रति मे ७९ पत्र तथा प्रति पृष्ठ ३२ पक्तियाँ है। यह प्रति भी अत्यन्त आधुनिक है। प्रति के अन्तिम पृष्ठ पर प्रतिलिपिकार की टिप्पणी है, "नागरी-प्रचारिणी सभा ने हिन्दुस्तानी एकेडमी के निमित्त यह प्रतिलिपि कराई।" इस प्रति के पाठ की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि यह प्रति भी आर० प्रति की प्रतिलिपि है अत इसे भी अनावश्यक जानकर छोड दिया गया है। इस प्रति की तथा आर० प्रति की अतिम पुष्पिकाएँ बिलकुल समान है।

११ आजा०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की 'जाति विलास' की अपूर्ण प्रति : पुस्तकालय मे प्रति की सूचीपत्र-सख्या ११७ है। प्रति मे ५४ पत्र है तथा प्रति पृष्ठ पर पक्तियो की सख्या १५ है। प्रति का आकार ७ इच लम्बा तथा ६॥ इच चौडा है। प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि-सवत् यद्यपि प्रति मे नही है परन्तु आर्यभाषा पुस्तकालय की देवकृत 'भावविलास'—सूचीपत्र-सख्या ११४, 'शब्द रसायन'—सूचीपत्र-सख्या ११२, ग्रन्थो की प्रतियों का लेख तथा आजा० प्रति का हस्तलेख एक ही है। इन पूर्वोल्लिखित प्रतियो की पुष्पिका मे प्रतिलिपिकार का नाम वटुकप्रसाद कायस्थ है इसलिए आजा० प्रति के प्रतिलिपिकार भी यही सिद्ध होते है। आजा० प्रति अत्यन्त आधुनिक है। इस प्रति मे गजा० प्रति के समान केरल-वधू तक ही पाठ है। इस प्रति के पाठ की तुलना गजा० प्रति से करने पर यह गजा० प्रति की प्रतिलिपि सिद्ध होती है। गजा० प्रति सपादन-कार्य मे स्वीकृत हो चुकी है अत आजा० प्रति का उपयोग नही किया जा रहा है।

१२ हिजा०—अर्थात् हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, की 'जाति-विलास' शीर्षक खडित प्रति हिजा० प्रति मे ३९ पत्र तथा प्रतिपृष्ठ ३२ पक्तियाँ है। प्रति आकार मे १३ इच लम्बी एव ८॥ इच चौडी है। इस प्रति मे भी गजा० प्रति के समान केवल 'केरल वधू' तक ही पाठ मिलता है। हिर० प्रति के समान इस प्रति की प्रतिलिपि भी नागरी-प्रचारिणी सभा काशी, ने एकेडमी के लिए कराई थी। गजा० प्रति की सभी पाठ-विकृतियाँ इस प्रति मे मिलती है एव गजा० प्रति पाठ-सपादन के निमित्त स्वीकार हुई है अत हमने इस प्रति को भी छोड़ दिया है।

प्रतियों की अतरंग परीक्षा : भा० मो० प्रतियाँ : पाठ-विकृति

१ : १६ देवी ।

"आठहू पहर कर आठो आठौ सिद्धि लिये **संकट में सेवक** सहाइ सदा दाहिनी ।"

अर्थात् सिहवाहिनी देवी सर्वदा अपने भक्तो के सकट मे उनकी सहायिका होती है । भा० मो० प्रतियो मे लेखन-प्रमाद से **सेवक मै सेवक** पाठ है । 'सेवक मै सेवक' का कोई सगत अर्थ नही है अत. 'सकट मैं सेवक' पाठ, जो 'सुखसागर तरग' मे १६ तथा २४६ सख्याओ पर आये इसी छन्द मे भी मिलता है, यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ . २६ धाय-लक्षण ।

"**वारे पालै** प्याइ पै स्यानी करै सिखाय ।"

'वार' का अर्थ है वाल अर्थात् 'वालिका'—**वारेई** वैस बड़ी चतुरै हौ—।' जो स्त्री बालिका को पयपान करावे, उसे सिखा-पढ़ा कर सयानी बनावे, उसे धाय कहते है। भा० मो० प्रतियो मे '**वारे पीछे**' पाठ है, जिससे 'वाल्यावस्था के पश्चात् जो अपना पयपान कराये—' आदि भ्रान्त अर्थ निकलता है।

१ ' ३३ सखी नायक से ।

"कुजनि के कोरे **मनु** केलि रस वोरे लाल तालनि के खोरे बाल आवति है नित को।"

भा० मो० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार ने कदाचित् 'मनु' के 'मन' रूपान्तर को पाठ-विकृति जान कर '**मैन**' पाठ-सशोधन अपनी ओर से किया है । 'मैन केलि रस' पाठ असगत है। कवि का अभीष्ट भाव है, 'मानो केलि-रस मे निमज्जित होकर बाला कुज मे आती है।' 'काव्य रसायन' मे ६ ३४ सख्या पर भी 'मनु' पाठ स्वीकृत है ।

इसी छन्द के तृतीय चरण मे 'थोरे थोरे **जोवन**' के स्थान पर भा० मो० प्रतियो मे '**जवन**' विकृत पाठ है । यह पाठ निरर्थक होने के कारण विकृत माना गया है ।

१ : ४४

"नन्द कुमार **उतै अति** ठाकुर राधे इतै अति ही ठकुराइनि ।"

भा० मो० प्रतियो मे '**इतै उतै**' पाठ है, तदनुसार चरण का अर्थ होगा, "नन्द कुमार यहाँ वहाँ ठाकुर है और राधिका यहाँ (—ही) अति ठकुराइन है ।" इस पाठ की निरर्थकता स्पष्ट है ।

१ ' ४५

"श्री वृषभानु के भौन को दीपक **एई** है राधिका राजकुमारी ।"

भा० मो० प्रतियो मे विकृत पाठ है **दाइ कराइ** है। 'एई' से 'राई' पाठ-विकृति 'ए' के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने से सम्भव है । सर्वथा निरर्थक होने के कारण हमने इस पाठ को विकृत माना है ।

२ : २८

"सोने से सोहने गातन सोहै सुहागिनि की अति **सूही** सुहाई।"

'सूही' का अर्थ होता है लाल रग की साडी। यहाँ चूनरी की ओर भी कवि का सकेत हो सकता है। भा० मो० प्रतियो मे पहले आये 'सोहै' पाठ के कारण लेखन-प्रमाद से **'सोहै'** 'सुहाई' पाठ हो गया है। पद-विन्यास करने पर इस पाठ की असगति प्रगट होती है।

२ : ३१ तमोरिनि।

"रगित चोली ते ढोली खरी चुनि चाइ **सों गाँठि** उबेरि अमैठी।"

'चोली' पान रखने की डलिया को कहते है— "फेरि फेरि फननि फनीस पलटत जैसे **चोली** खोलि ढोली ज्यो तमोली पाके पान की"—गुमान। तमोलिन अपनी डलिया से पान की एक अच्छी ढोली चुनती है और पान निकालने के लिए काँसे की डोर का लिपटा हुआ सिरा खीचकर उसकी फेर खोलती है—इसी भाव को कवि ने 'चाह सो गाँठि उबेरि अमैठी' शब्दो मे प्रगट किया है। भा० मो० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर **'सो आछे'** पाठ है। 'आछे' का अर्थ 'अच्छे' होने के कारण इस पाठ की चरण मे सगति नही बैठती। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरग' मे २६८ सख्या पर आये इसी छन्द मे भी मिलता है।

३ : ११

"···प्रेमररस पागी अनुरागी **सखियनि** मै।"

प्रतिलिपिकार के दृष्टि-भ्रम से प्रथम चरण के 'रग रखियनि मे' पाठ पर जाने से भा० मो० प्रतियो मे 'सखियनि' के स्थान पर 'रखियनि' पाठ मिलता है।

३ : १९

"राखै समाधान समाधान कै दिखैयनि को ईगुर **सी अंगनि गुराई** है गँवारि मे।"

भा० मो० प्रतियो मे **'से अंगनि आँगुरी'** पाठ है। निरर्थक होने के कारण यह पाठ-विकृति अग्राह्य मानी गई है।

३ : ३३

"मोहे महा पन्नग अनेक **अग नग** खग कान दै दै कोल भील केते भीभि रहे है।"

योगिन ने अपने मत्र-बल से अनेक विकराल सर्पो, पर्वतो तथा पक्षि-पल्लवो तक को वशीभूत कर लिया है। 'अग' तथा 'नग' समानार्थी शब्द है, दोनो ही का अर्थ है—'वृक्ष, पर्वत, सूर्य, साँप'। भा० मो० प्रतियो मे वर्णो के विपर्यय से **'अनेक अनगन खग'** पाठ है। अनेक तथा 'अनगन' का अर्थ एक ही होने से हमने इस पाठ को वर्ण-विपर्ययजन्य पाठ-विकृति माना है। तुलना, "अग नग नाग नर किन्नर असुर सुर"—'सुमिलविनोद' ८ २ १।

४ : १०

"अनगिने दिनन अनूप दुति आनन की देखत ही **उपजै** अनूठो अनुराग है।"

भा० मो० प्रतियो मे 'उपजै' के स्थान पर **'उपजत'** पाठ होने से चरण मे एक वर्ण की नियम-विरुद्ध पाठ-वृद्धि होती है अत हमने इस पाठ को भी विकृत माना है।

४ : २७

"आपने **ओक** रहै अवलोकि तिलोक की लीक की लीक सदा निरजोसी।"

'ओक' का अर्थ है 'घर', उदा० सग 'ससोक वसी बन **ओक**'—काव्यरसायन ९ ८६। परन्तु लेखन-प्रमाद से भा० प्रति मे **'ऊकि'** तथा मो० प्रति मे **'ऊक'** पाठ मिलता है। कुलवती नायिका को प्रस्तुत सदर्भ मे 'घर में' रहने के अर्थ मे 'ओक' पाठ 'ऊक' अर्थात् 'उल्का' की अपेक्षा अधिक सगत है। 'ओक' से 'ऊक' पाठ-विकृति प्रतिलिपिकार के दृष्टिभ्रम से अथवा सामान्य लेखन-प्रमाद से सम्भव है।

५ : २

"जाति कर्म गुन देस अरु काल वहिक्रम जानु।
प्रकृति सत्व नायिका के **आठौ भेद** बखानु॥"

भा० मो० प्रतियों मे रेखाकित स्थल पर **'आठौ वेद'** तथा ब्र० प्रति मे 'आठौ अग' पाठ है। इनमे से ब्र० प्रति की पाठ-विकृति पिछले विलास मे नायिका के अष्टाग का वर्णन होने के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से हुई है। भा० मो० प्रतियो का 'आठौ वेद' पाठ भी अशुद्ध है क्योकि वेदो की सख्या आठ नही है। कवि ने प्रस्तुत विलास मे जाति, कर्म, गुण आदि जिन आधारो पर नायिका-भेद किया है, प्रस्तुत दोहे मे कवि ने उनकी नामावली गिनाई है। इनकी संख्या भी आठ है अत हमने यहाँ 'भेद' पाठ को मूल का माना है। भा० मो० प्रतियो की यह पाठ-विकृति प्रतिलिपिकार के मामान्य लेखन-प्रमाद से सभव है।

५ : १५

"काइक वाचिक पतिहि रति मनसा **उपजति** जुक्त।
गुप्त तजै कुल धर्म को सौ परकीया उक्त॥"

स्वकीया नायिका रति के अवसर पर तन, मन और वचन से अपने स्वामी मे अनुरक्त होती है परन्तु परकीया तन-वचन से अपने पति के लिए अनुराग प्रगट करते हुए भी मनसे किसी अन्य पुरुष मे लिप्त होती है। इस सदर्भ मे 'उपपति जुक्त' पाठ सगत है किंतु 'जुक्त' के नैकट्य के कारण लेखन-प्रमाद से 'उपपति' के स्थान पर भा० प्रति मे **'उपजत'** तथा मो० प्रति मे **'उपजिति'** पाठ मिलता है। ये दोनो ही पाठ निरर्थक होने के कारण पाठ-विकृति की कोटि में आते है।

५ : ४३

"**बोलनि चालि** बिलोकनि सो दिन ही दिन दूगुन नेह बढावै।"

अर्थात् मालवदेश की सुन्दरी स्त्री अपनी मधुर वाणी, अपनी सुदर चाल तथा अपनी मनोहारी चितवन से दर्शक के मन मे दिन-प्रतिदिन दूना स्नेह उत्पन्न करती है। 'बोलनि' पाठ इस प्रकार सगत है, परन्तु लेखन-प्रमादवश मात्रा छूट जाने से भा० मो० प्रतियो मे बेलनि चालि' पाठ मिलता हे। यह पाठ किसी प्रकार भी सगत नही है।

५ : ५६

"काम हय मन्दरा सी देव काम कदरा सी इदिरा को मदिर सु सुदरी सुवीर की।"

'मन्दरा' एक प्रकार के वाद्य-यत्र का नाम है—"मदरा तबल सुमर खजरी ढोलक धामक"—सूदन। हिन्दी-शब्द-सागर मे ही 'मदिरा' का अर्थ 'मजीर' दिया है। अस्तु। वाद्य यत्र के अर्थ मे उद्धृत चरण का 'मदरा' पाठ सगत है परन्तु भा० मो० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार ने कदाचित् 'मदरा' को निरर्थक जानकर इसके स्थान पर 'सुदरा' पाठ अपनी ओर से रख दिया है—'सुदरी' पाठ वह आगे आकारान्त 'कंदरा' शब्द होने के कारण नही रख सका। 'सुदरा' पाठ निरर्थक होने के कारण पाठ-विकृति की कोटि मे आता है।

६ : २९

"ऐसी तरुनाई आई ता सुरतरगिनि सो सिसुता ज्यो सूरसुता मिलि चली चपि कै।"

वय प्राप्त करने पर मुग्धा नायिका के शरीर मे तरुणाई का सचार होता है तो ऐसा लगता है जैसे शिशुता-रूपी गगा मे तरुणाई-रूपी सूर्यसुता यमुना का सगम हो रहा हो। आलोच्य स्थल पर भा० मो० प्रतियो मे प्राप्त 'सूरासत' पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत है।

६ : ५०

"तिनके लच्छन भेद सब जानहु नाम समान।
है प्रसिद्ध ससार मे जाति सुभाइ प्रमान॥"

यहाँ 'नाम समान' से कवि का तात्पर्य इस दोहे से ठीक पहले आये सत्त्व भेद दोहे मे प्रयुक्त खर, कपि, काग आदि सज्ञाओ से हे परन्तु मो० प्रति मे लेखन-प्रमाद से 'नोम' तथा भा० प्रति मे सपादक अथवा प्रतिलिपिकार द्वारा इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण 'नीव' पाठ मिलता है। प्रसगानुसार ये दोनो ही पाठ असगत है।

७ : १६

"औचक ही ऐंचि कै निसक भरि अक प्यारी पारी परजक सो ससंक अकुलाति हे।"

भा० मो० प्रतियो मे चरण का पाठ विकृत रूप मे इस प्रकार मिलता हे—"औचक ही औच कै निसक भरि अक प्यारी पाटी परजक सॉस सकि अकुलाति है।" 'औंच कै' पाठ-विकृति 'औचक ही' पाठ के कारण लेखन-प्रमाद से हुई है। 'औचक ही' का समानार्थी होने के कारण इन प्रतियो का यह पाठ अग्राह्य है। इसी प्रकार 'सकि' अर्थात् सशंकित होने एवं अकुलाने के परस्पर-विरोधी भावो का एक समय पर होना असगत है, अत हमने 'सॉस सकि' पाठ को भी

विकृत माना है। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरग' मे भी ७४१ सख्या पर इसी छन्द मे मिलता है।

७ : ६२

"घोर लगै घर बाहरिहू डर नूत पलास **लगै पजरे से**।"

चरण के डर, नूत आदि शब्द वृक्षवाची है, देखे—"चपक दाडिम नूत महाडर पाडर डार डरावनी फूली।" ध्यान रहे कि इन दोनो ही स्थलो पर भय के अर्थ मे डर शब्द नही आया है क्योकि पहले उद्धृत चरण मे इसी अर्थ मे 'घोर' तथा द्वितीय चरण मे 'डरावनी' शब्द है ही, अत मेरे विचार से 'डर' का अर्थ भय मानना अनुचित होगा। 'नूत' शब्द भी न तो 'नवीन' के अर्थ मे आया है, जैसाकि पडित कृष्णविहारीजी का विचार है ('देव और बिहारी, पृष्ठ २७४) और न यह आम्रवाची ही है, जैसा कि मिश्रबधु मानते है ('देव-सुधा', पृष्ठ १२८)। मेरे विचार से सस्कृत के 'नुत्त' अथवा 'नूद' से 'नूत' शब्द की व्युत्पत्ति सम्भव है। मॉनियर विलियम्स ने अपने सस्कृत-अग्रेजी कोष मे 'नुत्त' का अर्थ 'एक प्रकार का वृक्ष' तथा 'नूद' का अर्थ 'शहतूत का एक भेद' दिया है। शहतूत का फल जब पककर कुछ काला होता है तो शहतूत का वृक्ष वास्तव मे जला हुआ-सा मालूम देता है। पलाश के फूलने पर उसकी लाली सर्वप्रसिद्ध है, अनेक कवियो ने जलते अगारो से इसकी समता की है। (स्मरण रहे कि शहतूत तथा पलाश के वृक्ष प्राय एक ही ऋतु मे फलते-फूलते है।) कवि कहता है कि ये वृक्ष प्रज्वलित हुए-जैसे दिखलाई देते है। 'पजरे' यहाँ 'जले हुए, प्रजज्वलित हुए' के अर्थ मे आया है। ('ज्यो पजरे पर लोन।') भा० मो० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर **'लगै उजरे से'** पाठ मिलता है। लाल पलास का 'उजरे' दिखलायी देना असगत है एव चतुर्थ चरण के "—मनि मन्दिर आज अहो उजरे-उजरे से" पाठ मे यही शब्द आने के कारण भी प्रथम चरण मे 'उजरे से' पाठ नही होना चाहिए।

लिपिजन्य विकृति :

१ : ५८

"नख नग जाल लाल अँगुरी **विद्रुम** माल नूपुर मराल ये अपार रस आउडे।"

नायिका की अँगुलियो के रक्ताभ छोर मूँगे की माला-जैसे लगते है अत 'विद्रुम' पाठ सगत है, परन्तु भा० मो० प्रतियो मे 'विद्रुम' के स्थान पर लिपि-भ्रम से **'विधुप'** पाठ मिलता है। यह निरर्थक पाठ-विकृति 'द्र' तथा 'म' वर्णो मे क्रमश 'ध' तथा 'प' का भ्रम होने से हुई है। 'सुखसागरतरग' मे २५७ सख्या पर इस छन्द के पाठ मे 'विद्रुम' का पर्याय 'प्रवाल' मिलता है।

५ ७

"...देखि देखि **दूनो** दिख साथ उपजति है।"

केवल भा० मो० प्रतियो मे 'न' मे 'त' का भ्रम होने से 'दूती' विकृत पाठ मिलता है। स्वीकृत पाठ 'सुजानविनोद' मे ५ ६, 'सुखसागरतरग' मे १७३ सख्या पर तथा अन्य ग्रथो मे आये इसी छन्द मे मिलता है।

५ : ५२

"रति लागै बौनी जाकी रभा रुचि पौनी लोचननि ललचौनी मुख जोति अवदात की।"

'पौनी' का अर्थ हिन्दी-शव्दसागर में इस प्रकार दिया है . (१) गाँव मे काम करने वाले वे लोग जिन्हे अनाज की रागि मे से कुछ अश मिलता है। (२) नाई, वारी, धोवी आदि काम करने वाले जो विवाह-आदि अवसरो पर इनाम पाते हैं। उ० · (ख) "चली पौनि सव गोहने फूल डार लै हाथ। विश्वनाग कइ पूजा पदुमावति के साथ।"—जायसी। व्यान रहे कि यहाँ प्रश्न रभा की रुचि का नही 'जाकी' अर्थात् नायिका की रुचि का है अत 'रुचि' को रभा से सलग्न करते हुए पद का अर्थ इस प्रकार करना कि "रभा की रुचि भी पौनी अर्थात्, अपूर्ण अथवा अधूरी है।" अनुचित होगा। अत यहाँ 'पौनी' रभा के लिए तुच्छ, हीन जाति वाली सामान्य स्त्री के अर्थ मे आया है। अर्थ होगा, "जिसकी रुचि के आगे रभा भी पौनी ही लगती हे।" परन्तु 'प' मे 'व' का भ्रम होने से भा० मो० प्रतियो मे 'रुचि बौनी' पाठ है। 'बौनी' पहले ही आ चुका है इसलिए यहाँ इस गव्द की आवृत्ति असगत है।

६ : १२

"गरे पटु डारि करै केती मनुहारि .."

मो० प्रति मे 'डारि' पाठ लिपि-रूपान्तर से यो मिलता है 'गरि'। भा० प्रति के प्रतिलिपिकार ने कदाचित् इससे भ्रमित होने के कारण रेखाकित स्थल पर अपनी प्रति मे 'रारि' पाठ रक्खा है। झगडने के अर्थ मे यह पाठ 'मनुहार करने' के साथ स्पप्ट रूप से असगत है।

६ ३७ प्रथम तथा तृतीय चरण।

"वे दिन नाहि भटू भय के जब भीतै भई झुकि कै झिखई हौ।"

ढीठ भई ढिग सोवत स्याम के काम कला लिपि ज्यो लिखई हौ।"

'भीतै भई' के स्थान पर मो० प्रति मे 'भातै नई' तथा इसे सार्थकता प्रदान करने के हेतु भा० प्रति के सम्पादक ने 'वाते नई' पाठ-सगोधन किया है। इन प्रतियो मे 'सोवत' के स्थान पर 'सोवन' एव 'लिपि' के स्थान पर 'लिखि' वि..त पाठ भी मिलता है। अन्तिम दो पाठ-विकृतियाँ लिपि मे दृष्टि-भ्रम के कारण सभव है। 'लिपि' से 'लिखि' पाठ-विकृति सन्निकट के 'लिखई हौ' गव्द के कारण लेखन-प्रमाद से भी हो सकती है। स्वीकृत पाठ 'भवानीविलास' मे २ ८ तु... ...रतरग' मे ४४६ सख्या पर इस छन्द मे भी मिलता है।

७ ...

"लघु म...

...ही ऐं विभ्रम स...डन विच्छित्त मैं मन अभिमान विसेप।

...भ्रम होने कौ... जु प्रमाद ते उलटै भूपन भेप॥"

'म' मे "...मादवग वस्त्राभू... कारण भा० मो० प्रतियो मे 'प्रसाद तैं' पाठ मिलता है। नायक-नायिका जहाँ ...पाद तैं' पाठ सगत... धारण करने मे कोई भूल कर जाते है तो वहाँ विभ्रम हाव होता है। अत 'प्र...   है। (देखे. विभ्रम-उदाहरण ७ · १५)

त्रुटि पाठ :

१ . ४७

"तबही तैं देव देखी देवता सी हँसति सी **खीझति सी रीझति सी** रूसति रिसानी सी ।।"

भा० मो० प्रतियो मे शब्दो के विपर्यय से तथा एक वर्ण त्रुटित होने के कारण **'रीझति खीझति सी'** पाठ है। मनहरण छन्द के ३१ वर्णो के चरण मे एक वर्ण न्यून होने से छन्दभग दोप होता है।

५ २३ से ३३ तक सख्या के छन्द भा० मो० प्रतियो मे नही है। इनमे से २५ से २७ सख्या तक मध्यमा तथा अधमा नायिकाओ के उदाहरण-छन्द है। कवि ने ५ . १६, २० दोहो मे सत्त्व, रज तथा तम, इन गुणत्रय के आधार पर नायिकाओ को क्रमश उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि मे विभाजित किया है। भा० मो० प्रतियो मे ५ . २२ सख्या पर केवल उत्तमा नायिका का उदाहरण है अत इन प्रतियो मे अन्य भेदो के उदाहरण-छन्द भी होने चाहिए। फिर कवि ने २७ से ३३ सख्या के दोहो मे मगध, कोसल आदि उन देशो की सूची दी है जिनकी कामिनियो का वर्णन उसने देश-भेद के अन्तर्गत पचम विलास मे किया है। भा० मो० प्रतियो मे ये दोहे भी नही मिलते है। अन्यत्र भी कवि किसी विपय का सभारंभ करने के पूर्व उसकी रूपरेखा अथवा भेद-प्रभेद की सूची देता आया है। इसलिए हमने यहाँ भी देशो की नामावली के इन दोहो को कविकृत माना है। भा० मो० प्रतियो का समान आदर्श इस स्थल पर खडित था, इस कारण ये सभी छन्द इन प्रतियो मे त्रुटित है।

५ : ४८

"चाहै सनमान को सराहै सदा प्रीतमहि प्रीति को निवाहै रति रीति अति आगरी।"

मो० प्रति मे सपूर्ण चरण त्रुटित है एवं भा० प्रति मे इस चरण के स्थान पर पाठ है—"सुन्दर सुवास वास कोमल कलानिधान जानत तहाँ न ताहि चाहि चित आगरी।" ग० प्रति मे पार्श्व पर यही पाठ दूसरे हस्तलेख मे 'द्वितीय पाठ' के रूप मे दिया है। भा० प्रति के पाठ की स्वीकृत पाठ से तुलना करने पर इसमे रचनाकार की आत्मीयता नही मिलती अत हम इस पाठ को भा० प्रति के सम्पादक द्वारा प्रक्षिप्त मानते है।

६ : ३८

सखी शिक्षा उदाहरण-छन्द केवल भा० मो० प्रतियो मे त्रुटित है। ६ ३६ सख्या पर आये दोहे मे कवि मध्या-उराहनो तथा मुग्धा-शिक्षा के प्रसग की सूचना पहले ही दे आया है, "मध्यनि सग उराहनो मध्यनि शिक्षा जानि।—" तथा ६ ३७ सख्या पर 'उराहनो'—उदाहरण-छन्द आ चुका है अत हम मान लेते है कि प्रतिलिपिकार के प्रमाद से इन दो प्रतियो मे यह छन्द छूट गया है।

७ : ३९

"चित कोटि कला उलटै पलटै पल ही पल ज्यो मृग बागरि के।"

भा० मो० प्रतियो के पाठ मे २४ वर्णो वाले दुर्मिल सवैया के उपर्युक्त चरण मे 'चित' शब्द त्रुटित होने के कारण छन्द भग-दोष होता है।

नी० गं० गंजा प्रतिया पाठ-विकृति

१ : ५२

"चेटक सी नागि चित चोट सी चितौनि हांसी
ठक की मिठाई भौंह फासी की सी लागरी।"

नी० ग० गजा० प्रतियो मे चरण का पाठ इस प्रकार मिलता है—"ठग की सी फांसी फाँसी फँसी लागरी।" इस पाठ मे 'ठग फासी' प्रयोग तक तो ठीक है—देव ने अन्यत्र भी ऐसा प्रयोग किया है—परन्तु दूसरी 'फांसी' लगाना अनावश्यक है अत हमने इस पाठ को विकृत माना है। घोडे की तेज चाल के साथ नायिका की चाल तथा हृदय मे हूक उठाने वाली उसकी हँसी के साथ ठग की मिठाई के समान उसकी हँसी तथा उसकी भौह-फांसी की सगति नही बैठती है। मेरे विचार से नी० गजा० प्रतियो मे यह असगत पाठ-प्रक्षेप उन प्रतियो के समान आदर्श मे चरण का यह अश त्रुटित होने के कारण हुआ है क्योकि भा० प्रति मे यह सम्पूर्ण छन्द नही है और मो० प्रति मे केवल यही तृतीय चरण त्रुटित है और इसी कारण प्रतिलिपिकार ने भा० तथा मो० प्रतियो मे सम्पूर्ण छन्द तथा सम्पूर्ण चरण का पाठ छोड दिया है। नी० ग० गजा० प्रतियो के पाठ मे एक वर्ण कम भी है।

१ : ५४

"जाती हौ जौ उत वै जौ मिलै कहूं पावौ सखी कहिबे को ठिकानै।"

नी० प्रति मे 'उत वा जु' तथा इसी पाठ को सशोधित करके गंजा० प्रति मे 'उत वोजु' पाठ मिलता है परन्तु दोनो ही पाठ असगत है। सम्भवत ग० प्रति मे भी 'वै जौ' पाठ बाद मे प्रतिलिपिकार द्वारा सशोधित होने के कारण मिलता है।

४ : २८

"पार न लहत गहिराई न गहत देव केवल सुधाई मधु जैसे मखियन मे।"

इस कुलवती नारी मे मधुमक्खियो से मिलने वाले मधुर मधु के समान केवल सरलता ही सरलता है। इस अर्थ मे 'मधु जैसे मखियान मै' पाठ सगत है परन्तु नी० ग० गजा प्रतियो मे 'मधु' के सान्निध्य के कारण लेखन-प्रमाद से हुआ 'मधु मैसे भखियनि मैं' विकृत पाठ मिलता है। हमने इस पाठ को निरर्थक होने के कारण विकृत माना है।

पर्याय :

१ : ४६

"काम की दूती पढावत तूती चढ़ी पग जूती वनात लपेटा।"

नी० ग० गजा० प्रतियो मे 'लसै पग जूती...' पाठ है।

१ : ५३

"आपने ओछे हिये मै दुराइ दयानिधि देव वसाय लिये मै।"

नी० गं० गजा० प्रतियो मे प्राय इन्ही शब्दो के भिन्न सयोजन से पाठ इस प्रकार मिलता है—'ओछे हिये अपने दिन राति'।

लिपिजन्य विकृति :

१ : २७

"राई-नौन वारति गुराई देखि अगनि की दुरै न दुराई त्यो भुराई सो भिरति है।"

मुहावरा 'राई नोन वारना' है, परन्तु नी० ग० गजा० प्रतियो मे 'राई नोन करति' पाठ मिलता है। 'वा' मे 'क' का भ्रम होने से यह विकृति सभव है। इसी प्रकार 'न' मे 'त' का भ्रम होने से नी० प्रति मे 'दुरैत दुराई' पाठ है। इसी पाठ को सशोधित कर 'दुरत दुराई' पाठ ग० गजा० प्रतियो मे मिलता है। दोनो ही पाठ अशुद्ध है। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरग' मे २५१ सख्या पर तथा 'सुजानविनोद' मे २ . १५ सख्या पर मिलता है।

१ ५१

"जो कहिये तो कह्यो नहि जात कहैही विना घर केते घले जू।"

नी० ग० गजा० प्रतियो मे 'केतो खले जू' पाठ मिलता है। 'केते खले जू' का अर्थ खीच-तान कर किया जा सकता है 'कितना कष्ट दिया', फिर भी 'घर के साथ इस पाठ की असगति यथावत् बनी रहती है। कितनो के घर नष्ट करने के 'घर केते घले जू' अनुप्रास-युक्त पाठ सगत है।

२ · २

"पुनि अनेक करि हटवइनि कही अनेक प्रकार।
गनिका गनै न सत असत चाहै धनी उदार॥"

'हटवइन' दूकानदार अथवा अनाज तौलने वाले की स्त्री को कहते है।

नी० ग० गजा० प्रतियो मे 'इ' मे 'र' का भ्रम होने से निरर्थक पाठ है 'हटवरन'।

२ : १६

"चदमुखी मुरि मद हसै मुख मोतिन को गहि खोल्यो डवा सो।"

चद्रमुखी नायिका इधर मुँह फेर कर धीरे से हँसती है तो मोतियो के समान उज्ज्वल उसकी दत-पक्ति चमक उठती है। ऐसा लगता है जैसे किसी ने मोतियो से भरा डिब्बा खोल दिया हो। परन्तु 'ड' मे 'उ' का भ्रम होने से नी० गजा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर निरर्थक पाठ है 'खोल्यो उवा सो'।

५ : १६ परकीया।

"मीत की चितौनि चित वीच चुभि खुभी रहै उभी रहै आँखिनु करेजनि कसकती।"

विपत्ति की मारी नायिका पलग पर अपने पति के साथ पडी है, परन्तु मन ही मन वह अपने किसी प्रेमी के साथ रमण कर रही है। उसी प्रेमी का चित्र नायिका के सम्मुख खड़ा है, उसी की सुन्दर चितवन नायिका के हृदय मे पीडा उत्पन्न कर रही है। इस प्रसग मे हृदय मे कसकने के अर्थ मे 'करेजनि कसकती' पाठ सगत है परन्तु 'ज' मे 'त' का भ्रम होने से नी० ग० गजा० प्रतियो मे 'करेजिन' के स्थान पर 'करेतिन' विकृत पाठ मिलता है। पद-भग करने पर भी इस पाठ की सगति नही वैठती, अत हमने इस पाठ को अग्राह्य माना है।

५ : २५ द्वितीय-तृतीय चरण—

"मोहन मान करै तो गरे परि देव मनैवे को जाइ अरूझै।
काको भयो सवसो विगरै यह जाको मरै सु ती वात न वूझै।"

नी० ग० गजा० प्रतियो मे द्वितीय चरण मे 'आप अरूझै' तथा तृतीय चरण मे 'याको' पाठ है। इन प्रतियो के समान आदर्श मे विद्यमान 'आय' पाठ से 'आप' तथा 'ज' तथा 'य' मे उच्चारण-साम्य होने के कारण भ्रमवश 'जाको' से 'याको' पाठ-विकृति सम्भव है। स्वीकृत पाठ 'सुजानविनोद' मे ४ ५७ एव ५ ५२ सख्या पर तथा 'सुखसागरतरग' मे ४८६ संख्या पर भी मिलता है।

५ : ३७

"चचल दृगचल चपल चितवति चोरि चितवति चाइ चढी चारुता प्रगट ही।"

नी० ग० गजा प्रतियो मे 'चाप चढी' पाठ मिलता है। 'चाप' का अर्थ धनुप होने के कारण यह पाठ यहाँ असगत है। यह पाठ-विकृति 'चाइ' के 'चाय' रूपान्तर मे दृष्टि-भ्रम होने से सम्भव है।

५ ४५ मालव-वधू।

"वोलनि चालि विलोकनि सो दिन ही दिन दूगुन नेह वढावै।"

दिन-प्रतिदिन अपने प्रिय के हृदय मे अधिकाधिक प्रेम उत्पन्न करने के प्रसग मे यह पाठ सर्वथा सगत है परन्तु नी० ग० गजा० प्रतियो मे 'दू' को भ्रम से 'इ' समझने के कारण 'ईगुन नेह' पाठ मिलता है। 'ईगुन' पाठ निरर्थक है।

नी० गंजा० प्रतियाँ

नीचे केवल नी० गजा० प्रतियो मे प्राप्त समान विकृतियो के कुछ उदाहरण दिये जाते है। हमारा विश्वास है कि इन प्रतियो मे और भी अधिक समान विकृतियाँ रही होगी परन्तु गजा० प्रति के पाठ मे उसके प्रतिलिपिकार ने ग० प्रति की सहायता से अत्यधिक पाठ-सशोधन किया है। इस कारण समान विकृतियो के स्थल गजा० प्रति से लुप्त हो गए है।

अधिक छन्द :

केवल नी० गजा प्रतियो के द्वितीय विलास मे नागर-नागरी के प्रसग मे कसहेरिन, पसारिन, चुरहेरिन, धुनिन, जुलाहिन आदि के अधिक उदाहरण-छन्द मिलते है। (देखे, २ · ६ छन्द की पाद-टिप्पणी) हमने 'जाति विलास' की प्रमाणिकता' शीर्षक के अन्तर्गत इन प्रतियो मे इन अधिक छन्दो की प्रमाणिकता पर विस्तार से विचार किया है। (देखे, पृष्ठ ५६)

पाठ-विकृति :

१ ६४

"देवल रावल नागरी एहि विधि बरनौ **देव**।
राजनगर नागरि कहौ न्यारे लच्छन **भेव** ॥"

नी० प्रति मे 'देव' के स्थान पर '**देख**' पाठ 'व' मे 'प' का भ्रम होने के कारण मिलता है। यही पाठ गजा० प्रति मे भी है परन्तु गजा० प्रति के प्रतिलिपिकार ने दोहे के अगले पद मे सम-तुकान्त पाठ लाने के हेतु 'भेव' के स्थान पर '**भेख**' पाठ-सशोधन किया है। 'भेद' के अर्थ मे 'भेव' पाठ ही यहाँ सगत होगा।

२ १२

"घाट बाटहू मै घट निपट बटोहिन के **नेक ही** निहारे नेह भरे हेरियतु है।"

नी० गजा० प्रतियो मे लेखन-प्रमाद से '**नेह को**' पाठ मिलता है। नायिका के 'किंचित् देखने मात्र' के अर्थ मे 'नेक ही' पाठ सगत है तथा 'सुख सागर तरग' मे २६७ सख्या पर इसी छन्द मे भी प्राप्त होता है।

४ : १२

"देखत ही जो **मन हरै** सुख अँखियनि को देइ।
रूप बखानै ताहि जो जग चेरो कर लेइ ॥"

आलोच्य स्थल पर नी० गजा प्रतियो मे '**जो बन रहै**' पाठ मिलता है। जो देखने मात्र से (लज्जित होकर ?) वन-प्रान्त मे भाग जाय उसे यदि रूप कहते है तो यह रूप की विलक्षण परिभापा है। इन प्रतियो मे यह विकृति भ्रमवश 'जो मन' को 'जोवन' का विकृत रूप मानने के कारण हुई है।

गं० गंजा० प्रतियाँ

१ : ४१

"जोवन वजार वैठ्यो जौहरी मदन सव लोगन को हीरा वाके हाथ ह्वै विकात है।"

ग० गजा० प्रतियो मे 'रस' पाठ है। 'हीरा' मे श्लेप है—हियरा अर्थात् हृदय तथा हीरा नामक वहुमूल्य रत्न। चरण मे मदन जौहरी का जो रूपक है उसके अनुरूप केवल 'सव' पाठ ही सगत है—सभी लोगो के हीरे-जैसे वहुमूल्य हृदय का उसी मदन जौहरी के द्वारा एक-दूसरे के हाथ क्रय-विक्रय होता है। ग० गजा० प्रतियो के 'रस' पाठ की सगति न 'लोगनि' के साथ वैठती है न 'मदन' के साथ, इसलिए यह पाठ अग्राह्य है।

१ · ४२

"आई निछावर के मन मानिक गोरस दै रस लै अधरान को।"

ग० गजा० प्रतियो मे 'रस से अधरान' पाठ मिलता है। यह छन्द इसी ग्रथ मे ७ . ५७ सख्या पर भी आया है तथा यहाँ भी गं० प्रति मे 'रस से अधरान' पाठ ही है। 'रस से अधरान' पाठ की सगति नही वैठती अत इसे पाठ-विकृति मानना उचित है।

१ ४२

"काहू की वक चितवै की सक न लागै कलक विसै किन वीसौ।"

केवल ग० गजा० प्रतियो मे 'विसौ किन वीसौं' पाठ मिलता है। इस पाठ के 'विसौ तथा 'वीसौं' शब्द समानार्थी होने के कारण यह पाठ असगत माना गया है। मुहावरा है 'वीसौ विसे'—'वीसौ विसे विसवासिन के—' अत 'विसै किन वीसौ' पाठ ही सगत है। यही पाठ 'सुख सागर तरग' मे २५८ सख्या पर भी इसी छन्द मे मिलता है।

१ . ५२

"चेटक सी चालि चित चोट सी चितौनि हाँसी ठग की मिठाई भौह फाँसी की सी लाग री।"

केवल ग० गजा० प्रतियो मे 'चेटक सी चाल अरु चिलचोट' पाठ है। इस पाठ मे 'अरु' के दो वर्ण अधिक होने से नियम-विरुद्ध पाठ-वृद्धि होती है तथा 'त' मे 'ल' का भ्रम होने से इसका 'चिलचोट' पाठ निरर्थक भी है। इन कारणो से हमने इस पाठ को विकृत माना है।

२ ६

"मोहति सी मन पोहति सी जन छोहति सी तनि भौह लचावै।"

अर्थ होगा, 'पटविन दर्शको का मन मोहती है, मानो उन्हे ही पिरोती है जव वह किंचित् क्षुब्ध होते हुए अपनी भौहे वकिम कर लेती है।' 'सुख सागर तरग' मे २६४ सख्या पर इसी छन्द मे 'तन छोहतिसी' निरर्थक पाठ मिलता है और इस ग्रथ से पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप यही पाठ ग० गजा० प्रतियो मे भी विद्यमान है।

३ १० वैस्यानी ।

"नव जोवनी की जोवनी की जोति **जीति** रहा कैसी बनीनीकी बनी नीकी छवि छाती मे ।"

अर्थात् नवयौवना बनीनी के, जिसने यौवन की दीप्ति प्राप्त कर ली है, उरोजो की कैसी सुन्दर छवि है। यहाँ 'जीति' प्राप्त करने अथवा अर्जित करने के अर्थ मे आया है। 'सुख सागर तरग' मे २८३ सख्या पर आये इसी छन्द मे प्रमादवश मात्रा मे छूट जाने से **'जाति'** पाठ मिलता है और इस ग्रथ से यही पाठ ग० गजा० प्रतियो मे भी प्रक्षिप्त हुआ है। नव यौवना की जोवन-ज्योति का 'जाना' उसके ढलते यौवन की ओर सकेत करता है। हमने इस पाठ को कविकृत भाव के प्रतिकूल होने के कारण विकृत माना है।

३ . १५ धोबिन।

"जोवन की ऐठ अठिलात सी उठौहै कुच ओठनि अमेठि पट **ऐंठि के धरति है।**"

भाव स्पष्ट है—घाट पर कपड़े धोने वाली धोबिन धुले हुए कपडो को ऐठ कर, ताकि वे बिखर या उड़ न जायँ, किनारे रखती जाती है। 'सुख सागर तरग' मे २८९ सख्या पर **'ऐंठि पकरति है'** पाठ मिलता है। यद्यपि वस्त्रो को ऐठ कर पकडना कोई विशेप चित्ताकर्पक मुद्रा नही है तथापि इस ग्रथ से प्रक्षिप्त होकर यही पाठ ग० गजा प्रतियो मे भी विद्यमान है।

३ . २४ मुनि-त्रिया ।

"चौर करै चमरी **चय मोर** चकोर मृगी मृग चाकर भारी।"

चमरी अर्थात् सुरागाय अपनी पूँछ मुनि-पत्नी के ऊपर डुला रही है और मोर, चकोर आदि सेवको का भारी समूह उनकी सेवा मे तत्पर है। 'चय' का अर्थ है 'समूह', परन्तु 'सुखसागर, तरग' मे २९७ सख्या पर लिपि-भ्रम से विकृत **'चम मोर'** पाठ मिलता हे। 'चम' पाठ निरर्थक हे, फिर भी इस ग्रथ से पाठ-मिश्रण करने मे तत्पर ग० गजा० प्रतियो के प्रतिलिपिकार ने यही पाठ अपनी प्रतियो मे रक्खा है।

स्थान-विपर्यय :

१ ५३

"कानन तानन भूलत ना खिन आँखिन रूप अनूप पिये मे।"

ग० गजा० प्रतियो मे प्रमादवश वर्णो का विपर्यय होने से **'भूतल'** पाठ है। प्रसग स्पष्ट है, पाठ 'भूलत' ही होना चाहिए। धरती के अर्थ मे 'भूतल' पाठ यहाँ असगत है।

३ १९ काछिन।

"राखै समाधान समाधान के दिखैयनि को ईंगुर सी अगनि गुराई है गँवारि मै।
देव कहै जगमग्यो जोवन जुन्हाई ऐसी एते पै जुन्हाई पैठी सरोवर वारि मे।
बारनि सुखावति उघारे सीस गावति लुभावति सी लोगन फिरति चहूँ पारि मै।
अचल अँगौछै ओछे ओछे कुच पोछै लिये कोछे मे कमल डोलै काछिनि कछार मै॥"

काछिन का यौवन यो ही ज्योत्स्नामयी रात्रि के समान सुन्दर है। और जो उसने सरोवर मे स्नान किया तो उसका सौंदर्य कई गुना अधिक हो गया है ! स्नान करने के पश्चात् वह अपने गीले केश सुखाती है, अचल से देह पोछती है। 'सुख सागर तरग' मे २६३ सख्या पर इसी छन्द मे चरणो का क्रम १-३-२-४ है। इस ग्रथ मे पाठ-मिश्रण होने के कारण ग० गजा प्रतियो मे भी चरणो का यही क्रम मिलता है। चरणो के विपर्यय के कारण छन्द मे असगति आती है—नायिका के स्नान करने के पहले ही बाल सुखाने के कारण दुष्क्रम स्पष्ट है।

पर्याय ·

१ ४०

"......समाय गई **ब्रजराज** के रूप मैं।"

ग० गजा० प्रतियो मे '**रंगराइ के**' पर्याय मिलता है।

गं० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति ·

६ : ३०

"औरन को गौनो होत विरह को **औनो** होत तुमही अगौनो दुख देखनि दुखाई यह।"

ग० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर भी प्रमादवश '**गौनो**' पाठ हो गया है। स्नेही प्रिय नायक के गमन पर विरह का आगमन होता है, इसी विरोधाभास की ओर कवि का सकेत है। किंतु ग० सा० प्रतियो के अनुसार उसके जाने के साथ ही विरह-व्यथा के भी समाप्त होने पर तो नायिका मे परकीयत्व की भ्रान्ति उत्पन्न होती है अत इन प्रतियो का पाठ विकृत है।

७ : ४ हाव नाम

"लीला और विलास भनि औ विच्छित्त विलोक।
विभ्रम किलकिंचित बहुरि मोट्टाइत बिब्वोक॥"

'हाव के अन्तर्गत एक भेद का नाम है विच्छित्त। जहाँ थोडे-से अलकार से ही नायिका के मन मे सुन्दर होने का अभिमान जाग उठे वहाँ विच्छित्ति हाव होता है—'लघु मडन विच्छित्त मैं मन अभिमान विशेप'—७ : ७। (देखे, ७ १४ पर विच्छित्ति का उदाहरण)। ग० सा० प्रतियो मे लेखन-प्रमाद से 'विक्षिप्त' विकृत पाठ मिलता है।

विच्छित्ति हाव के कवि देव कृत उपरोक्त लक्षण के साथ केशव तथा मतिराम द्वारा निरूपित लक्षण की तुलना करना रोचक होगा—

"भूपण भूपव को जहाँ होहि अनादर आन।
सो विच्छित्त विचारिये केशवदास सुजान॥

—केशव 'रसिकप्रिया', ६ ४५

"थौरे ही भूपन बसन जहँ सोभा सरसाय।
ताहि कहत विच्छित्ति है जै प्रवीन कविराय॥"
—मतिराम, 'मतिराम-ग्रंथावली', पृष्ठ ७४,

लिपिजन्य विकृति ·

६ . १७

"खरी दुपहरी हरी भरी **फरी** कुज मजु गुज अलि पुजन की देव हियो हरि जाति।"

'फरी कुज' का अर्थ है 'फल-युक्त' ('देव-सुधा', पृ० १५४), परन्तु 'कुज' सज्ञा पुल्लिग है, यहाँ 'फरी' को उपरोक्त अर्थ मे कुज का विशेपण मानने पर लिग-दोप होगा, अत. हम 'फरी' को सस्कृत 'फलिन', अर्थात् फल देने वाले वृक्ष, से सम्बद्ध मानते है। ग० सा० प्रतियो मे 'फ' मे 'क' का भ्रम होने से '**करी** कुज' विकृत पाठ मिलता है। कहना न होगा कि यहाँ 'करी' पाठ असगत है।

स्थान-विपर्यय :

६ ५७

केवल ग० सा० प्रतियो मे चरणो का क्रम १-३-२-४ है, यद्यपि इस चरण-विपर्यय से छन्द का अर्थ करने मे कोई असगति नही उत्पन्न होती।

व्याधि कामदशा का लक्षण तथा उसके अनेक भेदो के नाम सप्तम विलास के, क्रमशः ८१वें तथा ८२वे दोहो मे मिलते है। केवल ग० सा० प्रतियो मे पहले व्याधि भेद वाला ८२ वी सख्या का दोहा, उसके पश्चात् ८१वी सख्या का लक्षण-दोहा आने से स्पष्ट दुष्क्रम उत्पन्न होता है। सामान्य रूप से पहले लक्षण पश्चात् उसके भेदो का वर्णन होता है।

त्रुटित पाठ :

७ ६८

"बोर्‌यो बस विरद मै बौरी भई बरजति मेरे
बार बार बार बीर कोऊ पैठो जिनि।"

एक गोपिका, जो श्रीकृष्ण के सन्मुख सपूर्ण आत्मसमर्पण कर चुकी है, अपनी किसी सहचरी को समझाती है, "मै तो बावली थी, मैने कुल-मर्यादा नष्ट की और मुझे लोकापलोक मिला। मै तुम्हे रोकती हूँ, तुम मेरे द्वार से बार-बार न आया-जाया करो, नही तुम्हे भी लोकनिन्दा का भागी बनना पडेगा।" तीसरा 'बार' अनावश्यक न होकर द्वार के अर्थ मे संगत है, परन्तु ग० सा० प्रतियो के प्रतिलिपिकार ने इसे अनावश्यक जानकर निकाल दिया है तथा इन दो वर्णो की क्षतिपूर्ति 'पास' शब्द के प्रक्षेप द्वारा इस प्रकार की है, "**बार बार बीर कोऊ पास पैठो जनि।**" 'पास पैठना' अर्थ के विचार से असगत है एव अतिम चरण मे—"कोऊ मोहि

मिलि वैठो जिनि" पाठ होने के कारण भी यहाँ पास पैठने मे पुनरुक्ति-जैसी लगती है।

ब्र० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

५ ३१

"कहौ विंध्यवन मालवा और अभीर विराट।
कुकुन केरल द्रविड अरु कहि तिलग करनाट ॥"

कवि ने प्रस्तुत दोहे मे विध्यवन, मालवा आदि जिन देशो का उल्लेख किया है, उसने इस विलास के ४२, ४३ आदि सख्याओ के छदो मे इसी क्रम से उस देश की नारियो का वर्णन किया है। ५ ४२ वे छदो मे विध्यवन-वधू का वर्णन है—"महोपधि की वूटी सी वधूटी विध वन की।" इस प्रकार उपर्युक्त दोहे का 'कहौ विंध वन' पाठ सगत है, परन्तु केवल ब्र० सा० प्रतियो मे इसके स्थान पर 'झारखंड अरु मालवा' पाठ है। पचम विलास मे झारखड-कामिनी का कहीं वर्णन नही मिलता, न ही इन दो प्रतियो मे झारखड-वधू का कोई पृथक् उदाहरण-छद है अत हमने इस पाठ को प्रक्षिप्त माना है।

६ · ४२

"प्रकृति भेद करि नायिका त्रिविध कहत कवि लोइ।
ताते सो कफ पित्त अरु वात प्रकृति तिय होइ ॥"

केवल ब्र० सा० प्रतियो मे 'त्रिविध' के स्थान पर 'त्र' मे 'व' का भ्रम होने से **'विविध'** विकृत पाठ मिलता है। सगत पाठ 'त्रिविध' ही है क्योकि कवि ने नायिका की प्रकृति के आधार पर कफ-प्रकृति नायिका, वात-प्रकृति नायिका तथा पित्त-प्रकृति नायिका—ये तीन ही भेद किये है।

प्रौढ़ा सुरतान्त :

८ २६

"उतरत सोच तें सखीन सुखदैनी थाँभी वेनी
लाँवी लखे लाज भरे कुल फनि के।"

सुरतान्त पर नायिका सेज पर से उतरने लगती है तो उसकी सखियाँ उसे सहारा देती हैं—इस अर्थ मे केवल ग० प्रति का ऊपर-उद्धृत पाठ प्रसग-सगत है। इसके स्थान पर ब्र० प्रति मे **'उरतम सेज ते'** तथा सा० प्रति मे **'उरतम सेज लैं'** पाठ मिलता है। ब्र० सा० प्रतियो की समान पाठ-विकृति **'उरतम सेज'** विशेप रूप से उल्लेखनीय है। निरर्थक होने के कारण हमने इन पाठो को अस्वीकृत किया है। 'मुख सागर तरग' मे २०९ तथा ५०४ सख्याओ पर इस छद मे भी ऊपर-स्वीकृत पाठ मिलता है।

८ ४३ प्रथम-द्वितीय चरण

"बाल लतान मै बाल को बोल सुनो कहु सग सखीन के टेरत।
काहू कही हरि राधा यही कहि देव जू देखी इतै मुख फेरत।"

यह पाठ केवल ग० प्रति मे, 'सुख सागर तरग' मे ६८ सख्या पर एव 'भाव विलास' आदि अन्य ग्रथो मे इसी छन्द मे मिलता है। प्रथम स्थल पर ब्र० प्रति मे लेखन-प्रमाद से "लाल लतान मै वाल को बोल" पाठ हो गया है। 'लाल लतान' पाठ असगत है। इस प्रति से सा० प्रति अथवा उसके आदर्श की तुलना होने के कारण 'लाल' पाठ सा० प्रति की शाखा मे कदाचित् पार्श्व पर आया होगा और फिर यही पाठ भूल से सा० प्रति मे 'बाल' के स्थान पर आ गया है—सा० प्रति मे पाठ है, 'वाल लतान मै लाल को बोल...।" लाल का अपनी सखियो (!) को टेरने की अपेक्षा वाल अर्थात् बाला नायिका का अपनी सखियो को हेरना अधिक सगत है अत हमने केवल ग० प्रति मे प्राप्त तथा अन्य ग्रथो द्वारा पुष्ट पाठ यहाँ स्वीकार किया है।

इसी प्रकार द्वितीय चरण का 'मुख फेरत' पाठ जो केवल ग० प्रति मे एव उपर्युक्त अन्य ग्रथो मे मिलता है, ब्र० प्रति के मुख फेरति तथा सा० प्रति के सुख केरति विकृत पाठो की अपेक्षा अधिक सगत होने के कारण ग्राह्य है। 'मुख' से 'सुख' पाठ-विकृति प्रतिलिपिकार के भ्रम से सभव है।

लिपिजन्य विकृति :

८ ११

"देव कहै सोवत निसंक अक भरी परजक मै मयक मुखी सुपमा सचति है।"

'व' मे 'च' का भ्रम होने से ब्र० सा० प्रतियो मे सोचत पाठ है। नि शक होकर पर्यंक में सोना ही सगत पाठ है अत केवल ग० प्रति मे प्राप्त 'सोवत' पाठ प्रस्तुत स्थल पर स्वीकृत हुआ है।

८ ६०

पोटि भटू तट ओट कुटी के लपेटि पटी सो कटी पट छोरत।

नायिका वन-कुज मे थी तभी अचानक जल-वृष्टि होने लगी। श्रीकृष्ण ने उसे भीगते देखा तो वह तुरन्त वहाँ जा पहुँचे और उसे कुटी के पीछे अपने शरीर के निकट समेटते हुए अपने पीताम्बर मे उसे लपेट कर उसकी कटि से लिपटा हुआ गीला वस्त्र उतारने लगे ! 'समेटने' के अर्थ मे 'पोटि' शब्द सर्वथा सगत है। यह पाठ केवल ग० प्रति मे तथा 'सुजानविनोद' मे ५ ५५ तथा 'सुख सागर तरग' मे १५३ सख्या पर इसी छन्द मे मिलता है। प्रस्तुत ग्रथ की ब्र० सा० प्रतियो मे कदाचित् इस शब्दार्थ से अपरिचित होने के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से 'ओढ़ भटू तट.. ' पाठ मिलता है। यदि श्रीकृष्ण अपना वस्त्र ही ओढ़ते है तो फिर आगे 'लपेटि पटी सो' पाठ किस प्रकार सगत होगा ? इस प्रकार 'पटी' का एक साथ ओढ़ना तथा लपेटना असगत होने के कारण केवल ग० प्रति मे प्राप्त 'पोटि' संगत पाठ उपर्युक्त अन्य ग्रथो के साक्ष्य पर यहाँ स्वीकृत हुआ है।

नी० गं० गंजा० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

१ ४१

"त्रिवली तरगिनि निकट नाभि ह्रद तट सोमराजी वन धँसि मुकत अन्हात है।"

कदाचित् 'ह्रद' के अर्थ से अपरिचित होने के कारण तथा 'तट' के सामीप्य से सा० आ० प्रतियो के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रति मे **नद** पाठ रखा है। इसी 'नद' मे दृष्टिभ्रम होने से **'नट'** पाठ नी० ग० गजा० प्रतियो मे भी मिलता है। 'नद' पाठ इसलिए असगत है क्योकि पहले ही समानार्थी शब्द 'तरगिनि' आ चुका है, अत यहाँ इसकी आवृत्ति अनावश्यक है। 'नट' पाठ इसी से नि सृत होने तथा असगत होने के कारण अग्राह्य है। ताल के अर्थ मे आया 'ह्रद' शब्द 'ह्रद' का रूपान्तर है जो गोल नाभि के लिए उचित उपमान है। हमने इसी पाठ को मूल प्रति का माना है।

३ २१ कहारिन

"चाहेऊ न चाहे चहूँ ओर ते **गहत बाहैं गाहक उमाहै रोकि राहै चित हार की।"**

मनोहारिणी कहारिन अपने ग्राहक का मार्ग रोक लेती है, उसे बाँहो मे चारो ओर से घेरती है और अपना कार्य सिद्ध करती है। सा० प्रति मे 'गहत बाहैं' के स्थान पर लिपि-भ्रम से **कहत चाहै** तथा नी० गजा० प्रतियो मे भी **गहन चाहै** पाठ मिलता है। यद्यपि ये दोनो ही पाठ अशुद्ध है फिर भी 'बाहैं' के स्थान पर 'चाहै' की समान विकृति महत्त्वपूर्ण है। निश्चय ही ग० प्रति मे भी मूल मे यही विकृत पाठ रहा होगा। परन्तु इस प्रति को 'सुख सागर तरंग' मे २९४ सख्या पर आये इसी छन्द के पाठ से सशोधित करने के कारण अब यहाँ शुद्ध पाठ मिलता है। इसी प्रकार आलोच्य स्थल के शेष अश का पाठ नी० सा० प्रतियो मे इस प्रकार है—**ग्राहक घनेरी दोरि चित अपहार की।** 'दोरि' को 'दोरि' के समान मान लेने पर भी 'घनेरी' पाठ असगत ही रहता है। यहाँ ग० गजा प्रतियो मे 'सुख सागर तरग' से लेकर यह पाठ रखा गया है, **'गाहक उमाहै राहै रोके सु विहार की।'**

३ : २६ भीलनी

"उरझति झारनि मै **'मुरझि'** पहारनि मै गाढी गूढ गैल छैल भीलनी छकी फिरै॥"

भीलनी पर्वतीय मार्ग पर स्वच्छन्द विचरण करते हुए कही झाड़ियो मे उलझती है, थक कर मूर्च्छित होती है फिर भी उसका आनन्द कम नही होता। नी० सा० प्रतियो मे 'उरझति' की सगति पर अथवा 'म' मे 'स' का भ्रम होने से 'सुरझि' पाठ मिलता है। मेरा अनुमान है कि इस स्थल पर ग० गजा० प्रतियो भी पहले 'सुरझि' पाठ रहा होगा परन्तु बाद मे 'सुखसागर-तरग' मे २९९ सख्या पर आये इस छन्द के पाठ की सहायता से इन प्रतियो मे पाठ-सशोधन हुआ है।

३ ३०

"गाहक बुलावै सैन करै दैन करै **'सौदा'** नैननि मुकरि जाइ मुकरि मुकेरनि की।"

सा० प्रति मे 'सौदा' का एक वर्ण त्रुटित होने से केवल 'सो' पाठ मिलता है। नी० प्रति मै 'दैन करै **सोस** नैन मुकराइ जाइ ..' पाठ मिलता है। यहाँ 'सोस' अफसोस के लिए भी प्रयुक्त नही हो सकता क्योकि यहाँ खेद का कोई प्रसग नही है। 'सुखसागरतरग' मे ३०२ सख्या पर इस छन्द के पाठ की सहायता से ग० गजा० प्रतियो मे 'सौदा' पाठ सशोधन हुआ है।

भा० मो० नो० गं० गंजा० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति

५ ३८

"प्रीतम के रूप को **सुधा** सो अँचवति **तऊ** प्यासीयै रहति जो लहति सुख सग ना।"

कवि कहता है कि कलिग देश की कामिनी मे कामोद्वेग की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वह अपने प्रियतम की रूप-सुधा का पान करने पर भी प्यासी ही रहती है, सुरति-सुख प्राप्त किये बिना उसे तृप्ति नही होती। नी० ग० गजा० भा० मो० प्रतियो मे 'सुधा' के स्थान पर '**मया**' तथा 'तऊ' के स्थान पर '**तन**' विकृत पाठ मिलता है। इनमे से प्रथम पाठ 'मया' का अर्थ माया आदि होने के कारण असगत है। इसी प्रकार प्रीतम के तन को अचवना तथा रति-सुख प्राप्त करना प्राय समान है, यद्यपि 'तन अचवना' स्वयमेव असगत पाठ है। 'तऊ' से 'तन' पाठ-विकृति 'उ' के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने के कारण 'तऊ' से 'तनु' होते हुए सभव है अत हमने 'तऊ' पाठ मूल का माना है।

५ ४०

"तीनिहूँ लोक नचावति **ओक** मै मत्र के सूत अभूतगती है।
आपु महा गुनवत गुसाइनि पाइनि पूजत प्रानपती है॥"

नी० ग० गजा० भा० मो० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर '**ऊक**' पाठ है। घर के अर्थ मे 'ओक' शब्द इसी ग्रथ मे अन्यत्र भी आया है—"आपने **ओक** रहै अवलोकि तिलोक की लीक सदा निरजोसी।"—४ २७। स्मरण रहे कि यहाँ भी भा० मो० प्रतियो मे 'ऊक' विकृत पाठ मिलता है। 'ऊक' का अर्थ है 'उल्का', अत इस अर्थ मे यह पाठ यहाँ भी असगत है। उपर्युक्त दोनो ही प्रसगो मे नायिका स्वकीया है—पहले प्रसग मे नायिका का स्वकीयत्व छद के दूसरे चरण मे प्रगट होता है अत 'ऊक' की अपेक्षा 'ओक' पाठ अपने घर मे रहते हुए त्रैलोक्य को नचाने के प्रसग मे, मूल प्रति का पाठ है।

भा० मो० नी० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति :

३ . ४७

"कटक बसै ते सेन्या तीन भाँति कहु ताहि।
इक वृपली अरु वेस्या कहत **मुकेरिन** जाहि॥"

'म' मे 'स' का भ्रम होने से भा० मो० नी० प्रतियो मे '**सुकेरिन**' विकृत पाठ मिलता

है। 'मुकेरिन' पाठ ही शुद्ध है, क्योंकि यही पाठ ३ ३०वे छद के शीर्षक पर भी है तथा छद के अन्तिम चरण मे भी 'मुकरि मुकेरनि की' पाठ मिलता है।

३ २८

"कानन करन फूल सोहत जरी दुकूल नथ में अथक लटकन लटकायो है।"

'अथक लटकन' से कवि का तात्पर्य नथ मे पडे उस मोती-लटकन से है जो नायिका के थोडा भी हिलने पर निरतर झूमता रहता है। लिपिभ्रम से 'अथक' का 'अधक' होने हुए तथा इसे सार्थकता प्रदान करने के लिये केवल भा० मो० नी० प्रतियो मे 'अधिक' पाठ मिलता है।

४ २५

"तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि।
हारी पाँइ परि परि तौ न कीन्ही तै सम्हार।"

'तै' भा० मो० नी० प्रतियो मे त्रुटित होने के कारण रूप घनाक्षरी के चरण मे ३२ वर्णों के स्थान पर ३१ वर्ण ही मिलते है।

भा० मो० ब्र० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

५ ५६ पर्वत वधू

"पकज से नैन बैन मधुर मयक जैसे अधरनि धरी धार सुधा सरवत की।"

पर्वतीय रमणी के नेत्र कमल के समान सुन्दर तथा उसके मधुर बोल भी चन्द्रमा के समान अत्यन्त सुखकारी है। जैसे उसी के अधर पर अमृत-रस की धार गिरी हो! केवल भा० मो० ब्र० प्रतियो मे 'धराधर' पाठ मिलता है। 'धराधर' का अर्थ 'शेषनाग, पर्वत, विष्णु' होने के कारण यह पाठ यहाँ असगत है।

६ . २८

"आछी उनमील नील सुभग सरोजन की तरल तनाइयत तोरन तितै तितै।"

चरण का यही शुद्ध पाठ 'सुजानविनोद' मे २ ११ पर, 'काव्यरसायन' मे १ . ४० पर तथा 'सुखसागर तरग' मे ३७१ सख्या पर इसी छन्द मे भी मिलता है। हमने 'सुजानविनोद' की भूमिका मे इस छन्द के अर्थ पर विस्तार से विचार किया है। चरण मे रेखाकित पाठ के स्थान पर भा० मो० प्रतियो मे 'तरल तनाइमति तोरति' पाठ है—मो० प्रति में अन्तिम 'ति' पार्श्व पर है, ब्र० प्रति मे 'तरल तनैनो मति तोरति' पाठ मिलता है। इन प्रतियो की '—मति तोरति' समान पाठ-विकृति, जो 'य' तथा 'न' मे क्रमश 'म' एव 'त' का भ्रम होने से सभव है, विशेष रूप से दृष्टव्य है। जैसा कि इस चरण पर विचार करते हुए हमने अन्यत्र स्पष्ट किया है, 'तनाइयत तोरन—' का अर्थ है 'कमलो की माला से निर्मित बदनवार।"

७ ' २३

"इहि विधि दसौ प्रकार के हाव होत सयोग।
अब दंपति की दस दसा वरनौ वीच वियोग।।"

आलोच्य स्थल पर मो० व्र० प्रतियो मे 'विचित' तथा कदाचित् सपादक अथवा प्रतिलिपिकार द्वारा इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण भा० प्रति मे 'विहित' पाठ मिलता है। वियोगावस्था के मध्य दस कामदशाओ की स्थिति मानी गई है अत 'वीच वियोग' पाठ ही सगत है।

७ . ४८

"भौर भरे भीतर सरोज फरकत ऐसी अधखुली अँखियानि उपमा बढाइयतु।"

भा० मो० व्र० प्रतियो मे 'भौर भौंर' पाठ मिलता है। प्रकृत भाव कुछ इस प्रकार है— अर्धोन्मीलित नेत्र उस फरकते सपुटित कमल के समान लगते है जिसके भीतर एक भ्रमर वदी होकर पुन स्वतन्त्र होने के लिए कुलवुला रहा है। अत 'भौर भौर भीतर' की अपेक्षा 'भौर भरे भीतर' पाठ अधिक सगत है। यहाँ 'भौर' की पुनरुक्ति भी अनावश्यक है।

७ ६४ प्रलाप-लक्षण

"दपति कै 'उद्वेग ह्वै बढ़े' विरह सताप।
उत्कठित चित प्रेम पिय पेख्यो प्रगट प्रलाप।।"

दोहे का यही पाठ 'भवानीविलास' मे ७ ३७ सख्या पर भी मिलता है परन्तु यहाँ केवल भा० मो० व्र० प्रतियो मे 'उद्वेग हू वैठि' पाठ है। उद्वेग तथा उत्कठा आदि विरह-दशा के उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करने पर प्रलाप की दशा प्रगट होती है अत 'वैठि' की अपेक्षा 'वढे' पाठ अधिक संगत है।

७ ७६ विक्षेपोन्माद-उदाहरण

"चलि चलि मोसो कहै चलि चलि होति कित
विचलि विचलि चलि परति उचकि चकि।
काहि तकि तकि चित कितहि पठायो आजु
देव कहै रहै कौन विथा सो विथकिथकि।।"

प्रथम चरण मे भा० मो० व० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'विथकि थकि' पाठ है। यही पाठ तृतीय चरण मे भी है एव पीडा से व्यथित होने के प्रसग मे सगत है। इसके विपरीत थककर चल पडने के अर्थ मे प्रथम चरण मे 'चलि परति विथकि थकि' पाठ की असगति स्वयसिद्ध है।

७ ७८

"कमल सुनैन जोरे जबते सुनैन तुम तवते सुनै न स्यामा सखिन के सोरए।"

जबसे तुमने उसके कमल के समान सुन्दर नेत्रो से अपने सुन्दर नेत्र मिलाये है तब से वह तुम्हारे ध्यान मे इतनी तल्लीन रहती है कि सखियों के पुकारने पर भी नही सुनती। 'जबतें' की सगति 'तबतें' से भी सिद्ध है अत 'जबतें' के स्थान पर भा० मो० ब्र० प्रतियो मे प्राप्त 'जियत' पाठ असगत माना गया है।

प्रतियों का प्रतिलिपि—सम्बन्ध :

'रसविलास' की प्रतियो का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त उलझा हुआ है क्योंकि इसकी एक-दूसरे समूह की विभिन्न प्रतियो मे परस्पर तथा देव-कृत अन्य ग्रन्थो की प्रतियो से भी अबाध मात्रा मे पाठ-मिश्रण हुआ है। फिर भी प्रतियो मे प्राप्त विभिन्न प्रकार की समान विकृतियो के आधार पर प्रतियो का सम्बन्ध इस प्रकार निर्धारित होता है—

भा० मो० प्रतियाँ ग्रथ के प्रथम सस्करण की वशज तथा एक ही आदर्श की दो प्रतिलिपियाँ है। इन दोनो प्रतियो मे स्वतन्त्र विकृतियाँ भी मिलती है अत ये एक-दूसरे की प्रतिलिपि नही हो सकती।

नी० गजा० प्रतियाँ भी ग्रन्थ के प्रथम सस्करण की खडित प्रतियाँ है। इन दोनो प्रतियो मे भी स्वतन्त्र विकृतियाँ मिलने के कारण ये एक-दूसरे की प्रतिलिपि नहीं सिद्ध होती। (देखे, 'जातिविलास की प्रामाणिकता' शीर्षक)

ग० सा० प्रतियाँ ग्रथ के दूसरे सस्करण की वशज, एक ही शाखा की दो प्रतियाँ है। ग० प्रति मे नी० गजा० प्रति से कल्पनातीत मात्रा मे पाठ-मिश्रण हुआ है।

सा० प्रति की शाखा तथा नी० गजा प्रतियो की शाखा मे ऊपर कही पाठ-मिश्रण हुआ है।

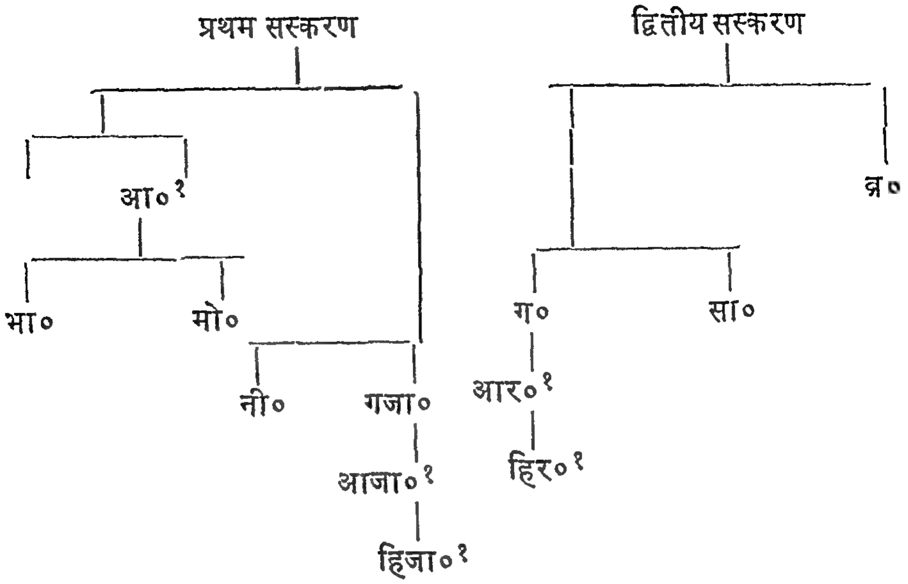
ब्र० प्रति दूसरे संस्करण की स्वतन्त्र शाखा की प्रति है, यद्यपि इस प्रति मे भी, गं० प्रति के समान, अन्य प्रतियो से पाठ-मिश्रण पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। यह पाठ-मिश्रण विशेष रूप से ग्रन्थ के अन्तिम अग मे अधिक हुआ है।

ब्र० तथा सा०, भा० मो० तथा ब्र०, भा० मो० तथा नी०, नी० ग० गंजा० तथा भा० मो० प्रतियो के समुच्चय सदिग्ध प्रतिलिपि-सम्बन्ध के उदाहरण है अर्थात् इन प्रतियो का परस्पर सम्बन्ध प्रतिलिपि-परम्परा के माध्यम से नही अपितु पाठ-मिश्रण के द्वारा निर्धारित होता है।

रेखाओ के माध्यम से 'रसविलास' की सभी उपलब्ध प्रतियो के परस्पर सम्बन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :—

संपादन-सिद्धान्त

"रसविलास की सभी उपलब्ध प्रतियो मे अत्यधिक पाठ-मिश्रण होने के कारण इस ग्रथ का पाठ-चयन करने मे गहरी सतर्कता की आवश्यकता है। पाठ-मिश्रण के कारण ही केवल कुछ प्रतियो के समुच्चय ऐसे है जिनमे समान विकृतियाँ नही मिलती है। इस प्रकार के केवल निम्नलिखित समुच्चय निर्विवाद रूप से विश्वसनीय है :—सा० भा० तथा मो० प्रतियाँ, ब्र०



तथा ग० प्रतियाँ। सहायक सामग्री के रूप मे अन्य ग्रथो मे प्राप्त समान छद के पाठ का उपयोग भी व्यापक रूप मे हुआ है। ऐसे स्थलो का निर्देश भूमिका मे कर दिया गया है।

अपवाद

मान्य सपादन-सिद्धान्त के अपवादस्वरूप कुछ स्थल इस प्रकार है :

केवल ब्र० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

६ १५ खडिता।

"लालन लजात से जम्हात विहँसात प्रात **आए अलसात आली** देत पेच पाग के।"

यह पाठ केवल ब्र० प्रति मे है, अन्य पाठान्तर इस प्रकार है—**आए आली मेरे गृह—भा० मो; आली उठि आए देखि—गं०**। इन सभी प्रतियो मे 'आए आली' पाठ समान है अत इतना पाठ निर्विवाद रूप से स्वीकृत किया जा सकता है। शेप अग मे भा० मो० प्रतियो का 'मेरे गृह' तथा गं० सा० प्रतियो का 'उठि देखि' पाठ अर्थहीन न होने पर भी ब्र० प्रति के 'अलसात' पाठ की तुलना मे प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त मालूम देता है। नायिका का पति रात्रि-पर्यन्त किसी अन्य रमणी के साथ विलास कर अपने शरीर पर सुरति के स्पप्ट चिह्न लिये मुस्कराता, जमुहाता हुआ घर वापस लौटा है। जिस प्रकार जमुहाना आलस्य सचारी का अनुभाव है उसी प्रकार अलसाते हुए आना श्रम सचारी का अनुभाव हो सकता है, अत कवि की शैली पर ध्यान देते हुए हमने ब्र० प्रति का 'आए अलसात आली' पाठ स्वीकृत किया है।

८ . १५ मुदिता-उदाहरण

"आरस सो रस सो अँगिरात दसौ अँगुरी कर **अंजन** काढ़ी।"

---

[1] अंकित प्रतियो का उपयोग पाठ-सपादन मे नही हुआ है।

यह पाठ केवल ब्र० प्रति मे है, ग० सा० प्रतियो मे इसके स्थान पर अंजुलि पाठ हे। मुदिता नायिका आँखो मे अजन लगने के हेतु एक या दो अगुलियो पर नही, आनदातिरेक मे अपने हाथ की सभी उँगलियो पर अजन निकाल लेती है। अत 'अजन' पाठ की सगति स्पष्ट हे। वह अपना कसा हुआ नीवी-बध खोलकर फिर से कसकर बाँधती है एव कचुकी का वधन भी ठीक करती है। नायिका के इस चित्रण से भी उसके उल्लास का आधिक्य प्रकट होता है। इस प्रकार 'अजन' पाठ सगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है। तुलना, "खजन नैनी उठी अकुलाइ धरे अगुरी पर अजन बूदी।"—'सुमिलविनोद' ५ ११ २।

केवल गं० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ

७ ६२

"धूम घटागरु धूपनि की निकसे नव जालनि व्याल भरे से।"

यह पाठ केवल ग० प्रति मे तथा 'सुख सागर तरग' मे ५६८ सख्या पर इसी छन्द मे मिलता है, भा० मो० ब्र० प्रतियो मे इस स्थल पर 'धूम जठागरु धूमन के' तथा सा० प्रति मे 'धूम जठागरु धूपनि की' पाठ है। 'जटागरु' तथा 'जठागरु' पाठ शब्दार्थ के विचार से अग्राह्य है। भा० मो० ब्र० प्रतियो का 'धूमनि' विकृत पाठ भी, जो लिपि-भ्रम से सभव है, 'धूम' की पुनरुक्ति होने के कारण असगत है। यहाँ ऊपर उठते हुए धूप, अगर चदनादि के धुँए की टेढी लकीर की ओर, जो वक्राकार सर्प के समान लगती है, कवि का सकेत है अत 'अगर तथा धूप की धूम-घटा' के अर्थ मे सर्वप्रथम उद्धृत 'धूम घटागरु धूपनि की' पाठ सगत है।

८ १०

"रँग लाल जरी पट घूँघट ओट लसे मुकतालर की लरक्यो।
प्रभात प्रभाकर मडल मै विधु मडल बिब सुधावर को।
रदपाँति चुनी चमकै हँसि बोलत देव कछू अधरा फरक्यो।
मनो कातिक पून्यो की राति सुधाकर मध्य सुधा भरिकै ढरक्यो॥"

नायिका के लाल वस्त्र के नीचे से झलकती हुई मोतियो की माला पर कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि यह माला प्रभात के समय की लालिमा मे विलम्ब से उदित होने वाले चद्रमडल का प्रतिविम्व है। इसके स्थान पर सा० ब्र० प्रतियो मे प्राप्त 'विदुसुधा ढरक्यो' पाठ, अर्थहीन न होने पर भी, चतुर्थ चरण के अन्त मे यही पाठ होने के कारण, अग्राह्य है।

८ : ३५

"रावरे पायन ओट लसै पग गूजरी वार महावर ढारे।"

यह पाठ केवल ग० प्रति मे तथा 'काव्यरसायन' मे २ · ५४ तथा देवकृत अन्यान्य ग्रन्थो मे इसी छन्द मे मिलता है। ब्र० प्रति मे सामान्य लेखन-प्रमाद से वर्णो का विपर्यय होने से 'पाय अनौठ' पाठ हे। यह पाठ निरर्थक होने के कारण अस्वीकृत तथा केवल ग० प्रति मे प्राप्त पाठ

अन्य ग्रथों के साक्ष्य पर स्वीकृत हुआ है।

८ ५० कुलटा उदाहरण।

"ठान कुठान अठान ठनी ठहकीली रहै गुरु लोग रुठाये।"

कुलटा परकीया नायिका इधर-उधर रुककर अथवा बैठकर अकरणीय कार्यो मे लगी रहती है इसीलिए उसके गुरुजन उससे रुष्ट रहते है। 'ठहकीली' शब्द 'ठहना' (स० स्था०, प्रा० ठा) अर्थात् 'किसी काम को करते हुए बीच-बीच मे ठहरने' के अर्थ मे इस प्रकार सगत सिद्ध होता है। तुलना—"पूरब पौन के गौन गुमानिनि नद के मदिर में ठहकाई।" —काव्यरसायन ८ ४८। 'ठहकीली' पाठ केवल ग० प्रति मे मिलता है। यही पाठ वर्ण-विपर्यय से ब्र० प्रति मे **'हठकीली'** एव सा० प्रति मे **'हटकीली'** हो गया है। 'हठकीली' का सम्बन्ध खीचतान कर 'हठ' से जोड़ने पर भी चरण का कोई विशेष सगत अर्थ नही निकलता। इसी प्रकार सा० प्रति का 'हटकीली' पाठ स्पष्ट रूप से अग्राह्य हे क्योकि 'हटकना' का अर्थ 'रोकना, वर्जन करना' आदि है एवं प्रसंग से 'हटकीली' नायिका के लिए प्रयुक्त है तथा नायिका का हटकना अथवा रोकना भी सगत नही है।

विशेष संशोधन :

५ ५४ आभीर वधू।

"कर पद पदम पदमनैनी पद्मिनी पदम सदम सोभा संपद सी आवती।"

आभीर देश की पद्मिनी नायिका, जिसके हाथ, पॉव तथा नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं और जो कमल-महल मे शोभा तथा सपत्ति के समान सुशोभित है, वह चली आ रही है। यहाँ ऐश्वर्य तथा संपदा के अर्थ मे 'सपद' शब्द का प्रयोग हुआ है। विभिन्न प्रतियो मे आलोच्य स्थल का पाठ इस प्रकार मिलता है: सेपद सी—ब्र०, सपति सी—सा०, सबद-सी—ग० गजा०, सुखद सी—नी०, सेखद सी—मो०, सवै देखन मैं—भा०। इनमे से सा० तथा भा० प्रति मे प्राप्त पाठ के अतिरिक्त अन्य पाठ निरर्थक तथा प्रसग मे असगत होने के कारण अग्राह्य है। इन सभी प्रतियो के विकृत पाठो पर सूक्ष्मता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इस विवादास्पद स्थल मे मूल प्रति मे स, प तथा द वर्णो-सहित कोई पाठ रहा होगा। सा० प्रति का 'सपति' पाठ चरण की 'द' अनुप्रास-माला के अनुकूल न होने के कारण मूल का नही माना जा सकता। इसी कारण भा० प्रति का पाठ भी असगत है अत सपादक ने चरण की वर्ण-योजना पर ध्यान देते हुए 'सपद सी' पाठ-संशोधन अपनी ओर से किया है। मो० प्रति की 'सेखद' तथा ब्र० प्रति की 'सेपद' पाठ-विकृति भी इसी पाठ से सभव है।

७ ६९ प्रथम दो चरण

"प्रेम की पीर न जानी तैं वीर जु छेल कटाछहूँ सो कहुँ छ्वैहै।
देव तुही त्रसिहै हँसिहै वलि वावरी ह्वै रस रूसिहै र्‍वैहै।।"

यह पाठ केवल 'देवशतक—प्रेमपचीसी' मे २४वी सख्या पर इसी छन्द मे मिलता है।

'रसविलास की विभिन्न प्रतियो मे पाठ की स्थिति इस प्रकार है—रस ही रस चैहै—भा०, रस है रस चैहै—मो०, रस है रस च्वैहै–ग्र०, रस रूसी सी ह्वै है–सा०, को रवि मूचि विसैहै–ग० । 'भवानीविलास' मे ८ १६ सख्या पर इसी छन्द मे 'रस रूसिहै चैहै' पाठ मिलता है। इनमे से 'भवानीविलास' तथा 'रसविलास' की भा० प्रकाशित प्रतियो मे प्राप्त 'चैहै' विकृत पाठ परस्पर पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप अथवा दोनो ग्रन्थो मे सम्पादक को 'र्वै' के प्राचीन रूपान्तर मे 'च' का भ्रम होने के कारण स्वतन्त्र रूप से सम्भव है। इन प्रतियो का 'चैहै' अथवा ग्र० प्रति का 'च्वैहै' पाठ शव्दार्थ के विचार से अग्राह्य है क्योकि नायिका के रुष्ट होने तथा उसके 'चू पडने' मे कोई सगति नही है। ग० प्रति का 'सूचि विसैहै' पाठ नो और भी भ्रष्ट है। 'चैहै', 'च्वैहै' तथा 'ह्वैहै' आदि पाठ-विकृतियाँ 'र्व' के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने से सभव हैं अत इन पाठो को अस्वीकृत करते हुए देवकृत उपर्युक्त अन्य ग्रथ से 'र्वैहै' पाठ यहाँ विशेप सशोधन के रूप मे स्वीकृत हुआ है।

८ . ६२ कुलगर्विता-उदाहरण

"वोलत वाते वडी वन मै मन मै वृपभान ववा सो अरूझत ।"

आलोच्य स्थल पर ग० प्रति मे 'अनूझत' तथा ब्र० सा० प्रतियो मे 'अवूझत' पाठ है। 'भवानीविलास' मे ७ २१ सख्या पर इसी छन्द मे 'अरूझत' पाठ तथा 'सुखसागरतरग' मे ३४१ सख्या पर 'अनूझत' विकृत पाठ मिलता है। यहाँ यह अर्थहीन पाठ-विकृति 'र' के प्राचीन रूपान्तर मे 'न' का भ्रम होने से सम्भव है एव इस ग्रन्थ मे पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप ग० प्रति मे भी यही विकृत पाठ आ गया है। ब्र० सा० प्रतियो का 'वृपभान ववा सो अवूझत' पाठ भी न मानने अथवा अवज्ञा करने के अर्थ मे, 'अरूझत' के स्थान पर कविकृत पाठ-परिवर्तन नही हो सकता, क्योकि इस अर्थ मे पाठ 'सो वूझत' न होकर 'को अवूझत' होता । अत हमने उपर्युक्त स्थल पर 'भवानीविलास' के 'अरूझत' पाठ को स्वीकार किया है।

'जातिविलास' की प्रामाणिकता

मैने 'रसविलास' के पाठ-सपादन मे 'जातिविलास' शीर्पक की नीलगाँव एव गंधौली से प्राप्त (भूमिका मे क्रमश नी० तथा गजा० सज्ञा से अभिहित) जिन दो प्रतियो का उपयोग किया है उनके अतिरिक्त 'जातिविलास' शीर्पक की केवल कुछ ही अन्य प्रतियाँ अव तक प्राप्त हुई हैं। यद्यपि इन सभी प्रतियो का विस्तृत परिचय हमने 'रसविलास' की प्रतियो के साथ दे दिया है फिर भी यहाँ इतना स्मरण दिलाना अप्रासंगिक न होगा कि 'जातिविलास' शीर्पक से प्राप्त इन प्रनियो मे केवल नी० तथा गजा० प्रतियाँ सवत् १६४२-४३ के निकट प्रतिलिपि होने के कारण कुछ प्राचीन है एव नागरी-प्रचारिणी सभा तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी मे सग्रहीत इसकी अन्य प्रतियाँ गजा० प्रति से सवत् १६७७ के वाद प्रतिलिपि होने के कारण केवल साधारण महत्त्व की सामान्य आधुनिक प्रतिलिपियाँ है। गजा० प्रति मे 'रसविलास' की गधौली की ग० प्रति से तथा अन्यान्य प्रतियो से पाठ-मिश्रण तथा प्रतिलिपिकार द्वारा अत्यधिक पाठ-सशोधन हुआ है, अत इस प्रति मे अपनी आदर्श प्रति का पाठ भी सुरक्षित रह सकने की वहुत

कम आशा हे। इसके विपरीत नी० प्रति मे अन्य स्रोतो मे पाठ-मिश्रण नही हुआ है इस कारण गजा० प्रति की तुलना मे यह प्रति 'जातिविलास' शीर्पक प्रतियो की परम्परा का यथासम्भव शुद्धतम पाठ देती हे। इसी कारण हमने 'रसविलास' के पाठ-सपादन मे इस प्रति का उपयोग किया है तथा इसी कारण यह प्रति 'जातिविलास' के सम्बन्ध मे किसी सगत निष्कर्प तक पहुँचने मे सर्वाधिक सहायक हो सकती है।

'जाति विलास'—शीर्पक की नी० प्रति सहित सभी प्रतियाँ "केरल वधू" ५ ४७ वे छद से आगे खण्डित है यद्यपि पचम विलास मे देश-भेद का विपय-प्रवर्तन करते हुए कवि देव ने जिन देशो की सूची दी उसके अनुसार केरल वधू से आगे, द्राविड, तिलग आदि वधुओ का भी वर्णन होना चाहिये। इस सूची मे विज्ञापित सभी देश-भेद 'रस विलास' मे मिलते है। इसके अतिरिक्त ग्रथ का "जाति विलास" नाम नी० प्रति मे केवल प्रति के प्रारम्भ मे ही मिलता है 'अथ जाति विलास लिख्यते—' एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस प्रति मे विभिन्न विलासो के अन्त मे जो पुष्पिकाएँ दी है परन्तु उनमे ग्रथ-नाम नही है यद्यपि रीतिकालीन अन्य कवियो मे प्रचलित परिपाटी के अनुसार देव के सभी ग्रथो मे निरपवाद रूप से प्रत्येक विलास अथवा अध्याय के अन्त मे ग्रथ एव उसके रचयिता का नाम तथा यदि ग्रथ किसी को समर्पित है तो उस आश्रयदाता का नाम अवश्य मिलता है। नी० प्रति के विपरीत गजा० प्रति (तथा उसकी सभी प्रतिलिपियो) के प्रथम, द्वितीय आदि प्रत्येक विलास के अत की पुष्पिका मे कवि देव का नाम भी मिलता है। आश्रयदाता का नाम नी० सहित किसी प्रति मे नही है क्योकि यह ग्रथ देव कवि ने किसी को समर्पित नही किया है। गधौली के जिन स्वर्गीय श्री युगल किशोर मिश्र के परिवार के सग्रह से यह प्रति प्राप्त हुई है उस परिवार मे कई पीढियो से कवि तथा काव्य-मर्मज्ञ विद्वान होते आए है। मेरे विचार से इसी परिवार के किसी काव्य-रीति से परिचित विद्वान ने अपनी आदर्श प्रति के आदि मे 'जाति विलास' नाम देख कर यही नाम तथा देव का नाम सभी विलासो के अन्त की पुष्पिका मे भी दे दिया होगा और इससे प्रतिलिपि होने के कारण यह विशेपता उनकी वर्तमान प्रति मे आ गयी है।

'जाति विलास' के इस भिन्न नाम से भ्रमित होकर अव तक के विद्वान इसे 'रस विलास' से पृथक्, देवकृत स्वतन्त्र ग्रन्थ मानते आये है यद्यपि किसी ने 'जाति विलास' को स्वतन्त्र ग्रन्थ मानने का कोई भी कारण नही दिया है। आश्चर्य है कि एक बार 'जाति विलास' को पृथक् एव स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लेने के कारण विद्वानो ने इस ग्रन्थ की रचना के सम्वन्ध मे विचित्र-विचित्र कल्पनाए भी की है। उदाहरण के लिए श्री मिश्र बधुओ का अनुमान है कि 'जाति विलास' देव की देशव्यापी यात्रा का परिणाम है :—

"इस समय देव जी अच्छे गुणज्ञ की खोज मे, अथवा तीर्थयात्रा के लिए देश भर मे बराबर घूमते रहे। यह महाराज जहाँ गये वहाँ के मनुष्यो की चाल-ढाल रीतियो और अन्यान्य दर्शनीय पदार्थो पर पूरा ध्यान देते रहे। जान पडता है उन्होने काश्मीर, पजाव, वगाल, उडीसा, मद्रास, वम्बई, गुजरात, राजपूताना, बरार आदि सव देशो को घूम-घूम कर देखा। इन महाकवि ने अपने भ्रमण द्वारा प्राप्त अपूर्व ज्ञान को वृथा नही खोया वरन अपनी रचनाओ मे स्थान-स्थान पर उसका उपयोग किया है। 'जाति विलास' नामक ग्रन्थ रचकर उन्होने सव देशो की स्त्रियो

का वड़ा ही सच्चा वर्णन किया हे।---इन महाकवि ने इन सब देशो की स्त्रियों का ऐसा सच्चा वर्णन किया है कि जान पडता है ये वहाँ गये अवश्य थे। इस समय इनका कोई भी आश्रयदाता न था, यहाँ तक कि इन्होने 'जाति विलास' किसी को भी समर्पण नही किया।"

—"हिन्दी नवरत्न" पृ० २७३

इसमे सदेह नही कि जाति-भेद का यह प्रसग कवि देव की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है परन्तु इस चित्रण मे ऐसी कोई विशेषता नही मिलती जिसे देखकर यह स्वीकार करना पडे कि उस प्रदेश मे स्वय जाए बिना कवि ऐसा सच्चा वर्णन नही कर सकता था। इसके विपरीत समग्र रूप से देखने पर कवि के वर्णन मे प्रदेश के स्थानीय वातावरण (Local colour) का अभाव प्रकट होता है। मै केवल एक उदाहरण देता हूँ, देखे, क्या इस सुदूर कोकण देश की वधू के चित्रण मे कोई ऐसी विशेषता है जिसका वर्णन कवि उस प्रदेश मे जाए बिना नही रह सकता था —

"गोरी गजराज गति गुननि गहीर मति भारे भाग ही रमति सुरति सकोचनी।
आलिगन चुबन अधर पान नखदान मान सौ वचन रचना सौ रुचि रोचनी।
जाने रीति जी की पहिचाने प्रीति नीकी सुखदानि सबही की प्यारी पी की दुख मोचनी।
केसरि करे न सरि को कनक जाकी दरि कोकनदरी की नारि कोकनद लोचनी॥

—'रस विलास' ५ : ४६।

इसी प्रकार देश-भेद के अन्य उदाहरणो मे भी, समकालीन चेतना के अनुरूप कवि की दृष्टि नारी के रूप-लावण्य पर पहले जाती है, प्रदेश के आधार पर विभाजन तो उसने केवल नाम लेने भर को, गौण रूप मे किया है।

आश्चर्य है कि देव की रचनाओ पर प्रथम बार आधुनिक, वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हुए डा० नगेन्द्र ने भी देव की देशव्यापी यात्रा के उपर्युक्त काल्पनिक मत का विस्तार कर अपनी ओर से यह भी मान लिया है कि देव को इस यात्रा मे कम से कम १५ वर्ष लगे होगे —

"जैसा कि सभी पडितो का मत है—जाति विलास एक देशव्यापी यात्रा के फलस्वरूप लिखा गया है। यह यात्रा काफी लबी थी और दस-पन्द्रह वर्षो मे अवश्य समाप्त हुई होगी। अतएव, सभवत सवत् १७६५ के लगभग राजा कुशलसिह के आश्रय से किसी कारण विमुख होकर देव देशाटन के लिए चल पड़े होगे। इस यात्रा मे देव ने समस्त भारत मे पर्यटन किया और वहाँ के सौन्दर्य का, सौदर्य से तात्पर्य उस समय केवल नारी-सौदर्य का ही था, अवलोकन किया।"

—'देव और उनकी कविता' पृ० ४६

परन्तु 'जाति विलास' प्रति की 'रस विलास' के साथ तुलना करने पर, प्रतियो के प्रति-लिपि-सम्बन्ध के अपेक्षाकृत शुष्क साक्ष्य को छोड़ देने पर भी, केवल समान छन्दो की स्थिति ही स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे 'जाति विलास' की पृथक् सत्ता के विरुद्ध सबसे सगक्त प्रमाण मालूम देता हे। 'जाति विलास' की प्रति मे कुछ अधिक छदो को छोडकर 'रस विलास' के ५ ४७ सख्या तक के सभी छद समान है। इस तथ्य से मिश्र बधु भी अवगत है—"हमारी कापी मे केरल वधू तक का वर्णन लिखा है। उसके आगे पुस्तक अपूर्ण है।—जहाँ तक ग्रन्थ हमारे पास

है वहाँ तक इसकी रचना रस विलास से बहुत कुछ मिलती है, यहाँ तक कि दोनो ग्रन्थो मे प्रति सैकडे नब्बे छन्द एक ही है—'हिंदी नवरत्न', और डॉ० नगेन्द्र भी इस सत्य से अपरिचित नही— "वास्तव मे रस विलास को जाति विलास का सशोधित और परिवर्धित सस्करण कहना चाहिए। जाति विलास और भवानी विलास की अपेक्षा उसमे इतने कम नवीन छद है कि उनकी रचना मे कवि को बहुत ही थोडा समय लगा होगा।"

—'देव और उनकी कविता' पृ० ४८।

'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो के केवल इन थोडे से अधिक छन्दो के कारण 'जाति विलास' को 'रस विलास' से स्वतन्त्र ग्रथ माना गया है—यद्यपि किसी विद्वान ने यह कारण नही दिया है परन्तु 'जाति विलास' प्रति मे 'रस विलास' से इतनी समानता देखते हुए भी इसे पृथक् ग्रथ मानने का फिर दूसरा और क्या कारण हो सकता है ?

'जाति विलास' शीर्षक प्रति मे 'रस विलास' से जहाँ तक छन्द समान है, उन पर विचार करने की आवश्यकता नही है अत हम केवल 'जाति विलास' शीर्षक प्रति के अधिक छन्दो पर यहाँ विचार करेगे। इस समूह की प्रतियो मे अधिक छन्द नगर नागरी भेद के अन्तर्गत 'रस विलास' २ ६ से आगे मिलते है। नगर नागरी भेद के ये छन्द 'रस विलास' के अतिरिक्त देव-कृत 'सुख सागर तरग' मे भी मिलते है। स्मरण रहे कि इस 'सुख सागर तरग' ग्रथ के कविकृत दो सस्करण है। एक, जो पिहानी के अकबर खॉ को समर्पित है, इस लेख मे सुसा० (अली०) सकेत से तथा दूसरा, जो महाराज जसवतसिह के नाम समर्पित है, इस लेख मे सुसा० (जस०) सकेत से उल्लिखित है। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो, 'रस विलास', सुसा० (जस०) एव सुसा० (अली०) ग्रंथो मे इस प्रसग के सभी छन्दो की प्रतीक-सूची प्रत्येक ग्रथ मे छन्द के स्थल निर्देश-सहित इस प्रकार है —

नगर-नागरी भेद—रस० २ : ५

'जाति विलास' शीर्षक प्रतियाँ			'रस विलास'		सुसा० (जस०)		सुसा० (अली०)
जौहरिनी	'सीची सुधा'	——	यही २ ७	—	यही १०७	—	यही २६२
छीपिनी	'सोने से'	——	यही २ ८	—	यही १०८	—	यही २६३
कसहेरिन	'वेला यही'	——		—		—	
सुनारि	'देव दिखावत'	——	यही २ १०	—	यही ११०	—	यही २६५
हलवाइन	'मीठे महामृदु'	——	यही २ १४	—	यही ११३	—	यही २६६
वनैनी	'मदन के मोद'	——	यही २ · १५	—	यही ११४	—	यही २७०
पटविन	'रेसम के गुन'	——	यही २ ९	—	यही १०९	—	यही २६४
पसारिन	'पीपरी सुपारी'	——		—		—	
गधिन	'अरगजे भीजी'	——	यही २ ११	—	यही १११	—	यही २६६
मालिन	'वीनत फिरत फूल'	——	यही ३ १४	—	यही		यही २८८
तमोलिन	'रगित चोली तै'	——	यही २ . १३	—	यही ११२	—	यही २६८
वढइन	'वक निहारनि'	——		—	'भौहे अराले	—	यही २७६

अरेरनि' ११७ — —

लुहारी — 'लागी नचावन' — — 'गहगहे जोबन' — वही २७०

११८" — —

दरजिन — 'अन्तर पैठि' — वही २ १७ — वही ११६ — वही २८०

तैलिन — 'तिल है अमोल' — वही २ १५ — वही ११२ — वही २६०

कुम्हारी — 'चदमुखी गुरि' — वही २ १६ — — वही ११५ — वही २७१

भरभूजिन — 'सांवरे अग लसै' — — 'बिन्दु छटा-नी' १२१

चुरहेरिन — 'हाटकलतागी' — — — —

धुनिन — 'पीतम पान कपान' — — — —

जुलाहिन — 'लाज जजीरन' — — 'चातुरी भौननि' — वही २७४

११६

कटेरिन — 'जीति लियो गिगगे' — — — —

खटकिन — 'मोहन हजारन' — — — —

भठियारी — 'नाउ परै भठियारी' — — — —

सिकलीगरनि — 'चित चोरति नी' — — — —

चूहरी — 'चीकने कपोल' — वही २ १८ — वही १२४ — वही २३८

चमारि — 'जोबन जोम ने' — 'मोनिन' नगिना — वही २७४

पीठो' १२०

गनिका — 'चाट उचाट' — वही २ १९ — वही १२४ — वही २७६

कगहेरिन 'कैंगी मे कटाछनि' १२१

कुँजरी 'कुंजरी कजरी वाल' १२२ वही २७३

मनिहारि 'मागै नही मनुहारि' १२३

नोट —

'रस विलास तथा नी० गजा० प्रतियो मे ये छन्द परस्पर स्वतन्त्र क्रम से आए है।

नोट —

दरजिन उदाहरण छद तक 'रस विलास' एव 'सुमा० (जस०) मे छदो का क्रम समान है। इससे आगे के अन्य उदाहरण सुमा० अन्य उदाहरण सुमा० (जस०) तथा सुमा० (अनी०) मे समान है परन्तु नी० गंजा० प्रतियो के अन्य उदा-

नोट —

सुमा० (जस०) तथा सुमा० (अनी०) मे समान छद एक ही क्रम से मिलते है।

हरण छन्द अन्यत्र
कही नही मिलते ।

इस तुलनात्मक प्रतीक-सूची के अनुसार 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो में कसहेरिन, पसारिन, चुरहेरिन, धुनिन, कटेरिन, खटकिन, भठियारी तथा सिकलीगरनि—ये कुल आठ उदाहरण अन्य ग्रथो की अपेक्षा अधिक है एव इन प्रतियो मे बढइन, लुहारि, भरभूजिन जुलाहिन तथा चमारि के उदाहरण-छन्द अन्य ग्रथो मे इन्ही शीर्षक के अन्तर्गत आए उदाहरण छन्द से भिन्न है ।

इन प्रतियो मे तथा 'रस विलास' मे दूसरा अन्तर 'रस विलास' ३ १३ से आगे है, जहाँ 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो मे बारिन 'नेह भरी नख', डोमिन 'तान सुजान की' तथा चडारी 'साँवरी साँट की', ये तीन छन्द अन्य ग्रथो की अपेक्षा नए है । 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो मे तथा 'रस विलारा' मे केवल इन्ही सोलह छन्दो का अन्तर है, इन प्रतियो के २१० छन्दो मे से शेप छन्द 'रस विलास' से समान है ।

इन अधिक छन्दो के विपय मे केवल दो मभावनाएँ हो सकती है—एक ये छन्द कवि देवकृत है । तथा दो, इन्हे इन प्रतियो मे कवि ने रखा है ।

इन प्रतियो के अधिक छन्दो मे कटेरिन, सिकलीगरनि, भरभूजिन, लुहारिन तथा बढइन उदाहरणो मे देव कवि की छाप मिलती है । उदाहरण स्वरूप सिकलीगरनि मे यह इस प्रकार है । 'कवि देव कहे छिन देखत ही कहि का न कहो छतिया दरकी ।' भाषा तथा शैली के आधार पर छन्द का विश्लेपण कर उसकी प्रामाणिकता का निर्णय विद्वान दे सकते है, अत यह भार मै उन पर छोडता हूँ ।

यदि ये अधिक छन्द देवकृत है तो इन प्रतियो मे इनकी उपस्थिति से सम्बन्धित दूसरा प्रश्न महत्वपूर्ण है क्योकि इसी प्रश्न के साथ स्वतन्त्र ग्रथ के रूप मे 'जाति विलास' की प्रामाणिकता का प्रश्न भी सलग्न है । इस विपय मे निम्नलिखित सभावनाएँ विचारणीय है —

एक, कि कवि ने 'रस विलास' की रचना करते समय ग्रथ का आकार सक्षिप्त करने के हेतु इन अधिक छन्दो को 'रस विलास' मे नही रखा । डा० नगेन्द्र आदि विद्वान भी यही मानते है कि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पूर्व हुई थी । सक्षेप की यह सभावना फिर भी सदेहपूर्ण है क्योकि कवि सक्षेप केवल एक स्थल क्यो करेगा, एव वह सक्षेप करते हुए अन्यत्र भी मिलने वाले छन्दो को छोडकर केवल ऐसे ही छन्दो को क्यो बहिष्कृत करेगा जो अन्य-अन्य ग्रथो मे कही नही मिलते । ऐरा केवल सयोगवश नही हो सकता । फिर, 'रस विलास' के अनेक छन्द 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो मे नही मिलते । इस प्रकार भी ग्रथ के आकार मे सक्षेप करने की कवि-प्रवृत्ति सगत नही सिद्ध होती ।

दो, कि तथाकथित 'जाति विलास' ग्रथ की रचना 'रस विलास' के पश्चात् हुई एव 'जाति विलास' के अधिक छन्द कवि द्वारा इस दूसरे ग्रथ की आकार-वृद्धि के कारण मिलते है । परन्तु यह सभावना इसलिए अमान्य ठहरती है क्योकि 'जाति विलास' ग्रथ किसी आश्रयदाता को समर्पित नही है अत. इसकी रचना का कोई प्रयोजन नही है । कोई भी कवि, और फिर देव-जैसा कवि, एक ग्रथ से उन्ही-उन्ही छन्दो को लेकर छन्दो के उसी क्रम से दूसरा ग्रथ न तो निरू-

द्वेग्य तैयार करेगा और न केवल इन १५-१६ अधिक छन्दो को सम्मिलित करने के लिए एक नए 'ग्रथ' की रचना करेगा। स्मरण रहे कि 'प्रेम तरग' तथा 'कुशल विलास' मे कुछ छन्द न्यूनाधिक होते हुए भी अधिकतर छन्द समान है परन्तु दोनो ग्रथो मे छन्दो का सयोजन एव विलासो का विभाजन स्वतन्त्र रीति से हुआ है, साथ ही ये सभी विशेषताएँ सगत भी है इसलिए हमने उन दो ग्रथो को एक दूसरे से स्वतन्त्र तथा 'प्रेम तरग' को 'कुशल विलास' का आधार ग्रथ माना है। 'जाति विलास' के सभी छन्द 'रस विलास' मे उसी क्रम से मिलते हैं। इस कारण इन ग्रथो की स्थिति पहले उदाहरण से भिन्न है।

इन सम्भावनाओ के असगत्य होने पर हम इन अधिक छन्दो को 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो के प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त मानते है। इन प्रक्षिप्त छन्दो को छोड देने शेष छन्द इसी क्रम से 'रस विलास' मे भी मिलते है अत 'जाति विलास' शीर्षक ये प्रतियाँ किसी स्वतन्त्र ग्रथ की प्रतियाँ न होकर 'रस विलास' की किसी खडित प्रति की प्रतिलिपि अथवा 'रस विलास' की अपूर्ण प्रतिलिपि सिद्ध होती है। इसका एक प्रमाण नी० प्रति के अनुसार इसके विभिन्न विलासो की पुष्पिका मे रचनाकार का नामोल्लेख न होना भी है।

इस खडित शाखा मे ये अधिक छन्द क्यो प्रक्षिप्त हुए, इसका कारण भी स्पष्ट है। 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियो मे भी, जो श्लेष लक्षण दोहे से आगे खडित है, इसी प्रकार लगभग ६० छन्द प्रक्षिप्त है। हमने माना है कि आदर्श प्रति खडित तथा उसका पाठ नष्ट-भ्रष्ट अवस्था मे होने के कारण प्रतिलिपिकार ने 'भाव विलास' की इन प्रतियो मे प्रक्षेप किया है। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो मे प्रक्षेप होने का एकमात्र कारण यह न भी हो कि इसकी आदर्श प्रति का पाठ अत्यन्त नष्ट-भ्रष्ट अवस्था मे था, तो भी इसकी आदर्श प्रति के खडित होने के कारण भी प्रक्षेप की सभावना हो सकती है। मैं केवल एक सभावना के रूप मे इस ओर सकेत कर रहा हूँ।

यदि ये प्रक्षिप्त छन्द देवकृत है तो इन अधिक छन्दो का प्रक्षेप कहाँ से हुआ? ऊपर दी गई तुलनात्मक तालिका से यह प्रगट है कि प्रक्षिप्त छन्दो के बढइन, लुहारिन जैसे कुछ ऐसे शीर्षक है जो 'रस विलास' मे न मिल कर 'सुख सागर तरग' के दोनो सस्करणो मे मिलते है। इनमे भी सुसा० (जस०) सस्करण मे सुसा० (अली०) की अपेक्षा इस प्रसग के कुछ अधिक छन्द है। इसलिए 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो के अधिक छन्द 'सुख सागर तरग' के दोनो सस्करणो से भी प्रक्षिप्त है और इनमे से ऐसे छन्द जो 'सुख सागर तरग' की अपेक्षा भी अधिक है, जाति-वर्णन विषयक देवकृत किसी अन्य ग्रथ अथवा सग्रह से आए मालूम देते है। इस अन्य स्रोत की उपस्थिति हमने इसलिए मानी है क्योकि सुसा० (जस०) सस्करण मे भी कुछ ऐसे छन्द है जो सुसा० (अली०) मे नही मिलते।

हस्तलिखित ग्रथो की खोज रिपोर्ट मे देवकृत 'जाति वर्णन प्रकाश' शीर्षक ग्रथ की सूचना है। (१९२३-२५, पृष्ठ ४५४-५६) परन्तु इसे 'जाति विलास' के समान देवकृत जाति-विषयक नवोपलब्ध स्वतन्त्र ग्रथ समझ कर चौंक न पडना चाहिये। यह 'सुख सागर तरग' की गधौली वाली प्रति से २४६ छन्द—सख्या से ३०६ सख्या तक के जाति-विषयक अश की प्रतिलिपि है। इस प्रति से प्रतिलिपि होने का केवल एक प्रमाण दिया जाता है। इस तथाकथित 'जाति वर्णन

प्रकाश' ग्रथ मे तथा गधौली की व उपर्युक्त प्रति मे 'सैन्य वासिनी' के स्थान पर सैन्यो वासिनी शीर्पक मिलता है !

इन प्रतियो मे ग्रथ का 'जाति विलास' नाम आदर्श प्रति के खडित होने के कारण तो आया ही है परन्तु इस भ्राति के उत्पन्न होने का कारण निम्नलिखित दोहा भी है —

"देवल रावल राजपुर नागरि तीति निवास।
तिनके लच्छन भेद सब बरनत जाति विलास ।।"

—रस विलास १ १४

प्रतिलिपिकार को भ्रान्ति हुई कि कवि नागरी स्त्रियो का लक्षण तथा भेद इस 'जाति विलास' नामक ग्रथ मे कर रहा है। फिर अपने खण्डित आदर्श के अतिम अश, पचम विलास मे जाति-भेद वर्णित देखकर उसकी धारणा पुष्ट हुई इसलिए उसने ग्रथ का शीर्षक 'जाति-विलास' दे दिया। मेरे विचार से उपर्युक्त दोहे का अर्थ इस प्रकार करना उचित नही है। इस दोहे मे कवि ने नागरी-स्त्रियो के प्रसग का केवल विपय-विस्तार अथवा उसके विभाजन की रूप-रेखा स्पष्ट की है। कवि सर्वदा विषय-विवेचन के पूर्व उसका विभाजन करते हुए उसकी रूप-रेखा देता आया है। इस प्रकार दोहे का अर्थ बिलकुल स्पष्ट है, "देवल नागरी, रावल नागरी तथा राजपुर नागरी,नागरियो के केवल ये तीन भेद है। मै उनके लक्षण तथा भेद एव जाति-भेद के आधार पर उनका वर्णन यहाँ कर रहा हूँ।"

यहाँ 'जाति-विलास' को 'जाति विलास' ग्रथ का नाम समझने की भ्राति डा० नगेन्द्र को भी हुई है। इसीसे उन्होने अनुमान लगाया है कि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पहले हुई थी। परन्तु डा० नगेन्द्र के ध्यान मे 'रस विलास' का निम्नलिखित दोहा नही आया जो 'जाति विलास' की प्रतियो मे भी मिलता है और जिसमे 'रस विलास' का स्पष्ट नामोल्लेख है —

"रस विलास रचि ग्रथ सो कहत दूसरी बार।
वही नायिका भेद सब सुनहु नवीन प्रकार।।"

—रस विलास ४ : ४०

यदि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पहले हुई तो 'जाति विलास' मे 'रस विलास' का यह स्पष्ट नामोल्लेख कैसे ?

इसी भ्राति के कारण डा० नगेन्द्र ने 'रस विलास' को 'जाति विलास' का सशोधित और परिवर्धित सस्करण मान लिया है ! 'जाति विलास' की सभी उपलब्ध प्रतियाँ ५ ४७ पर खण्डित है अत यह कैसे जाना जा सकता है कि इस स्थल से आगे इस 'ग्रथ' मे पाठ कहाँ तक था और 'देव' ने किस स्थल से आगे पाठ-परिवर्धन कर 'रस विलास' का परिवर्धित 'सस्करण' तैयार किया। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियाँ केरल वधू ५ ४७ पर खण्डित है तथा 'रस विलास' की प्रतियो मे इससे आगे भी पाठ मिलता है। केवल इसीलिए इस बडे आकार वाले ग्रन्थ को छोटे आकार वाले ग्रथ का सीधे-सीधे परिवर्धित सस्करण मान लेना उचित नही है।

इन समस्त तथ्यो पर विचार कर हमने 'जाति विलास' को देवकृत पृथक ग्रन्थ न मानते हुए इस शीर्षक की प्रतियो का उपयोग 'रस विलास' की खण्डित प्रतियो के रूप मे किया है एव

इसके प्रक्षिप्त छन्द परिशिष्ट मे दे दिया है।

कवि देव द्वारा 'रस विलास' की आकार-वृद्धि

'रस विलास' की उपलब्ध प्रतियो की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि स्वय कवि देव ने "सुख सागर तरग" की तरह इस ग्रथ के भी दो सस्करण किये थे। ग्रथ के पाठ-सपादन मे प्रयुक्त प्रतियो मे से भा० मो० नी० गजा० प्रतियाँ ग्रथ के प्रथम सस्करण की एव ब्र० मा० ग० प्रतियाँ ग्रन्थ के परिवर्धित रूप, उसके द्वितीय सस्करण की वशज प्रतियां है।

प्रथम सस्करण के निम्नलिखित छन्द मे प्रगट होता है कि यह सस्करण किसी आश्रयदाता के नाम समर्पित नही था —

"बीच मरीचनु के मृग लौं अब धावे न रे सुन काहू नन्दि के।
ओस की आस बुझ नहि प्यास बिसास इमे विनि काल फनिद के।
भूले न देव निहारी असारनि प्यास निसारत तार के विद के।
इदु लौ आनन तू जु चिते अरविद के पायन पूजि गुविद के॥

—'रस विलास'—परिशिष्ट १।

इस सस्करण की प्रतियो मे प्रत्येक विलास के प्रारभ मे आए "रानी राधा सुमिरि···" दोहो से भी कवि की सासारिक अवलब के प्रति उदासीनता एव अपने आराध्य देव के प्रति अनन्याश्रय की भावना पुष्ट होती है।

कदाचित् इस ग्रथ की रचना पूर्ण हो चुकने पर सुल्तानपुर के राजा श्री भोगीलाल ने देव की भेट हुई। इस समय उनके पास एक 'रस विलास' ही ऐसा ग्रथ था जिसे वह भोगीलाल को समर्पित कर सकते थे। परन्तु देव सर्वदा अपने पूर्वरचित ग्रथ की पर्याप्त आकार-वृद्धि कर तब उसे आश्रयदाता को समर्पित करते आये है। 'प्रेम तरग' एव 'कुशल विलास', 'सुखसागर तरग' के दो सस्करणो एव 'सुजान विनोद' की ऐसी ही आकार-वृद्धि से यह मान्यता पुष्ट होती है। तदनुसार देव ने ग्रथ के प्रथम विलास मे भोगीलाल सम्बन्धी "भूलि गए भोज वीर विक्रम विसरि गए—" जैसे छद सम्मिलित कर, प्रत्येक विलास के प्रारम्भ मे आए "रानी राधा हरि सुमिरि—" दोहो के स्थान पर (जिनसे आश्रयदाता के प्रति कवि की यदि अवज्ञा नही तो उदासीनता प्रकट होने का भ्रम हो सकता था।) उसके पहले वाले विकास के अन्त मे भोगीलाल के नामोल्लेख सहित एक छन्द सम्मिलित कर एव ग्रथ के अन्त मे नायिकाओ के प्राचीन शास्त्रीय विभाजन का ९४ छन्दो का एक सम्पूर्ण अष्टम विलास जोडकर यह ग्रन्थ भोगीलाल को समर्पित किया।

इस द्वितीय सस्करण की प्रामाणिकता मे सदेह के लिए अधिक स्थान नही है। 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियो मे प्रक्षिप्त छन्दो की परीक्षा करते हुए हमने देखा है कि प्रतिलिपिकार के अधिक से अधिक सतर्क होते हुए भी प्रक्षिप्त पाठ मे कोई न कोई ऐसी असगति अथवा न्यूनता रह जाती है जिससे पाठ-प्रक्षेप ग्रथ के मूल-आकार से स्वयमेव अलग हो जाता है। 'रस विलास' के द्वितीय सस्करण मे निरूपित विषय तथा उसका कविकृत विवेचन न प्रसग की दृष्टि से असगत है न उसमे कही अनौचित्य दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, ग्रथ मे विस्तार से

वर्णित नायिका-भेद की आवृत्ति ग्रथ के अष्टम विलास के रूप मे किये गए पाठ-परिवर्धन मे कही नही हुई है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत है, अष्टम विलास मे मुग्धा आदि का वर्णन-विस्तार ग्रथ के नायिका-भेद निरूपण को और भी पूर्णता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त ग्रथ के पाठ मे अनेक ऐसे स्थल मिलते है जो कवि द्वारा इस अश की पाठ-वृद्धि किये जाने के प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते है। ऐसे केवल दो उदाहरण दिये जाते है —

"कहे नायिका भेद सब आठ अग के भाइ।
अब भेदातर कहत हो मत प्राचीन सुभाइ॥" —रस विलास ८ १
"उक्तिगर्विता आठ विधि आठौ अग सगर्व।
कहे नायिका भेद मैं जोवनादि अग सर्व॥"—रस विलास ८ ५६

उपर्युक्त दोहो मे 'नायिका भेद' तथा 'जोवनादि—आठौ अग' का उल्लेख ग्रथ के चतुर्थ विलास मे ४ ७ से आगे के नायिका के अष्टाग वर्णन की ओर सकेत करता है। ग्रथ के एक-दूसरे अग मे तारतम्य अथवा परस्पर-सम्बन्ध की ऐसी विशेषता स्वय कवि द्वारा किये जाने पर सभव है, प्रक्षेपकार द्वारा नही। स्वय कवि द्वारा इस अश की पाठ-वृद्धि करने का दूसरा महत्व-पूर्ण प्रमाण इस अश मे कवि के ऐसे अनेक लक्षण-उदाहरण छन्दो का सगत प्रसग मे प्राप्त होना है जो छन्द देवकृत किसी अन्य ग्रथ मे नही मिलते।

अष्टम विलास के अतिरिक्त ग्रथ मे यत्र-तत्र हुए पाठ-परिवर्धन के भी कवि कृत होने मे मुझे सदेह नही है। ऐसे छन्दो मे अधिकतर छन्द भोगीलाल से सम्बन्धित है। इनमे से अनेक छन्दो मे कवि की छाप भी मिलती है। ग्रथ का यह सस्करण भोगीलाल को समर्पित है। अत भोगीलाल के नामोल्लेख एव कवि की छाप-सहित इन छन्दो का रचयिता हमारे विचार से स्वय कवि है, कोई प्रक्षेपकार नही।

इन छन्दो की प्रामाणिकता के विपक्ष मे केवल एक तर्क हो सकता है कि ये अधिक छन्द जिन प्रतियो मे मिलते है उनमे समान पाठ-विकृतियाँ भी मिलती है। अत यह सभव है कि ये सभी छन्द किसी एक पूर्वक प्रति मे प्रक्षिप्त होकर अन्य दो प्रतियो मे आए हो। परन्तु यह तर्क अधिक पुष्ट नही है क्योकि प्रथम तो 'रस विलास' की न केवल इन प्रतियो मे वरन् सभी उप-लब्ध प्रतियो मे परस्पर तथा अन्य ग्रथो से इतना अधिक पाठ-मिश्रण हुआ है कि इन प्रतियो मे प्राप्त विकृति-साम्य का तर्क निर्णायक नही माना जा सकता। दूसरे, जैसा कि ऊपर के विश्लेषण से प्रगट है, हमने प्रबल अतर्साक्ष्य के आधार पर इस पाठ-वृद्धि को कविकृत पाया है अत प्रक्षेप की यह सभावना मान्य नही।

हमने प्रथम सस्करण की भा० मो० प्रतियो मे प्राप्त 'रानी राधा—' दोहा एव सप्तम विलास मे आए ग्रथ-समापन के दो-तीन छन्दो का पाठ 'रस विलास' के अन्त मे परिशिष्ट १ मे दे दिया है। विस्तार भय से कविकृत आकार-वृद्धि के समस्त छन्दो के कथ्य पर पृथक रूप से विचार करना असभव है अत हम नीचे की सूची मे ऐसे छन्दो का केवल स्थल-निर्देश कर रहे है —

१ २—८, १ १७—१८, १ ६५, २ २०, ३ · ३७, ४ ४१, ७ ६०, ८ . १—६४।

रस विलास

पायनि नूपुर मजु वजे कटि किकिनि की धुनि की मधुराई।
साँवरे अग लसे पट पीत हिये हुलसै वनमाल सुहाई॥
माथे किरीट वडे दृग चचल मद हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जै जग मदिर दीपक सुन्दर श्री व्रजदूलह देव महाई[1] ॥१॥

१ कन्हाई-आ० सुहाई-भा०

गिरा गौरि गनपति सुमिरि गुरु गिरीस के पाँइ।
रस विलास कवि देव यह रच्यौ सरस रस राइ ॥२॥

भूलि गये भोज वीर विक्रम विसरि गए जाके आगे और तन दौरत न[1] दीदे है।
राजा राइ राने उमराउ उनमाने निज गुन के गरव गिरवी देहैं॥
सुजस बजार जाके सौदागर सुकवि चलेई आवै दसहूँ दिसान के उमीदे[2] है।
भोगीलाल भूप लाख पाखर लिवैया[3] जिहि लाखन खरचि रचि आखर खरीदे है ॥३॥

१ और तन—ग०। २ उनमीदे—ग०, उनीदे—व्र०। ३ लिखैया—गं० सा०।

पावस घन[1] चातक तजै चाहि स्वाति जल विंदु।
कुमुद मुदित नहि मुदित मन जौ लौ उदित न इंदु॥४॥

१ वन—व्र० सा०।

देव सुकवि ताते तजे राइ रान सुलतान।
रस विलास करि रीझिहै भोगीलाल सुजान॥५॥

पूरन पुन्यनि को महिमा भुव भिक्षुक भौरन को मकरंद है।
साधक मोद को मोदक भोगिभुवाल भयो अरि कज निकद है॥
दिल्ली है सुद्ध सुधा को सरोवर तौमै लसै वसुधा को अनद है।
कीरति कातिक पून्यो की रीति मे दून्यो विराजत पूनो को चद है॥६॥

साँझ कैसो चद भोर को सो अरविंद स्वाति विंदु कैसो वादर विसाति वसुधा ही की।
मधु कैसो तरवर शरद को सरवर हे गरीवपरवर प्रीति गुनगाही की॥
जोगीदास नद जुग जियो जगवद चद वदन[1] सी कीरति चलाई चित चाही की।
दीन को दयाल देव मूरति विसाल भोगीलाल भूमिपाल है समाल पातसाही की॥७॥

१ चाँदनी—सा०।

पृथ्वी मैं पृथित पृथु पुण्यन अमृत भीज्यो पृथु सो पुरुरवा सो त्रिपुर प्रतीप सो।
मनु सो मनीषी मनधाता सम दाता रघु नहुप ग्रजाति शूर सगर[1] महीप सो।।
जदु सो जुधिष्ठिर सो भीषम भगीरथ सो तीरथ नदीपति सो दीपति[2] मैं दीप सो।
राजतु है आज भोगीलाल देव राज मँहि[3] नवल दुलहिया को दूलह दिलीप सो।।८।।

१ सूर सागर—०। २ दीपनि—गं०।

३ देव देवराज—गं०। १२ से १८ संख्या के छंद केवल ब्र० सा० गं० प्रतियो मे है, नी० गजा० भा० तथा मो० प्रतियो मे नही।

युक्ति सराही मुक्ति हित मुक्ति भुक्ति[1] को धाम।
युक्ति मुक्ति अरु[2] भुक्ति को मूल सु कहिए काम।।९।।

१ भुक्ति मुक्ति—नी० गं० गजा०। २ उर—मो०।

रमनी राका ससिमुखी पूरै काम समुद्र।
विना बाम पूरन भये लगै परमपद छुद्र।।१०।।

ताते त्रिभुवन सुर असुर नर पशु कीट पतग।
राक्षस जक्ष पिशाच अहि सुखी सबै तिय सग।।११।।

कोटि कोटि बिधि कामिनी[1] तिनके कोटिन भेव।
तिनमे माया मानुषी बरनत है कवि देव।।१२।।

[1] कामना—भा० मो०।

कामिनी भेद।

सो नारी कहु नागरी पुरवासिनि ग्रामीन।
वन्या सैन्या[2] पथिक तिय पट विधि कहत प्रबीन।।१३।।

[2] वन सयना अरु०—भा० मो०।

नागरी।

देवल रावल राजपुर नागरि तीनि[1] निवास।
तिनके लच्छन भेद सब वरनत जाति विलास।।१४।।

[1] नागरि तरुनि—भा० मो०।

देवल देवी नागरी दूजी पूजनहारि।
द्वारपालिका तीसरी बरनहु त्रिविधि बिचारि।।१५।।

देवी।

पूरन सरद ससिमण्डल बिसद जोति मडल वितान मे अखड गुन गाहिनी।
अमल अमोल मनि रतननि रच्यौ महा सुन्दर सुमन्दिर अमन्द सुख[2] चाहिनी।
आठहू पहर कर आठौ आठौ सिद्धि लिये सकट मे सेवक[2] सहाइ सदा दाहिनी।
रूप रस एवी महादेवी देव देवनि की सिहासन वैठी सोहै सो है सिहबाहिनी।।१६।।

[१] मुख—भा०, मो० प्रति मे दूसरे हस्तलेख से "मुख" से "सुख" पाठ सशोधन हुआ है। [२] सकट मे सव की—सा० आ०, सेवक मे सेवक—भा० मो०।

शूरन को रन को विजया मन कूरन को अजया भयभीता[१]।
योगिन को गति ज्ञानिन को मति विप्रन वेद विवेक विनीता।
स्वर्ग सची तल भोगवती भुव भीपम भूप सुता गुणगीता।
भारथ जुद्ध की भारथी सुद्ध रनी वर तीन सतीन मे सीता ॥१७॥

[१] भयतीता—सा०।

आदि ब्रह्म विद्या वेद कहत प्रकृति जासो जोगमाया जानियोई योगिनि समार्धा है[१]।
भारती भवानी भुवनेश्वरी मतगी मात काली[२] अन्नपूर्णा कपाली अग आधी है।
एक ते अनेक जानी जल थल मे समानी[३] अगनित वानी सिद्ध साधकनि साधी है।
साधारन देवी जो असाधारन रूप सोई[४] वाधा हरिवे को देव राधा अवराधी है ॥१८॥

[१] प्रकृति कहत जाहि सोइ ध्यान जोगिन ममाधी है—सा०। [२] का सी—सा०। [३] वखानी—ब्र०। [४] साधा—ग०, धार्‌यो—ब्र०।

पूजकिन।

केसरि कपूर मृगमद चोवा चन्दन चरिच[१] रचि पहुप चढ़ावति महानी के।
धूप दीप भोजन समीपही निवेदन के वेदन जताइ जपै नाम वर वानी[२] के।
जानत न जीकी तन जी की कोई देव कहै वाहि रट पीकी[३] भट वाहिर कहानी के।
कही जदुराइ[४] जदुदाइ वर पाडवे को रुकिमिनि रानी पग पूजत भवानी के ॥१९॥

[१] रुरुचि—भा०। [२] वरदानी—भा० मो०। [३] जानत न जाकी तन जाकी नही देव कोई वाहि रटवी की—नी० ग० गजा०। [४] ०—सा०।

द्वारपालिका।

जगमगै जोतिन के मोतिन के हार हिये करत विहार[१] मृदु मालती की मालिका।
केसर की खौर देव पौरि पर मोहनी[२] सी देव मुनि मोहे विधुवदन विसालिका[३]।
नवला चतुर नवला सी लिये हाथ[४] अवलानि जान देति जब देति[५] कर तालिका।
एवी[६] अद्‌भुत वह कैसी ह्वै है[७] देवी जाके मन्दिर[८] के द्वार देखी ऐसी[९] द्वारपालिका ॥२०॥

[१] उलहत भार—भा०, लसति भार—मो०। [२] मोहन—मो०। [३] विलासिका—मो०। [४] सग—ग० गजा०। [५] देवी—ब्र०। [६] एक—ग० गजा०। [७] गृह—ग० गजा०। [८] महल—ग०। [९] सोहे ऐसी—भा०, ऐसी सोहे—मो०, ऐसी देखी—नी० ग० गजा०।

रावल-नागरी भेद।

रावल नागरि पाँच विधि पहले राजकुमारि।
तासु धाय दूती[१] सखी दासी कहौं सम्हारि ॥२१॥

[१] दूजी—भा०।

राजकुमारी।

ठकुराइन[1] सब नगर की सुख सम्पति की मूल।
गुन गरबीली मानिनी पति जाको अनुकूल ॥२२॥

[1] राजकुँअरि—ब्र०।

उदाहरण।

पावरिन पावड़े परे है पुर पौरि लगि धाम धाम धूपन के धूम घुनियत है।
कस्तूरी अतर सार[1] चोवा रस घनसार दीपक हजारन अँध्यार[2] लुनियत है।
मधुर मृदग राग रग की तरगनि मे अग अग गोपिन के गुन गुनियत है।
देव सुख साज महाराज वृजराज आज राधा जू[3] के सदन सिधारे सुनियत है ॥२३॥

[1] अगर अतर सार—ग०, अगर सार—भा०। [2] हजार ते अँधार—भा० मो०
[3] राधा जी—नी०, राधा—गजा०, राधिका—ग०।

उज्वल[1] अखड खड सातये महल महा मडल चौवारी चद्र मडल के चोटही।
भीतर हू लालन के जालन बिसाल जोति बाहिर जुन्हाई जगी जोति नके जोटही[3]।
बरनत बानी चौर ढारत भवानी कर जोरे रमारानी ठाढी रमन के[4] ओटही।
देव दिगपालनि की देवी सुखदाइनि ते राधा ठकुराइनि के पाइनि पलोटही ॥ २४ ॥

१ मजुल—भा० भो। [2] चड—भा० मो०। [3] चोट ही—मो०।
४ रमनी की—सा० ग० गजा०।

धाय-लक्षण।

राजनगर जे बसत जन ते राजन के मीत।
तिनकी तिय नृतसुतनि की होती धाइ पुनीत ॥ २६ ॥
बारे पाले[1] प्याइ पै[2] स्यानी करे सिवाय।
जेहि जाने जननी कुवरि ताहि बखानो धाय ॥ २६ ॥

१ वारे पीछे—भा० मो०। [2] प्याइ के—सा०।

उदाहरण।

राइ नोन वारति[1] गुराई देखि अगनि की[2] दुरे न दुराई[3] त्यो भुराई सो भिरति है[4]।
ज्यो ज्यो सुघराई[5] सोन उघरन देति[6] त्यो त्यो खुदरि सुघर घर वेरी न घिरति है।
निठुर डिठौना दीन्हे नीठि निकसन कहै दीठि लागिवे के डर पीठि दे गिरति है।
जिन जिन ओर चितचोर चितवत त्योही तिन तिन ओर तृन तोरति फिरति है ॥ २७ ॥

१ करति—नी० ग० गजा। [2] अगनि मे—भा० मो०। [3] दुरैत दुराई—नी०, दुरत दुराई—ग० गजा०। [4] पै भुराई सी भरति है—भा० मो०। [5] तरुनाई—सा०। [6] उघरत देह—भा०।

धाय-भद

धाइ सखी दासी[१] नटी ग्वालि सिलिपनी नारि।
मालिनि नाइनि बालिका विधवा[3] वधू विचारि॥ २८॥

[१] दूती—ग०। [२] पटवा—भा० मो०।

सन्यासिनि भिक्षुकवधू सम्बन्धी की वाम।
एती होती दूतिका दूतपन्य अभिराम॥ २९॥

छल सो पैठे राजगृह मोहे राजसुतानि।
हिलवे मिलवे दम्पतिनि कहे संदेसो आनि॥ ३०॥

रुचि[१] उपजावे परसपर नित नित[२] नेह वढाइ।
रहे दुहुनि[3] चित मै चढी दूती चतुर सुभाइ॥ ३१॥

[१] रस—भा० मो। [२] नित नव—ग० गजा०। [3] दुवी—नी० ग० गजा०।

उदाहरण

लेहु लली उठि लाई हो वाराहि[१] लोक की लाजहि सो लरि राखौ।
फेरि इन्हे सपनेहु न पैयतु ले अपने उर मे धरि राखौ।
देव लला अवला नवला यह चन्दकला कठुला करि राखौ।
आठहु सिद्धि नवो निधि[२] ले घर वाहर भीतरहुँ भरि राखो[८]॥ ३२॥

[१] लेहु लला उठि लाइ हो वाल हि—भा०, लेहु लला उठि लाई हो वात को—मो०।
[२] नेत्र निधि मो०। [३] धरि राख—आ०।

कुजनि केकोरे मनु[१] केलि रस खोरे लाल तालनि के खोरे वाल आवति है नित को।
अमृत निचनेरे कल वोलत निहोरे नेक सखिनि के डोरे[२] देव डोरे जित तित को।
थोरे थोरे जोवन[3] विथोरे देति[४] रूपरासि गोरे मुख भोरे हँसि जोरे लेत[५] हित को।
तोरे लेति रति दुति भोरे लेति मति गति छोरे लेति लोकलाज चोरे लेति चित को॥ ३६॥

१ कुजन के कोरे मैन—भा० मो०। [२] जोरे—ग०।
३ जवन—भा० मो०। [४] देखि—नी० [५] गोरे गोरे मुख भोरे भोरे लेत—भा० मो०।

वन्धु विप्र कुल गुरू सुता औ गुनवन्ती कोइ।
सोइ राजसुतानि की सखी सहचरी[१] होइ॥ ३४॥

१ सहेली—भा०।

दुहुन सुहावन दुहुन गुन उपजावन रस भाव।
विरहास्वास दिखावना दोउन[१] विरह जताव॥ ३५॥

[१] दिखाय पुनि दोऊ—भा०, हित उपजावन भूपनन दोउन—सा०, विरहास्वान दिखरावनन दोउन—आ०।

इत को उतहि उराहनो इत उत को[१] सदेस ।
दुहू मिलावन परसपर रचिवो भूपनवेस ॥ ३६ ॥

[१] उत को इत—व्र०, उत को इतहि—सा० ।

देस काल गुन रूप[१] विधि करिवो सदा प्रसन्न ।
ए दस कर्म सखीनि के करैं रहे[२] आसन्न ॥ ३७ ॥

[१] अनुरूप—भा० मो०, अरु रूप—ग० । [२] रहौ—ग० ।

समै सर्मै के काज पै सखी अनेक प्रकार ।
धाइ कहूँ दूती कहूँ दासी कबहुँ की वार[१] ॥ ३८ ॥

[१] कहूँ विचार—भा०, कहै विचार—मौ० ।

दस कर्म-उदाहरण ।

आई हौं देखि वधू इक देव सु देखत भूली सबै सुधि मेरी ।
राख्यो न रूप कछू विधि के घर ल्याई है लूटि लुनाई की ढेरी ।
एरी अबै वह ऐवै है बैस मरेगी महा विष घूँटि घनेरी ।
जे जे गनी गुनआगरि नागरि ह्वैहै तै वाके[१] चितौतही[२] चेरी ॥ ३९ ॥

[१] होहिगी वाकी—भा० मौ० । [२] चितौनि की—व्र० ।

देव न देखति हौ दुति दूसरी देखे है जा दिन ते[१] यदुभूप[२] मे ।
पूरि रही री वही पुर कानन[३] कानन आनन[४] ओप अनूप मे ।
ये अँखियाँ सखियानि तिहारियै जाइ मिली जलबुंद[५] ज्यो कूप मे ।
कोटि उपाइन पाइये फेरि[६] समाय गईं व्रजराज[७] के रूप मे ॥ ४० ॥

[१] जा दिन ते निरखे—नी० । [२] व्रजभूप—आ० । [३] छाइ रही री वहै छवि कानन—भा० मो०, पुर तानन—सा० । [४] आनन आनन—ग० गजा० । [५] रस विंदु-भा० मो० । [६] कोरि करै अब क्यो निकसेगी—भा० मो०, कोरि करौ नहिं पाइये फेरि-सा० । [७] रँगराइ के—ग० गजा०, सुभ साँवरे—भा० मो० जदुराइ—के—आ० ।

रस उपजाइबौ–उदाहरण ।

त्रिवली तिरंगिनि निकट नाभि ह्रद[१] तट रोमराजी वन धँसि मुकत अन्हात है ।
नेह नगरीमैं गुन गेह[२] उर ऊँची पौरि देव कुच कचन के कलस लखात है ।
लोचन दलाल ललचावत बटोहिन कौ लाल चलि देखौ लाल मोलनि लहात है ।
जोवन बजार बैठ्यो जौहरी मदन सब[३] लोगनि को हीरा[४] वाके हाथ ह्वै विकात है ॥ ४१ ॥

[१] नट—नी० ग० गंजा०, नद—सा० आ० । [२] मग गेह—ग० गजा०, गुरु गेह—सा० । [३] रस—गं० गजा० । [४] हिय—नी० ।

ग्वालि गई इक ह्याँ की उहाँ मधि[१] रोकि सुती मिसु के दधिदान कौ ।
वा तो भटू वह भेटी भुजा भरि नातो निकासि कछू पहिचान कौ ।

आई निछावर के मनमानिक गोरस दे रस ले अधरान[२] कौ।
वाही दिना ते हिय मे गडो वह ढीठ वडो वडरी[३] अँखियान कौ॥ ४२॥

[१] मग—भा०। [२] रस से अधरान—ग० गजा०। [३] री वडी—भा० मौ०।

विरहास्वासन।

काहू की बक चितैबे की सक न लागे कलक बिसे किन[१] बीसो।
वा ठकुराइनि की अब देव विरचि रची रुचि रावरे जी सौं।
दैहौ मिलाई तुमैं हो तुम्हारियै आन करौ वृषभानलली सौं।
बाम्हन की सौं बबा की सौ मोहन मोहि गऊ की सौं गोरस की सौं॥ ४३॥

[१] बिसौ किन—ग० गजा०।

नन्दकुमार उतै अति[१] ठाकुर राधे इतै अतिही ठकुराइनि।
देव सयोग तिहारो दुहुँ को बन्यो कुल सम्पति सील सुभाइनि।
पॉय न लागियै मेरी भटू नित लागत[२] हॉही लगी इन पाइनि।
आज तुम्हे ब्रजराज मिलाऊँगी राज करौ गृहकाज[३] गुसाइनि[४]॥ ४४॥

[१] इतै उतै—भा०मौ०। [२] चाहत—भा०। [३] लुगाइन पाइन—ग० गजा०। [४] ब्रज-राज—ब्र०, रहि आजु—सा०। [५] सुसायनि—नी० ग० गजा०।

परस्पर दिखावन।

सील की सागरि रूप उजागरि है गुन आगरि नागरि नारी[१]।
वा वरसाने के बासिन की निसि बासर सोम समान समारी।
थोड़ियै वेस वडी सुखदाइनि ए ठकुराइन[२] है जु हमारी।
श्री वृषभानु के भौन को दीपक एई है[३] राधिका राजकुमारी॥ ४५॥

[१] भारी—भा० मौ०। [२] नागरी वेस वडी ठकुराइन मो सुखदाइन—भा०। [३] दाइ कराइ है—भा० मौ०, दंपति एई है—सा०।

कानन कुडल माल गरे सँग मडित[१] गोपन के कुँवरेटा।
देव गयन्द से आवत मन्द से देखुरी चन्द से नद के बेटा[२]।
काम की दूती पढावत तूती चढी[३] पग जूती बनात लपेटा।
पीरो झगा[४] पटुका बिन छोर छरी[५] कर लाल जरी सिर फेटा॥ ४६॥

[१] राजत—ग०। [२] ठोटा—सा०। [३] लसै—नी० ग० गजा०। [४] झीन झगा—सा०। [५] कसे—ग० गजा०। केवल सा० प्रनि मे चरणो का क्रम १-२-३-४ है।

जब तें कुवरकान्ह रावरी कला निधान कान परी वाके कहूँ[१] सुजस कहानी सी।
तवही ते देव देखी[२] देवता सी हँसति सी खीझति सी रीझति सी[३] रूसति रिसानी सी।
छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी सी छीन[४] जकी सी टकी सी लगी थकी[५] थहरानी सी।
बीधी सी बधी सी बिध बूडी सी[६] बिमोहित सो बैठी वह[७] बकति बिलोकति बिकानी सी॥ ४७॥

[१] वाके कहूँ कान परी—सा०, वाके कान परी कहूँ—मो०, दरीक वाके कान कहूँ—वु० । [२] देखौ—सा०, आ० । [३] रीझति खीझति सी—भा० मो० । [४] छान—आ० । [५] ०—मो०, हाशिये पर उसी हस्तलेख से—व्र० । [६] वूढति—भा० मो० । [७] वाल—भा० ।

दपति को विरह-जनावन ।

ऐपन की ओप इन्दु कुन्दन की आभा चम्पा केतकी को गाभा जीति[१] जोतिन सो जटियत ।
जगरमगर होत सहज[२] जवहर से अतिही[३] उजारे जब नैसक उबटियत[४] ।
वैसेई सुघर[५] सुकुमार अग सुन्दरि के लालन[६] तिहारे पास नेह खरे लटियत ।
देव तेव गोरी के विलात गात बात लगे ज्यो ज्यो सीरे पानी पीरे पान से पलटियत ।। ४८ ।।

[१] पीत—नी० ग० गजा० । [२] सहन—नी० । [३] नग से—नी० ग० गजा० । [४] उलटियत—भा० । [५] सठार—भा०, सहज—ग० । [६] मोहन—नी० ग० गजा० ।

बरुनि बघवर मे गूदरी पलक दोऊ कोए राते वसन भगोहै मेष रखियाँ ।
वूडी जलही मे दिन जामिनिहूं जागे भौहे घूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ ।
आँसू ज्यो[१] फटिक माल लाल डोरे सेली पैन्हि[२] भई है अकेली तजि चेली[३] सग सखियाँ ।
दीजिये दरस देव[४] कीजिये सँयोगिनि ये[५] जोगिन ह्वै बैठी है बियोगिनि की अँखियाँ ।।४९।।

[१] अँसुवा—भा० । [२] लाल दोरे सेल्ही साजि—सा०, सेली पैंधि—नी० आ०, सेली सम—मो० । [३] चली—नी० । [४] नेकु—सा० । [५] जस गनिये—मो०, सजोगिनि जू—सा०, सँजोगिन के०—व्र० नी० ।

दपति को उराहनो ।

तौ गुन देव देव सुने जब ते तव ते सुधिऊ न उन्हे उर की है ।
पीर नही पहिचानत लोग बखानत वेद विथा[१] जुर की है ।
लोभ चढी अति मोहन की मति मोह महागिरि ते ढुरकी है ।
थोरिये बैस बिथोरी भटू व्रज भोरी सी बातनि तै भुरकी है ।।५०।।

[१] कथा—व्र० ।

ह्याँ सुधियो विसरी उत ह्वाँ सु घरी पल[१] जात है प्रान चले जू ।
जो कहिये तो कह्यो[२] नहि जात[३] कहे ही बिना घर केते घले जू[४] ।
देव दुहूँ बिधि बूड़ उतैही की रावरे बातन ही[५] बदले जू ।
और उराहनो देत बनै न[६] कहा कहौ कान्ह भले हो[७] भले ज ।।५१।।

[१] पल ही पल—भा० मो० । [२] कलो—सा० । [३] मानत—भा० मो० ।[४] केतो खले—नि० ग० गजा० । [५] वातन ये—भा० मो० । [६] बदै न—मो०, चैन न—आ० । [७] भले जू—ग० गजा० ।

देव कामदेव ही को कमल[१] हथ्यार हौ जू अग अग गुननि हियो[२] गुननि आगरी ।
नेह की निकाई देह[३] दुति मधुराई नख सिख ते मधुर मधु घृत[४] की सी सागरी ।
चेटक सी चालि[५] चित चोट[६] सी चितौनी हाँसी ठग की मिठाई भौह फाँसी की सी लाग री[७] ।
भली हौ जू भली हौ सलोनी घात मीठो विप सीरी आँचि सरबस चोरन उजागरी[८] ।।५२।।

[१] कोमल—सा० । [२] गुनन के ओ—मो०, गुनन कीओ—व्र० । [३] देव—सा० ।

[4] मधुव्रत—सा० । [5] चली—सा० । [6] चान अरु चिलचोट—ग० गजा०, चितचोर—सा० । [7] ठग की सी फाँसी फाँसी फँसी लाग री—नी० ग० गजा० । [8] सलोनी बात मीठी मुख विष सीरी आँखि सरवस चोरन उजागरी—सा० भा० प्रति मे सम्पूर्ण छन्द तथा मो० प्रति मे छन्द का केवल तृतीय चरण त्रुटित है ।]

राधे कही है कि तै छमियो व्रजनाथ जिते[1] अपराध किये मैं ।
कानन तानन भूलत ना खिन[2] आँखिन रूप अनूप पिये मैं ।
आपने ओछे हिये मे दुराई[3] दयानिधि देव बसाय लिये मैं ।
हौंही[4] असाध बसी न कहूँ पल आध अगाध तिहारे हिये मैं ।।५३।।

[1] किते—भा० मो० । [2] भूल नाचनी—नी० भूतल नाखिन—ग० गजा० । [3] ओछे हिये अपने दिन राति—नी० ग० गजा०, मैं यही अपने ओछे हिये मैं—सा० आ० । [4] होय—मो० ।

जाती हो जो उत वे जो[1] मिलै कहूँ पावौ समौ कहिवे को ठिकाने ।
ह्याँ की दशा तुम देखिये है कहियो समुझाइ जो पै[2] जिय आने ।
या मन की बिन पाये बिथा तनकी[3] कवि देव जू कौन वखाने ।
तोसी हितू हित की बिन और सु को इत की[4] चित की गति जाने ।।५४।।

[1] जा उत बाजु—नी०, जा उत बीजु—गजा० । [2] जो वै—भा० मो० । [3] तीन की—भा० मो० । [4] इन की—नी० गजा० ।

दंपति को मिलाइबो ।

जा दिन ते हित जान्यो इतै[1] तब ते नहि तू कहि काहू सो बोले ।
तेरेई ह्वै रहे[2] भाट भटू सब सो गुन रूप[3] सराहत डोलै ।
देव इन्हे सुख[4] सो सजि के रस सो रजिके[5] तजि लाज के ओले ।
राधे अहो हरि भावते को भरि के भुज भेटिये मेटि मलोले ।।५५।।

[1] जोर्‌यो इतै—सा० नी० ग० गजा । [2] तेरे ह्वै रहै—नी०, तेरेई ह्यौ रहे—सा० । [3] सौगुनो रूप—भा० । [4] मुख—ग० । [5] रचि के—भा० मो०, रसि के—सा०, रजि पै—नी० ग० गजा० ।

देव तज्यो गुन गौरव औ गुरु लोगनि सो[1] छल छिद्र करे मैं ।
धाय धसी वृषभान के भौन सभान के गोप[2] सबै निदरे मै ।
तो हित जाय हितू हित की भई[3] दूती के दाइनि पाँय परे मैं ।
लाल इन्हे उर माल करो गहि डारि है ग्वालि[4] गुपाल गरे मै ।।५६।।

[1] मै—ग० गजा । [2] समान के गोप—भा० मो०, सभामत गोप—आ०, समान के लोग—गजा० । [3] हित के भई—भा० मो० । [4] गहि डारा है ग्वालि—नी०, गहि डारिहौं ग्वाल—सा०, गहि डारहुँ बाल—भा० मो० ।

दम्पति को भूषण ।

चोवा मिलै मृग मेद घसे घनसार सो केसर गारत डोलै ।
देव जू फूल फुलेलन की घर बाहर वास बगारत[1] डोलै ।

भूषन वेप वनाइ नये पहिराइ पुराने विगारत डोलैं।
राधे के अगनि ही सिगरौ दिन सगही सग सिगारत डोलैं ॥ ५७ ॥

[१] लगारत—व्र० नी० ।

प्रसन्न करन ।

भरे गुन भार[१] सुकुमार सरसिज सार सोभा पर सागर अपार रस[२] आउडे।
नख नग जाल लाल अँगुरी विद्रुम[३] माल नूपर मराल[४] ये अनूप रव[५] नाउडे।
धरिये न पाँव बलि जाँव राधे चन्दमुखी वारो मद गति[६] पै गयन्दपति छाउडे।
छितिहि छुवत देव दूनी होति झलक पलक छूजे ठाढी हो पलक करौ पाँउडे ॥ ५८ ॥

[१] रुचि भार—ग० । [२] गुन—भा० मा० । [३] विद्युप—भा० मो०, प्रवाल—ग० । [४] मदाल—ग० । [५] अनूप रस—सा० । [६] गति मद—भा० मो० ।

सखिन को सुख सुने सौतिनि को महादुख होत गुरुजनन के गुन को गरूर है।
देव कहै लाख लाख भाँति अभिलाषा पूरि पी के उर गमगत प्रेम रस पूर है।
तेरो कलबोल कल भाषिन को स्वाति बुद जहाँ जाइ पर्यो तहाँ तैसोई समूर है।
व्याल मुख विष ज्यो पियूप ज्यो पपीहा मुख सीप मुख मोती कदली मुख कपूर है॥ ५९ ॥

नी० गजा० प्रतियो मे ५८, ५९ सख्या के छन्द नही है। इन प्रतियो मे इन छन्दो के स्थान पर "देव ब्रज जीवन" छन्द है।

धाइ सखी के दूतिका के दासी[१] अभिराम।
जासो दम्पति हित करै सिक्षा ताको[२] नाम[३] ॥ ६० ॥

[१] सो दासी—नी० ग० गजा० । [२] तासौ ताको—नी० ग० गजा० ।
[३] काम—व्र० ।

वारेई[१] वैस वडी चतुरी हो वडे गुन देव वडीये वनाई।
सुन्दरी हो सुघरी हो सलोनी हो सील भरी रसरूप सनाई।
राजवहू बलि राजकुमारि अहो सुकुमारि न मानौ मनाई।
नेसिक नाह के नेह विना[२] चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई ॥६१॥

[१] वारि हौ—भा०, वारे हौ—मो०, ही—व्र० । [२] नेह के नेह बिना—सा० । (केवल सा० प्रति मे चरणो का क्रम १-२-४-३ ।)

दासी ।

दम्पति आयसु[१] करन को सनमुख रहति चितौति[२]।
दासी नागरि[३] सेवकिनि कहूँ ह्वै रहति है सौति[४] ॥६२॥

[१] आयसु—भा० मो०, आपुस—नी० ग० । [२] विनीत—नी० । [३] कहिये—नी० ग० गजा० । [४] कहूँ रहति है सौति—सा०, कहुँ ह्वै रहति सोति—मो०, कहूँ ह्वै रही सौति —भा० ।

दम्पति एकहि सेज परे पग पीडुरी दावि दहुँ को रिझावति।
आपने ऊँचे[१] उठौहै कठोर उरोजन कोमलै एडि मिलावती।

भौहे अमेठि रहै ठकुराइनि ठाकुर के उर काम जगावति।
लौडी अनोखी लडाइति[२] लाल की पाइ पलोटै की चोटै चलावति।।६३।।

[१] पाइते वैठि—नी० सा० आ०। [२] लडावति—भा० मो०, लडावते—ग० गजा०, लडावते—सा०।

देवल रावल नागरी इहि विधि वरनौ देव[१]।
राजनगर नागरि कहौं न्यारे लच्छन भेव[२] ।।६४।।

[१] देख—नी० गजा०। [२] भेप—गजा०।

धाय सौ खीन खिनै खिनखीन सखीन सो नेम न प्रेम सँजोगी।
दूतिनहू तिनकी गति पाय न दासी सो नैन उदास वियोगी।
भावे न भोजन पान न भूपन दूपन से जन[१] और अयोगी।
राजवधू विलखे मन गोवे[२] लखे कहुं लाल भुवप्पत[३] भोगी।।६५।।

[१] अन—ग०। [२] गोप—सा०, गोख—व्र०। [३] लाल जू भूपत—सा०। नी० ग० गजा० भा० मो० प्रतियो मे यह छद नही है।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कविदेव कृते देवल रावल नागरी वर्णनं नाम प्रथमो विलास।

राजनगर नागरि दुविधि[१] वरनत सुकवि सम्हारि।
एक हटवई की वहू[२] दूजी क गनिका नारि।।१।।

[१] विविध—भा० मो०। [२] एक हटवाइन कही—नी० ग० गजा०।

पुनि अनेक करि हटवइनि[२] कही अनेक प्रकार।
गनिका गने न सत असत चाहे धनी उदार[३] ।।२।।

[१] पन—नी०। हटवरन—नी० ग० गजा०। [३] अपार—नी० ग० गजा०।

तजि अपने कुल धर्म पन[१] करै और व्यौहार।
सोई जाति प्रसिद्ध हे वैठे हाट वजार।।३।।

[१] धर्म येन—मो०, धर्म एन—भा०।

राजनगर की नागरी पन[१] अनेक वहु भाँति।
तिनमे मुख्य मनुष्य तिय वरनि कही दस जाति।।४।।

पुनि—भा० मो० सा०।

जौहरिनी छ्पिन कह्यो पटविन और सुनारि।
गधिन तेलिनि तमोरीन कन्दुनि[१] वनिनि कुम्हारि।।५।।

[१] किदुनि—भा० मो०।

दरजिन आदि अनेक लघु जाति चूहरी अत।
नगरद्वार गनिका वसै सो चाहे धनवन्त।।६।।

नी० गजा० प्रतियो मे जाति-नाम के सख्या ४, ५, तथा ६ दोहो के स्थान पर निम्न-लिखित दोहे है :—

जौहरनी।

सीची[१] सुधा बुदनि सो कुन्दन की वेलि किधौ साँचे भरि काढी[२] रूप औपनि भरति है।
पोखी पुख[३] रागनि वपुष नखसिख कर चरन अधर विद्रुमन ज्यो धरति है।
हीरा सी हँसनि[४] मोती मानिक दसन सेत स्यामता लसनि[५] दृग हियरा[६] हरति है।
जोवन जवाहिर सो जगमग होइ जोइ[७] जौहरी की जोई जग जौहर करति है ।।७।।

[१] साँची—भा० मो०। [२] डारी—ब्र०। [३] पुष्प—नी०, पुष्य—"ष्य" हाशिये पर—सा०। [४] हीरा सग सनि—भा०। [५] लसतु—आ०, वसनि—गजा०। [६] हीरा को—भा०। [७] होत जात—भा० मो०, होति जोति—ब्र०।

छीपनि।

सोने से सोहने[१] गातन सोहै सुहागिनि की अति सूही[२] सुहाई।
देव जू आवै लगी अँखियान मे देखतही मुख की अरुनाई।
ज्यौ ज्यौ रँगे पट रग निचोरत त्यो निचुरै अँग अग निकाई[३]।
दै छबि छापै[४] करै मन छीट[५] सु छीपनि बाल[६] छिपै न छिपाई ।।८।।

[१] सोने से सोहत—भा० मो०। [२] सोहे—भा० मो०। [३] गोराई—ग० गजा०। [४] छीपे—ग० गजा०। [५] छीर—सा०, छाप—भा० मो०। [६] छैल—ग० गजा०, वाली—सा०।

पटवनि।

रेसम के गुन छीलि छरा करि छोर तें[१] ऐचि[२] सनेह रचावै।
देव दसौ अँगुरी उरभाई कै डोरी गुहै रस रग मचावै[३]।
मोहति सी मन पोहति[४] सी जन छोहति[५] सी तनि[६] भौह लचावै[७]।
चचल नैननि सैननि सो पटवा की बहू नटवा सी नचावै ।।९।।

[१] कर छोरति—भा० मो०। [२] पेछि—नी०। [३] देव दसौ अँगुरी कर पाइ वरै उरझाइ कै रग मचावै—ग० गजा०। [४] मोहत—भा०, जोहति—ब्र०। [५] जनु जोहति—भा० मो०, तनु चोहति—ग० गजा०। [६] छवि—ग० गजा०। [७] चलावै—नी० ग० गजा०।

जौहरनी छीपिन कहौ कसहेरनी सुनारि।
ओपइन हलवाइन वनिन[१] और पसारि ।।

[१] ओ पटवइन हलवाइन—गजा०।

गधिनि मालिन तमोरिन बढइन और लुहारि।
दरजिन तेलिन कुम्हारिन भरभूजिन मनिहारि।।
धुनिन जुलाहिन कटेरी और खटकिन नारि।
भटिहारी सिकलीगरनि और चूहरी चमारि।।
ये कहिये सब हटवइन नृप पुर नगरी वाम।
पुर द्वारे गनिका वसै नागरिक अति अभिराम।।

देखे "जाति विलास की प्रामाणिकता" शीर्षक—पृ० १७८,तथा परिशिष्ट २, पृ०२९५

सुनारिन।

देव दिखावति कवन सो तन औरन को मन तावै अगौनी।
मुदरि साँचे मे दै भरि काढी सी आपने हाथ गटी विधि सौनी।
सोहति[1] चूनरी स्याम किसोरी की गोरी गुमान भरी गजगौनी।
कुन्दन लीक कसौटी मे लेखी सी देखी[2] सुनारि सुनारि सलोनी ॥१०॥

[1] सोभित—भा०। [2] लेखि सु देखि—सा०।

गंधिनि।

अग्गजै[1] भीजी सरगजै वागै बनीठनी[2] हाट पर बैठी अतिही[3] सुघरपन सो।
इन्दु सो वदन मृगमद विन्दु वेदी भाल झलकै कपोल गोल दूने दरपन सो।
मैन मद छाके नैन देखे[4] देव मुनि मोहै मोहै सटकारे[5] वार कारे सरपन सो।
वधु किये मधुप मदन्ध किये पुरजन[6] वाँध्यो मनु[7] गन्धी की सुगध[8] झरपन सो ॥११॥

[1] अगर जै—नी०। [2] वाग मनो बनी—सा०। [3] अनि ही—भा०। [4] ०—ग० गजा०। [5] सैन सोहै सटकारे—ग० गजा०। [6] वधुजन—ग० गजा०। [7] मोह्यो मन—भा० मो०। [8] गध की सुगध—सा०।

तेलिन।

तिल है अमोल लोल नैनी के कपोल बीच कोटिक अनूप रूप[1] वारि फेरियतु है।
सोभा सुने जाकी कवि देव कहै कौन को न होत चित चीकनो चतुर चेरियतु है।
घाट वाटहू मे घट निपट वटोहिनि के नेकहीं[2] निहारे नेह भरे हेरियतु है।
सरस निदान ताके[3] परस की कौन कहै पोनहूँ के परस परोसी पेरियतु है ॥१२॥

[1] कपोल गोल बोलत अमोल जन—ग० गजा०। [2] नेह की—नी० गजा०। [3] तकि—भा० मो०। नी० प्रति मे चतुर्थ चरण त्रुटित है।

तमोरिनि

रगित चोली ने ढोली[1] खरी चुनि चाड[2] सो गाँठि[3] उघेरि अमेठी।
गोरी गुलाव लै लै छिरकै छवि भाव सो देव सुभाव सो ऐठी
सोने से अग सुरगित[4] ओठनि कौन के जाति[5] हिये मै न पैठी[6]।
ऊँची दुकान पै वेचति पान तमोरिनि ऐचत सीचत[7] वैठी ॥१३॥

[1] टोली—नी०, डोली—आ०। [2] चार—भा०। [3] सो आछे—भा० मो०। [4] सुरगनि—भा० मो० व्र०। [5] काज—नी०। [6] देव सु देखत ही हिय पैठी—ग० गजा, नैन पैठी—आ०। [7] ऐचत सी चित—सा०, प्रानन ऐचति—ग० गजा०।

कन्दुनि

मीठो महा मृदु वोल कहै हँसि मोल कहै[1] मुसकाइ सुभाइनि।
देव भुलाइ वटोहिनि वाट डुलावति चोरि लिये चित चाइनि।
रूप अनूप भरी नख ते सिख सुद्ध सुधारसही[2] की रसाइनि।
हाट के ऊपर हाटक वेलि सी वेचति है हलवा हलवाइनि ॥१४॥

[1] मीठो महा हँसि मोल कहै—हँसि वोलि कहै—आ० नी०, लघु वोल कहे—भा०

मो०। [2] सूक्ष्म सुधारस ही—भा०, सुद्ध सुधारस ही—मो०। [3] हटवी—सा०।

बनिनि।

मदन के मोदभरी जोवन प्रमोद भरी[1] मोदी की वहू की दुति देखी दिन[2] दूनी सी।
चाउ रहै चित मे चितैत दारिदै न राखौ बोल मोल मीठो खाँड घीउ ते न ऊनी सी।
राज बाट बीच बाट पारति बटोहिनि की बाट बिनु तोलै मनु[3] आँखिनि मे खूनी सी।
चूनरी सुरंग अग ईंगुर के रग देव बैठी परचूनी की दुकान पर चूनी[4] सी॥१५॥

[1] विनोद भरी—आ०। [2] देखी तिन—भा०। [3] बिनु तोलै मनु लत—आ०। [4] चूँवी—आ०।

कुम्हारिनि।

चन्दमुखी मुरि मन्द हँसे मुख[1] मोतिनि को गहि खोल्यो डबा सो[2]।
देव सुधा भरे ओठ[3] उठे कुच भेटि अघात[4] सही मधवा सो[5]।
रूप उम्हार[3] कुम्हार की जाई के जोवन को न नचायो तवा सो।
काम के चक्र चढायो न को[7] घट काको[8] न कीनो अबास अँवा सो॥१६॥

[1] गुन—सा०। [2] उवा सो—नी० ग० गजा०। [3] ऐठ—भा०। [4] अँचात—नी० गजा०। [5] नही मधवा सो—सा०, सही मधवा सो—ग० गजा०। [6] रूप अभार—भा०। [7] नयो—ग० गजा०। [8] याको—भा० मो०।

दरजिन।

अन्तर पैठि[1] दुहूँ पट के कवि देव निरन्तरता उर आनै[2]।
देत मिलाइ घने अपने गुन मार[3] सुई किधौ दूती[4] सुजानै।
ताहि लिये कर मै घर मै रहै[5] जाको[6] सियै भरमै[7] सोई ठानै[8]।
होती[9] करे जनि की दरजै दरजी की वहू वरजी नहि मानै॥१७॥

[1] वैठी—सा०। [2] मानै—नी०। [3] तार—ग०। [4] दूजी—सा०। [5] फिरै—सा०। [6] जाहि—भा० मो०। [7] मरमै—गजा०, घर मे—सा०। [8] छानै—भा०, सु वखानै—ग० गजा०। सोइ जानै—आ०। [9] कीन्ही—ग० गजा०। केवल आ० प्रति मे इसके बाद "वढइन वर्णन" तथा "लुहारिन वर्णन" छन्द अधिक है।

चूहरी।

चीकने कपोल चौका चमकै चुनी से दन्त चचल दृगचलनि चितवनि वकिनी[1]।
कचुकी मे कसे कुच कचन कली से भीने अचल की ओट[2] झाँई रचक उझकनी।
चटकीली चूनरी[3] मे चोट सी चलावै भौहे चेटक सी चालि[4] पग जूती कर[5] ककनी।
फूल से झरत रग झर[6] लागे झारू देत चूहरी चतुर चित चोरनि[7] चमकनी॥१८॥

[1] तीखे चारु चचल दृगचलनि वकिनी—भा०। [2] अचल की ओर—ग०। [3] चोग्न—नी०। [4] चेटक सो लावै—ग०, "चालि" गजा० प्रति मे त्रुटित है। [5] कटि—व्र०, जूती कर ककनी—गजा०। [6] झरत रग उडि—सा०, झरत रग झर झर—नी०, ज रत अग झारु—आ०। [7] चोरति—आ० व्र०।

गनिका ।

चाट उचाट सो चेटक सी[१] चुकुटी भृकुटीन[२] जम्हात अमेठी ।
जोवन के इतराहट[३] सो अठिलात अठोठनि ओठनि[४] ऐंठी ।
सौति भई सब नारिन[५] की सगरे नर मोहि मनो मन[६] पैठी ।
देव दृगचल छोरनि सो चित चोरनि यो चित चोरति बैठी ॥ १९ ॥

[१] चाटु उचोदसी चटु कुमी—नी० । [२] चिकुटी चकुटीन—नी०, भृकुटी चिकुटीन—भा० मो० । [३] इतराहर—ग० । [४] अछोटनि ऐठनि—भा० मो०, अठोवनि जोठनि—नी० । [५] कुल नारिन—सा० । [६] मनो मुख—मो०, मनो रमन—आ०, हिये मनो—ग० गजा० ।

जौहरनी हरिनी ज्यो[१] भुलानी छकी छवि छीपिन छोह पछारी[२] ।
रूप मदधनि[३] मोहित गधिनी व्याकुल वैन सुनै न सुनारी ।
हूक उठी हलवाइन के हिय[४] तीखे कटाछ तमोरिनि मारि ।
बेझै[५] वनी ना गनै गनिका गुन भायक भोगी भुवाल निहारी ॥ २० ॥

[१] जा—ग्र० । [२] दीपति छोह पदारी—ग० । [३] मदगनि—ग० । [४] अति—मा० । [५] वैली—ग्र० । उपर्युक्त छद केवल ग्र० ग० मा० प्रतियो मे मिलता है, भा० मो० नी० गजा० प्रतियो मे नही ।

इति श्रीनृप भोगीलाल हित बानी देव प्रकाश रस विलास नगर नागरी वर्णनं नाम द्वितीयो विलास ।

पुर कहिये छोटो नगर राजनगर के[१] तीर ।
अपने अपने धर्म मे चारि[२] बरन की भीर ॥ १ ॥

[१] राजनगन की—भा०, राजनगर की—मो०, महानगर के—सा० । [२] नारि—सा० ।

तहाँ विप्र छत्री वनिक काइथ कुल अरु सूद्र[१] ।
नाऊ माली रजक ए पुरवासी निरद्वद[२] ॥ २ ॥

[१] तहाँ विप्र धर्म छत्री वनिक काइथ कुल सूद्र—मो० । [२] निर हुद्र—भा० मो० ।

पुरवासिनि तिनकी तिया कुल आचार विचार ।
लिये धर्म सुभ कर्मपन[१] लाज काज[२] व्योहार ॥ ३ ॥

[१] कर्मपुनि—ग्र०, धर्मकुल कर्म सुभ—सा० । [२] राज काज—नी० गजा० ताज काज—मा० ।

ब्राह्मणी लक्षण ।

सत्य शील सतोप निधि विप्र वधू सविवेक ।
स्नान ज्ञान जप तप[१] नियम पूजन यजन[२] अनेक ॥ ४ ॥

नी० गजा० प्रतियो मे दोहे का पाठ इस प्रकार है :—
"तहाँ विप्र छत्री वनिज भट कायस्थ किरार ।
नाऊ अरु बेरी वसै धोवी डोम चमार ॥
इन प्रतियो मे अतिरिक्त जाति-नाम के उदाहरण—छद भी है । देखे, "जाति-विलास की प्रामाणिकता" शीर्षक—पृ० १७८, तथा परिशिष्ट २—पृ० २९५ ।

[2] न्हान ज्ञान तप जप—नी० ग० गजा०, न्हान गान जप तप—भा० मो०। [3] कुल आचार—नी० ग० गजा०।

उदाहरण।

गग तरगिनी वीच वरगनि ठाडी करै जप रूप उदोती।
देव दिवाकर की किरनै निकसै विकसै मुख[1] पकज जोती।
नीर भरी निचुरै अलकै[2] छुटिकै छलकै मनो मॉग के मोती।
विज्जुल सी झलकै लपटै कन[3] कज्जल सी अग उज्जल धोती ॥ ५ ॥

[1] मनु—भा० मो० ब्र०। [2] अलकै निचुरै—भा० मो० अलकै निचुरै अलकै—दूसरे "अलकै" पर हरताल फेरी है—ब्र०। [3] लपटे झलकै कन—भा० मो०।

क्षत्रिय-लक्षण।

छत्र धरन छत्रिय कह्यौ भूपति सो द्वै ठाम।
पूरब मे रजपूत अरु पच्छिम छत्रिय नाम ॥ ६ ॥

सा० प्रति मे दोहा त्रुटित है।

रज राखन रन दान[1] भट गाय[2] विप्र हरि पीर।
ताकी तिय क्षत्रिय वधू वरनी गुननि गहीर[3] ॥ ७ ॥

[1] रज दान—भा०। [2] गये—सा०। [3] गुन गभीर—ग० मा०।

राजपूतानी।

भाग भरी अनुराग भरी[1] वड भागिनि सुद्ध सुहागिनि छाजै।
अग अनग तरगनि जानि[2] इकगनिये सव सगिनि साजै।
सचित कै रुचि वचि वधूनि विरची सु सची सुनि लाजै।
प्रेम भरी पुर भूपसुता गुन रूप रजी[3] रजपूतिनि राजै ॥८॥

[1] अति राग भरी—ब्र०। [2] जागि—सा०। [3] रची—भा० मो०।

खतरानी।

ज्यौ विनही गुन अक लिखै घुन यो करि कै करता करि हार्‌यो[1]।
वारिये कोरि सची रति रानी[2] इतो खतरानी[3] को रूप निहार्‌यो।
देव सु वानक देखि अचानक आन कहूँ न को आन कुमार्‌यो।
लाज लचै त्रिय और रचै तो पचै विन काज विरचि विचार्‌यो[4] ॥९॥

[1] करु झार्‌यो—ग०। [2] करिये करि कोरि सची रति रानी—सा०। [3] छतिरानी—सा०। [4] लाज लचै त्रिय और रचै विन काज विरचि विचारि विचार्‌यो—भा मो०।

नी० गजा० प्रतियो मे सख्या ६, ७ दोहे का पाठ इस प्रकार।

जो रक्षै गो विप्र को छितपति पुर पुरहूत।
रज राखे रन दान भट सो कहिये रजपूत ॥
ताहो सो छत्री कहै हरै सदा पर पीर।
ताकी तिय छत्री वध वरनी गुन गभीर ॥

केवल भा० प्रति मे चरणो का क्रम १-४-३-२ है। नी० गजा० प्रतियो मे छन्द त्रुटित है और इसके स्थान पर "मूहो पैन्हे आवति" छद है।

वैस्यानी।

पीरे पीन कुचनि पै[१] कचुकी वदन कसी निकसी निकाई पर्र मूहे की सुहाती[२] मैं।
गोरे गरे तरे लरै मोतिनि की[३] तामैं झमकति धुकधुकी जैसे दूलह[४] वगती मैं।
देव चित चूमे वेष इन[५] ग्रुमे वाजूवन्द ललकत लाल लगिवे को रँगराती मैं।
नवजोवनी की जोव नीकी[६] जोनि जीनि[७] रही कैसी वनीनीकी वनी नीकी छवि छाती मैं॥१०॥

[१] कुच नीके—मा०। [२] सुहानी—नी०। [३] मोनी कुमकनि—नी०। [४] दूलरैह—मो०। [५] अन—मा०। [६] जोवन की—मा०। [७] जाति—ग० गजा०।

काइथिनि।

रीझै रिझवारि[१] इदु वदनी उदार मुर रूप की मी डार डोलै रग रगियनि मैं।
साँवरी सलौनी गुनवन्ती गजगौनी[२] महा सुन्दर सुघर लाग-लाग[३] लगियनि मैं।
जागी सब रैनि वडभागी पिय प्यारे[४] सग प्रेमरस पागी[५] अनुरागी सखियनि[६] मैं।
दार्‌यो से दसन मन्द हँसन विमद भरी मद भरी सोभा[७] मद भरी अँखियनि मैं॥११॥

[१] रिझाई—नी०। [२] जगी—नी०। [३] अभिलाग—त्र०। [४] निज पिय—त्र०। [५] पतिव्रत पागी—त्र०। [६] रखियनि—भा० मो०। [७] "मद भरी"—हाशिये पर—त्र०, सोभा मद भरी—मा०। नी० प्रति मे तृतीय चरण नही है एव गजा० प्रति मे सम्पूर्ण छन्द त्रुटित है।

किरारिन।

नेह सो निचोरै चित चोरै डीठि जोरै कौन डोरै लाग्यो डोरै डारि[१] सुरति अहार की।
सोने के सरोज से उरोज उमगोहे गोरे अग मे सुहाई देव सूही जरतार की।
कठ सिरीकठ कटि किकिनी ककन[२] कर ऊजरी[३] पगनि गूजरी सु झनकार[४] की।
चद सो वदन मद हँसनि गयद गति कोवरी[५] कुरगनैनी कुँवरि किरार की॥१२॥

[१] लागी ढोरै डारि—भा० मो०। [२] कनक—ग०। [३] ऊजरे—भा० मो०। [४] झमकार—भा०। [५] को अरी—नी० ग० गजा०।

नाइनि।

घर-घर डोलनि सुघर नर मोहिवे को[१] ऊधरी फिरति सनमुख[२] सुख दैनिया।
अरुन वसन वर[३] तरुन चुवत रस कुलटा कुटिल कुल[४] जुवतिन जैनिया[५]।
जावक कै मिस काम पावक जगावै देव[६] हिय को हरत यो करत करसैनिया।
वैनी गुहिवे को[७] पिकवैनी सो तनैनी फिरै[८] पैनी चितवनि की चपलनैनी नैनिया॥१३॥

[१] मोहनी सी—ग० गजा०। [२] सव मुख—भा० मो०, सनमुख—सा०। [३] वैन—सा०। [४] जग—भा० गजा०। [५] कुल जुवतिन की जैनिया—सा०, जुवतिन भरैनिया—ग०। [६] जगावति मी—ग० गजा०। [७] गूदिवे को—ग० गजा०। [८] डोलै—ग० गजा०।
केवल भा० प्रति मे छन्द का द्वितीय चरण नही मिलता और छन्द के तृतीय चरण के पश्चात भा० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ इस प्रकार है :

"प्रेमी अनुरागिनि को हियरो रिझावै अरुझावै सुरझावै बिरुझावै नैन पैनिया।"

मालिन।

बीनत फिरत फूल दार्‍यो दल से[१] दुकूल खुले भुजमूल लटैं घूमै ज्यों[२] अलिनिया।
चौसर चमेली चारु पहिरे सिंगारहार लची[३] कुच भार जीति लीनी है[४] फलिनिया।
जुही गुही माँग अंग[५] चंपक पराग छुही देव लखे लोचन लजाति है नलिनिया।
बाग मे बिलोकी अनुराग की सी बोहनी सो[६] सोहनी[७] सुघर मन मोहनी मलिनिया॥१४॥

[१] दार्‍यो लै लसै—ग०। [२] छूटी लटैं ज्यो—ग० गजा०। घेरि घूमत—नी० सा०। [३] चपी—सा०। [४] फली जे—ग० गजा०। [५] आँख—भा०, आग—मो०। [६] बाहिनी से— ग० गजा०। [७] मोहनी—भा० मो०। नी० गजा० प्रतियो मे यह छन्द द्वितीय विलास मे है।

धोबिन।

घाट पर ठाढी बाट पारति बटोहिनि की चेटक सी डीठि मन काको न हरति है।
लटकि पटकि पट छियो करि मटकति देव भुज मूलनि ते फूल से झरति[१] है।
जोवन की ऐंठ अठिलात सी[२] उठोहै[३] कुच ओठनि अमेठि पट ऐंठि कै धरति है[४]।
धोबिन अनोखी यह धोवति कहाधौ करि सूध[५] मुख राखति न ऊधम करति है॥१५॥

[१] मटकाय देव छीटो कहि ठाढे भुज मूल हासी फूल से झरति है—सा०, मटकाय देव छियो कहै काढे भुजमूल हाँसी फूल से झरति है—नी०, लटकि लटकि छी करनि खुले भुज मूल झुकि झुकि स्वेद कन फूल से झरति है—ग० गजा०। [२] अठिलाग सी—भा० मो०, अठिलात से—नी० ग० गजा०। [३] उचौहै—नी०। [४] ऐंठि पकरति है—ग० गजा०। [५] धोबिन कहा धौ यह धोबिन अनोखी कर सूध—ग० गजा०, करि सुधा—भा० मो०।

वन मै जो लघु पुर बसै तासो कहिये गाँव।
तहाँ बसै ग्रामीन तिय गँवारी ताको नाँव[१]॥१६॥

[१] तिन्हे गँवारी नाँव—भा० मो०, ग्रामनि ताको नाउ—व्र०, गँवारि सो ताको नाउ सा०।

ग्रामीण नायिका-भेद।

अहिरनि अरु काछनि कहौ कलारि और कहारि[१]।
और नुनेरिन[२] पाँच विधि बरनहु नारि गँवारि॥१७॥

[१] कलारिन और कहारि—सा०, नारि कलारि कहारि—भा० मो। [२] नूनेरी अरु—भा० मो०।

अहीरिन।

माखन सो मन[१] दूध सो जोवन है दधि ते अधिकै उर ईठी।
छैल रँगीली की[२] छाछि के आगे[३] समेत सुधा वसुधा सब सीठी।
नैननि नेह चुवै कवि[४] देव बुझावत बैन[५] वियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहे कहौ क्यो न लगै मनमोहनै[६] मीठी॥१८॥

[1] तन—नी० गगजा०। [2] छबीली की—मा० नी०। [3] जा छवि आगे छपाकर छाँछ—ग० गजा०। [4] कहि—सा०, कहे—नी०। [5] चैन—भा० नी०। [6] मनमोहन—भा० मो०।

काछिन।

राखै समाधान ममाधान कै दिखैयनि को ईगुर मी अगनि गुराई[1] है गँवारि मैं।
देव कहे जगमग्यो[2] जोवन जुन्हाई ऐसी एनै पै[3] जुन्हाई पैठी सरोवर[4] वारि मैं।
वारनि मुखावति उघारे मीम गावति लुभावति[5] मी लोगनि फिरति चहूँ पारि मैं।
अचल अँगौछे[6] ओछे ओछे कुच पोछै[7] लिये कोछे मे कमल डोलै काछिनि कछार[8] मे॥१९॥

[1] मे अगनि आँगुरी—भा० मो०,। [2] जगमगी नव—ग० गजा०। कही जगमगी—भा० मो०। [3] जोनि जोवनी—ग०। [4] कुमुद मोदिन—ग० गजा०। [5] भुलावनि—भा० मो०। [6] अचर अँगौछि—भा० मो०। [7] आँछि आँछि कुच पोछि—भा० मो०, ओछे आछे कुच पोछे—मा०। [8] कगार—मा०। ग० गजा० प्रतियों मे चरणों का क्रम १-३-२-४ है।

कलारिन।

आपु पिवै अरु औरनि प्यावति लाज के तूल ज्यों तूमति डोलै।
जोबन जेब जकी सी कलारि छकी मद सो झुकि झूमति डोलै।
गावति रीझि रिझावति त्यो मनवारनि को मुख चूमति डोलै।
काम के बान हनी[1] हिय मैं घर बाहिर घाइल घूमति डोलै॥२०॥

[1] हनै—मा०। केवल नी० प्रति मे चरणो का क्रम १-३-२-४ है।

कहारिन।

जगमगे जोवन जगी है रँगमगी जोति लाल लहँगा पै नीली[1] ओढनी वहार की।
झाऊ[2] की झँवरिया मैं मफरी फरफरात वेचति फिरति बोलै बानी मनुहार की।
चाहेऊ न चाहै[3] चहूँ ओर ते गहत बाहें[4] गाहक उमाहे रोकि राहैं[5] चित हार की[6]।
देखत ही मुख विष लहरि मी आवै लगी जहर सो नैन करैं[7] कहर कहार की॥ २१॥

[1] नील—अ०, पीली—भा०। [2] झाझ—भा०, झाम—मो०। [3] चाहें अनचाहे—नी०। [4] कहत डाहै—सा०, गहत चाहे—नी० गजा। [5] रहै—भा० मो०, रहै रोकै—ग० गजा०। [6] गाहक घनेरी दोरि चित अपहार की—नी० मा०, उमाहै राहै रोकै सु विहार की—ग० गजा०। [7] हाँसी करै—ग० गजा०।

नुनेरिन।

पीरे अँचरान सेत[1] लुगरा लहर लेत लहँगा की[2] लगी[3] लाल रँगी रँगहेरा की[4]।
गात मे गुभाँरहाई[5] अँगिया उचौहै कुच बीच पचरँग पोति ताई मीनि फेरा की[6]।
हाथनि[7] लखौटा पाइ[8] चूरा पचमनी गरे गोरी की जुगल जातें[9] है उन्हारि[10] केरा की।
गजगौनी नौनी[11] वरे नोन की डेरैया सीस[12] नीरज से नैन नारि निरखी नुनेरा की॥२२॥

[1] पीरे पीरे आँचर स्वेत—भा०। [2] लुगी लँहगा की—ग०, लुगी लाल लहँगा की—अ०। [3] पीरे अचरान सेत डडिया अधोतर की लहँगा खरा को—सा० नी० गजा०।

[८] रग रीझ रग होरा की—नी० सा०, रग रँगी रँगहेरा की—ग० गजा०। [५] गातन मे गुझौरपरि—ग० गजा०, गात मै गुहै हराई—ब्र०, धावत मैं डोरिहाई—भा०। [६] पोत सरी है तिफेरा की—नी०, पति सरह तिफेरा की—सा०, अँगिया उमग उर ताई पन पोही पीत पोति है तिफेरा की। ग० गजा० [७] हाथ—नी० गजा०। [८] वाहु—नी०। [९] जघ—ब्र०। [१०] कोरी मनौं—ग०। [११] लौनी—नी०, ग० प्रति मे भी पहले "नोनी" पाठ था। परन्तु वाद मे उसी कलम से उसे "लोनी" वनाया गया हे। [१२] ठग्या सीस—ग० भा० मो०, सिर—नी० सा०।

वन्या।

वन्या वनवासिनि वधू ताहू त्रिविधि वखानि।
मुनि त्रिय अरु त्रिय व्याध की और भीलनी जानि ॥ २३ ॥

मुनि-त्रिया।

फूली लतान को छत्र दिये नव[१] पत्र सुखासन है सुखकारी[२]।
चौर करै चमरी चय मोर[३] चकोर मृगी मृग चाकर भारी।
गावत भौंर रिझावति[४] कोकिल आइ मिले सगरे वनचारी।
जीति लिये मृगराज सवे अव राज करे रिपिराजकुमारी ॥२४॥

[१] मन—भा०। [२] हितकारी—सा०। [३] ज्यो मरीच मयूर—सा०, चय मोर—ग० गजा०। नी० मे "चम" अपठ है। [४] स्यामा रिझावति—सा०, भोर लजावति—भा० मो०।

व्याध-वधू।

है करवीन लिये परवीन वजावति गावति मोहनी[१] ताननि।
मोहि लिये खग औ मृग[२] मानुप गान सुनै समुहै करि काननि।
सोर पर्यो सगरे वन[३] वीच न कोऊ रह्यो तपसी थिर थाननि[४]।
वक विलोकनि वेधि हियो सु कियो वध व्याध वधू विन[५] वाननि ॥ २५ ॥

[१] मोहति—ग० गजा०। [२] मृग औ खग—भा० मो०। [३] वृज—ग० गजा०' [४] काननि—नी०, ताननि—ग० मो०। [५] वध—ब्र०।

भीलनी।

स्यामघन ऐसे तन[१] सवन जवन कुच[२] घने घुँघराले वार जोवन जकी फिरै।
मोरपच्छ भूपन[३] विराजै गुजमाल[४] गरे मद भरे नैनन की[५] टारै न टकी[६] फिरै।
किलकि किलकि[७] पुलकत काम विकल ह्वै सीतल सलिल अवगाहत[८] थकी फिरै।
उरझति झारनि मैं मुरझि[९] पहारनि मैं गाढी गूढ गेल छैल भीलनी छकी फिरै॥ २६ ॥

[१] केश—हाशिये पर पेसिल से "तन"—ग०। [२] जघन ऊँचे—भा०, सघन कुच—हाशिये पर पेसिल से "स" के स्थान पर "ज" ग०। [३] भू पर—मो०। [४] गलमाल—नी० गजा०। [५] नैनन सो—सा०, नैन नेक—भा० मो०। [६] मटकी—नी० गजा०। [७] विलकि—सा०। [८] नद गाहत—ग० गजा०। [९] सुरझि—नी० सा०।

सैन्या।

कटक वसै ते सैन्या[१] तीनि भाँति कहु ताहि।
इक वृषली अरु वैस्या कहत[२] मुकेरिन[३] जाहि॥ २७॥

[१] ते सैन्य तिय—ग० गजा० मा०। [२] वैस्या दुतिय त्रितिय—भा० मो०। [३] सुकेरिन—भा० मो० नी०।

वृषली।

लहलह्यो जोवन हँसत डहडह्यो मुख गहगह्यो काजर चखनि चटकायो है।
कानन करन फूल मोहत जरी दुकूल नथ मे अथक[१] लटकन लटकायो है।
लालच लपेटी टेढी[२] चितवनि मन्द चाल[३] चीकने कपोल गोल को न भटकायो है।
भौहनि मरोरि मुरि मोरे गोरे गातन सो[४] वातनही मगरो कटक अटकायो है॥ २८॥

[१] अकथ—पेसिल से १-२—सख्या डालकर "अथक"—ग०, अछत—सा०, अधिक—भा० मो० नी०। [२] लाल चल वैठी गेढो—भा०, लालच लै वैठी ऐठी—ग० गजा०, वक—सा०। [३] गति—मा०। [४] गात देखो—भा०, मुरि मुरि मोरि गोरे गात—व्र०, गात वात—ग० गजा०, गोरे गात—मो०।

वैस्या।

उज्जल उज्यारी सी झलमलात झीमी मारी[१] झाँई सी दिखाई देत देह की[२] विलास सी।
जोवन की जोतिनि सो हीरा लाल मोतिन सो नख तैं सिखा लौं मिलि एक ह्वै महाल्सी[३]।
वोलनि हँसनि मन्द चलनि चितौनि चारुताई[४] चतुराई चित चोरिवे की चाल सी।
सग मैं सहेली सोन वेली सी नवेली वाल रगमगे अग[५] जगमगति मसाल सी॥ २९॥

[१] झलक झमकत झीनी सारी—आ०। [२] दिखात देह दीपक—सा०, दिखाई देह दीपति—नी०, दिपति देह दीपति—ग० गजा। [३] जोवन की जोतिन सो नख तैं सिखा सो मिलि कहै कवि देव ऐसी एक हवै महाल सी—भा०। [४] चारु अति—सा०। [५] सगमगे अग—नी०, सग मैं सहेली सो नवेली वाल रगमगे अग—भा०।

मुकेरिन।

राची कर मेहदी महावर सो राजे[१] पग घाघरे की घूम गति घूमति घनेरनि की।
रग भरे गोरे अग अँगिया लसति लीली लाल ओढनी मैं[२] डीठि डोलै चितचोरनि[३] की।
हाटक वुटी सी[४] वाढी हाट पै हँसति ठाढी वाट विनु तोलि[५] वाट पारै वहुतेरनि की।
गाहक वुलावै[६] सैन करै देन करै सौदा[७] नैननि मुकरि जाइ[८] मुकरि मुकेरिन की॥ ३०॥

[१] राची—व्र०, भीगे—सा०, भीजे—नी० गजा०, भीने—ग०। [२] पै—पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख मे—व्र०। [३] चित चोरनि—सा० मो०, ग० प्रति में हरताल की सहायता से "चोरनि" का "चेरनि"। [४] पटी सी—भा०। [५] तोलै—भा० मो०। [६] वुलाइ—सा० नी० ग० गजा०। [७] दैन करे सो—सा०, देन करै सोस—नी०। [८] नैन मुकराइ जाति—ग० गजा० नैन मुकराय जाइ—नी०।

पथिक-वध।

सदा वसै जो[1] पन्थ मै पथिक वधू तेहि जानि।
बनिजारनि जोगिनि नटी कँगहेरनि वखानि[2] ॥३१॥

[1] ते—भा० मो०। [2] कजारनि पहिचानि—ग० गजा०,
हगहेरनि पहिचान—नी०, वनजारिन जागिनि वनिनि ताहू त्रिविध वखान—सा०।

बनजारिन

एडिनि ऊपर घूमत घाघरो तैसिये सोहति सालू की सारी।
हाथ हरी हरी छाजै छरी अरु जूती चढी पग फूँद फुँदारी।
ऊँचे उरोज हरा घुँघुचीनि के हाँ कहि हाँकति[1] वैल निहारी।
गातनही दिखराइ बटोहिन वातनही वनिजै वनिजारी॥३२॥

[1] हाँकति हाँकति—गजा०।

जोगिन।

डोले बन वन जोर जोवन के जाचकनि राग वस कीने वनवासी वीझि रहे है[1]।
कोगरी वजावति मधुर सुर गावति सु धुनि[2] सुनि सीस धुनि मुनि खीझि[3] रहे है।
मोहे[4] महा पन्नग अनेक अग नग खग[5] कान दै दै कोल भील केते झीझि[6] रहे है।
ठाढे ढिग वाघ बिग[7] चीते चितवत दृग झाँख मृग साखा मृग रोझ रीझि[8] रहे है॥३३॥

[1] विहरे हहै—सा०। [2] सगुन—मो०। [3] रीझि—नी०। [4] सोहे—व्र०। [5] अनगन खग—भा० मो०, पनअनेक अनग खग—नी०, अनेग अग नग—गजा०। [6] केते रीझि—भा० मो०, भालू सीझ—ग० गजा०। [7] बग—मो०, वन—भा०, वीच—व्र०। [8] चितवत झाँख मृग साखा मृग मुख रीझि रीझि—ग० गजा०, रीझ रीझ—भा०।

नटी।

पातरे अग उडै विनु पाँखनु कोमल भापनि प्रेम झिरी की[1]।
जोवन रूप अनूप निहारि के लाज मरै निधिराज सिरी की।
कौल से नैन कलानिधि सो मुख को गनै कोटि कला[2] गहिरी की।
वाँस के सीस अकास मे[3] नाचति को न छकै छवि सोनचिरी की॥३४॥

[1] कोमल वानि चवान बिरी की—ग०। [2] कोटि कला गुनकी—ग० गजा०। [3] से—नी०, पै—ग० गजा०।

कँगहेरनि।

साँवरे अग सरोज से नैन उरोज उठे अठिलात कपोलै।
ऐठति सी भुजमूल उठाय अँगूठनि चालि[1] चवाय सो वोलै।
हाँसी मे डारति फाँसी विसासिन पोहति सी चित टोहति टोलै[2]।
मोरपखा घुँघुचीन के जेवर जेव सो जेवरी वेचति डोलै॥३५॥

[1] अँगूठ नचाय—सा० नी०। [2] डोलै—ग० गजा० भा० सा०, वोलै—नी०।

जाति करम गुन अगन पन[1] नारि अनेक प्रकार।
ताते मै सूछम कछू कही[2] बुद्धि अनुसार ॥३६॥

[1] अग नव—सा०, अन पन—नी०, आपने—गजा०। [2] कही कछू—भा० मो०।

मारग सेन अरन्य तियान कमान, ज्यो भू दृग बान कमी से।
पैखै पुरदर ज्यो पुरनारि गँवारिन सीस लचाइ[1] ससी से।
भोगी भुवप्पति भूपसुतानि अनूपम जानि विलोके वसी से।
रूप मधूनि अँचे उर धूनि सराहि के विप्र वधूनि असीसे ॥३७॥

[1] नवाइ—ब्र०। उपर्युक्त छद केवल ब्र० ग० सा० प्रतियो मे मिलता हे, भा० मो० नी० गजा० प्रतियो मे नही।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कवि देवदत्त कृते पुर वन सेन्या मार्ग वधू नाम तृतीयो विलास।

काम अन्ध कामी[1] जगत लखै न रूप कुरूप।
हाथ लिये डोलति फिरै कामिनि छरी अनूप ॥१॥

[1] अन्धकारी—भा० मो०।

ताते कामिनि एक मी[1] कहन सुनन को भेद।
राचै प्यावै[2] प्रेमरस मेटै मन के खेद ॥२॥

[1] एक ही—भा० [2] राचै पागै—भा०, राचै पावै—मो०, राच्यो पावे—ग०।

रची राम सँग भीलनी जदुपति सग अहीरि।
प्रवल सदा वनवासिनी नवल नागरिन पीर ॥३॥
कौन गने पुर नगर वन[1] कामिनि एकै रीति।
देखत हरै विवेक को चित्त हरै करि प्रीति ॥४॥

[1] पूरब नगर—भा० मो०।

ठाढी ही वाग मे भागभरी मनौ काम भुजगम के विप भोई[1]।
आनि परी चित वीच अचानक जोवन रूप महारस[2] मोई।
नागरि थी[3] पुरवासिनिही कि गँवारि किधौ वनवासिनी कोई।
को गनै भोजन की जन की पन की तन की मन की मति खोई ॥५॥

[1] चोई—भा०। [2] मही रस—सा०। [3] कैं—ब्र०।

अष्टांगवती नायिका।

जा कामिनि मे देखिये पूरन आठौ अग।
ताही वरनौ नायिका त्रिभुवन मोहन रग ॥६॥

नायिका के अष्टाग।

पहिले जोवन रूप गुन सील प्रेम पहिचानि।
कुल वैभव भूपन वहुरि आठौ अग वखानि ॥७॥

यौवन लक्षण।

वालापन को भेदि कै छवि की अकुर होई।
जग मोहै दिन दिन वढै जोवन कहिये सोई ॥८॥

उदाहरण ।

खेलत ही मे भयौ कछु खेल खेलावनहारी[१] भई सब सौते ।
देव जू चौकि चिते चकितै ह्वै चवाव[२] करै उठि आपनी गौते ।
भोरई[३] साँझ ते सूर उदौ लगि भोरई[४] साँझ ते सूर उदौते ।
रूप की ओप अनूप घरी पल वेलि[५] सी बाढति कालिह परौते ।।९।।

[१] खेलावनवारी—भा० मो० । [२] चकिवै सु चवाव—भा० । [३] औरई—भा० । [४] औरई—भा०, ह्वै रही सूर उदौ लगि साँझ ते औरई—सा० । [५] बालि—नी० ग० गजा० भा० मो० ।

लहलही बैस उलही है दुलही की देव[१] उर मे उरोज जैसे उमगत[२] पाग है ।
अनगिने दिनन[३] अनूप द्युति आनन की देखत ही उपजै[४] अनूठो अनुराग है ।
तैसीये तरल तीखे अनसीखे[५] नैनन ते[६] निचुरै सनेह[७] सूधो भामते[८] को भाग है ।
सोने से सुरगनि ते चपा चारु अगनि ते रगनि सो उठत[९] तरगनि सुहाग है ।।१०।।

[१] देव दुलही की—नी० ग० । [२] उमरत—मो०, उमडत—व्र० । [३] गुनन—सा०, दिन मे—नी० ग० गजा० । [४] उपजत—भा० मो० । [५] अनमिख—सा० । [६] नैनन के—भा० ।[७] निस दिन नेह—ग० गजा०, निस दिन सनेह—नी०, निचुरै निपुन—भा०, चुरेन सनेह—मी० । [८] भामती—नी० ग० गजा० । [९] सो ऊचन—भा० मो० ।

ज्ञात-यौवना ।

पीछे तिरीछे कटाछनि[१] सो इत वै चितवै री जला ललचो है ।
चौगुनो चैन चवाइनि के चित चाई चढै है चवाई मचो है ।
जोवन आयो न पाप लग्यो कवि देव रहे गुरु लोग रिसो है ।
जी मे लजैयै जो[२] जैयै जितै तितै पै यै कलक चितैयै जो सो है ।।११।।

[१] कटाछ—नी० । [२] जो मे लजैयै औ—भा० मो० ।

रूप-लक्षण ।

देखत ही जो मन हरै[१] सुख अँखियन को देइ ।
रूप बखानै ताहि जो जग चेरो कर लेइ ।।१२।।

[१] जो वन रहै—नी० गजा ।

उदाहरण ।

कुन्दन से अग नव जोवन सुरग[१] उठे उरज उतग धन्य प्यौ जु परसत है ।
सोहति किनारी वारी तनसुख सारी देव सीस सीसफूल अधखुल्यो दरसत है ।
बेंदिया जराउ बडे मोतिन सो नीकी नथ हँसत[२] तरौननि सो रूप सरसत है ।
गोरी गजगौनी लौनी नवल दुलहिया के[३] भाग भरे मुख पै सुहाग बरसत है ।।१३।।

[१] कुन्दन से अग नव जोवन से सुरग—नी०, नव जोवन सोरग—सा०, जोवन तरग—व्र० । [२] हलत—भा० । [३] दुल्हैया तेरे—भा० ।

घूंघट खुलत अभे[१] ऊलट ह्वै जैहै देव उद्धत मनोज जग[२] जुद्ध जूटि परैगो ।
ऐसी न सुरोक सिय को कहै अलोक वात[३] लोक तिहूँ लोक की लुनाई लूटि[४] परैगो ।

दैयनि[५] दुराउ मुख नतरू तरैयनि को मडल औ मटकि[६] चटकि टूटि परैगौ।
तो चितै सकोचि सोचि मोचि मद[७] मूरछि कै छोरते[८] छपाकर छता सो छूटि[९] परैगौ ॥१४॥

[१] आवै—ब्र०। [२] ओज—नी० ग० गजा०। [३] ऐसी न सरूप सीये को कहै अलोक वात—ब्र०, ऐसी न सुरोक सीक को के कहे अलोक वात—सा०, ऐसी न सुरोक सिख को कहै अलक वात—ग० गजा०, को कहै अलोक वात सो कहे सुरोक सिय—मो०,को कहि अलोक वात सो कहै सुरोक सिय—भा०। [४] लटि—मो०। [५] दैवनि—भा०,दैपनि मो०। [६] मडल उमडि कै—नी०। [७] मृदु—सा०, मग—सा०, मेड—गं० गजा०। [८] दौरिकै—सा०। [९] टूटि—नी०।

गुण-लक्षण।

काइक वाचिक करम करि बाँधै सव को चित्त।
राव रक रीझै[१] गुनहि होइ जगत को मित्त ॥१५॥

[१] माने—नी० ग० गजा।

उदाहरण।

गाइ वजाइ नचाई कै नैन[१] रिझाइ के भाव[२] वताइवो[३] सोह्यो।
चित्र विचित्र कला कविता रस देव जू चातुरी सो[४] चित पोह्यो[५]।
भोजन भूषन भाष न भेप विसेप सवै[६] रचना रुचि रोह्यो।
रूप उजागरि[७] राधे अहे गुनआगरि[८] तै जगमोहन मोह्यो ॥१६॥

[१] नारि—भा० मो०। [२] नाथ—भा०। [३] वतायो सु—नी० ग० गजा०, तताइवो—म०। [४] देव जू चित्र विचित्र कला कविता रस चातुरी सो—नी० ग० गजा०। [५] चोह्यो—नी०। [६] रचै—भा० मो०। [७] ए गुन आगरि—नी० ग० गजा०। [८] जग मोहनी—नी० ग० गजा।

वेदनहू नने गुन गने[१] अनगने भेद भेद विन जाको गुन निरगुनहू पहै[२]।
केतिक[३] विरच्यो ऐसी रचै रुचि[४] रच्यो महा सुखनि को सच्यो जहाँ वच्यो वृजभूप है।
सोई[५] सुनि सुनि अवराधा अव राधा जस जानत न देव कोई कहा धौ अनूप है।
तेज है कि तप है कि सील है कि सम्पति है राग है कि रग है कि रस है कि रूप है ॥१७॥

[१] ०—मो०, जाके—भा०। [२] निरगुन रूप है—ग० गजा०, पुहै—ब्र०। [३] कौतूक—सा०। [४] ऊबि—ब्र०, डरि—ग०। [५] तोही—भा० मो०।

शील-लक्षण।

कोमल वचन प्रसन्न मन सज्जन रजन[१] भाइ।
दीन दया थिरता छिमा ये कहु सील सुभाइ ॥१८॥

[१] सज्जन हूजन—ब्र०।

उदाहरण।

भोन भरे सगरे वृज सौह[१] सराहत तेरेई[२] सील सुभाइन।
छाती सिराति सुने सवकी चहु ओर ते चोप चढी चित चाइन।
ए री वलाइ ल्यो मेरी भटू सुनि[३] तेरी हौ चेरी परौ इन पाइन।

सौतिहू की अखियाँ सुख पावति तो मुख देखि[४] सखी सुखदाइन ।।१९।।

[१]सोरु—सा०, सो जु—नी० गजा। [२] है तेई—सा०। [३] एरी अहे ठकुराइन सु तेरी भटू सुनि—गजा० ऐरी अहे ठकुराइन मेरी सु भटू सुनि—ग०। [४] देखे—नी० ग० गजा०।

नेह भरी सब देह[१] खरी रस मेह झरी अँखियाँनि विसेषी।
भौहनि मे झलकै मुसकानि[२] सी काम कमान मनौ अवरेखी।
देव सुधा बरसै[३] मृदु बोल सुधानिधि[४] मे न इती[५] रुचि[६] पेखी।
कैसेहू क्योहू[७] रिसात[८] जु पै सरसात घनी अरसात न देखी ।।२०।।

[१] ते सदेह—भा०, रस देह—मो०। [२] मुक्तान—नी० गजा०। [३] सुभाव रखे—भा०, सभा बरसे—मो०। [४] सुधाधर—नी० ग० गजा०। [५] रती—सा०। [६] छवि—ग० गजा०। [७] केहू—सा० नी० गजा०। [८] सिरात—ग०।

प्रेम-लक्षण।

सुख दुखहू मे एक सी तन मन बचननि प्रीति[१]।
सहज नेह नित-नित नयो जहाँ सु प्रेम प्रतीति ।।२१।।

[१] मीति—नी० ग० गजा।

उदाहरण।

रीझि-रीझि रहसि-रहसि हँसि-हँसि उठ सासै[१] भरि आँसू भरि कहति दई-दई।
चौकि-चौकि चकि-चकि औचकि उचकि देव छकि-छकि बकि-वकि उठति[२] बई बई।
दुहुन के गुन रूप[३] दोऊ बरनत फिरै घर न[४] थिरात रीति नेह की नई-नई।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय राधा मन मोहि-मोहि मोहन भई-भई[५] ।।२२।।

[१]हासै—नी०। [२]परति—नी० ग० गजा। [३] रूप गुन—नी० ग० गजा०। [४] पल न—भा०। [५] भई-भई—नी० ग०। केवल सा० प्रति मे उपरोक्त छन्द त्रुटित है।

औचक अगाध सिन्धु स्याही को उमगि आयो तामे तीनो लोक बूडि गये एक भग मै।
कारे-कारे[१] कागद लिखे ज्यौ कारे आखर सु[२] न्यारे करि बाँचै कौन[३] रचि[४] चित भग मै।
नैननि मे[५] तिमिर अमावस की रैनि अरु जम्बू रस[६] विन्दु जमनातल तरग मै।
यो ही मन मेरौ मेरे काम को न रह्यो माई[७] स्याम रग ह्वै करि[८] समान्यो स्याम रग मै ।।२३।।

[१] कोरे-कोरे—भा०, कोरे-कोरे—मो०। [२] पै कारेई बरन लिख्यो—सा०, लिखे ते चारु अक्षर सु—नी०, लिखे ते चारु अक्षरनि—गजा०, आखर लिखे ते चारु कागदनि—ग०, कागद लिखे कारे आखर ज्यो—ब्र०। [३] न्यारे कौन बाँचै कौन—ग०। [४]होत—सा०, नाचै—नी०, जाँचै—ग० गजा०। [५] आँखिन मे—सा० नी० ग० गजा०। [६] जम्बू नद—ग० गजा। [७] आली—सा०। [८] ह्वै कैसो—नी० ग० गजा०।

सो सजोग वियोग करि द्वै विधि[१] बरनत प्रेम।
सुखदायक सजोग मे[२] दुख वियोग को नेम ।।२४।।

[१] छै विधि—सा०, त्रिविधि सु—नी० गजा०। [२] है—ब्र०।

तेरो कह्यो करि-करि जीव रह्यो जरि-जरि हारी पाँई परि-परि तौ न कीन्ही तै सम्हार[१]।
ललन विलोक देव पल न लगाए तवया कल न दीन्ही तै छलन उछलनहार।

ऐसे निरमोही सो सनेह बाँधि हौं बँधाई आपु[१] विधि बूड्यो व्याधि[२] बाधा सिन्धु निराधार।
ए रे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीने अब एक बार दै कै तोहि मूंदि मारों एक बार ॥२५॥

[१] ०—भा० मो० नी०। [२] आय—भा०। [३] व्याध—भा० मो०।

कुल-लक्षण।

गुरुजन पूजन[१] धर्मपन लीने लोक विचार।
लाज काज गौरव जहाँ सोई[२] कुल आचार ॥२६॥

[१] पूजा—नी० गजा। [२] सो कहि—मा०।

उदाहरण।

आपने ओक[१] रहे अवलोकि तिलोक की लीक[२] सदा निरजोगी।
लाज के काज सुकाज[३] करें मुनि साधु समाज असीस दै पोसी[४]।
कीन्ह प्रसन्न सबै करि सेवन काहू कहूँ गुर देव न[५] दोसी।
दो कुल निर्मल सो कुल कीरति गोकुल सो कुल नारि[६] न तोसी ॥२७॥

[१] ऊकि—भा०, ऊक—मो०। [२] विलोकिक एक—भा०, तिलोक की एक—मो०। [३] साज सुकाज—सा०। [४]दयोसी—भा०। [५] गुरु लोगन—नी० ग० गजा०। [६] मैं नारि नारि—सा० नी०।

तेरे अनगिने गुन रतन जतन करि गुरुजन पावैं पैरि प्रेम पखियन मैं।
पार न लहत गहराई न गहत देव केवल सुधाई मधु जैसे मखियन मैं[१]।
एरी कुलवधू मेरी राधे ठकुराइनि हौं पाउनि परति तेरी चेरी सखियनि मैं।
सील की सलिलनिधि विधि तू[२] बनाई जाके राजति जहाज भरी लाज अँखियन मैं ॥२८॥

[१] मेसे भखियन—नी० ग० गजा०। [२] विधिनै—मा०।

वैभव-लक्षण।

जहाँ सहज सम्पत्ति सुखद[१] प्रभुता को अभिमान[२]।
थिरता गति गम्भीरता[३] वैभव ताहि बखान ॥२९॥

[१] सपती न सुख—नी०, दम्पती न सुख—गजा०, दम्पति सुखद—ग०, सपत सुखनि—मो०, सम्पति सुपुनि–मो०, सम्पति सुपुनि—भा०। [२]अनुमान—नी० ग० गजा०। [३] गजगम्भीरता—नी०, जग गम्भीरता—गजा०।

उदाहरण—

फटिक सिलानि सौं सुधार्यो सुधा मंदिर उदधि दधि को सो अधिकाइ[१] उमगै अमन्द[२]।
बाहर तैं भीतर लौं भीति न दिखैये देव[३] दूध[४] को सो फेन फैल्यो आँगन[५] फरसबन्द।
तारा सा तरुनि तामे ठाढी झिलमिली होति[६] मोतिन की जोति मिल्यो मल्लिका को मकरंद।
आरसी अम्बर मे आभा सी उजारी लागे[७] प्यारी राधिका की प्रतिबिम्ब सी लगत चन्द ॥३०॥

[१] उफनाय—भा० मो०। [२] अनद—ग०, अधिक ह्वै झलके अमद—ब्र०। [३] दिखाई देत—भा० मो० ब्र०। [४] छीर—भा० मो०। [५] चाँदनी—भा० मो०। [६] देव जगमग होत—भा० मो०, ठाढी झिलमिलाय—सा०। [७] देव—ब्र०, ठाढी—भा० मो०।

रूपे के महल धूपे अगर उदार द्वार झँझरी झरोखा मूदे चारू चिकराती मैं।
ऊध अध मूल तूल पटनि लपेटे चहुँ पटल सुगन्ध सेज सुखद सुहाती मै।
सिसिर मे सीत प्रिया प्रीतम सनेह दिन छिन से बिहात देव राती नियराती मै।
केसरि कुरग सार रग से लिपत दोऊ दुहूमे दिपत औ छिपत जात छाती मै ॥३१॥

नी० गजा० प्रतियो मे वैभव के उपरोक्त दो उदाहरणो के स्थान पर "पामरिन पाउडे" तथा "उज्जवल अखड खड" छद है। ग० सा० प्रति मे "पामरिन पाउडे", "फटिक सिलानी सो" एव "उज्जल अखड खड" छन्द है। "रूपे के महल" छन्द इन प्रतियो मे नही है।

भूषण-लक्षण—

चमतकार रचनानि करि बहु निधि माडै[1] गात।
भूपन वेस विसेप कहुँ[2] अलकार अवदात ॥३२॥

[1] मोहै—ग० गजा०। [2] विसेप करि—सा०, विसेषहू—नी० ग० गजा०।

उदाहरण।

कचन किनारीवारी सारी तासकी मै आसपास झूमी[1] मोतिन की झालरि इकहरी।
सीसफूल वेना[2] वेदी वेसरि ओ बीरनि[3] मै हीरनि की भीर मै हँसनि[4] छवि छहरी।
चन्द के वदन भानु भई वृपभानजाई उवनि लुनाई[5] की लुवनि[6] की सी लहरी।
काम घाम घी ज्यो पथिलात घनस्याम मन क्यो सहै समीप देव दीपति[7] दुपहरी ॥३३॥

[1] तनी—भा०। [2] वेदा—ग०, वेनी—सा०। [3] बारनि—सा०। [4] भीरत मे हँसनि—सा० ग० गजा०, भीर मे अधिक—भा० मो०। [5] यौवन लुनाई—भा०। उवनि जुन्हाई—ग० गजा०। [6] लुनाई—मो०। [7] देखै या—सा०। केवल नी० गजा० प्रतियो मे इस छद के पश्चात् "कुदन से अग" छन्द अधिक है।

गोरे मुह गोल हरे हँसति कपोल वडे लोचन विलौल बोल[1]लोने लीन[2] लाज पर।
लोभा लागे लाल लखिबे को[3] कविदेव छबि[4] गोभा से उठत रूप सोभा के समाज पर।
वादले की सारी दरदावन[5] किनारी जगमगे जरतारी झीनी झालरि मे साज पर।
मोती गुहे कोरन चनक चहुँ औरन ज्यो तोरन तरैयनि की तानी[6] द्विजराज पर ॥३४॥

[1] लोल—भा० मो०। [2] लोने निज—सा०। [3] सखि सोभा—सा०, लखि सोभा—प्रतियो मे इस छन्द के नी० ग०। [4] ललचात लखिवें को देव—गजा। [5] वर दामन—भा०। [6] ताकी—मो०।

अष्टांगवती।

सुन्दर जोवन रूप अनूप महा गुन ज्ञान की रासि मची तू।
सीलभरी कुल दोऊ[1] उजागर नागरि पूरन प्रेम पची तू।
भाग को भौन सुहाग सो भूपित भूमि को भूषन सॉची सची तू।
आठहूँ अग तरगति रग[2] सवै रुचि[3] सचि विरचि रची तू ॥३५॥

[1] वीच—सा०, रूप—नी० गजा०। [2] अगनि रग तरग—ग० गजा०। [3] सुचि | भा० मो०।

थोरीये वैस विसाल लसै कच[1] टेढी चितौनी पै[2] सूधी चलै पथ।
गोरे से अग[3] कररे कुचवृत[4] लाज लची[5] गुन ऊँचे मनोरथ।
लक दुर्‌यो[6] उमग्‌यो उर[7] देव सु बोल हरे[8] गरुई सी गिरा[9] लथ।
नैन वडे वडे नैसुक अजन मोती वडे वडे नैसुक सी नथ॥ ३६॥

[1] करि—सा०, कुच—नी० ग० गजा०। [2] चितौनी मे—भा० मो०, चितौनि यो—सा०। [3] कोवरे से अग—भा० मो०, कोरे से अग—नी० ग० गजा०। [4] कुलवृत—नी० ग० गजा०। [5] तची—ग०। [6] लग्यो—भा० मो०। [7] कुच—सा०। [8] देव उठे कुच लक दुरो लटि बोल हरे—नी० ग० गजा०। [9] गरा—नी० ग० गजा०।

एहि विधि आठौ अग करि[1] पूरन नारि जु होइ।
ताही वरनी नायिका जेहि वरनत कवि लोइ[2]॥३७॥

[1] कहि—नी०। [2] तिहि वरनै नायिका हौं जिहि वरनी कवि लोइ—भा० मो०, मो० प्रति मे चरण का स्वीकृत पाठ हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे है।

केसव आदिक महाकवि[1] वरनी सो वहु ग्रथ।
हौंहू वरनत ताहि अब सरस अपूरव पथ॥३८॥

[1] आदि महा कविन—नी० ग० गजा० सा०।

एक वार जद्यपि कही मति प्राचीन प्रकास।
भाव सहित सिंगार रस रचिकै भावविलास॥३९॥
रसविलास रचि ग्रथ मो कहत दूसरी वार।
वही नायिका भेद सव[1] सुनहु नवीन प्रकार॥४०॥

[1] अव—ग०।

जौ[1] तिय जोवन रूपवती कुल सील सुधा गुन गौरव रोही।
प्रेम भरी कुल कीरति मूरति भूषन भेष विभौ उभरोही।
देव जिन्हे[2] अभिमान वडो सनमान[3] वडो ते सवै छवि छोही।
भोगी भुवाल के नैन सरोजन रोज निहारै मनो जक मोही॥४१॥

[1] सो—ग०। [2] जी है—सा०। [3] मन मान—ग०। उपर्युक्त छन्द केवल ब्र० ग० सा० प्रतियो मे है, भा० मो० नी० गंजा० प्रतियो मे नही।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलास कवि देवदत्त कृते अष्टांग नायिका वर्णनम् नाम चतुर्थो विलासः।

नायिका-भेद।

आठ भेद करि नायिका[1] वरनत है कवि सन्त।
भेद भेद प्रति होत है अन्तरभेद अनन्त॥१॥

[1] नायकन के—नी० ग० गजा०, नारीन के—सा०।

जाति कर्म गुन देस अरु काल वहिक्रम जान।
प्रकृत सत्व नायिका के आठौ भेद[1] वखान॥२॥

[1] अग—ब्र०, वेद—भा० मो०।

जाति-भेद ।

पद्मिनि चित्रिनि सखिनी हस्तिनि कहौ बिचारि ।
जाति भेद यहि भाँति सो कही नायिका चारि ।।३।।

पद्मिनि-लक्षण ।

हस मेष भाषा गमन[१] लघु भोजन मृदु हास ।
सती सत्य[२] सील सुचि पद्मिनि पद्म सुबास ।।४।।

[१] हस भाष हसै गमन—भा० । [२] सत्ति—नी०, सति—गजा०, सती—ग० ।

उदाहरण ।

सरद कैं वारिद[१] मै इन्दु सो लसत देव सुन्दर वदन चन्द्रिका[२] सो चारु चीर है ।
सोधो सुधाविन्दु मकरन्द सी मुकुतमाल लपटी[३] मनोज तरु मजरी सरीर है ।
सीलभरी सलज सलोनी मन्द[४] मुसकानि राजै राजहस गति गुननि गहीर है ।
घेरी चहुँ औरन ते मोरन की भीर भारी मोरन की भीर मे चकोरन की भीर है ।।५।।

[१] पारद—मो० । [२] चाँदनी—नी० ग० गजा० सा० । [३] लिपत—भा० मो० । [४] मृदु ग० गजा० ।

चित्रिणी-लक्षण ।

मोर मेप भूषन वचन[१] गज गति[२] अति सुकुमारि ।
चचल नयनी चितहरनि चतुर चित्रिनी नारि ।।६।।

[१] वसन—भा० । [२] राजत—सा० ।

उदाहरण ।

देखी न परत देव देखिवे की परी वानि देखि देखि दूनी[१] दिख साथ उपजति है ।
सरद उदित इन्दु बिन्दु सी लगत लखे[२] मुदिन मुखारविद इदिरा लजति है ।
अद्भुत ऊष सी पियूप सी मधुर बानी मुनि सुनि श्रवननि भूख सी भजति है ।
मन्त्री कर्‌यो[३] मैन परतन्त्री कर्‌यो[३] बैननि के विना तार तन्त्री जीभ जन्त्री सी बजति है ।।७।।

[१] दूती—भा० मो० । [२] लसत लखे—भा० । [३] कह्यो—गजा० ।

शखिनी-लक्षण ।

दीरघ सिर कर चरन कटि लघु नितम्ब कुच नैन ।
सुलप छमा[१] सन्तोष मुद[२] सखिनि तीछन[३] बैन ।।८।।

[१] सुलघु छमा—नी० ग० गजा० । [२] वद—सा० । [३] तिक्त न—भा० ।

उदाहरण ।

कोप भरी लघु गुच्छ फरी[१] उर वात चले[२] तरु डार सी डोलै ।
काम छरी सी लगे उछरी सी फिरै मछरी सी सुभाव विलोलै ।
भौहे चढी कुटिलै अखियाँ अति तीखे[३] कटाछनि चित्त न खोलै ।
प्यारे सो रुसि रहै विन दोप बिना रिस रीस रिसाइ कै बोलै[४] ।।९।।

[१] इल गुच्छ फरी—नी० ग० गजा०, लघु लुच्छ सरी—सा०, गुप्त परी—भा० ।
[२] लगे—नी० ग० गजा० । [३] तीख—मो०, तीखी—भा० । [४] रिसानी सी डोलै—भा० ।

हस्तिनि-लक्षण ।

थूल चरन कर[१] अधर कटि भारी कुच भुज जानु ।
ठिगनी बहु भोजन गमन हस्तिनि तिय पहचानु ॥१०॥

[१] कर चरन—मो०, सुकर पद—भा० । [२] भुज कुच—नी० ग० गजा० ।

उदाहरण ।

गुलगुली गोल मखमल[१] कैसो गेंदुआ[२] गडै न गडी[३] जी मे जऊ करत ढिठाई सी ।
चोर की सी गठरी छुटै न छतियाँ ते मुख लागत अँध्यारेहू न लागत मिठाई[४] सी ।
भूखे को सो[५] भोजन न भूलत सवाद नही नैकहू उबीठे[६] नये नेह की इठाई सी ।
सुरत सँयोग[७] को नही न करै निस दिन भोग को गुपत गुपचुप की मिठाई सी ॥११॥

[१] मखतूल—भा० । [२] गेंदुआ—नी० ग० गजा० मा० । [३] गुटी—भा० मो० व्र० ।
[४] मिठाई—भा० । [५] भूखेन को—नी०, भूखन को—ग० गजा० । [६] उमेठे—भा०,
ते घटे न—मा० । [७] समाज—सा० ।

कर्म-भेद ।

कर्म भेद करि नायिका तीन प्रकार बखानि ।
सुकिया परकीया कहौ सामान्या अरु[१] जानि ॥१२॥

[१] उर—नी० ग० गजा० सा० ।

स्वकीया-लक्षण ।

कायिक वाचिक मानसिक पति रति[१] तीनौ कर्म ।
तासो कवि सुकिया कहै लिये सकल कुल धर्म ॥१३॥

[१] रत—नी० ग० गजा० ।

उदाहरण ।

सीलभरी बोलति सुसील बानी सबही सो[१] देव गुरुजननि की लाज सो लचि[२] रही ।
कोमल कपोल पर दीसी हरदी सी दुति चूनी[३] सी सकुच मुसकानि मैं मचि रही ।
लालन की लाली अखियाँनि मैं दिखाई देत अन्तर निरन्तर ही प्रेम सो पचि रही ।
कुँवरि[४] किसोरी मुख मोरी करैं सखिन[५] सो चोरी चोरा[६] चित गति रोरी सो रचि रही ॥१४॥

[१] सही सो—नी०, सही सोहे—ग० गजा० । [२] सचि—नी० गजा० । [३] चून—नी०
ग० गजा० सा० । [४] कोवरी—सा० । [५] सखियन—भा० । [६] चोरा चोरी—भा० ।

परकीया-लक्षण ।

काइक वाचिक पतिहि रति मनसा उपपति[१] जुक्त ।
गुप्त तजै कुल धर्म को[२] सो परकीया उक्त ॥१५॥

[१] उपजत—भा०, उपजिति—मो० । [२] गुप्त प्रेम पर पुरुष को—भा० । [३] परकिया
तासो कहै कवि कोविद मति उक्त—सा० ।

उदाहरण ।

मारी विपतिन की पतिऊ सग[१] पौढी गूढ कोरे मैं अँकोरी देव कामागि निसकती ।
मानेहूँ सुरति असुरत विमूरत कहूँ भौहनि[२] मरोरि मुरि उर ते खिसकती ।

मीत[३] की चितौनि चित वीच चुभि[४] खुभी रहै उभी रहै आँखिनु करेजनि[५] कसकती।
सुपने के मिसु करि रोइ उठे रिस करि मोही मनही मन मसूसनि सिसकती[६] ॥१६॥

[१] पति उछग—भा०, पतिहू सग—व्र०, पति जु सग—सा०। [२] मानेहू सुरति पै सुरत कहूँ लागी देव भौहनि—भा०। [३] नीति—भा० मो०। [४] चीति चुभि—नी० ग० गजा०, नित्त चढि—सा०। [५] करेतिन—नी० ग० गजा०। [६]मसकती—ग० गजा०।

सामान्या-उदाहरण।

वाचकही सब सो रचै करै जगत मनुहारि।
तन मन धन चाहै सदा सो सामान्या नारि ॥१७॥

उदाहरण।

हेरतही हरि लेत हियो बस बिस्व कियो रस की बतिया मै।
जोवन रूप की ओप अनूप सुन्यो गुन एतो काहू न तिया मैं।
कन्त कियो धनवन्त निहारि कै[१] चूकत ना अपनी घतिया मै।
हाथ[२] दई हँसि हौस भरी मुँदरी कर देखि[३] धरी छतिया मै ॥१८॥

[१]विचारि कै—ग०। [२] हाय—भा०, हाथी—नी० ग० गजा०। [३] देत—ग०।

गुण-भेद।

कहौ सत्त रज तम त्रिगुन उत्तम मध्यम अन्त।
तीनि भाँति गुन[१] भेद करि कहत नायिका सन्त ॥१६॥

[१] गुर—नी०।

सत्व प्रकृति उत्तम कह्यो मध्यम रजस[१] सुभाइ।
अन्त तमोगुन प्रकृति तिय वरनत कवि समुदाइ[२] ॥२०॥

[१] राज—व्र०, रजत—सा०। [२] है कविराइ—नी० ग० गजा० सा०।

तीनों की चेष्टा।

अहितहुँ सो[१] हित उत्तमा सम सो सम मधि[२] जानि।
अधमा हित हूँ सो अहित[३] तीनो तिय पहचानि ॥२१॥

[१] अनहित सो—भा०। [२] मध्यम —ग० गजा०, समाधि—नी०, सु मधिमा—सा०।
[३] नहित—भा०।

उत्तमा-उदाहरण।

धोखेहू कहै[१] जो कटु वोल तो कटाऊँ[२] जीभ छार डारौ आँखिनि की आँसू झलकनि पै।
कौन कहै कैसी सौति सो तो ठकुराइनि लिखी है बृज वालनि के भाल फलकनि[३] पै।
ह्वै रही नजीकी हौ न जीकी दुचिताई रहौ[४] पी की प्रानप्यारी लहौ[५] नीकी ललकनि पै।
दूजो नही देव देव[६] पूजौ राधिका के पग[७] पलकन[८] लाऊँ धरि ध्याउँ[९] पलकनि पै ॥२२॥

[१] कहूँ—सा०, कहौ—भा०। [२] कढाऊँ—व्र०। [३] पलकनि—नी० गजा० व्र०।
[४] गहौ—ग० गजा०। [५] रहौ—व्र०। [६] ०—भा० मो०। [७] पग पर—भा० मो०।
[८] पलकत—भा० मो०। [९] ध्यान—भा० मो०, ल्याउ—ग० गजा०। भा० मो० नी० गजा० प्रतियो मे उत्तमा नायिका के २३ तथा २४ सख्या के द्वितीय तथा तृतीय उदा-

हरण छन्द नहीं है। गो० प्रति में पाठ [illegible] है, और इस छन्द को भी पाठ में सम्मिलित [illegible] है। [illegible] प्रति [illegible] दोहा में पाठ मिलता है।

रावरे पागन ओट[1] [illegible]
गारी [illegible]
आइ जु आइ [illegible]
देवी हौं कौन [illegible] ॥[illegible]॥

[1] ओप—प्र०। [2] [illegible]—गो०।

[illegible] सो [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥[illegible]॥

[1] पद [illegible]—गो०, [illegible]—प्र०। [2] [illegible]।
[4] कौन हौं—ग०। नी० [illegible] प्रतियों में [illegible] है।

मध्यमा-उदाहरण।

मैं [illegible]
मोहन मान [illegible]
[illegible] भयो [illegible]
[illegible] प्यारी सु प्यारे [illegible] ॥[illegible]॥

[1] [illegible]—ग०। [2] [illegible]—प्र०, [illegible]। [3] [illegible]—नी० ग० गजा०।

कौन भयो [illegible]
पै अब [illegible]
देखिहै देव [illegible]
[illegible] ॥[illegible]॥

[1] [illegible]—ग०, [illegible]—गो०। [2] [illegible]—ग०। [illegible] ग० प्रति में [illegible] क्रम [illegible] है। नी० गजा० प्रतियों में यह छन्द नहीं है।

अधमा-उदाहरण।

प्यारी [illegible] देव [illegible]
प्यारी [illegible] प्यार [illegible]
कै वह प्यार [illegible] प्यारी[3] [illegible] बैठी [illegible][4]।
प्यारे परावे नो कौन [illegible] प्यारी [illegible] ॥[illegible]॥

[1] पैये—गजा। [2] जनि—नी० ग० गजा०। [3] अप्यारी—प्र०। [4] बनैये—ग० गजा०, चलैये—नी०।

देश-भेद।

सात दीप नव खड मे सुनियत देस अनत।
बरनि बरनि थाके तिनहे[१] व्यासादिक मति मत ॥२८॥

[१]सबै—नी० ग० गजा०।

तिनमे जतुद्वीद के सुने कछू जे देस।
बरनत तिनकी नायिका सुभ लक्षन सुभ वेष[१] ॥२९॥

[१] देश—नी० ग० गजा०।

मध्य[१] मगध कौसल कहौ पाटलपुत्र कलिग[२]।
कामरूप उत्कल कहौ[३] और बखानौ बग ॥३०॥

[१] मद्धि—नी० ग० गजा०। [२] पाटल बहुर कलीन—सा०। [३] उतकला बहुरि—सा०।

कहौ विध बन[१] मालवा और अभीर विराट।
कुकुन केरल[२] द्रविण अरु कहि तिलग[३] करनाट ॥३१॥

[१] झारखड अरु—व्र० सा०। [२] केर—नी० ग० गजा०। [३] कहो परम—नी०।

सिधु देस गुर्जर बरनि मरु कुरु अरु करवीर[१]।
पर्वत अरु सौवीर कहि औ भुटन[२] कसमीर ॥३२॥

[१] मारु कुर कुरवीरह—सा०। [२] भुटत और—सा०।

गान्धारादिक देस कहि सुनियत देस अनन्त[१]।
नीरस नारि निहारियत[२] बरनत नाहि न सत[३] ॥३३॥

[१] दिस दिस देस विदेस की नारी और अनन्त—भा०। [२] निहारितव—मो०, निहारितित—नी० ग० गजा०, निहारि तेहि—सा०। [३] नाहि न बरनत सत—ग०

मध्य देश-वधू।

कोविद कामकला सकलानि[१] कलानिधि सी गुन रूप निधानै।
गीत सगीत विनीत सदा सुभ कर्म पुनीत सबै सुख सानै।
देव अचार विचार रची सुचि साची सची रुचि को पहिचानै।
अन्तरवेद विचच्छन[२] नारि निरन्तर अन्तर की गति जानै ॥३४॥

[१] मकलानि—भा०। [२] विजच्छन—सा० नी०।

मगध-वधू।

प्रेम मद[१] मगन उछाह उमगन भरी मग न धरति पग घूमति सी धनीये।
खोले उर बाँहे रति पैरति अथाहै उपभोग सिधु गाहै[२] परिरभ सुख सनीये।
सुन्दर[३] सरस रस बस कीनी प्यारो पिय न्यारो हिय ते न होत[४] देव बिधि बनीये।
रहसि सिरावे काम पावक दगध पीर मगध की मानिनी अगाध गुन गनीये ॥३५॥

[१] मन—ग०। [२] माहे—भा०। [३] सुन्दरी—सा०। [४] न्यारो न रहत ही ते—नी० ग० गजा०।

कौशल-वधू।

सील[१] रुचि रुचि सचि रुचिर विरचि रची रचक सी सची रूप वचित सी दामिनी।

विमल विचित्र विधि चित्र की सी लिखी चारु रचना चरित्र सो विचित्र गति[२] गामिनी।
भोग उपभोग अग सग सुख जोग जामे प्रेम सो प्रगल्भ लाज सतत[३] विरागिनी।
देव पति देवता दिपति दुति देवता सी काशी देश कौशल[४] कुशल कुल कामिनी ॥३६॥

[१] सीत—नी० गजा०। [२] पवित्र गति—सा०, विचित्र मत्त—नी० ग० गजा०। [३] सजत—नी० ग० गजा०, सनत—भा० मो०। [४] काशी देस कौसल कुटिल—नी० ग० गजा०, देखी जग मे कुशल एक कौशल—भा०।

पाटल-वधू।

चचल दृगचल चपल चितवति चोरि चितवति चाउ[१] चढी चारुता प्रगट ही।
हौस भरी हँसति लसति हुलसति हिये विलसति[२] टालम सों[३] नेह के निकट ही।
देव हरपत वरपत मानो मेन रस[४] सरस वचन रचना[५] सों रचि रटही।
मोह की अँध्यारी मे उज्यारी ह्वै रमनि रनि प्यारी पटना की पट लपट निपटही ॥३७॥

[१] चाप—नी० ग० गजा०। [२] विलसति हिये हुलसति—ग० सा०। [३] बाल मनो—भा० मो०, वाम मनो—नी० ग० गजा०। [४] मग—नी० ग० गजा० सा०। [५] रसना—भा०मो० नी०ग० गजा०।

उत्कल-वधू।

विरज विराजै रज रजित कियो है पति[१] गुंज अलि पुंजन[२] ले कीनी कुजगली सी
मूंदे मुख वाहिर विनत[३] विन वात डोले अन्तर निरन्तर उनींदी[४] भाति भली सी।
रहत अवासही सुवास सो वसायो वन देव अनुकूली मन फूली तन फूली सी।
खेलति सहेलिन नवल वाल वेलिन[५] मैं देखी उतकली नारि अद्भुत कली सी ॥३८॥

[१] पोति—भा०मो०नी० ग० गजा०। [२] कु जन—मो०। [३] विजन—सा०। [४] उदीनी—मो० ग० गजा०, उनोदी—भा०। [५] चेलिन—भा०। [६] अवुज की कली सी—भा०, देखी जाति चली कोई अद्भुत कली सी— सा०।

कलिंग-वधू।

मदन के मद मतवारीन वदन[१] झांके मदन थिरगति न सिरानि रनि रग ना।
प्रीतम के रूप को सुधा[२] सो अँचवति तऊ[३] प्यासीये रहति जो नहति सुख सग ना।
प्रेम रस वस[४] प्यावै प्यार सो अधर रस लागत नखच्छत करति भुव[५] भग ना।
अग अग उमगि अनग अपजावति अगिनगन उघात न कलिंग की कुलगना ॥३९॥

[१] वहून—नी० ग० गजा०, ग० प्रति मे "हून" पर दूसरे हस्तलेख मे "भूमे" पाठ है, वदून—मो०, वभूमि—भा०। [२] मया—नी० ग० गजा० भा० मो०। [३] तन—नी० ग० गजा०भा० मो०। [४] भावै—सा०। [५] करे विभूप—नी० ग० गजा० मो०, उचिर भूप—भा०।

कामरु-वधू।

तीनिहूँ लोक नचावति ओक मैं[१] मत्र के सूत[२] अभूत गती है।
आपु महा गुनवन्त गुसाइनि पाइनि पूजत प्रानपती है।
पैनी चितौनि चलावति चेटक को न कियो[३] वस जोगी जती है।

कामरु कामिनि काम कला जगमोहिनि भामिनि भानमती है ॥४०॥

ऊक[१] मे—नी० गजा० मो०,ग० फूक मे—भा० । [२] दूत—सा० । [३] भयो—सा० ।

बंग-वधू ।

कचन मडित रूप भरी पहिरे पट लाल प्रकास बिसालनि[१] ।
सुदर स्याम लची[२] अभिराम धरे सिर दाम गरे मृदु मालनि ।
सग रमे कर मै न[३] छुटै कटि सो लपटी प्रिय प्रानन पालनि[४] ।
देव रहै हियरे लगि के करवाल किधौ बर बाल बगालनि ॥४१॥

[१] बिलासनि—नी० गजा० भा० मो० । [२] रची—ब्र० मो० । [३] सग रमै न—नी० ग० गजा० भा० मो० । [४] प्रिय प्रान को पालिनि—सा०, लपटी रहै प्रान प्रिया तन पालनि—नी० ग० गजा०, लपटी जु रहै प्रिय प्राननि पालिनि—"जु रहै" हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे—मो०, लपटी प्रिय प्रानन आनन पालिनि—भा० ।

विंध-वधू ।

ढूँढति फिरति रतिकन्त को इकन्त गृह पति की सुरति गति मति भूली मन की ।
डोलति अकेली अकुलानी त्रिय[१] केलि रस केली सी नवेली तलबेली[२] अति तन की ।
डोडी की वजाइ छोडी लाज उपजाइ नेह गोडी नारि ठोडी कै डरै न प्रेमपन की ।
झिलमिली झाँई सी दिखाई पति झार मे महौपधि की बूटी सी वधूटी विधवन[३] की ॥४२॥

[१] विन—सा० । [२] तनवेली—सा०, अलवेली—ब्र० । [३] बृन्दावन । ग० गजा०, सिधवन—सा० ।

मालव-वधू ।

वोलनि चालि[१] विलोकनि सो दिनही दिन दूगुन नेह[२] वढावै ।
अगही अग अनग[३] तरगनि आदर सो उठि ओठनि प्यावै ।
मालवदेस की वाल मनोहर वालम के[४] चित की गति पावै ।
जोग सवै उपभोग भले करि भाँतिनि भोग[५] करावै ॥४३॥

[१] वेलनि चालि—भा० मो०, वाल—ग० गजा० । [२] ईगुन नेह—नी० ग० गजा०, दूनी सनेह—ब्र०, दूगने नव नेह—सा० । [३] तरग—नी० ग० गजा० । [४] मानुष की—सा० । [५] भाँति सु भोग—भा० ।

आभीर-वधू ।

विधि की सी आसिख असेप[१] मेष भूषन विसेष नख सिख[२] रची रेख सी सुहावती ।
कर पद पदम पदमनैनी पदमनी[३] पदम सदम सोभा सपद सी[३] आवती,
रभोरु अदभ रभा को सो परिरभन दै[५] गभीर मनोज ओज आरभि सि- ,उती ।
अगन अभूत गति आभा अभिरामन को अभिराम आभरन आभीरिनी ,भावती ॥४४॥

[१] अखेष— ब्र० । [२] सिख नख—भा० मो० । [३] पदिमनी ,नी पदम सी—भा०
[४] पद सी—ब्र०, सपति सी—सा०, सबद सी—ग० गजा०, सुखद) सी—नी०, सेखद सी।
—मो०, सवै देखन मे—भा० । [५] रमा रूप अधर भरमा को सो—मो०, रमैरूप अध
भर मार को सो—ग० । [६] आगिन सिरावती—भा० ।

विराट वधू ।

अरुन वसन सदा सोहत तरुन तन कोमल कर चरन[1] मार सर मार की ।
पिय के जियत जिय[2] प्यारी पिय जिय बसै प्रेम रस बस छाकी ताकी रति भार की ।
तीखे नख घातन[3] अघात न अधरपान मानति सुरति रुचि सुरतरु डार की ।
वारन गमन वडे वारन की वर तनु चपक वरन वर वनिता वरार की ॥४५॥

[1] करन चारु—भा०, करभ मन—सा० । [2] जियनि जीभ—भा०, जियति पिय—नी० ग० गजा०, जिय जीवनी—सा०, जियनि जिय—ब्र० । [3] तीखे नखिया तन—भा० मो० ।

कोकण-वधू ।

गोरी[1] गजरात गति गुननि गहीर मति भारे भाग ही[2] रमति सुरति सकोचनी ।
आलिगन चुम्बन अधर पान नखदान मान सो वचन रचना सो रुचि[3] रोचनी ।
जानै रीति जी की पहिचाने प्रीति नीकी सुखदानी सबही की प्यारी पी की दुखमोचनी ।
केसरि करे न सरि को कनक जाकी दरि कोकनदरी की नारि लोचनी ॥४६॥

[1] गौरी—भा० मो० । [2] रग ही—ग० । [3] रसना सो रस—ब्र० ।

केरल-वधू ।

चम्पा के[1] वरन तन चन्दन बसायो बन चन्द से वसन वसे चन्दन के वारि है ।
खग मृग मीन जल थल के अधीन होत गुजरत भौंर पुज कुजनि[2] विसारि है ।
कौन करे सेव कहि देव ताहि देखत ही मोहि मन देवता करति मनुहारि है ।
जोवन की जोतिन सो मोतिन केरली हार केरली कुरगनैनी नारि सुकुमारि है ॥४७॥

[1] चपक—सा० । [2] कजन—सा० ।

नोट : भा० प्रति मे अन्तिम चरण त्रुटित हे ।

द्राविड़-वधू ।

देवता दरस पति देवता[1] सरस देव एहि विधि और नहीं[2] देव नर[3] नागरी ।
सहज सुभाई सुभ सुचि रुचि सीलमति[4] कोमल विमल मन[5] सोभा सुखसागरी ।
चाहे सनमान को सराहै सदा प्रीतमहि प्रीति को निवाहै रति रीति अति आगरी[6] ।
देवी देस द्राविड की सुन्दरी निविड नेह गुननि अनूप रूप ओपन उजागरी ॥४८॥

[1] दरसियतु देवता—भा० मो० । [2] नही और—ब्र० । [3] नग—ग०, नरी—भा० मो० । [4] सत सुचि रुचि सील वत—सा० ग०, सुति सचि रुचि सील-मति—मो०, [illegible] सचि रुचि सौल मति—भा० । [5] मनो—सा० । [6] चरण त्रुटित—मो०, सुन्दर सुवा[illegible]स कोमल कलानिधान जानत तहाँ न ताहि चाहि चित आगरी—भा०, ग० प्रति मे [illegible] के पार्श्व मे विना सकेत दिये दूसरे हस्तलेख मे "सुन्दर सुवास······चित आगरी । [illegible] पाठ"

तिलंग-वधू ।

साँवरी सुघर [illegible] महा सुकुमारि सोहै मोहै मन मुनिन को[1] मदन तरगिनी ।
अनगने गुननि के [illegible]रव गहीर मति निपुन सगीत गीत[2] सरस प्रसगिनी ।

परम प्रबीन बीन मधुर बजावै गावै नेह उपजावै यौ[४] रिझावै पति संगिनी।
चतुर सुभाय भाय[३] भौहनि दिखाय देव विगनि अलिगन बतावति[५] तिलगिनी ॥४६॥

[१] मोहन को—भा०। [२] गति अति ही निपुन प्रीति—सा०।[३] बक—भा०, चारु सुकुमार भाई—ग०। [४] जो—सा०, "त्यो" दूसरे हस्तलेख मे संशोधन "यो"—ग०। [५] वनावति—भा० मो०।

करनाट-वधू

सोधे भरी सूधी सी सुधानिधि सुधारि बिधि सहज सुवासनि की रासि[१] लहियत है।
जगमगे बसन सुरंग रँगमगे अंग मदन तरगनि के रंग चहियत है।
बोलनि विलोकनि चलनि चतुराई चारुताई सुघराइन की[२] रीझि रहियत है।
प्रेम परिपाटी रूप जोबन की पाटी पढी[३] देव दुति साटी करनाटी कहियत है ॥५०॥

[१] रास—ग०। [२] सुघराई नीकी—भा०। [३] साटी जाटी—मो०, पाटी पटी—ब्र०, पाटी मढी—सा०।

सिधु-वधू।

बसुधा को सोधि कै सुधारि बसुधारनि सो सब रसु धारनि सुधारन सुबेस[१] की।
धरम की धरनी[२] धरा की धाम धरनी की धरनी सी धारनी सी धन्यता धनेस की।
सिद्धन की सिद्धि सी असिद्धि सी असिद्धन की साधुता की साधक सुधाई साधु[३] वेस की।
सुधानिधि वदनी[४] सुधाइनी[५] की सुद्धि[६] विधि सिधुरगमनि गुनसिधु सिधु देश की ॥५१॥

[१] सुरेस—ग० सा०। [२] धोरनी—ग० सा०। करनी—ब्र०। [३] सुधा—भा० मो०। [४] वदानी—मो०, दानी—भा०। [५] सुधानिधि—भा०। [६] सुसुद्ध—भा०, सोधि—सा०। यह छन्द मो० प्रति मे पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख मे है, भा० प्रति मे छन्द त्रुटित है।

गुजरात-वधू।

छित की सी छोनी रूपरासि सी इकोनी गढि गाढी विधि सोनी[१] गोरी कुन्दन सै गात की।
देव दुति दूनी दूनी[२] दिन-दिन होनी और[३] ऐसी अनहोनी कहूँ कोई दीप सात की।
रति लागै वौनी जाकी रंभा रुचि पौनी[४] लोचननि लोलचनी मुख जोति अवदात की।
इंदिरा अगौनी इंदु इंदीवर औनी[५] महासुन्दर सलौनी गजगौनी वजरात की ॥५२॥

[१] विधि चाय सो रचौनी—भा०, गुटकाय विधि सोनी—मो०। [२] दूनी दिन—भा० मो०। [३] और होनी—भा० मो०। [४] रुचि वौनी—भा० मो०। [५] बोनी—ग०।

मारवाड़-वधू।

चित्र की सी लिखी चारु चित्रिनी विचित्र गति रुचिर चरित्रन की[१] रचना विचार की।
रचको बची न रुचि रचित[२] विरचि बच्यो सचित सुचित सुचि सोधा सुखसार की।
रूप की सी मुद्रिका समुद्र गुन सील को सो आदर उदारताई देवतरु डार की।
काम की नसैनी कमला-सी सुखदैनी पियप्यारी पिकवैनी मृगनैनी मारवार की ॥५३॥

[१] रची है विरचि निज—भा०, रुचि रचि रचि निज—मो०। [२] रचि—मो०, रचिनि—भा०।

कुरु-देश ।

नखसिख नेह भरी मदन तरंगनि सों अंग अंग देव रंग रंग रीझि गहिये ।
साँचे भरि काढी मानो नाचै दृग खंजन सु देखें बिरहागिनि की आँचै पै न[1] सहिये ।
सोहै महासुन्दरी विमोहै मन मुनिन के को है ऐसी दूसरी[2] सलोनी नारि लहिये ।
गोरी-सी किसोरी चितवनि चित चोरी[3] करै कोरी[4] कुरु देश की कुरंगनैनी कहिये ॥५४॥

[1] नहिं—भा० मो० । [2] सुन्दरि—व्र० । [3] बीचचोरी—भा० मो० । [4] भोरी—भा० ।

करवीर-वधू

नासिका कीर[1] लकीर सी भौंहनि तीर से छूटति[2] है पिकवैनी ।
भीर अभीरनि भीतर भीतर भीर सुभाव उभी रस दैनी[3] ।
धीरज देव अधीरज होत चितौनि चितौति अधीरज पैनी ।
पीर हरै करवीर की कामिनि छीरज से सुर नीरजनैनी ॥५५॥

[1] कोर—सा० । [2] तीर सी ताकनि—भा० । [3] भीतर भीर सुभाइ भरी सु उभय मन दैनी—भा० ।

पर्वत-वधू ।

पंकज से नैन[1] बैन मधुर मयंक जैसे[2] अधरनि धरी धार[3] सुधा सरबत की ।
देव कोई वाके जोग भोगवे[4] अखण्ड सुख भौंहनि प्रकासी जोति जागी कन्दरप की ।
सील के सुभाउनि सो महा सुखदायनि सो रूह काहू कबहूं कन्त सरबत की ।
इंदिरा सरूप इन्दुबदनी अनूप रूप जोबन उज्यारी पियप्यारी परबत की ॥५६॥

[1] मैन—मो० । [2] मधुर पियूष जैसे—भा० मो०, मधुर रस, पकज से—सा० । [3] धरा-धर—भा० मो० व्र० । [4] भोग मैं—सा० ।

भुटन्त-वधू

चेटक सी चाल चटकीलो रंग अंगनि को[1] चोट सी चलावै दीठि पोंहीं प्रेम तंत की[2] ।
चुम्बन की हाँसै उपजावति हंसत मुख[3] मारो सी परति नैन दारो दुति दन्त की ।
सोहै देव देवतन मोहै मुनिहू को मन सन्त को अनन्त धन[4] सोही रतिकन्त की ।
घन बन झारनि मैं सघन पहारनि में दामिनि सी देखियत कामिनि भुटन्त की ॥५७॥

[1] मैं—स० सा० । [2] गति है मतंग की—भा० [3] मयंक मुखी—भा०, हँसत मुखी—मो० । [4] अंतर धन—स० सा० ।

काश्मीर-वधू ।

जोबन के रंग भरे[1] ईंगुर से अंगनि पै एंडिन लौं आंगी[2] छाजै छबिन की भीर[3] की ।
उचके उचौहैं कुच झके[4] झलकति झीनी झिलमिली ओढनी किनारीदार चीर की ।
गुलगुले गोरे गोल[5] कोमल कपोल सुधा बिंदु[6] बोल उन्दुमुखी नासिका ज्यों कीर की ।
देव दुति लहरात छूटे छहरात केस बोरी जैसे[7] केसरि किसोरी कासमीर की ॥५८॥

[1] भरी—स० सा० । [2] छवि—भा०, अंग—सा० । [3] केसन के भीर—भा० मो० ।
[4] झपे—स०, भार—भा० । [5] गोरे गोरे—भा० । [6] सुधाविम्ब—भा० मो० । [7] कोरी जैसी—भा० मो० ।

सौवीर-वधू ।

अभोनिधि कीसी सुता सौति[1] अभोजन पर दभोलि[2] अदभोदित दुति है सरीर की ।
आरभित जोवन निदभ[3] करे रभा रुचि रभोरु सुगभीर गुराई गुन भीर की ।
चन्द से बदन मन्द हाँसी की अमद छवि[4] स्वाँस[5] मकरन्द बास चन्दन से चीर की ।
काम हय मन्दरा सी[6] देव काम कन्दरा सी इन्दिरा को मन्दिर सु सुन्दरी सुवीर की ।।५९।।

[1] अम्भोनिधि की सुता सी सोहति—ब्र०, अभोविधि कामुता सो—भा० मो० । [2] दभो भोजन—भा०, दभोजन—मो० । [3] निरभ—ग० सा० । [4] अमच्छ विस्व—भा० । [5] स्याम—भा० मो० । [6] काम हय सुन्दरा सी—भा० मो० ।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कवि देव कृते जाति गुण देश भेदादि नायिका वर्णन नाम पचमो विलास ।

काल-भेद ।

आठ अवस्था भेद करि होत आठ विधि काल ।
बरनी ता मयोग ते आठ भाँति की बाल ।। १ ।।
प्रथम कहो स्वाधीनपति कलहन्तरिता होइ ।
अभिसारिका बखानिये विप्रलब्धिका सोइ ।। २ ।।
खडितारु उत्कण्ठिता वासकसज्जा वाम ।
प्रोपितपतिका नाइका आठौ विधि अभिराम ।। ३ ।।

स्वाधीनपतिका-लक्षण ।

मनसा वाचा कर्मना जाके पति आधीन ।
सो कामिनि स्वाधीनपति पति बस करत प्रवीन ।। ४ ।।

उदाहरण ।

जासो हँसि एक बार एक बात कहिबे को हौसन मरति कहौ को न बृजबाल है ।
सूधेई सुभाइनि सुदाम करि राख्यौ हरि होत न उदास क्योहू एतो भाग भाल है ।
देव अब आस पूजी तू जी मै अदूजी वसी[1] दूजी तिय भूलेहू न[2] देखत गुपाल है ।
पाँइ परि राखी अँखियानि भरि राखी हियरा मे धरि राखी करि राखी कठ माल है ।।५।।

[1] देव अब आस पूजी तुव अब जी की मेरी भटू—सा०, अदूजी रही—ग० । [2] बोलेहून—मो० ।

रूप चुवे चँपि कचन नूपुर कौल से पायन नौल वधू के ।
अगन रग मनौ निचुरै पिय सग धरे मग मे पग दू के[1] ।
इदु से आनन मे श्रमबिदुनि देव गुबिद गहे मुख फूके[2] ।
सो लखि सौतिन की अखियानि मे लागि उठी मनौ आगि की लूके[3] ।। ६ ।।

[1] पग ढूके—सा० । [2] सुखावत फूके—ग० । [3] भूके—ब्र० । भा० मो० प्रतियो मे उपर्युक्त छन्द त्रुटित है।

कलहंतरिता-लक्षण ।

प्रेम अजीरन कोप जुर लघन पिय सजोग ।
कलहन्तरिता है दुखी सहै न[1] बिथा वियोग ।। ७ ।।

[१] सहनै—भा० ।

उदाहरण ।

सखी के सँकोच[१] गुरु सोच मृगलोचनी रिसानी पिय सो जू उन नैंक हँसि छुयो[२] गात ।
देव वे सुभाइ[३] मुसकाइ[४] उठि गये इह सिसकि सिसकि निसि खोई रोइ पायो प्रात[५] ।
को जानै री बीर विनु[६] बिरही बिरह बिथा हाइ हाइ करि पछताइ[७] न कछू सुहात ।
बड़े बड़े नैननि तैं आँसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आज[८] ओरो सो बिलानो जात ॥८॥

[१] सखिन के सोच—भा० मो० । [२] छियो—भा० मो० । [३] सहज सुभाइ—भा० । [४] मुसकाइ—सा० । [५] खोयो पायो परभात—भा०, सु रोइ रोइ पायो प्रात—सा० । [६] कौन जानै बीर विनु—भा० मो०, जानै को बीर विनु—सा० । [७] इहाँ इक रीति पछताय—सा० । [८] देव गोरो मुख भोरो भोरो—भा० ।

अभिसारिका-लक्षण ।

आपुहि तैं जो उठि[१] चलै तिय पिय के सकेत ।
निसि दिन तिमिर प्रकाश कछु गनै न सगम हेत ॥ ९ ॥

[१] उठि जो—भा० मो० ।

उदाहरण ।

सूझत न गात बीति आई[१] अधरात अरु[२] सोए सब गुरुजन जानि कै बगर के ।
छिपि कै छबीली अभिसार को किवार खोलै खुलिगे सुगन्ध चहुँ चन्दन अगर के ।
देव कहै भौर गुंजि आए कुंज कुंजन तें[३] पूछि पूछि पोछे परे पाहरू डगर के ।
देवता कि दामिनी मसाल किधौं[४] जोति ज्वाल[५] झिगरे मचत जागे सिगरे नगर के ॥१०॥

[१] आयो—भा० मो० । [२] लखि—भा० मो० । [३] देव भ्रमि भौर गुंजि आए कुंज कुंजन तें—ग०, देव कहै भौंर दौरि अई गुंजि कुंजन ते—सा० । [४] हे कि—भा० मो० । [५] जोति जाल—भा० ।

विप्रलब्धा-लक्षण ।

आपुहि तैं सकेत बदि बोलि पठावै धाम ।
मिलहि न जेहि रतिसदन पति विप्रलब्ध सो बाम ॥ ११ ॥

उदाहरण ।

गरे पटु डारि[१] करै केती मनुहारि दूतिकानि पग पारि[२] प्रति पूरन पकि रही ।
नौनी नव नारि नयो नेह निरधारि लाज काजहि[३] बिसारि रूप छवि सो छकि रही ।
मिले न मुरारि आपुहि ते अभिसारि भेष भूषन सँभारि सूने कुंज मैं[४] जकि रही ।
मोचि दृग वारि सोचि सोचति विचारि देव चितै चहूँ पारि घरी चारि लौं चकि रही ॥१२॥

[१] रारि—भा० । [२] परी—सा० । [३] नव धारि लाज कीजहू—भा० मो० । [४] कुंजन मैं—भा० ।

खंडिता-लक्षण ।

वास करै निसि जाइ कहुँ[१] प्रात मिलै पति आइ ।
नारि खंडिता सौति के चिह्न लखे बिलखाइ ॥ १३ ॥

[१] और कहुँ—ब्र०, खैरनि गमाय कहुँ—सा०, करैनि गमाय कहुँ—मो०।

उदाहरण।

आजु गोपाल जू बाल वधू सँग नूतन नूतनि कुंज बसे निसि।
जागर होत उजागर नैनन पाग पै पीरी[१] पराग रही पिसि।
चोज के चन्दन खोज खुले जहाँ ओछे उरोज रहे उर मे विसि।
बोलत बात लजात से जात सु आये इतौत चितौत चहूँ दिसि॥ १४॥

[१] पाग के पेच—ब्र०। भा० मो० प्रतियो मे यह छन्द त्रुटित है तथा ब्र० प्रति मे अगले छन्द के पश्चात् है।

गात तै गिरत[१] फूल पलटे दुकूल कहूँ भाग[२] जागे आली आज काहू बडभाग के[३]।
अजन अधर उर बीच नखरेख लाल जावक तिलक भाल लाग्यो दुति दाग के[४]।
भौहे अलसोहै पग पीक[५] पगे पीक रग राति जगे राते नैन भीजे अनुराग के[६]।
लालन लजात से जम्हात विहँसात प्रात आए अलसात आली[७] देत पेच पाग के॥१५॥

[१] झरत—भा० मो० ब्र०। [२] अनुरागे उत—भा० मो०। [३] भाग इत बडभाग के—भा० मो०। [४] मधि माँग—भा० मो०। [५] कलसोहै पलसोहै—भा० मो०। [६] रति मैन सदन सुहाग के—भा० मो०। [७] आए आली मेरे गृह—भा० मो०, आली उठि आए देखि—ग० सा०।

उत्कण्ठिता-लक्षण।

पति आवन की रति सदन जाके होत अवार।
सो उत्कठित जो करै वहु विधि सोच विचार॥१६॥

उदाहरण।

खरी दुपहरी हरी भरी फरी[१] कुंज मजु गुज अलि पुजन की देव हियो हरि जाति।
सीरे नद नीर तरु तीरनि गहीर छाँह सोवे परे पथिक पुकारै पिकी[२] करि जाति।
ऐसे मै[३] किसोरी भोरी को री कुम्हिलानो मुख पकज से पाँय धरा धीरज सो धरि जाति।
सोहै घाम स्याम मग[४] हेरति हथेरी ओट ऊँचे धाम वाम चढि आवति उतरि जाति॥१७॥

[१] करी—ग० सा०, ग० मे ऊपर से सशोधन है 'फरी'। [२] विक—ग०। [३] ऐसे यो—ग०। [४] घनस्याम मग—सा०।

वासकसज्जा-लक्षण।

पति आवन को रति सदन जाके निहचै होइ।
सेज वेष भूषन रचै[१] वासकसज्जा सोइ॥१८॥

[१] सजै—सा०।

उदाहरण।

मुख सेजहि साजि सिंगार सजे गुहि बार सुगन्ध सबै[१] बसि कै।
चुनि चूनरी लाल खरी पहिरी कवि देव सुवेस रह्यो लसि कै[२]।

पिय भेटिवे को उमगी[३] छतियाँ सु छिपावति हेरि हियो[४] हँसि कै।
अँगिया की तनी खुलि जाति घनी सुबनी फिरि बाँधनि है कसि कै ॥१६॥

[१] कच गूदि सुबासन सो—ग०। [२] पहिरी गहिरी रँग चूनरी लाल सु बाल को बेस रह्यो लसिकै—ग०। [३] उमही—भा०। [४] नोल तिया—ग०।

प्रोषितपतिका-लक्षण।

पति विदेश क्योहूँ गयो आगम ओधि दिठाय[१]।
प्रोपितपतिका रैनि दिन विरह दसा अकुलाय[२] ॥२०॥

[१] देवाय—ग०। [२] बिलखाय—ग० सा०।

उदाहरण।

वालम बिरह जिनि जान्यो न जनम भरि वरि वरि उठ ज्यों ज्यों वरम बरफरानि।
वीजन डुलावति सखीजन त्यो[१] सीतहू मे सौति के सराप तन तापनि तरफरानि।
देव कहै स्वाँसनही अँसुवा सुखात मुख निकसै न बात ऐसी सिसकी सरफराति।
लौटि लौटि परत करौंट खट पाटी ले ले सूखे जल सफरी ज्यो सेज पै[२] फरफराति ॥२१॥

[१] सखी ज्यो त्यो नित—ब्र०। [२] परी—सा०।

प्रवत्सतपतिका-लक्षण।

नारि प्रवत्सतभर्तिका[१] नवमी कहत[२] बखानि।
काल भेद नो विधि कहत एक देस मत मानि[३] ॥२२॥

[१] प्रवेस्यति भर्तिका—ब्र०। [२] करत—भा० ना०। [३] काल भेद मे होत यह समुझौ सुकवि सुजान—ब्र०।

उदाहरण।

कल न परत कहूँ ललन चलन कह्यो बिरह दवा नो देह दहकै दहकि दहकि।
लागि रही हिलकी हलक सूखि हालै हियो देव कहे गरो भर्‌यो आवत गहकि गहकि।
दीरघ उसास लै लै ससिमुखी सिसकति सुलप[२] गरोनो लक लहकै लहकि लहकि।
मानत न वरज्यो सुबारिज से नैननि ते वारि को प्रवाह बह्यो आवत बहकि बहकि ॥२३॥

[१] आवत ढहक ढहक—सा०, आवत बहक बहक—ग०। [२] सुलफ—भा० मो०।

आगतपतिका-लक्षण।

कही प्रवत्सतभर्तिका ज्योही नवमी नारि।
आगतपतिका त्यो सुनो दसमी कहत विचारि ॥२४॥

उदाहरण।

आवन सुन्यो है मनभावन को भामिनि त्यो नेनन अनन्द[१] आँसू ढरकि ढरकि उठे।
देव दृग दोऊ दौरि जात द्वार[२] देहरी लौं केहरी सी साँसे खरी खरकि खरकि उठै[३]।
टहले करति टहलै न हाथ पाइ रगमहलै निहारि[४] तनी तरकि तरकि उठै।
सरकि सरकि साँसे दरकि आगी औचक उचोहै कुच फरकि फरकि उठै[५] ॥ २५ ॥

[१] आँखिन अनन्द—सा०। [२] पौर—सा०। [३] रोम सोममुखी के सु मरकि मरकि उठै—ग०। [४] बिलोकि—भा० मो० ब्र०। [५] औचक उचोहे कुच फरकि फरकि आली दरकि

दरकि आँगी सारी सरकि सरकि उठै—सा०।

बहिक्रम-भेद।

वाल वहिक्रम भेद करि तीन भाँति की होइ।
मुग्धा मध्या प्रगल्भा[1] वरनत है कवि लोइ[2] ॥ २६ ॥

[1] मध्य प्रगल्भ कहि—सा०। [2] सब कोइ—भा० मो०, मुग्धा तिय की अग दुति दिन दिन दूनी होइ—त्र०।

मुग्धा-लक्षण।

लरिकापन भरपूरि कै उमगै[1] जोवन जोति।
मुग्धा तिय की अग दुति दिन दिन दूनी होति ॥ २७ ॥

[1] उलहै—ग० सा०। ब० प्रति मे यह दोहा त्रुटित है।

उदाहरण।

जानि पर्‍यो जोवन जनायो है मनोज जुर[1] जगमगी जोति अग बाढनि नितै नितै।
हरे[2] हँसि हेरि हरि लियो हरि जू को हियो हेरति हरिन नैनी हितू सो हितै हितै।
सीखी दिन चारिक तै तीखी चितवनि प्यारी देव कहै भरि दृग[3] देखति जितै जितै।
आछी उनमील नील सुभग सरोजन की तरल तनाइयत तोरन[4] नितै तितै ॥ २८ ॥

[1] आज—सा०, सुद—त्र०। [2] हेरि—सा०। [3] दृग भरि—सा०। [4] तनाईमति तोरति—भा०, "ति" पार्श्व पर—मो०, तरल तनैनी मति तोरति—त्र०।

उमडि[1] उरोज गिरि हरिद्वार[2] हिरदै तै राख्यो जिहि सागर गहीर नाभि झपिकै।
ऐसी तरुनाई आई ता सुर तरगिनि सो[3] सिसुता ज्यो सूरसुता[4] मिलि चली चपि कै।
तामे तम केश मुख रोम मिलै[5] पर्वसुतो[6] सर्वस सुजान दीनो देव जपि जपि कै।
मै हूँ[7] ऐसे ठौर ठाढो काम पुरोहित पेखि दीनो[8] मन मानिक निसक सकलपि कै ॥ २९ ॥

[1] उसरि—भा०। [2] हरझर—सा०। [3] ता सर तरगन सो—भा०, तासु रति रगनि सो—त्र०। [4] सूरासत—भा० मो०। [5] तामै मुह सोभा कहूँ केस मिलै—भा० मो०। [6] पर्व सुनै—त्र०। [7] मोह—सा०, महु—मो०, हौंहू—भा०। [8] मौंप्यो—ग०, पुरहोत पेखि दीनो—मो०।

औरन जो गौनो होत विरह को औनो[1] होन तुमही अगौनो दुख देखनि दुखाई यह।
एहो मृगलोचनी सकोचनि ही सोनोतजि सोनो सी सुघर देह सोचनि सुखाई यह।
आवौ इत कौने को[2] छिपायो नाह कौने कौने कौने धौ सिखाई विष ऐसी बिमुखाई यह।
जीको करि जो तू मनु[3] नीको करि देव पीको हीको करि राखो धरि राखो ही रुखाई[4] यह ॥३०॥

[1] गौनो—ग० सा०। [2] आयो इत कौन को—सा०। [3] जोर मन—ग० सा०। [4] उखाई—भा० मो०।

मध्या-लक्षण।

लरिकापन जौवन जहाँ दोऊ होत समान।
लाज काम सम मध्यमा ताही[1] कहत सुजान[2] ॥ ३१ ॥

[1] नारी—मो०। [2] सोई मध्या नायिका वरनत सुकवि सुजान—ग० सा०।

उदाहरण ।

सावन मास सखीन मैं सुंदरि मंदिर तें निकसी बनि¹ ज्यों सगि ।
देव जू देखि छके छवि² छैल रह्यो न गयो हरि हारि हियो³ खगि ।
त्यागि सकोच कह्यो सब ऊपर रोरी ये भाँति रहो ब्रज मैं बगि ।
दीठि बचाय सबाय के सीस नचाइ कै नैन रचाइ गई हँसि⁴ ।। ३२ ।।

¹ बिन—सा० । ² देखि छके कवि देवजू—ग० । ³ हिने—सा० । ⁴ सूल सी सालनि है अब लौं ललचाय के नैन नचाइ चली हँसि—ग० सा० । ब्र० प्रति में यही पाठ हाशिये पर दूसरे हस्तलेख में "द्वितीय पाठ" के रूप में दिया है ।

प्रगल्भा-लक्षण ।

लरिकापन तजि जहँ रहै तन जोवन भरिपूर ।
कहै प्रगल्भा नायिका जग मे जीवनमूर ।।३३।।

सा० प्रति में यह दोहा त्रुटित है ।

उदाहरण ।

सोंधे की सुबास आसपास भरि भौंर¹ रह्यो भरत उसास बास बासन² बसात है ।
कंकन झनित³ अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिलें⁴ मनित सुहात है ।
कुंडल हलत मुख मंडल झलमलत झूलत दुकूल भुजमूल भहरात है ।
करत बिहार कहि⁵ देव बार बार बार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात है ।।३४।।

¹ भौंर—सा० । ² बाहन—सा० । ³ कनित—सा० । ⁴ नूपुरन मिलि मनि—सा० । ⁵ कहै—ग० । भा० मो० प्रतियों में यह छन्द त्रुटित है । ब्र० प्रति में यह भूल से मध्या नायिका शीर्षक के अन्तर्गत छन्द संख्या ३२ के बाद आया है ।

रेसमी सतूल¹ लाल लाल पट लीपे लेप भीतरै नि² सीत रैनि की न भीन झाँई सी ।
भीनि नग हीरन गहीरनि की काँतिन सों रगमगे³ खंभ पति दंभ छवि छाई सी ।
जगमगी सेज रँगमगे देव देवपति अगर⁴ जोति सम्पति औ अगनि जगाई⁵ सी ।
ऊख मे निदान ही मयूख मनि मानिकनि अगनित चामीकर अगिन नचाई सी ।।३५।।

¹ सतूल—ब्र० । ² निपट महल भीतरैनि—मो० । ³ जगमगे—ब्र० । ⁴ अनग—मो० । ⁵ जगाई—ब्र० । यह छन्द सा० प्रति मे त्रुटित है तथा ग० प्रति मे यह हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे है ।

मध्यनि सग उराहनो मुग्धनि सिक्षा जानि ।
सुभग चेष्टा प्रगल्भनि तिहूँ सदा सुखदानि¹ ।।३६।।

¹ प्रगल्भ तिय तीनि सदा सुखदानि—सा० ।

उराहनो ।

वे दिन नाहिं भटू¹ भय के जब भीते भई² झुकि कै झिझकई हौ ।
चोप कै दै चित मे रस की दिन रातिन देव दुरे दिखई हौ ।
दीठि³ भई ढिग सोवत⁴ स्याम के काम कला लिपि⁵ ज्यों लिखई हौ ।
आनहि क्यो उर आनहु जू अब तौ हरि सौं विपरीत सिखई हौ⁶ ।।३७।।

[1] भगे—सा०। [2] बातैं नई—भा०, भातैं नई—मो०। [3] ढीठैं—सा०। [4] सोवन—भा० मो०। [5] लिखि—भा० मो०। [6] विखई बिषई हो—भा० मो०।

शिक्षा।

वारी ही वैस बडी चतुरै हौ बडो गुन देव बडीयै बडाई।
मुदरै हौ सुघरै हौ सलौनी हौ सील भरी रस रूप सनाई।
राजवधू वलि राजकुमारि अहो सुकुमारि न मानौ मनाई।
नैसिक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई॥३८॥

भा० मो० प्रतियो मे यह छन्द त्रुटित है।

सुभग-चेष्टा।

ओझिल ह्वै आई झुकि उझकि झरोखा रूप झर सी झलकि गई झलकन झाँई की[1]।
पैंने अनियारे पै सहज कजरारे दृग चोट सी चलाई चितवनि चचलाई की।
कोन जानै कौ ही उडि लागी डीठि मोही उर रहे अवरोही देव[2] निधि ही निकाई की।
अब लगि आँखिन की पूतरी कसौटिन मे लागी रहे लीक वाकी सोने सी गुराई की॥३९॥

[1] झलक निकाई मी—सा०। [2] कोही—मो०, कोई—भा०।

बाल वहिक्रम[1] भेद करि भेद भेद प्रति भेद।
होत अनेक प्रकार ते सुनत हरत[2] श्रुति खेद॥४०॥

[1] ठाम वय क्रम—भा०। [2] रहत—सा०।

तैसु ग्रन्थ विस्तार भय कहे न मैं समुझाय।
बरने भाव विलास मे लक्षन भेद सुभाय॥४१॥

भा० मो० प्रतियो मे यह दोहा त्रुटित है।

प्रकृति-भेद।

प्रकृति भेद करि नायिका त्रिविध[1] कहत कवि लोइ।
ताते सो कफ पित्त अरु वात प्रकृति तिय होइ॥४२॥

[1] विविध—ब्र० मा०।

कफप्रकृति-लक्षण।

सो कामिनि कफ प्रकृति जो रूप सील गुनवन्त।
नेह चीकने वचन चित नैन केस नख दन्त॥४३॥

उदाहरण।

सील सलील[1] सलोनी सलज्ज सुभाइनि सज्जनता सरसाती।
नेह भरे कच लोचन देह सुधा मधु ते बतियाँ अधिकाती।
दामिनि सी नख दतन दीपति देखत कामिनी को न लजाती[2]।
देव जू वा सुखदाइनि को मुख देखतहूँ अँखियाँ न अघाती[3]॥४४॥

[1] सुसील—ग० ब्र०। [2] दतन की दुति देखत हूँ अँखियाँ न अघाई—भा०। [3] अन्तर के अनुराग जिते पुनि ऊपर ही सब देन दिखाई—भा०।

पित्तप्रकृति-लक्षण।

जाल दन्त नख नैन[1] तन पृथु कुच केस अराल।
छमा क्रोध छिन मे[2] दुवो पित्त प्रकृति सो वाल॥४५॥

[1] जाल नैन नख दन—मा०। [2] छिन मे—भा० मो०।

उदाहरण।

लाल लसैं[1] नख दन्त कपोल प्रवाल मे[2] ओठनु ऐंचि लचावति।
भौंहनि भाउ सुभाइ बनाइ कै वातनही सब गान नचावति।
औचकही चुटकीन बजाइ कै गाइ कै प्यारे को प्रेम पचावति।
रूसि रहै कबहूँ रिस कै कबहूँ रसना रस रग रचावति[3]॥४६॥

[1] बाल लसैं—भा०। [2] सु वारिज—भा०। [3] मचावति—मा०।

वातप्रकृति-लक्षण।

रूखे तन मन वचन कच धूसर[1] चचल चित्त।
भूरी बहु भोजन गमन वातुल तिय रति मित्त[2]॥४७॥

[1] कच दूसर—भा० मो० ब्र०। [2] वात प्रकृति तिय मित्त—ब्र०।

उदाहरण।

रोप रुखाई भरी अँखियाँ रस राखैं नहीं सखियानि सो ढीठैं[1]।
भोजन भूर भरी मदन ज्वर[2] भूरे से बारनि बानि अनीठैं।
चचल चित्त छकी मद सो छिन एक न छाती तैं छाडति ईंटैं।
काम की घात अघात नहीं दिन राति नहीं रतिरग उबीठैं॥४८॥

[1] सौं ढूठैं—मा०। [2] मद भूझर—भा० मो०।

सत्त्व-भेद।

सुर किन्नर अरु जक्ष नर कहि पिसाच अरु नाग।
सत्त्वभेद सो नायिका बरनहु खर कपि काग[1]॥४९॥

[1] नाग—भा०।

तिनके लच्छन भेद सब जानहु नाम[1] समान।
है प्रसिद्ध ससार मे जानि सुभाइ प्रमान॥५०॥

[1] नीम—मो०, नीव—भा०।

देवसत्त्व-उदाहरण।

काम की कुमारी सी परम सुकुमारी[1] यह जाकी है कुमारी महा भाग वा जनक के।
सलज सुसील सुलुनाई की सलाका सैल सुता सो सलोनी बैन बीना की भनक के।
एवी[2] अबही तें बनदेवी ऐसी देखी देव देवी तैं अगन[3] गुनगन है गनक के।
कनक बनक तन तनक तनक तन[4] भनक मनक कर[5] ककन कनक के॥५१॥

[1] सुखकारी—भा० ब्र०, [2] एहो—भा०, ब्र० प्रति मे पहले "एहो" पाठ था परन्तु "हो" पर लाल हरताल लगाकर "वी" पाठ सशोधन है। [3] आगम—मा०। [4] मन—भा० मो०। [5] मनक करे—मा०।

मनुष्यसत्त्व-उदाहरण ।

आई बरसाने ते बुलाई वृषभान सुता निरखि प्रभानि प्रभा भानु की अथै गई।
चक चकवानि के चुकाये चक चोटनि सो चौंकत चकोर चकाचौंधी सौ चकै[1] गई ।
देव नन्दनन्दन के नैननि अनन्दमई[2] नन्द जू के मन्दिरनि[3] चन्द मई छै गई।
कुजनि कलिनमई कुजनि अलिनमई गोकुल की गलिनि नलिनमई[4] कै गई ।। ५२ ।।

[1] सी चितै—सा० । [2] नद नदन नैननि अनन्द भई भई—सा०, नद जू के नद जू के नद जू के नैनन—ग० । [3] मदिर तैं—मो० । [4] अलिनमई—मो०, ब्र० प्रति मे पहले "अलिन" पाठ था परन्तु इस पर लाल हरताल फेरकर उसी हस्तलेख मे "नलिन" पाठ—सशोधन हुआ है ।

गधर्वसत्त्व-उदाहरण ।

सुन्दरि मदिर ते न कढी कहूँ नैननि तैं नहि लाज उमाची[1] ।
काहू सिखाई न सीखी[2] कहूँ सखियानि सो सील सुभाइन साँची।
देव जू देखे सुने नहि स्याम पढे बिन प्रेम की पद्धति बाँची।
आनद ते अनुराग भरी बनकुज मै जाइ अकेलिये नाची ।। ५३ ।।

[1] हुमाची—ब्र० । [2] मीख—भा० मो० ।

यक्षिसत्त्व-उदाहरण ।

चचल नैन बडी[1] बरुनी कुटिलै भृकुटी सुलटै सटकारी[2] ।
मोहनी सी मुसकानि[3] मनोहर चेटक सी बतियाँ सुखकारी।
देव सपक्षन बाल विचक्षन[4] ऐसी न जक्षन नारि निहारी।
बामक लक्षन के[5] लखि लच्छन रूप विलच्छन लच्छनवारी ।। ५४ ।।

[1] चढी—सा० । [2] लटकारी—भा० ब्र० । [3] मुखमानि—ग० । [4] चाल विचक्षन—सा०, विलक्षन—भा०, ब्र० प्रति मे पहले "विलक्षन" पाठ था फिर इस पर हरताल फेरकर उसी हस्तलेख से "विचक्षन" पाठ—सशोधन है । [5] लच्छ छके—भा० मो० ।

पिशाचसत्त्व-उदाहरण ।

अन्तर खोलति नाहि अकेलिये डोलति पै नहि[1] बोलति टेरे ।
देखिये देव जितै तित ठौर ही ठाढो रहै घर बाहिर घेरे।
केतिक रूप करै पकरै मग सामुहे[2] सूझत साँझ बसेरे।
नेह भरी नव बाम दिखावति काम के कौतिक धाम अँधेरे ।। ५५ ।।

[1] डोलतियै नहि—भा० मो०, ब्र० प्रति मे पहले "ये" पाठ था, हरताल की सहायता से इसे "पै" बनाया गया है। [2] करै मग सामुहै आमुहै—भा० ब्र० ।

नागसत्त्व-उदाहरण ।

क्योहूँ अघाति नही रति रगनि अग अनग विलास बिलोई[1] ।
पातरी सोन[2] सटी सी सटी सी[3] नटी सी नचावै कटी गुन गोई ।
आगि सी आँखिन[4] ते उगिलै कहूँ गात मिलैंहु न जात रहोई ।
बात पियै जपियै[5] गुरु मत्रनि ज्यो[6] उसमे रिस के बिस भोई ।।५६।।

[1] विलाग चिलौई—भा० मो०। [2] मैन—भा०। [3] चटी सी—त्र०। [4] आगिली सी आगिन—"ली" पर हरताल—त्र०, आगिली आँखिन—भा०। [5] जुपिये—त्र०। [6] मखनि क्यो—गा०, मनन त्यो—मो०।

परसत्त्व-उदाहरण।

काम के काज न लागनि लाज बुरे सुर बोलनि डोलति ढीगी।
रखिये रान नही अनखात भये दिन रानि रही परि टौगी[1]।
लातन दाँतन घातन हूरनि[2] केलि कठोर करै उक टौगी।
देखि हनूमर[3] मूसर में भुज घूरि भरे तन धूसर धीगी॥५७॥

[1] रही परि टौगी—ग० मा०। [2] बात कहू रनि—त्र०। [3] हनूमर—भा० मो०। केवल ग० मा० प्रतियों में चरणो का क्रम १-३-२-४ है। भा० प्रति में छन्द त्रुटित है।

कपिसत्त्व-उदाहरण।

न्यारे मे न्याउ[1] अन्याउ करै कहूँ क्यो हूँ पत्याउ नही अनुकूलैहू[2]।
औचक चौकि चलै उछलै छल छिद्रनि नाक छलै प्रतिकूलैहू।
धीर धिरानि न पीर पिरानि थिरानि नही दिन रातिन ऊलैहू।
भूरी सी भूरि भरी उभराई सौं[3] राई भरी यो भुराई न भूलैहू॥५८॥

[1] न्याय मे न्याय—ग०। [2] अनुभूलैहू—ग०। [3] भगवभगरौ सो—भा० मो०।

काकसत्त्व-उदाहरण।

व्याकुल री कुल सील उमंटि कै[1] हे उमटी मटगाट दिखावै।
चंचलचित्त चितौनि चहूँ दिसि[2] एकौ घरी घर चैन न पावै।
औचक चौकति बातन ही निज बाननि बाननि[3] बात चुकावै।
काक लौं[4] काक कुवाक सुनाट कै साधुनि[5] के गुन दोष बतावै॥५९॥

[1] उमंटि कै—त्र०, उमेठि कै—भा०। [2] चितै दसहूँ दिसि—मा०, चितौ चितहूँ दिसि—मो०। [3] घाननि बाननि—ग० मा०। [4] काल लौ—ग०। [5] साधनि—त्र० भा० मो०।

आठ भेद करि नायिका बरनि कही इहि भाँति।
कापर बरनी जानि सो सकल रूप गुन कांति॥६०॥

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलास कवि देव कृते काल भेदवहिश्रम भेद सत्त्व भेद नायिका वर्णनं नाम षष्ठमो विलास।

सयोग दस हाव वियोग दस दशा।
इहि विधि बरनहुँ नायिका आठौ अग विभेद।
आदि अन पुरुष[1] की प्रकृति जाहि बखानत बेद[2]॥१॥

[1] आदि पुरुष सुरु—ग० मा०। [2] भेद—मो०।

सो सोहति नायक सहित प्रकृति पुरुष[1] सयोग।
तन मन बचन अनन्त[2] विधि करत करावत भोग॥२॥

[1] प्रति पुरुष—भा०। [2] अनन्द—मो०।

ताके पिय सजोग मे उपजत है दग हाव।
अरु वियोग मे दस दसा[१] दारुन विरह सुभाव ।।३।।

[१] मद की दसा—मो० ।

हाव-नाम।

लीला और विलास भनि औ विच्छित्त[१] विलोक।
विभ्रम किलकिंचित बहुरि[२] मोट्टाइत विब्बोक ।।४।।

[१] विक्षिप्त—ग० मा० । [२] अहुरि—मो० ।

कह्यो कुट्टमित अरु विहृत[१] ललित कह्यो[२] दस हाव।
तिय के पिय सजोग मे उपजत सहज सुभाव ।।५।।

[१] विकृति—ब्र० । [२] लहौ—ग० सा० ।

हाव-लक्षण।

कपट भेष भाषानुकरि[१] लीला मे रस हास।
सरसभाव तन मन वचन रुचि को रचन विलास ।।६।।

[१] वखानि करि—मो०, भाखिन कै—भा० ।

लघु मडन विच्छित्त[१] मैं मन अभिमान विसेष।
विभ्रम सो जु प्रमाद ते[२] उलटे भूषन भेष ।।७।।

[१] विक्षिप्त—ग० सा० । [२] प्रमादतें—भा० मो०, ब्र० प्रति मे पहले "प्रसाद" पाठ था परन्तु हरताल की सहायता से "प्रमाद" पाठ-सशोधन उसी हस्तलेख मे हुआ है।

किलकिंचित इकवार भय मुदमद[१] रस रिस मान।
मिलै कपट मोट्टाइत मन वचन आन तन आन[२] ।।८।।

[१] मुदमुद—मो० । [२] मन वच आनत आनि—भा०, मनहु वचन आन तन आन—सा०, मन वचन पै न तन आन—ग० ।

मन मे सुख सकट कपट प्रगट कुट्टमित हाव।
पिय सदोष विब्बोक बहु दृग भौहनि के भाव ।।९।।
अपनी सौ मिस लाज छल विहृत आन तन आन[१] ।
ललित सरस रचना ललित वरनत सुकवि सुजान ।।१०।।

[१] विलज आन तन आन—भा० मो०, हाव विकृति पहिचानि—ब्र० ।

लीला-उदाहरण।

राजपौरिया को रूप राधे को वनाइ लाई गोपी मथुरा ते मधुवन की लतानि मे।
टेरि कह्यो कान्ह सौ चलौ जू कस चाहै तुम[१] काके कहे लूटत सुने हौ दधि दान मे।
सग के न जाने गये डगर डगाने देव स्याम समवाने[२] से पकरि करै[३] पानि मे।
छूटि गयो छल सो छवीली[४] की विलोकिनि मे ढीली भई[५] भौहे वा लजीली मुसकानि मे ।।११।।

[१] तुमैं—भा० । [२] कान्ह समवाने—मो० ब्र०, कान्ह सकुचाने—भा० । [३] कीने—ब्र० भा० मो० । [४] छल छैल वाल—ग० । [५] परी—भा० मो० ।

विलास-उदाहरण ।

सहर सहर सौंधो सीतल समीर डोलै घहर घहर घनघोरि[1] कै घहरिया ।
झहर झहर झुकि झीनी झर लायो देव[2] छहर छहर छोटी बुंदनि छहरिया ।
हहर हहर हँसि हँसि कै[3] हिंडोरे चढ़ै थहर थहर तन कोमल थहरिया ।
फहर फहर होत प्रीतम को पीत पट लहर लहर होत प्यारी को लहरिया ॥१२॥

[1] घनघोरि—ग० । [2] चीर लाग्यो देह—सा० । [3] हॅपि हँसि कै—भा० मो० ।

आली झुलावति झूक दे दे झुकि जाति कटी झननाति झकोरें ।
चंचल अंचल बीच चलाचल बेनी बडी मो गडी चित चोरैं ।
या विधि झूलन देखि गयो नवते कवि देव सनेह के जोरैं ।
झूलत है हियरा हरि को हिय मांझ तिहारे हगं के हिंडोरं ॥ १३ ॥

भा० मो० प्रतियों मे यह छन्द त्रुटित है ।

विच्छित्त-उदाहरण ।

छूटे छवानि लौं केस विराजत यार वडे तमतार ह्नने मे ।
लोचन कंज से खंजन मे दुखभंजन देव न[1] जे कहने से ।
कुन्दन मो[2] तन जोवन जोति जवाहर से पिय के लहने से ।
रंग भरे तेरे अंग वहू[3] विलसैं विनही गहने गहने से ॥ १४ ॥

[1] देखत—भा०, देखन—मो० । [2] कुंजन मी—सा० मो० । [3] वधू—ब्र०, भटू—भा० ।

विभ्रम-उदाहरण ।

आई उठि सेज ते सुजान संग जागी निसि नीद न दिनहि लागी नीद न परति है[1] ।
देव सुनै बोल न बुलाये बिन बोलि उठै बौरई मै[2] औरई की औरई धरति है ।
हाँसी[3] मिस रोइ रोइ सौनैं उरहनो दै दै झूठे उरहनो देखे छतियाँ बरति है ।
अनखु न लागत अनोखी कुलदेव सीखी उलटे वसन पैन्हि ऊलट करति है ॥१५॥

[1] नीद नहि लागी अव नीदन परति है—ब्र०, नीद नही लागी निसि नीद न परति है—सा०, नीद निदनहि लागी नीद न परति है—भा० । [2] ठौरेई मै—सा०, औरेई मै—ग० । [3] दासी—भा० ।

किलकिंचित-उदाहरण ।

धोखे धाई धाई धाम आई नव वाम मितो सखी[1] मिस देव स्याम मानी रँगराति है ।
औचकही[2] ऐंचि कै[3] निमक भरि अंक प्यारी पारी[4] परजंक सो ससक[5] अकुलाति है ।
गातनि मे इतराति[6] वातनि मे सतराति भौहनि हँसाति अँखियानि मे रिसाति है ।
झारैं कर झुरी उर काम जुर झुरी[7] नैन लाज फुरहरी रस घुरी दुरी[8] जाति है ॥ १६ ॥

[1] सीखी—भा० मो० । [2] औचकही—ग० सा० । [3] औच कै—भा० मो० । [4] पाटी—भा० मो० । [5] परजंक साँस सकि—भा० मो० । [6] दुतिराति—भा० मो० । ब्र० प्रति मे दूसरे हस्तलेख मे "दुतिराति" पाठ संशोधन है । [7] झुर झुरी—ब्र० । [8] रस कीरी घुरी—सा० ।

मोट्टाइत-उदाहरण ।

सोहती हो तुमही वृज भूपर रूप रह्यो सब ऊपर चोखो ।
चाइ सौं खेलती खेल सखी तुम्है[1] देख्यो नही मुख रंचक रोखो ।
बालम त्यो न विलोकती बोलती अन्तर खोलती ना करि ओखो ।
जान्यो परै न विराग सुहाग[2] तिहारो अहो[3] अनुराग अनोखो ।। १७ ।।

[1] सखीन सो—ग० सा० । [2] सुहाग विराग—व्र० । [3] भटू—भा०, सखी० मो० ।

बिव्वोक-उदाहरण ।

काम तमासे कहू निसि काल्हि की देव वसे घन सो मन जोटे ।
लोपक कोपक पक्ष[1] परे इत आवत भोरही भौहनि ओटे[2] ।
नैन तुरग नचाइ[3] अचान गए[4] करि तीखी कटाक्ष की चोटे ।
मान दिमान के गाँव गई लुटि प्रीतम साह की प्रेम की पोटै[5] ।। १८ ।।

[1] लोए के कोए कटाछ—सा०, लक्ष—मो० । [2] लोपक कोप कटाछ कजाक परे इत आवत भौहनि औटै—ग० । [3] तरग निचाइ—मो० । [4] अचान कए—भा० । [5] मानहु मान के गाँव ही लुटिगे प्रीतम साह के प्रेम की पोटै—भा० मोटै—ग० मो० ।

कुट्टमित-उदाहरण ।

छतिया छुवत छवि औरै होति आनन की चदन मिलाये मनौ केसरि ढरति है ।
मुख की रुखाई पै रुखाई[1] कछु वैनन की नैनन की चिकनाई चौगुनि धरति है[2] ।
नासिका मरोरि मुख मोरि नेकु नाही करि चाहि चित प्रीतम की बाही पकरनि है[3] ।
देव सुखसागर मे बूडति सी ताने तिया उससि सुजानहि भुजान मे भरनि है[4] ।।१९।।

[1] झुखाई—ग० । [2] रुखाई माँह कोटि छवि छाई नेत अधरा रस नैनन रुखाइये धरति है—सा०, नैनन निकाई चिकनाइए धरति है—व्र० । [3] करै चहचही चेत चित वाँही पकरति है—ग० । [4] सुजान पै भुजानहि भरति है—ग० । भा० मो० प्रतियो मे यह छन्द त्रुटित है ।

विहृत-उदाहरण ।

बसीबट के तट निकट जमुना जल मे[1] खेलति कुँवरि राधा सखिन के पुज मे ।
रसिक कन्हाई आई बाँसुरी बजाई धुनि सुनि कै[2] रही न मति गति मन लुज मे ।
चलि न सकति वृन्दावन की गलिन बीच विकल[3] नलिन नैनी अलिन की गुज मे ।
देव दुरि जाय अकुलाय सुसुमित मुखी कुसुमित बकुल कदब कुल कुज मे ।।२०।।

[1] बसी बट जमुना जी तट के निकट कहूँ—भा० । [2] सुनि धुनि कै—भा० मो० ।
[3] खजन—भा०, किकल—मो०, कोकिल—व्र० ।

ललित-उदाहरण ।

चाँदिनी महल वैठी चाँदिनी के कौतुक को चाँदिनी सी राधा विछी[1] चाँदिनी बिसाल रै ।
चन्द्र की कला सी देवता सी देव दासी सग फूल से दुकूल पैन्है फूलनि की माल रै ।
छूटत फुहारे वे अमल जल झलकत चमकै चँदोवा मनि मानिक महाल रै ।
बीच[2] जरतारनि की हीरनि के हारनि की जगमगी जोतिनि की मोतिन की झाल रै ।।२१।।

[१] छवि—ग०। [२] वीजि—मो०। [३] मुकता मुधारन की सोहै सव झालरै—सा०।

हाव भाव मजोग मे[१] उपजत और अनेक।
तिन मे सूक्षमसार गहि दस विधि बरनत एक ॥२२॥

[१] शृगार मे—ग०।

इहि विधि दसौ प्रकार के हाव होत सजोग।
अव दम्पति की दस दसा वरनौ वीच[१] वियोग ॥२३॥

[१] विहित—भा०, विचित—मो० व्र०।

पिय वियोग मे दस दसा होइ दम्पती माहि।
जिनते तिनके तननि मे एकौ पल कल नाहि ॥२४॥

दस दशा-नाम।

प्रथम कह्यौ[१] अभिलाप अरु चिन्ता मुमिरन होइ।
ताते वरनौ गुनकथन फिरि उद्वेग सु होइ[२] ॥२५॥

[१] कहौ प्रथम—ग० सा०। [२] कहोइ—ग० सा०।

प्रलाप अरु उन्माद कहि व्याधि जडत्व[१] वखानि।
मरन कहत दसई दसा कविकोविद जिय जानि ॥२६॥

[१] अरु जडता जु वखान—व्र०, जडता व्याधि—भा०।

तिनके-लक्षण।

इच्छा जो पिय सग की सो अभिलाप प्रमान।
पिय चिन्तन चिन्ता कहै[१] पिय मुमिरन को ध्यान ॥२७॥

[१] करै—व्र०।

पिय गुन वर्णन गुणकथन अरु पिय विरह अनेग।
भली वस्तु नागा लगै सो कहिये उद्वेग ॥२८॥
विरहिनि बौरी ह्वै बकै सो प्रलाप पहिचानि।
करत कहत जानै न कछू[१] सो उन्माद वखानि ॥२९॥

[१] जो वैन कछु—सा०।

पिय विरहज्जुर व्याधि कहि जडता जड ह्वै जाइ।
मरन मूरछा एक ही विरह दसा दस भाइ[१] ॥३०॥

[१] मरन मोक्ष एकै विरह कही दसा दस भाइ—सा०।

अभिलाष-भेद।

श्रवनोत्कण्ठा दरसन लाज प्रेम करि भाप।
होत परसपर पाँच बिधि दम्पति के अभिलाप ॥३१॥

अभिलाष-उदाहरण।

कोई अचानक आइ कहै[१] मनमोहन की वतियाँ अति मीठी।
देव तिन्है सुनि सुन्दर को हरि देखन को मनु देत वसीठी।
एक ही बार चक्यो उचक्यो[२] चित आँखिनि लागै सखी सब सीठी।
पूरि रहे गुन रूप कहानिन[३] काननि केलि कहानी उबीठी[४] ॥३२॥

[1] आनि कह्यो—भा० । [2] नचक्यो—ब्र० । [3] रूपही नैननि—भा० । [4] उमीठी—भा० ब्र०, कलानि उवीठी—ग० ।

उत्कठाभिलाष-उदाहरण ।

मोहन रूप चढ्यो चित मे हित भोजन भूपन भाँति न भावति ।
देखन को खिन ही खिन खीन सखीन सो देव न जी की जनावति ।
भूलि गयो गुडियान को खेल झरोखनि झाँकति द्योस गँवावति[1] ।
वाल गनै न अवार सवार कि वारक वार[2] किवार लौ आवति ।।३३।।

[1] झाँकि कै द्दैस वितावति—सा० । [2] सु वारक वार—ग० सा० ।

दर्शनाभिलाष-उदाहरण ।

कान्ह कढे वृपभान के द्वार ह्वै खेलन खोरि पिछावरि घा की[1] ।
भीतर भौन तै सामुहै लाल की वाल विलोकि विलोकनि वाँकी ।
हेरी न देव सुथेरी घने दुख चेरी ह्वै जाती चितौतहि याकी[2] ।
पौरि लौ जाइ फिरी अकुलाइ अटा चढि धाइ झरोखा ह्वै झाँकी ।।३४।।

[1] याकी—ब्र० । [2] चेरी को पूछति वात पिया की—भा० ब्र० ।

लज्जाभिलाष-उदाहरण ।

मूरति जो मनमोहन की मनमोहनी के थिर ह्वै[1] थिरकी सी ।
देव गुपाल को वोलु सुने छतिया सियराति सुधा[2] छिरकी सी ।
नीके झरोखा ह्वै झाँकि सकै नहि नैननि लाज घटा घिरकी सी ।
पूरन प्रीति हिये हिरकी[3] खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी सी ।।३५।।

[1] मन ह्वै—भा० मो० ब्र० । [2] सियराति सुधा छतिया—ग० सा० । [3] हरि की—ब्र० ।

प्रेमाभिलाष-उदाहरण ।

वीसौ बिसे वृपभानसुता पै हौं जानति कान्ह कियो[1] कछु टोना ।
काहू[2] कह्यो वरसानै तै री नदगाँव चल्यो अव स्याम सलोना ।
खेलति ही कि अचानक चौकि चितै चहुँ देव दिये[3] दृग कोना ।
सूल उठ्यो उनमूलि[4] गयो मन भूलि गयो सब खेल खिलोना ।।३६।।

[1] जियो—भा० । [2] कान्ह—ग० । [3] दिख्यो—सा० । [4] तन रूलि—भा० ।

चिन्ता-भेद ।

दम्पति के अभिलाप तै चिन्ता वढै अपार ।
गुप्त अगुप्त सकल्प अरु विकल्प चारि प्रकार[1] ।।३७।।

[1] गुप्त सकल्प अरु कह्यो विकल्प चारि प्रकार—भा० ।

गुप्तचिता-उदाहरण ।

सूधेहू नैन लखै न तवै अव पैयै कहाँ[1] जव चाहत हेरो ।
कान करै नहि कान तवैव विकान[2] सगे अकुलान घनेरो ।
लाजहि जाय मिलै उत वे इत मोहि मिले मग[3] मेटत मेरो ।

मेटो मनोरथ हौं इनको तो मिटै मन मेरे मनोरथ तेरो ॥३८॥

[1] पैये कही—भा० व्र०। [2] सर्वेव विकान—भा० मो० व्र०। [3] हित—ग०।

अगुप्तचिन्ता-उदाहरण।

चित[1] कोटि कला उलटै-पुलटै पलही पल ज्यों मृग बागरि के।
बहु तर्क विलास चढ़ै चित बास[2] पै देव सरूप उजागरि[3] के।
गति वक्र निसगही नाच करै गुन डोरि गहे गुनआगरि[4] के।
नव नेह लग्यो नटनागर सों दोउ नैन भये नट नागरि[5] के ॥३९॥

[1] ०—भा० मो०, करि—ग०, कोरि—सा०। [2] बाल—भा०, ग० प्रति में दूसरे हस्त-लेख में संशोधन 'बाल'।[3] उजागर—व्र०। [4] गुन आगर—व्र०। [5] नगनागर—व्र०।

संकल्पचिन्ता-उदाहरण।

कछु और उपाय करै जनि री इतने दुख सों सुख सों सरिबी।
फिरि अन्तक से बिन कन्त बसन्त सु आवत जीवतुहि जरिबी[1]।
बन बौरत बौरि से जाऊँगी देव सुने धुनि कोकिल की डरिबी।
जल डोलिहैं और अबीर भरी सु हहा कहि बीर[2] कहा करिबी ॥४०॥

[1] जीवत ही जरिबो—सा०। [2] बीर—भा०।

विकल्पचिन्ता-उदाहरण।

खोरि[1] लों खेलन आवतिये न तौ आलिन के मत मैं परती क्यों।
देव गुपालहि देखतिये न तो या बिरहानल मैं बरती क्यों।
बापुरी मंजुल आँब की बालि सु भाल सी ह्वै उर मैं अरती क्यों।
कोमल कूकि कै[2] क्वैलिया कूर[3] करेजन की किरचै करती क्यों ॥४१॥

[1] पौरि—व्र०, मो० प्रति में पहले 'पोरि' पाठ था परन्तु "प" की टेढ़ी रेखा पर हर-ताल लगाकर "पौरि" पाठ—संशोधन हुआ है। [2] कोमल बोलि के—भा० मो० व्र०। [3] कोकिल कूक—मो० व्र०।

स्मरण-भेद।

स्वेद स्तंभ रोमांच सुरभंग कम्प वैवर्न।
अश्रु प्रलय सुमिरन विषय सात्त्विक आठौ वर्न ॥ ४२ ॥

स्वेद स्मरण-उदाहरण।

ईंगुर सो मिलि जात पसीजत अंग सुरंगन चोलनि[1] पै।
कवि देव कछू मुलकै पुलकै झलकै[2] उर प्रेम कलोलनि पै।
हँसि बोले न बाल बिलोकै न आलिन झोकै[3] नहीं दृग[4] डोलनि पै।
ललकै अँखियाँ पलकै न लगे[5] झलकै जलबुंद[6] कपोलनि पै ॥ ४३ ॥

[1] बोलनि—सा०। [2] उर कै—भा० मो०। [3] रोकै—ग०। [4] डग—सा०। [5] खुलै—ग० सा०, न लगै पलकै—व्र०। [6] श्रमबिंदु—ग०।

नासिका अग की ओर दिये[२] अधमुद्रित लोचन कोर समाधति।
आसन बाँधि उसास भरै अब राधिका देव कहा अवराधति।
भूलि गो भोग कहे लखि लोग वियोग किधौ यह जोगहि साधति ॥ ४४ ॥

[१] उमग—ब्र०। [२] दिपै—सा०, ओट हिये—ब्र०।

रोमाच स्मरण-उदाहरण।

हरपि हरपि हिय मन्द विहँसति तिय बरपि बरपि रस राचे चित चोज है।
मुलकि मुलकि स्यामा स्याम[१] सुमिरति देव पुलकि पुलकि उर उठत उरोज है।
फरकि फरकि बाम बाहु फुरहुरी लेति खरकि खरकि खुलै मैन सर खोज है।
छलकि छलकि छबि छलकनि पलकनि ललकि ललकि मूँदै लोचन सरोज है॥ ४५ ॥

[१] स्याम स्याम—भा० मो० ब्र०।

सुरभग स्मरण-उदाहरण।

धरि बैठी ध्यान करि बैठी गूढ ज्ञान जानि जिय जान मोह मोह[१] मो हिय मढत है।
मूँदि मूँदि लोचन चितौति नोद मोक्षन के मोचत[२] सकोच सोच सकल[३] बढत है।
भूली भूख प्यास बास हास तें उदास देव देखि दासी दास आस पास तै रढत[४] है।
कौन जानै मौन धरि को है अवराधे अब राधे मुख आधे आवे आखर कढत है ॥४६॥

[१] ०—ग० सा० मो०, मोह माह—ब्र०। [२] सु मोचन—ब्र०। [३] सवकै—ग०, सवकौ—सा०। ४ डरत—भा०, "ठरत" पर १—२ सख्या डाल कर "रढत"—ब्र० मो०।

कप स्मरण-उदाहरण।

प्रेम के प्रकास आसपास की परोसनि यो पूछि पूछि जाती पछताती सबै अलिका।
कैसी है कुँवरि[१] कासो कहिये कहाधौ भयो[२] काहू कछू कीनो कै कुबोल बोल्यो बलिका।
सोवै न[३] त्रियामा भरि स्याम सुमिरत काहि[४] बोलति विलोकति न पौढति न पलिका।
झाँपि झाँपि खोलै झपकारे दृग भारे देव काँपि काँपि उठै कुच कौल की सी कलिका ॥४७॥

[१] कैसे है कुँवर—सा०। [२] कहा कहिये सु कैसी भई—ग०। [३] सोचते—सा०। [४] काहू—सा०, कहि—भा०, रहि—ग०।

वैवर्ण स्मरण-उदाहरण।

मोहन की मूरति सो मोही जग मोहनी[१] सु मोहि मोहि महा मोह मो हिय मढाइयत।
भौंर भरे[२] भीतर सरोज फरकत ऐसी अधखुली अँखियानि उपमा बढाइयत।
आलिन की आन उर आनती न आन आन[३] करति न कानही सयानही पढाइयत।
लोनो[४] मुख मडल पै पडुल[५] प्रकास प्यारी[६] जैसे चद मडल पै चदन चढाइयत ॥४८॥

[१] मन मोहनी सु—भा०। [२] भौर भौर—भा० मो० ब्र०। [३] आनी तन आनी आन—भा० मो० ब्र०। [४] लोनो—भा०, लीनौ—मो०, लीन्हो—ग० सा० ब्र० प्रति मे पहले "लौने" पाठ था परन्तु इस पर लाल हरताल फेर कर "लीने" पाठ—सशोधन हुआ है। [५] कुडल—हरताल फेर कर "पडल"—ब्र०, पडल—भा०। [६] देव—भा०, करि—ब्र०।

अश्रु स्मरण-उदाहरण ।

आई नही तन मे तरुनाई भई नहि स्याम के सग सजोगिनि[1] ।
कौने सिखाई सखीधौ कहा सुमिरै धरि ध्यान जनौ जुग जोगिनि ।
भोजन वास न हास हुलास[2] उसास भरै मनो दीरघ रोगिनि[3] ।
आँखिन तै अँसुवा नहि सूखत एकही वार ह्वै वैठी वियोगिनि ॥ ४६ ॥

[1] सजोगनि—व्र० । [2] विलास—ग० सा० । [3] डोरे सु लाल वही गर सेलि है छाड़ि दिये जग के सब भोगनि—भा० ।

प्रलय स्मरण-उदाहरण ।

सूधेहू न खेल खेलि जानतिही काल्हिहू लौ काहे की[1] सयानी वानी वोलति है तूतरी ।
आपु ही ते आजुही सयान मन सीखी सखी सारदा कि राधा के असीस सीस ऊतरी ।
अधमुँदी अँखियनि[2] खोलति न बोलति न डोलति न साँस चित चल्यो[3] अद्भूत री ।
कीने हरि मित्र लीने विरह दसा चरित्र वैठी है विचित्र[4] रूप चित्र की सी पूतरी ॥५०॥

[1] खेलि एलि जानति ही कान्ह कुल जानति—सा० । [2] नयननि—मा० । [3] चाल्यो—भा० व्र० । [4] पवित्र—सा० ।

साधारण स्मरण-उदाहरण ।

रजित महावर सो कज से चरन मजु गूजरी वजनि अजौ काननि जगी रहे ।
अचर उचोहे कुच सकुच सु लक लची[1] कचन सी देह दुति देव[2] उमगी रहै ।
भूलती न भावती की भाति रति रभा की सी मूधी सी सुधानिधि सी सौवे सो पगी रहे ।
आँखिन न देखै तो लौ आँखिन न लागे पल वडी वडी आँखिनि की आँखिन[3] लगी रहे ॥५१ ॥

[1] खीन लचकीली लक—अ०, सकुच लची सी जात—व्र०, सकुच लची—मो० । [2] देह—मो० । [3] आँखे ही—व्र० ।

घावरो घनेरो लाँवी लटै लटे लाँक पर[1] काकरेजी सारी खुली अधखुली टाड वह ।
गोरी[2] गजगौनी दिन दूनी दुति होनी देव लागति सलोनी गुरु लोगन के लाड वह ।
चचल चितौनि चित चुभी[3] चित चोरवारी मोर वार वेसरि[4] औ केसरि की आड वह ।
गोरे गोरे गोलनि की हँसि हँसि बोलनि की[5] कोमल कपोलन की जी मै गडी गाड वह ॥५२ ॥

[1] लक पातरे पै—भा० मो० व्र० । [2] लोनी—भा० मो० व्र० । [3] चुभि रही—भा० मो० व्र० । [4] चित चोटी वाली मोट वाली वेसरि—सा० । [5] हँसि हँसि वोलनि की गोरे गोरे गोलनि की—सा०, मृदु हँसि वोलनि की—भा० मो० व्र० ।

गुण कथन-लक्षण ।

सुमिरि परसपर दम्पति रहति सरस रस पागि ।
विरह मथन[1] मन गुन कथन वहु वरनत अनुरागि ॥ ५३ ॥

[1] कथन—भा० मो० व्र० ।

गुणकथन-भेद ।

हरप ईर्पा होड अरु कहियतु चित्त विमोह ।
अपस्मार[1] अरु गुनकथन चारि भाँति करि टोह[2] ॥५४ ॥

[१] अस्मार—भा० मो० । [२] कहिवोइ—सा० ।

हर्ष-गुणकथन-उदाहरण ।

देव मै सीस बसायो मनेह के भाल मृगम्मद विन्दु के भाख्यो ।
कचुकी मे चुपर्‌यो करि चोवा[१] लगाय लयो उर सो अभिलाख्यो ।
लै मखतूल गुहे गहने रस मूरतिवन्त सिगार कै चाख्यो ।
सॉवरे स्याम को सॉवरो रूप मे नैननि मे कजरा करि राख्यो ।। ५५ ।।

[१] कचुकी मे चोवा लै मै चुपर्‌यो—सा०

ईर्षा-गुणकथन-उदाहरण ।

कैसेहु कोउ करो उपहास पै[१] नीके ही नाचति[२] नेह नटू हौ ।
औगुन होइ किधौ गुन देव फरी गुनजाल[३] लपेटि[४] लटू हौ ।
चातक लौ घनस्याम को रूप अघाति नही दिन रात रटू[५] हौ ।
दूसरो काज न[६] लोक की लाज भई वृजराज की भाट भटू हौ ।।५६ ।।

[१] हो—भा० मो० व्र० । [२] वाचति—सा० । [३] गुनलाल—व्र० । [४] लखोटी—व्र०, सखीटि—सा० । [५] नटू—भा० मो०, व्र० प्रति मे पहले के "नटू" पाठ पर हरताल फेर कर "रटू" पाठ सगोधन हुआ है । [६] कानन—व्र० ।

विमोह-गुणकथन-उदाहरण ।

ग्वालि गई इक ह्यॉ कि उहाँ मथि रोकि सुतौ[१] मिसु कै दधि दान को
वै तो भटू वह भेटी भुजा भरि नातो निकासि कछू पहचानि को ।
आई निछावरि के मन मानिक गोरस दे रस लै[२] अधरानि को ।
वाही दिना ते हिये मे गडो वह ढीठ वडो वडरी[३] अँखियानि को ।। ५७ ।।

[१] झाॅकि वहाॅ मगि रोकी सुनौ—भा० । [२] रस से—गं० । [३] बडो री बडी—भा०, व्र० प्रति मे पहले के "वडो री वडी" पाठ पर हरताल फेरकर "वडो वडरी" पाठ सगोधन हुआ है ।

अपस्मार-गुणकथन-उदाहरण ।

ना खिन टरत टारे ऑखिन लगत पल ऑखिन लगे री स्यामसुन्दर सलौन से ।
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस भरि भरि रूप लेत लोचन अचौन से ।
एरी कहु को हौ हौ कहाॅ हौ कहा करति हो कैसे वन कुज देव देखियत भौन से ।
राधे हौ सदन बैठी कहती हौ कान्ह कान्ह हा हा कहि कान्ह वे कहाॅ है को है कौन से[१] ।। ५८ ।।

[१] हा हा कैसे है कोहै कौन से—भा०, हा हा कान्ह कैसे है कहाँ है कोहै कौन से—व्र० मो० ।

उद्वेग-लक्षण ।

दपति करि करि गुन कथन भरि भरि रस आवेग ।
पूरन प्रेम वियोग ते प्रगटै उर उद्वेग ।।५९।।

उद्वेग-भेद ।

भली वस्तु नागा लगै काहू भाँति न ओत[१] ।
त्रिविधि[२] उद्वेग सु वस्तु अरु देस काल करि होत ॥६०॥

[१] न सोत—ग०, ना श्रोत—सा० । [२] त्रै—भा० ।

वस्तु-उद्वेग-उदाहरण

वेप भये[१] विप भावै न भूपन भूप न भोजन की कछु ईछी ।
मीच[२] की साध न सोवे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी[३] ।
चन्दन त्यो चितयो नहि जात चुभी चित माँहि चितौनि तिरीछी ।
फूल ज्यो सूल सिलाय सम सेज[४] विछौननि वीच[५] विछी मनु वीछी ॥६१॥

[१] भनो—व्र० । [२] मीठे—सा० । [३] देव जू देखे करै वधु सो मधु दूध सुधा निधि माखन छीछी—ग० । [४] सलाक सी सेज—सा० । [५] माँझ—ग० सा० ।

देश-उद्वेग-उदाहरण ।

घोर लगे घर वाहरिहू डर नूत पलास लगै पजरे से[१] ।
रगिन भीतिन भीत लगै लखि रग मही रन रग ढरे से[२] ।
धूम घटागरु धूपनि की[३] निकसे नव जालनि व्याल भरे से ।
ये गिरिकन्दर से मनि मन्दिर आज अहो उजरे उजरे से ॥६२॥

[१] जरै पजरे मे - प० ग०, लमै उजरे से—भा० मो० । [२] महीतरन रग ढरे मे—भा०, मही तल रग ढरे से— [३] धूम जटागरु धूमन के—भा० मो० व्र०, धूम जठागरु धूपनि की—सा० ।

कालोद्वेग-उदाहरण ।

कन्त विनु वासर वसन्त लागे अन्तक से तीर ऐसे त्रिविधि समीर लागे लहकन ।
सान धरे सार से चन्दन घनसार लागे खेद लागे खरे मृगमेद लागे महकन ।
फाँसी से फुलेल लागे गाँसी से गुलाव अरु[१] गाज अरगजा लागे[२] चोवा लागे चहकन ।
अग अग आगि[३] ऐसे लागे है केसरि नीर[४] चीर लागे जरन अवीर लागे लहकन ॥६३॥

[१] देव—ग० । [२] गुलाव गाज ऐसे अरगजा—भा० मो० अरु अतर अरगनि लागे—व्र० । [३] आँच—ग० । [४] लागे नीर केसरि के—व्र० ।

प्रताप-लक्षण ।

दपति के उद्वेगराग ह्वै वढै[१] विरह सन्ताप ।
उत्कठित चित प्रेम पिय पेखौ प्रगट प्रलाप ॥६४॥

[१] उद्वेग हू वैठि—भा० मो० व्र० ।

प्रलाप-भेद ।

सात भाँति वहु वाद सो होत ज्ञान वैराग ।
उपदेस प्रेम सशय कहूँ भ्रमनि आप[१] वड भाग ॥६५॥

[१] भ्रम निश्चै—ग०, भवन श्रवन—सा० ।

ज्ञानप्रलाप-उदाहरण।

देखे अनदेखे दुखदाई भयो सुखदानि[१] सूखत न आँसू सुख सोइवो हरे पर्‌यो।
पानी पान भोजन सुजन गुरजन भूले देव दुरजन लोग लरत खरे[२] पर्‌यो।
लाग्यो कौन पाप पल एकौ न परत कल दूरि गयो गेह नयो नेह नियरे पर्‌यो[३]।
होतो जोअजान तो न जानती[४] इतीक विथा मेरे[५] जिय जानि तेरो जानिबो गरे पर्‌यो।।६६।।

[१] सुखदाई भयो दुखदाई—ब्र०। [२] लरख तरे—सा०। [३] दूरि गौ गहन यौ सुनेह नियरे पर्‌यो—भा०, दूरि गयो गहन यौं नेह नियरे पर्‌यो—मो०। [४] होती जो अजान तो न जानती—भा० मो०। [५] एरे—ग० सा०।

वैराग्यप्रलाप-उदाहरण।

तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि हारी पाँय परि परि तौ न कीन्ही तैं सम्हार[१]।
ललन विलोकि देव[२] पल न लगाये तव यौं[३] कल न दीनी तैं छलन उछलनहार।
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई आप विधि बूड्यो व्याधि बाधा सिधु निराधार।
ऐरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीने अब एकै बार दै के तोहि मूँदि मारों एकबार[४]।।६७।।

[१] कीन्ही सम्हार—भा० मो०, कीन्ही तैं सम्हार—"तैं" हाशिये पर—ब्र०। [२] बिलोकिवे को—सा०। [३] देव यो—ब्र०। [४]तोहि मारो दैकै तोहि एक बार—ब्र०।

बोर्‌यो बस बिरद मै[१] बौरी भई बरजति मेरे बार बार बार[२] बीर कोऊ पैठो जिनि[३]।
तुम गिरी सयानी[४] बिगरी अकेली हौंही गोहन मे छाड्यौ मोसो भौहनि अमैठो जिनि।
कुलटा कलकिनि हौं कायर कुमति कूर काहू के न काम की निकाम योही ऐठौ जिन।
देव तहाँ बैठियतु जहाँ बुद्धि बैठी हौ तो बैठी हौ विकल कोऊ मोहि मिलि बैठौ जिनि।।६८।।

[१] बोर्‌यो है बसत विरही मै—सा०। [२] त्रुटित—ग० सा०। [३]कोऊ पास पैठो जनि—ग०, वैठौ जिनि—ब्र०। [४] तुमही सयानी वीर—भा०, तुम सब सयानी है—ब्र०।

उपदेशप्रलाप-उदाहरण।

प्रेम की पीर न जानी तैं वीर जु छैल कटाछहुँ सो कहुँ छ्वैहै[१]।
देव तुही त्रसिहै हँसिहै बलि वावरी ह्वै रस रूसि है र्‌वैहै[२]।
आई तो सीख सिखावन को पै सखी सुनि आपनीयो मति र्‌व्वैहै।
मोही सी मोही सी मोही कहै अभै[३] नेक मै मोही सी मोही सी ह्वै है।।६९।।

[१]कवि छ्वैहै—भा०। [२]रह ही रस चैहै—भा०, रस है रस चैहै—मो०, रस है रस च्वैहै—ब्र०, रस रूसी सी ह्वैहै—सा०, को रवि सूचि विसैहै—ग०। [३]फिर—ग०।

प्रेमप्रलाप-उदाहरण।

कान्हमई वृपभानसुता भई प्रीति नई उनई जिय जैसी।
जानै को देव विकानी सी डोलै लगै गुरलोगन देखि अनैसी।
ज्यो ज्यो सखी बहरावति[१] बातनि त्यो त्यो बकै वह बावरी ऐसी।
राधिका प्यारी हमारी सौ तू कहि काल्हि की वेनु बजाई मै कैसी।।७०।।

[१]गुहरावती—सा०।

संशयप्रलाप-उदाहरण।

मोही मैं वे[1] किधौ हौ उनही मैं कि हौ अरु वे उक मग वमेई[2]।
वाहरि भीतर मोही मैं देख्यौ दसौ दिसहू मैं चितौनि ठगेई[3]।
काहे की लाज लजाए गी[4] को अब गोकुल गेह सनेह पगेई।
देख्यौ सुन्यौ नहि दूसरो देव जितै जित[5] जाऊँ तितै तित वेई[6] ॥७१॥

[1]सवै—भा० मो०ब्र०, ब्र० प्रति मे दूसरी हस्तलिपि मे "सेवे"। [2]नगेई—भा० मो०। [3]भीतर हीतर हू दिहरी तर देखी सु ठौर ठगेई—भा० मो० ब्र०। [4]लजाय परी अब—ब्र०। [5]जित तितै—भा० ब्र०। [6]चितवेई—भा० मो० ब्र०।

विभ्रमप्रलाप-उदाहरण।

आजु भले गहि पाये गुपाल गुहौ[1] गहि लाल तुम्हैं गुन जालहि[2]।
होन न देऊँ कहूँ चलि चाल वसाऊँ हिये मे मिलाई के मालहि।
वोलत काहे न वोल रसाल हौ जानति भाग भरे निज भालहि[3]।
सीचत नैन विसालनि के जल वाल स भेटनि बाल तमालहि[4] ॥७२॥

[1]गहौ—ब्र०। [2]गुन लालहि—भा० ब्र०। [3]निज बालहि—भा० मो०। [4]बालस मालहि—मो०।

निश्चय प्रलाप-उदाहरण।

काहू की कोई कहावनि हौ[1] नहि जाति न पाति न जाति नसौगी।
मेरोई हास करौ किनि लोग हौ को कहि देवजू काहू हँसौगी।
गोकुल चन्द की चेरी चकोरी हौ मन्द हँसी मृदु फन्द फँसौगी।
मेरी न वात वको वलि कोई मैं बौरिसे हौ[2] वृज वीच वसौगी[3] ॥७३॥

[1]कहा वलि हौ—भा० मो०। [2]वावरी है—ग०। [3]मेरे खियाल परौ न कोई गरी कुजन मे गृह जाइ वसौगी—भा०, सग नगेन सो साची सुनै नहि सावरे के अँग अँग वसौगी—ब्र०।

उन्माद-लक्षण।

प्रेम विकल वकि थकै[1] वाढै विरह विषाद।
विन विचार आचार जहँ सो प्रगटै उन्माद ॥७४॥

[1]उठै—भा०।

उन्माद-भेद।

मद विमोह अरु विसमरन कहि विच्छेप विछोह[1]।
पाँच भाति उन्माद ये[2] जहा भूरि भ्रम मोह ॥७५॥

[1]विछोह विछोप—भा०। [2]कहि—भा० मो०।

मद-उन्माद उदाहरण।

धुनि धुनि सीस धुनि सुनि वासुरी[1] की देव चुनि चुनि चित जु करत चित चारी सी।
दिन दिन[2] दूने दुख सूने से सकल सुख लूने विन ज्ञान कढी[3] मोह की कुठारी[4] सी।
रचि रुचि रग सौं उधरि नची अग अग को करे सु काज[5] लोक लाज गहि डारी सी[6]।
वावरी ह्वै वोलै न[7] सम्हारति न वोलै[8] वृज वीथनि मे डोलै मुख खोलै[9] मतवारी सी ॥७६॥

[1]मुरली—सा०। [2]टुनि टुनि—ग० मा० मो०, टनि टनि—भा०। [3]कटी भा० ब्र०, नव म्यान कढी—ग०। [4]कुल्हारी—ग०। [5]सुजान—ग०। [6]लाजहि बिडारी नी—भा०, लाज गति डारी सी—ग०। [7]बावरी लौं डोलै ना—ग० मा०। [8]निचोलै—ग०, न लोलै—सा०। [9]बोलै—ग०।

मोह-उन्माद-उदाहरण।

जबते कुवर कान्ह रावरी कलानिधान कान परी वाके कहूँ[1] सुजस कहानी सी।
तवही ते देव देखौं[2] देवता सी हँसति सी खीझति सी रीझत सी[3] रूसति रिसानी सी।
छोही सी छलि सी छीड[4] लीनी सी छकी सी छीन जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी।
वीधी सी वँधी सी विप बूडी सी[5] विमोहति सी वैठी वह[6] वकति विलोकति विकानी सी ॥७७॥

[1] वाके कहूँ कान परी—सा०, वाके कान परी कहूँ—ब्र० मो०। [2] देखी—भा०। [3] रीझत सो खीझत सी—भा० मो० ब्र०। [4] छीनि—भा० मो० ब्र०। [5] बूडत—भा० मो, बूडत—हरताल फेरकर "बूडी सी"—ब्र०। [6] बाल—भा०।

विस्मरण उन्माद-उदाहरण।

मोहनलाल लखे कहुँ वाल वियोग की ज्वालनि सो तन डाढति।
लागि गई अँखियाँ चितचोरन भागि गई गुरु लोग की गाढति।
और की और कहै सुनै देव महा दुचिताई सखीनि के वाढति।
नाम लिये मुख ओर चितै रहै सौंचि घरीक मै घूँघट काढति ॥७८॥

विक्षेपोन्माद-उदाहरण।

चलि चलि मोसो कहै चलि चलि होति कित विचलि विचलि चलि परति उचकि चकि[1]।
रूसि रूसि हँसि हँसि खीझि खीझि आवै[2] खरी रीझि रीझि जाइ छोह[3] छोहि छवि छकि छकि।
काहि तकि तकि[4] चिता कितहि पठायो[5] आजु देव कहै रहै कौन विथा सो विथकि थकि।
विनही विचार कै वचन विन वूझै वीच वहकि वहकि विन काज उठै बकि वकि ॥७९॥

[1] विथकि थकि—भा० मो० ब्र०। [2] खीजि खीजि आवै—भा० ब्र०, रहै—ग०। [3] मोहि छोहि—ग०। [4] तकि तकि काहि—ग०। [5] कित हिय ठायो—भा० मो०।

विछोह उन्माद-उदाहरण।

आक बाक वकति विथा मै बूडि बूडि जात पी की सुधि आये जी की सुधि खोड खोड देति।
कोह भरी कुहकि विमोह भरी मोहि मोहि छोह भरी छिति पै करोड[1] रोड रोइ देति।
वडी वडी वार लगि वडी वडी आँखिन ते[2] वडे वडे अँसुवा हिये मे मोड[3] मोड देति।
वाल विन वालम विकल वैठी वार वार वपु मे विपम[4] विप वीज वोइ वोइ देति ॥८०॥

[1] छिति पै छली सी—भा०, छिति पै छवीली—ब्र०। [2] वडी वडी आँखिन तै वडी वडी वार लग—सा०। [3] हिये मे समोय—सा०। [4] विरह—ग० सा०

व्याधि-लक्षण।

अति प्रलाप उनमाद तै अन्तर उपजे आधि[1]।
जल भोजन मुख सयन विनु वाढति वपु मे व्याधि ॥८१॥

[1] व्याधि—भा०।

व्याधि-भेद ।

तीन भाँति की व्याधि सो प्रथम होइ सन्ताप ।
दूजी कहियतु ताप तें तीजी पश्चात्ताप ॥ ८२ ॥

सन्ताप व्याधि-उदाहरण ।

हाहा हौं करति मेरो कह्यो करु मेरी बीर पवन अवन धँसे[1] धीर न धरनि धाम ।
देव घनस्याम बिनु जोबन दवा सो जरै ग्रीषम मही सी हौं तरौंसे जानि आठौ जाम ।
आयो बैरी मधु बधु कीनो कौन व्याधिन को काल भई कोकिला उपा कर न होतु त्राम ।
ताही को कँपाउ बस[2] करे जिन बालम वे रे जनि[3] कपावे मो करेजनि कुटिल काम ॥ ८३ ॥

[1] धावै—भा०, धँसै—ग०। [2] ताही को कँपावन बस—भा०, ताही सों कपावन बस—मो०। [3] अरे जनि—भा०।

ताप व्याधि-उदाहरण ।

साँझ को सो चंद भोर को सो करि रारयो मुख भोर की सी कांति भानि साँझ की सी भई आनि[1] ।
साँझ भोर को सो नभ देखिये मलीन मन साँझ भोर चकवा चकोर की सी छिन हानि[2] ।
कैसे करि कोसो कासो कहौं कैसी करौं देव कीनी रिपु रैनी के सुरेखी री सु रैनी रानि ।
कैसी लाज कैसो काज कैसे धौं सखी समाज कैसो घर कैसो बन कैसो उर कैसी रानि ॥ ८४ ॥

[1] साँझ की सी अब भई आनि—भा०, कौन रानि साँझ की भई है आनि—'जौन' हाशिये पर—व्र०, साँझ कैसी भोर भोई आनि—स०। [2] चकवा की सी भई छिन हानि—सा०।

पश्चात्ताप व्याधि-उदाहरण ।

सूधेही[1] सिखाइ कै सखीनि समुझाई होती देव स्याम सुंदर के सौंहै सरसानी त्यों ।
बिचरि बिचारे बादि बैरी होते बधु कन[2] बिरह की बेदन बिकल बिलखानी क्यों ।
जगमगी जोन्ह[3] ज्वाल जालन[4] सो जारती न जमजाई जामिनि जुगन[5] सम जानी क्यों ।
बरैलिहाई क्वैलिया की काल ऐसी कूकैं सुनि कौल की सी कलिका कैवरि कुंभिलानी क्यों ॥ ८५ ॥

[1] सूधे ह्वै—ग० सा०। [2] बिचरि बिचारे बीन बैरीन सकुन होते—भा० मो० व्र०। [3] जौन—व्र०, जौनि—भा०। [4] जारन—भा० मो० व्र०। [5] जुगत—मो०, जुगन—भा० व्र०। केवल सा० प्रति में चरणों का क्रम १-३-४-२ है।

जड़ता-लक्षण ।

व्याधि बढ़त बाढ़ै बिथा बिन भोजन बिन नीर ।
निस दिन छिन छिन छीन ह्वै जड़ ह्वै रहत सरीर ॥ ८६ ॥

उदाहरण ।

कमल सुनैन जोरे जबतें[1] सुनैन तुम तब ते सुनै न स्यामा[2] सखिन के सोरए ।
लागत न जंत्र मंत्र तंत्र परतंत्र परी कान परे देव गुन[3] मंत्र चित चोरए ।
रावरोई[4] रूप रमि रह्यो वाके रोम रोम छैल छेदे[5] छाती मैं कटाछनि के छोरए ।
लाग्योई रहत वाहि लालन तिहारो नेह अद्भुत भूत जेहि पाँचौ भूत भोरए ॥ ८७ ॥

[1] जियत—भा० मो० व्र०, कवते—सा०। [2] स्याम—व्र०। [3] देव गन—भा० मो०

व्र०, देव गुरु—सा० । [४] रावरे के—व्र० । [५] छेद—भा० मो० व्र० ।

मरण-लक्षण ।

दसम[१] अवस्था मूरछा कहूँ मरन ह्वै जात ।
नीरस जानि न[२] वरनिये जीवन अति सरसात ।। ८८ ।।

[१] दसई—भा० व्र० । [२] मरन न नीरस—ग० सा० ।

उदाहरण ।

केलि के वगीचा लौ अकेली अकुलाइ आई नागरि नवेली वेलि[१] हेरत हहरि परी ।
कुज पुज तीर तहाँ गुजत भँवर भीर सुखद[२] समीर सीरे नीर की नहरि परी ।
देव तेहि काल गुहि माल लाई मालिनी सुवाल को विरह विप व्याल की लहरि परी ।
छोह भरी छरी सी छवीली छिति माँह फूल छरी के छुवत फूल छरी सी छहरि परी ।। ८९ ।।

[१] त्रुटित—मो०, खेली—व्र० । [२] सीतल—ग०, सुख—सा० ।

देव जिन्है मिलि[१] कै रस हास प्रछन्न प्रकास निसा सुख सोई ।
भूरि के भाव ममूरि के हावनि पूरि के प्रेम सदा सुख भोई[२] ।
ते विछुरे दिन एक कहा कहौ वूडि वियोग समुद्र समोई ।
भोगी भुवाल के देखे विना दुख देखे अलेखे दसा दस खोई ।। ९० ।।

[१] तिन्है मिलि—व्र० । जिन्है—नित—सा० । [२] सोई—व्र० ।

इति श्री रस विलासे भोगीलाल नृप हेतवे देवदत्त कृते सकल वियोग दशा वर्णनं नाम सप्तमो विलासः ।

नायिका-भेदांतर ।

कहे नायिका भेद सव आठ अग के भाइ ।
अव भेदातर कहत हौ मत प्राचीन सुभाइ ।। १ ।।
वैस सधि नवला नवल तरुनि नवल अनग ।
मुग्धा पाँच प्रकार कहि अरु सलज्जरति रग ।। २ ।।
प्रगट यौवना अरु प्रगट मदना वचना[१] ढीठ ।
सुरत विचित्रा चारि विधि मध्या तिय पिय ईठ ।। ३ ।।

[१] सदना वदना—मा० व्र० ।

चित्र[१] प्रकास प्रवीन रति वस्य वल्लभा नारि ।
सविभ्रमा प्रौढा कही चारि भाँति निरधारि ।। ४ ।।

[१] चित्त—सा० ।

तीनि भाँति वरनी प्रथम सुघर सुकीया नारि ।
सो भेदातर मौ कही तेरह भाँति विचारि ।। ५ ।।

मुग्धा-भेद । वयः सधि-उदाहरण ।

सैसो निसि छोर द्योस जोवन को भोर तम ओज मे सरोज नैन सोवत[१] जगाइ कै ।
खेलति मिलै है मन खेल मे मिलै न रच चचल[२] दृगचल देखावति[३] दिखाइ कै ।
घूँघट मे घिरी जेमे उघरी परति दीठि नाही कही नाह[४] ठग लागत लगाइ कै ।

जैसे पट कोट ओट पेखनो प्रगट तानि अतर कपट गीत गाइये मगाइ कै ॥ ६ ॥

[1] सोचत—सा० । [2] अचल—व्र० । [3] सु देखत—सा० । [4] कहै नेह—ग० ।

नवयौवना-उदाहरण ।

घूंघट की घरिया मैं ताय धर्‌यो सोन सो उघरि आयो लोनो मुख ओप अनुराग सी ।
अति ही अनूप रस रूप उमडे से वडे नैन गडे जात चित चेटक सराग सी ।
जोवन की वनक कनक मनि मोतिन सो तनक तनक पूरी पानिप तराग सी[1] ।
गोरे तन सेत सारी नियरे निहारि देव पियरे[2] पुहुप दल ऊपर पराग सी ।।७।

[1] तनक कनक पुरि यानप तराग सी—सा० । [2] चपक—ग० ।

नवला-उदाहरण ।

जानि पर्‌यो जोवन जनायो है मनोज ज्वर जगमगी जोति अग वाढत नितै नितै ।
हरे हँसि[1] हेरि हरि लियो हरि जू को हियो हेरति हरिन नैनी हितू सो हितै हितै ।
सीखी दिन चारिक ते तीखी चितवनि प्यारी देव कहै भरि दृग[2] देखति जितै जितै ।
आछी उनमील नील सुभग सरोजन की नरल तनाइयत तोरन[3] तितै तितै ॥८॥

[1] हेरि हँसि—सा०, हरे हरे—व्र० । [2] दृग भरि—व्र० । [3] तोरति—व्र० ।

नवल अनंगा-उदाहरण ।

गौने के चार चली दुलही गुरु लोगनि[1] भूषन भेष वनाये ।
सील[2] सयान सिखायो सखीन[3] सवै सुख सासुरेहू के सुनाये ।
वोलिये वोल सदा हँसि[4] कोमल जे मनभावन के मन भाये ।
यो सुनि ओछे उरोजन पै अनुराग के अकुर से उठि आये ॥६॥

[1] गुरू नारिन—ग० । [2] सीख—व्र० । [3] सवै सिखयेऊ—ग० । [4] अति—ग० सा० ।

रँग लाल जरी पट घूँघट ओट लसै मुकतालर की लरक्यो[1] ।
प्रभात प्रभाकर मंडल मै विधु मडल विव सुधाधर को[2] ।
रदपाँति चुनी चमकै हँसि वोलत देव कछू अधरा फरक्यो ।
मनो कातिक पून्यो की राति सुधाधर मध्य सुधा धरि के ढरक्यो ॥१०॥

[1] को करक्यो—ग० । [2] विदु सुधा ढरक्यो—व्र० सा० ।

सलज्जरति-उदाहरण ।

देव कहै सोवत[1] निसक अक भरी परजक मैं मयक मुखी सुषमा मचति है ।
सग न घिरति अग अग अँगिराति रँगराति न निराति नियराति न चलति है ।
कोरे कर झारति[2] उघारति न अचर विहारति न रच परपचनि पचनि है ।
भौहनि नचति वतियान विरचति अँखियान मै हँसति[3] सखियानि सकुचति है ॥११॥

[1] सोचत—व्र० सा० । [2] जातिन—व्र० । [3] रचति—व्र० सा० ।

शिक्षा-उदाहरण ।

औरन को गौनो होत विरह को औनो[1] होत तुमही अगौनो दुख[2] देखन दिखाई यह ।
एहो मृगलोचनी सकोचनि ही सोनो तजि सोने सी सुघर[3] देह सोचन सुखाई यह ।

आवो इत कोने को छिपो न कोने कोने कोने धौं सिखाई विप ऐसी विमुखाई यह।
जी को करि जोर[4] मन नीको करि देव पी को ही को करि राखौ धरि राखौ ही रुखाई यह॥१२॥

[1] गौनो—ग० सा०। [2] होत—ग०। [3] सिधारि—सा०। [4] जोतु—ब्र०।

सुरत-उदाहरण।

वैरिनि मेरी कितै गई वे कर छाँडि उन्है किनि देखन तू दै।
यो कहि कै उचकी परजक पै[1] पूरि रही दृग वारि की बूँदै।
जोरन देइ नही मुख सो मुख छोरन देइ[2] न नीवी की फूँदै।
देव सँकोचन सोचन सो मृगलोचनी लाल के लोचन[3] मूँदै॥१॥

[1] मै—सा०, ते—ग०। [2] देति—ग०। [3] लोचन लाल के—ग०।

सुरतान्त-उदाहरण।

मनभावन के ढिग ते उठि भामिनि भोरही भूषन हाथ लिये।
रँग भौन के भीतर भाजि परी भय भार भरी अति लाज हिये।
सजनी जन ते दुरि कै कवि देव निहारति[1] हार विहार किये।
तिय बारहिबार सँवारहि के[2] निरवारति[3] वार केवार दिये॥१४॥

[1] निवारति—ब्र०। [2] सँवारति ही—सा०, सँवारहि की—ब्र०। [3] निरवारहि—ग०।

धाय घरा सबही के[1] कहे हौ विकाय गयी इनकी रुचि रेख्यौ।
ते निरदै हिरदै[2] कर दै मोहि ओट[3] भई चित चोट न पेख्यो[4]।
जाय भई बस कत बिसासी के बीसौ बिसे बिसवास बिसेख्यो।
काहे किये[5] सखियाँ दुखदाइन हौ न इन्है अँखियाँ भरि देख्यो॥१५॥

[1] धाय बसीधर ही के—ग०, धाय धरा बस ही के—सा०। [2] ०—ग० सा०।
[3] चोट—सा०। ४ चित चोटन सो नहि पेखो—ग० सा०। [5] कोहे को ये—ग०।

मुग्धा मान-उदाहरण।

एकही रैनि मिली पिय को तिय दूसरे द्योस खरी खरको है।
त्यो उत[1] वालम वाल लखे कहुँ सौतिन के ढिग को ढरको है।
लाज लची मृगलोचनि को चित सोच सँकोच भये सरको है।
आँखिन ते खिसके अँसुवा रिसके अधरा सिसके फरको है॥१६॥

[1] सो उत—सा०। केवल सा० प्रति मे चरणो का क्रम १-३-२-४ है।

मध्या-भेद। आरूढयौवना-उदाहरण।

अरुन वरन महा कोमल कर चरन तरुन सुरग अग अग अमलनिको।
साँझ को सरद ससि अबर मे अधखुल्यो वारियत पूनो की प्रभा झलमलनि को।
सहजसुगध सौ मदध मधुकर कहो को गनै सुगध और सोधे समलनि को।
जोतिन के जूह देव दीपति दुरूह देख्यो हँसत समूह जात फूले कमलनि को॥१७॥

आइ हुती अन्हवावन नाइनसोधेलिये कर[1] सूधे सुभायनि।

कंचुकी छोरी[2] उतै उबटैवे को इंगुर से अंग[3] की सुखदायनि।
देव सरूप की रासि निहारति पाँय ते सीस लौं सीस ते पाँयनि।
ह्वै रही ठौरही ठाढी ठगी सी हँसै कर ठोढी दिये ठकुरायनि ॥१८॥

[1] वधू—ग्र०। [2] खोलि—ग्र० मा०। [3] रग—ग्र०।

प्रगल्भवचना-उदाहरण।

हौं गहि आनी[1] अचान इतै छल ते रही[2] जानति जाहि न वैसी।
देखति हौ उन कुंज मैं कान्ह मो आइ सिखाई तुही जिय जैसी।
छाँह छुवी नहि स्याम सलोने की लाज की बात न होने की ऐसी।
कोसो कहा कहि तोसो उतै रहि रोस कह्यो कहा तू कहि कैसी[3] ॥१९॥

[1] गई आनी—सा०। [2] तेरे हौ—सा०। [3] रहि तू कहि क्यो न कही फिरि कैसी—ग०।

प्रगटमदना-उदाहरण।

होरी मे आजु भिजे रँग रोरी के[1] आपनो प्यो अपने बस कै लै।
यो कहि देव सखी गहि गोरी को लाई है गोकुल गाँव की गैलै।
लाज की गारी सुनी कबहूँ न मु गावत[2] लोग लगावत छैलै।
खेलत फागु नई दुलही दृग[3] आँसुन लोनि उमामन लैलै ॥२०॥

[1] मु—ग०। [2] जु गावत—ग०। [3] उर—ग०।

सुरतिविचित्रा-उदाहरण।

साँस लेति हँसति रिसाति मृदु बोलति बलैया लेति लाज उर आनि पर गई है।
घूँघट उघारि मुख देखन न देति रदरेखन कनैखन की कानि[1] परि गई है।
देव सुखदानि सुखदाइनि को संगु देखि सौति दुखदाइन के हानि परि गई है।
तानि पट होऊ दुहू पानि परवीन रूप पानिप निहारिबे की बानि परि गई है ॥२१॥

[1] खानि—सा०

मध्या सुरत-उदाहरण।

कंत के संग इकंत करै रति ओठनि दंत लगे मुख मोरै।
कंचुकी छोरति छाती दुदै भुकि झाँकि झुकै बिझुकै झकझोरै।
गातनि मैं अँगिराति बनी रिस बातनि मैं रस रंग निचोरै।
नीवी कसै उकसै नहि देव हँसै सतराइ त्रसै तन तोरै ॥२२॥

मध्या सुरतांत-उदाहरण।

आरस उनीदी[1] बार बाँधति दुहू करनि उन्नत उरोज नखरेखै रेख रखियाँ।
कंचुकी कसति उससति औ हँसति लखि नीवी अधखुली त्यो लजाती लोल अँखियाँ।
अंग[2] अँगिरात हरपत बरखत मोती[3] दूखित अधर देखे सौतिहूँ बिलखियाँ।
बाल के सिधारे ते निरखि हाल सेज को बिहाल भयो बालम निहाल भई सखियाँ ॥२३॥

[1] उनीधी—मा०। [2] आँगी—मा०। [3] हरखत मोनी छहरात—सा०

प्रौढ़ा-भेद चित्रप्रकास-उदाहरण ।

कुज मैं ह्वै गई साँझ दुहू को चलै चरचा रस की बतियाँ की ।
देव घटा जल बूँद लगी वरसावन सावन की रतिया की ।
प्यारी के अक निसक ह्वै सोए पिया तऊ देह डुली न तिया की[१] ।
चपक वेली सी बाँहनि सो रही[२] नाह पै छाँह करै छतिया की ।।२४।।

[१] पिया न डरै न हली सुतिया की—सा०, पिया ते दुहू रली बतिया की—ब्र०
[२] लागी—ग० ।

रतिकोविदा-उदाहरण ।

नेकौ अनखाति न अनख भरी आँखिन अनोखी अनखीली रोख ओखे से करति है ।
रोवति रिसाति रूसि रूसि मुसकाति मुरि मुरि मुरझाति[१] मनुहरति हरति[२] है ।
एकै एक अक देति[३] सकति मयक मुखी लक लहकाय परजक पै परति है ।
प्यावै डीठ ईठ को अनूठो रस ओठन को झूँठे मूँदि लोचन सकोचन मरति है ।।२५।।

[१] विरुझाति—सा० । [२] मनु हेरति हरति है—ग० । [३] पीके अक अक देत—ग०, देखि—ब्र० ।

वशवल्लभा-उदाहरण ।

चिबुक उचाइ चारु पोछति कपोलनि अँगोछति अलिक दोऊ[१] अलक दुधाही के ।
ललक सो लाल झलकावनि तिलक मोती नथ के निहारे न थके छवि छुधाही के[२] ।
मेटत सताप भुजमूलनि समेटि[३] भुज भेटत उठाय धरे भोग वसुधाही के ।
सुदर सधार[४] ब्रज जीवन अधार देव राधे ते अधार राखे अधर सुधाही के ।।२६।।

[१] अँगोछत अलक दोऊ—ब्र० सा० । [२] नैन न थके वुधा ही के—सा० । [३] उठाय—ब्र० सा० । [४] सदाही—ब्र०, सदार—सा० ।

सविभ्रमा-उदाहरण ।

दुहू मुख चद और चितैवे चकोर दोऊ चितै चितै चौगुनो चितवै ललचात है ।
हाँसन हँसत बिनु हाँसी विहँसत मिले गातनि मै गात बात बातनि बिकात है[१] ।
प्यारी तन प्यारो पेखि पेखि प्यारी पिय तन पियत न खात नेकहू न अनखात है ।
देखि न सकत देखि देखि न थकत देव देखिवे की घात देखि देखि न अघात है ।।२७।।

[१] अघात है—ग० ।

सुरत-उदाहरण ।

सोधे की सुवास आसपास भरि भौन रह्यो[१] भरत उसास बास बासन बसात है ।
ककन झनित[२] अगनित रव किकिनी के नूपुर रनित[३] मिले मनित सुहात है ।
कुडल हलत मुख मडल झलमलात झूलत दुकूल भुजमूल भहरात है ।
करत विहार कहै देव बार बार बार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात है ।।२८।।

[१] भौर रह्यो—सा० । [२] झनक—सा० । [३] रुनक—सा० ।

प्रौढ़ा सुरतांत-उदाहरण ।

मोती सियरातं हिय जानि कै प्रभात ढिग ढीले करि पीतम के गात सुलझनि के ।

उतरत सेज ते[१] सखीन मुखदेनी थाँभी वेनी लॉवी लखे[२] लाज मरे[३] कुल फनि के।
दासी देवता मी पग दपति के दावि चली[४] दावे पग बसन दवाइ गुलफनि के।
लाल की चरन सेव आये दास देव रँगमगी अग जेव जगमगी जुलफनि के ॥२६॥

[१] उरतम सेज ते—व्र०, उरतम सेज लै—सा०। [२] खुले—व्र०। [३] मारे—सा०।
[४] वलै—व्र०।

मध्या-भेद।

मध्या अरु प्रौढा द्वो तीनि भाँति करि मानि।
धीरा और अधीर कहि धीराधीरा जानि ॥३०॥
धीरा देइ उराहनो मध्य अधीरा गारि।
रोदन गारि उराहनो धीराधीरा नारि ॥३१॥
धीरा प्रौढ उदास रति तरजन करें अधीर।
रति उदास वरजन[१] करै प्रौढा धीराधीर ॥३२॥

[१] तरजन—सा०।

मध्या धीरा-उदाहरण।

केसरि सो उवटे सव अग वडे मुकतान सो माँग सँवारी।
चारु सु चपक हार हिये उर[१] ओछे उरोजन की छवि न्यारी।
हाथ सो हाथ गहे कवि देव सु साथ तिहारेई नाथ[२] निहारी।
हाहा हमारी सौ साँची कहौ वह को हुती[३] छोहरी छीवर वारी ॥३३॥

[१] गरे अरु—ग०। [२] तिहारे हौ आजु—ग०। [३] कौन ही—ग०।

मध्या अधीरा-उदाहरण।

तन मन ओट पट घूँघट कपट खोलि उर सो लगाये इतने पै अरसात हौ।
थाकी अपनाइ अपने से हौ उपाय करि भये अपने न सपनेहु न थिरात हौ।
कैधौ केहि गैल छैल छतिया छिपाई जाके बिरह बौराने देव बोलत न वात हौ।
प्यारे परजकहू मे मो मुख मयकहू मे[२] साँसै लै ससक अकहू मे अकुलात हौ ॥३४॥

[१] घूँघट के तन तन—ग०। [२] मो मुख मयकहू मे प्यारे परजकहू मे—ग०।

मध्या धीराधीरा-उदाहरण।

रावरे पायन ओट[१] लसै पग गूजरी वार महावर ढारे।
सारी असावरी की झलकै छलकै छवि घाघरे घूम घुमारे।
आहु जु आहु[२] दुहाहु न मोहू सो देव जू चद दुरै न अँध्यारे।
देखौ हौ कौन सी छैल छिपाइ तिरीछे हँसै वह पीछे तिहारे ॥३५॥

[१] पाय अनौठ—व्र० सा०। [२] जाहु जु जाहु—सा०।

प्रौढ़ा धीरा-उदाहरण।

धोखेहू जो कहै कटु बोल तो कटाऊँ जीभ छार[१] डारौ आँखिन की आँसू फलकनि पै।
कौन कहै कैसी सौति सो तो ठकुराइनि लिखी है वृज बालनि के भाल फलकनि पै।
ह्वै रही नजीकी हौ न जीकी दुचिताई गहौ पी की प्रान प्यारी कहौ नीकी ललकनि पै।

दूजो नहि देव देव पूजौ राधिका के पग पलकन ल्याऊँ धरि ध्यान[2] पलकनि पै ।।३६।।

[1] झार—सा० । [2] ध्याऊँ—सा०, लावौ—ग० ।

प्रौढ़ा अधीरा-उदाहरण ।

आजु गुपाल जू वाल वधू सँग नूतन नूतनि कुंज बसे निसि ।
जागर होत उजागर नैननि पाग पै पीरी पराग रही[1] पिसि ।
चोज के चदन खोज खुले जहँ ओछे उरोज रहे उर मे घिसि ।
वोलत वात लजात से जात सो आये इतौत चितौत चहूँ दिसि ।।३७।।

[1] परी—ग० ।

प्रौढ़ा धीराधीरा-उदाहरण ।

ओट ददै उवटै अनओट के ओट के ओट रहे झपनेहू ।
खेलत हू न डुलै[1] तजि लाज खुलै न फुलेलन के चपनेहू ।
ते अँग माँहि[2] मिले हिय मै तुम हौ न हिरानी[3] अयानपनेहू ।
देव तुम्हे अपनाइ थकी तुम पै न भये अपने सपनेहू ।।३८।।

[1] दुरै—ग० । [2] माँझ—सा०, भीजि—ग० । [3] रहिरानी—ब्र० ।

ज्येष्ठा-कनिष्ठा-लक्षण ।

गरुई हरुई ए सबै पी के लघु गुरु प्यार ।
कहत ज्येष्ठा कनिष्ठा[1] तिनसो सुमति उदार ।।३९।।

[1] कहत सु जेष्ठ कनिष्ठ तिय—सा० ।

उदाहरण ।

खेलत आँखि मिहीचनी खेल सु देव गुपाल जू भाँति भली को ।
आपनीये अँखियाँ मिहचाय कहै उनसो छपि जान गली को ।
भेटत धोखे नवोढ[1] वधूहि ढिगै ढिग ढूढत गूढ़ थली को[2] ।
नाँउ ललै ललिता को लला गहि ल्याये तहाँ बृषभान लली को ।।४०।।

[1] भेटत वोटन धौखे—ब्र० । [2] ढूढ थली—मा० ब्र० ।

परकीया-भेद ।

कहौ अनूढा ऊढ़ फिरि परकीया द्वै भाँति[1] ।
तिनमै एक अनूढ अरु ऊढा कही छै जाति[2] ।।४१।।

[1] जाति—सा० । [2] भाँति—सा० ।

गुप्ता और विदग्ध तिय और लक्षिता जानि ।
कुलटा मुदिता अनुसयन[1] भेद छयो पहिचानि ।।४२।।

[1] अनुसया—सा० ।

अनूढ़ा-उदाहरण ।

वाल लतान मे वाल[1] को वोल सुन्यो कहुँ सग सखीन के टेरत ।
काहू कही हरि राधा यही कहि देव जू देखी इतै मुख फेरत[2] ।
है तवते पल एक नही कल लाखन लौ अभिलाखन घेरत[3] ।

वाही निकुंजहि नंदकुमार घरीक मैं बार हजारक हेरत ॥४३॥

[1] लाल लतान मैं बाल—व्र०, बाल लतान में लाल—सा०। [2] सुख फेरति—व्र०, सुख केरति—सा०। [3] वेरति—व्र०।

ऊढा-उदाहरण।

उठी अकुलाय सुनी जब नेकु[1] कला परबीन लला बृजराज।
बिसारि दई कहि[2] देव तुम्हें अवलोकत ही अब लोक की लाज।
इतै पर और चवाव चल्यो बरजे गरजे गुरु लोक समाज।
कहा लगि लाल कछू कहिये इतनी सहिये सब रावरे काज ॥४४॥

[1] बीन—सा०। [2] कवि—मा०। केवल सा० प्रति में चरणों का क्रम १-३-२-४ है।

गुप्ता-उदाहरण।

बार बुहारन[1] भोरही हौं पठई मति हीन मतै को लोगायनि।
घेरि के बार उधारत ही अलि मोर चकोर कठोर कुदायनि।
देव कहा कहौं देह दसा यह हौं सकुचौं कुरा लोग हँसायनि।
सासुरे को उपहास करौ[2] बिसवास करौ तुम[3] सासु गुमायनि ॥४५॥

[1] उहारन—सा०। [2] करै—ग०। [3] जिन—व्र०।

विदग्धा-लक्षण।

कहत विदग्धा दुविधि[1] कवि वाक विदग्धा एक।
क्रिया विदग्धा दूसरी जानौ बुद्धि विवेक ॥४६॥

[1] विविध—सा०।

वाक्विदग्धा-उदाहरण।

वृन्दावन चारन को चलत सवारे गोप खोलत केवार टेरि गैयन[1] के गहगहे।
जात बछरा लै लोग[2] खरिक दुहाय दधि मथती लोगाई गीत गावती वहवहे।
सेज पै अकेले आली नींद न परति मोहि फूलत गुलाव देव सेवती महमहे।
काहू सों कहौ न भौन भीतर बगीचा बीच आवैगो इहाँ सों फूल पावैगो पहपहे[3] ॥४७॥

[1] गोपिन के—ग०। [2] गोप—ग०। [3] लहलहे—ग०।

क्रियाविदग्धा-उदाहरण।

पूरव पौन के गौन गुमानिनि नंद के मंदिर में ठहकाई।
गावती काम के मंत्र मनो गन जंत्रन तंत्रन[1] सों गहकाई।
देव खेलार कलानि सों बुद्धि लला को सबै अबला बहकाई।
आपने ऊँचे अटा चढि बाल अकेली ह्वै लाल गुडी लहकाई ॥४८॥

[1] मंत्रन—सा०।

लक्षिता-उदाहरण।

आई हौ भोर भली भई देव बसंत निसा बसि बीच बगीचे।
सूहे की सारी सलौट लसै मुख चंद हँसै[1] मुसकानि मरीचे।
पाँय सोहाग की लूटि जहाँ[2] खिन आँखिन[3] प्रेम सुधा रस सींचै।[4]

रोगी के रेख सु देखि परै सो छिपावति क्यो कुच कचुकी[५] बीचे ॥४६॥

[१] लसै—ग०। [२] सहा—ब्र०, तहाँ—ग०। [३] खिन ही खिन—सा०। [४] रीचे—ग०।
[५] कचुकी—सा०।

कुलटा-उदाहरण।

लाज की गाँठि गई छुटिकै नहि गाँठि तें काहू छुटै न छुटाये[१]।
आठहू याम[२] उतै उठि धावति साठौ घरी मु ठई हैं मुठाये।
ठान कुठान अठान ठनी ठहकीली[३] रहै गुरु लोग रुठाये।
ऐठनि ओठ उठी अँगिया[४] अठिलानी फिरै[५] भुजमूल उठाये ॥५०॥

[१] भुठै न भुठाये—ग०। [२] धाम—ब्र०। [३] हठकीली—ब्र०। हटकीली—सा०।
[४] अँखियाँ—ग०। [५] करै—ब्र०।

मुदिता-उदाहरण।

आरस सो रस सो अँगिरात दसौ अँगुरी कर अजन[१] काढी।
तोरति त्योरी मरोरति भौहनि मोरति नाक त्रिथा मनौ बाढी।
नीवी को नाम न राखति सूधे कसै उकसाइ[२] कसै फिरि गाढी।
घूँघट टारि[३] उघारि भुजचल कचुकी के बद बाँधति ठाढी[४] ॥५१॥

[१] अजुलि—ग० सा०। [२] कसेहू कसाय—ग०। [३] डारि—ग०। [४] गाढी—सा०।

अनुशयना-उदाहरण।

फागु सो द्यौस सुहाग सी सपति राग सी रीझ रिझावै सदा मुनि[१]।
तैसिये जोवन अग[२] नयो रस रग तरग उठै तन ता सुनि।
बोलि हियौ[३] सब खेलती देव बने नहि लाज गने नहि सासुनि।
आवत चैन तुही क्यो वहू बहरावति मो ढहरावति[४] आँसुनि ॥५२॥

[१] मुनि—ब्र०। [२] रग—ग०। [३] खोलि हियो—ग०। [४] हहरावति—ब्र०।

इहि विधि सुकिया परकिया बरनि कही गुनवत।
सामान्या पहिले कही जानहु ताहि असत ॥५३॥
जाति कर्म वय भेद जे अरू भेदातर होत।
तिनहू अतरभेद ते ते सब खेदति खोत[१] ॥५४॥

[१] भेदति खोत—ब्र०।

ये सब सामान्या सहित दुखित अन्य सभोग।
उक्ति गर्विता मानवती त्रिविध कहत कवि लोग[१] ॥५५॥

[१] वरनि सुनाऊँ भेद सब न्यारे न्यारे। जोग—सा०।

उक्तिगर्विता आठ विधि आठौ अग सगर्व।
कहै नायिका भेद मे जोवनादि अग सर्व ॥५६॥

अन्यसभोगदुखिता-उदाहरण।

काल्हि की साँझि उड्यो कर माँझ ते देव खर्‍यो तवते उर मार्‍यो।
एक भली भई बाग तिहारेई थी फल औ कदली चढि हार्‍यो।

वचक विवनि चचु चुभावत कुज के पिंजर मे गहि गाल्यो[१]।
हौ सु कहूँ नहि राखि सकी सो कहूँ सुनि तेही परोसिनि पाल्यो ॥५७॥

[१] घाल्यो—सा०।

यौवनगर्विता-उदाहरण।

जोवन लौ जुवतीन को जीवन जानत हौ पै कहा मुख भाखो।
ताहू को सर्वस है पिय प्यारो सु न्यारो रहे न यहै अभिलाखो।
आपने आनन[१] को रस प्याइ कै लाल को रूप सुधा रस चाखो।
लाजहि को परिहार करो हरि हार करो हियरा पर राखो ॥५८॥

[१] आनद—ब्र०।

रूपगर्विता-उदाहरण।

देखुरी दर्पन दौरि इतै रचि मेरे सिंगार[१] विगार्‌यो है ते हरि[२]।
कचनहू रुचि रच[३] रुचै नहि मोतिन की मरि मो तिनकी सरि[४]।
देव रहै दवि सी छवि छाती की वोझ मरो[५] मनिमाल वृथा धरि।
भाल मृगम्मद विंदु वनाइ कै इदु सी मोहि गुविंद गये करि ॥५९॥

[१] रचो आनन मेरो—ग०। [२] ये हरि—ग०। [३] कचन को रग चीर—ग०। [४] मोतिन की लरि मो तन केसरि—ग०। [५] कोऊ मरो—ग०।

प्रेमगर्विता-उदाहरण।

आजु गई हुती कुजन लौ वरमै उत बुद घने घन घोरत।
देव कहै हरि भीजत देखि अचानक आइ गये चित चोरत[१]।
पोटि[२] भटू तट ओट कुटी के लपेटि पटी सो कटी पट छोरत।
चौगुनो रग चढ्यो[३] चित मै चुनरी के चुचात लला के निचोरत ॥६०॥

[१] मुख मोरत—ग०। [२] ओढि—ब्र० सा०। [३] चढै—ग० सा०।

गुणगर्विता-उदाहरण।

आँखिन मे पुतरी ह्वै[१] रहै हियरा मे हरा ह्वै सबै सुख लूटै।
अगन सग वसै अँगराग[२] ह्वै जीव ते[३] जीवन मूरि न फूटै[४]।
देव जू प्यारे के न्यारे न री गुन[५] मो मन मानिक ते नहि टूटै।
और तिया सो ततो वतिया करे भो छतिया सो छिनौ जव छूटै ॥६१॥

[१] कजरा ह्वै—सा०। [२] अनुराग—ग०। [३] जीवत—ग०। [४] टूटै—ग०। [५] अरी गुन—सा०।

कुलगर्विता-उदाहरण।

पूछो वडे ववा नद को वस जसोमति माय को मायको सूझत।
वोलत वातै वडी[१] वन मे मन मे वृषभानु ववा सो अरूझत[२]।
देव दवी हम नेह के नाते नतो पुरिखा इन वातन जूझत।
जीभ सम्हारि न काढत गारि सु ग्वालि गँवारि हमैं हरि वूझत ॥६२॥

[१] खडी—ब्र०। [२] अरूझत—ग०, अवूझत—ब्र० सा०

शीलगर्विता-उदाहरण ।

गोत गुमान उतै इत प्रीति सु चादरि सी अँखियानि पै खैची ।
टूटै न कानि दुहू सुखदानि की देव सु हौ दुहू ओर ते ऐची[1] ।
शील लटो तव हौ पलटो प्रगटो सु निरतर अतर कैंची ।
या मन मेरे अनेरे[2] दलाल ह्वै हौ नदलाल के हाथ लै बेंची ।।६३।।

[1] दुहू ओरन पेची—सा०, दुहू औरति पेची—ब्र० । [2] सलोने—ब्र० सा० ।

वैभवगर्विता-उदाहरण ।

जोरि सखी सजनी जन बीजन[1] रीझन रीझ रिझावन की रिधि ।
भाषन भूषन[2] भेष विसेष सु[3] भोजन पान सुगधन की निधि ।
देव सभाजन साज समाजन[4] साजन राज समाजन की सिधि ।
भामते को उपभोग सभोगनि[5] भौन मैं राख्यो लोभाय[6] भली विधि ।।६४।।

[1] सजनी जन नीजन—सा० । [2] भूषन भाषन—ग० । [3] विसेप न—सा० । [4] साजन भाजन—ग० । [5] सुभामिनि—ग० । [6] भुलाय—ब्र० ।

भूषनगर्विता-उदाहरण ।

लाल लसै बिलसै जिय मे हुलसै हियरा[1] कुच बीच कलोलै ।
कठ लगे मनि कठ को मानिक[2] सीस को फूल दुकूलनि खोलै[3] ।
भाल को विदु सोहाग को ककन वीर को हीर विलास कपोलै[4] ।
मोती भयो नथ मे न थम्है दुरकी सो लग्यो अधरा पर डोलै[5] ।।६५।।

[1] हिय मै—ग० । [2] कठुला मनि कठ ह्वै—ग० । [3] दुकूल अमोले—ग० । [4] कपोल विलोलै—ग० । [5] मोती भयो मोसुर की सो लग्यो अधरा अधरा पर डोलै—सा० ब्र० प्रति मे चरणो का क्रम १-२-४-३ है ।

मध्या प्रौढा भावती त्यहि धीरादिक भेद ।
मुग्धा लाज प्रधान तिय मानस मे लघु खेद ।।६६।।
उदाहरण सबके कहे सुकिया नारि प्रसग ।
अब बरनत हौ नायक नर्म सचिव विट सग[1] ।।६७।।

[1] परकीया गनिका बहुरि देस नारि बहु रग—सा० ।

ज्यो ही एती नायिका त्यो ही नायक चारि ।
कहि अनुकूल सु दक्ष अरु[1] सठ अरु[2] धृष्ट विचारि ।।६८।।

[1] दक्षन चतुर—ब्र० । [2] फिर—सा० ।

एक नारि अनुकूल अरु सकल नारि सम दक्ष ।
सापराध सठ सो छिप्यो उघर्यो धृष्ट समक्ष ।।६९।।

अनुकूल-उदाहरण ।

पीछे पीछे डोलत है सामुहे ह्वै बोलत है खोलत है घूँघट सो प्रानन पुखोत है ।
पग पग मग मै बिछाय प्रेम पावड़े से धोखेहू न भूले देखा देखी मै घुखोत[1] है ।

देव सखियानि की सिराई अँखियानि सब निस दिन देखि अनदेखेन दुखोत है[२] ।
इदुवदनी के नीके इदु से वदन श्रमविदुन गोविद अरविदन सुखोत है ॥७०॥
[१] दुखोत—ब्र०, सुखोत—सा० । [२] देखि देखि निसदिन अनदेखन दुखोत है—ग० ।

दक्षिण-उदाहरण ।

बोलि बोलि भीतर ते खोलि खोलि घूंघटन मन के मलोल लाल मेटत फिरत है ।
केसरि गुलाल[१] मुख माडे विनु छाँडे तहाँ आडे उर आनद समेटत फिरत है ।
नीवी गुन तोरत है कचुकी विछोरत है चचन लै कुचन लपेटत[२] फिरत है ।
फाग मिस देव अनुराग भरि भौन[३] रह्यो भुजा भरि भामिनीनु भेटत फिरत है ॥७१॥
[१] गुलाव—ग० सा० । [२] चपेटत—ग० । [३] अनुराग भरी हिये हरी भौन भौन—सा०,
अनुराग भरि राग करि भौन भौन—ग० ।

सठ-उदाहरण ।

नीरथ चरन मोन अरुना[१] दुकूल देव रग की रतन काची सेन वधु[२] थल है ।
माया की अवधि हास सोहै मनु मथुरा सु देख्यो मैं न कासी को प्रकासु सो अमलु है ।
सीस मनिकरनी की सोहति[३] त्रिभाग वेनी राखै अव अतिकै न द्वारिकाहू पल है ।
तो सुरतरगिनी के सग अपराधु कैसो अद्भुत भर्यो नैन पुष्कर मैं जलु है ॥७२॥
[१] आनन—सा० । [२] सोरबध—ग० । [३] मोहति—ब्र० सा० ।

धृष्ट-उदाहरण ।

आये हौ भामिनि भेटि कुरी[१] लगि फूल वरे अनुकूल उदारै ।
केसरि जानि[२] तुम्है जु सुहागिनि आसव लै मुख सो मुख डारै ।
कीन्ही सनाथ हो नाथ मया करि वे उत को उतको न विचारै[३] ।
होय असोक सुखी[४] तुम लो अवला नन को अब[५] लातन मारै ॥७३॥
[१] करे—सा० । [२] जानि—ग० । [३] मो बिनु को इतनी जु विचारै—ग० । [४] सखी—ब्र० सा० । [५] जब—ब्र० सा० ।

नर्म सचिव ।

नर्म सचिव तिनको सखा ताहू त्रिविधि वखान ।
पीठ मर्द विट दूसरो और विदूषक जान ॥७४॥
पीठ मर्द अति ईठ चित विट वत चतुर[१] वसीठ ।
उपहासी सो विदूषक मान मनावत ढीठ[२] ॥७५॥
[१] ख्यात चतुर—ग० । [२] विदूषकहि स्यानम भवत ढीठ—ग० ।

पीठमर्द-उदाहरण ।

ईंगुर सो रग गंडिन वीच भरी अँगुरी अति कोमलताइनि ।
वदन विदु मनो दमकै नग देव चुनी चमकै ज्यो सुभाइनि ।
वदत नन्दकुमार तिहारेई राधे वहै ब्रज की ठकुराइनि ।
नूपुर सिजित[१] गजु मनोहर जावक रजित कज से पाइनि ॥७६॥
[१] सजत—सा० ।

विट-उदाहरण।

बैठी कहा धरि मौन भटू ग्ग भौन तुम्हे विनु लागत सूनो।
चातक लौ तुमही सरि[१] देव चकोर भयो चिनगी करि चूनो।
माँभ मोहाग की माँभ उदो[२] करि सौति सरोजन को बन[३] लूनो।
पावस ते उठि[४] कीजिये चैत अमावस ते उठि कीजिये पूनो ॥७७॥

[१] रटि—व्र० सा०। [२] नदौ—सा०। [३] बल—सा०। [४] चलि—व्र० सा०।

विदूषक-उदाहरण।

मोमो कह्यो सु भली करी[१] भामिनी भावते सो न कह्य परिहैगो।
ऐसी उसास लै ऐसो कुबोल जु ऐसे कह्यो सु लह्यो[२] परिहैगो।
देव न मानति है मृगनयनी पै आजु की रैन रह्यौ परिहैगो।
पारिहौगो सखियान लिखै अँखियान प्रवाह वह्यो[३] परिहैगो ॥७८॥

[१] कह्यो—व्र०। [२] सु कह्यो—व्र०। [३] कह्यो—व्र०।

७८ से ८४ संख्या के छन्द ग० प्रति मे त्रुटित है।

मानमोचन-उपाय।

साम दाम अरु भेद अरु[१] प्रनति उपेक्षा भाइ।
अरु प्रसग विभ्रस ये मोचन मान उपाइ ॥७९॥

[१] पुनि—सा०।

तिनके लक्षण।

साम छिमापन सो कह्यो दानादिक सो दान।
भेद सखी समता मिले प्रनति नम्रता जान[१] ॥८०॥

[१] मान—व्र०।

वचन अन्यथा अर्थ जहँ सो उत्प्रेक्षा रीति।
सो प्रसग विभ्रस[१] जहँ अकस्मात सुख भीति ॥८१॥

[१] विभ्रम—व्र०।

साम-उदाहरण।

आपनोई अपमान कियो पहिरायवे को मनिमाल मँगाई।
लै मिलई मिस सो कुसखी[१] करि पाइ परेहू न प्रीति जगाई।
केतिक कौतिक बाते करी[२] कवि देव तऊ नहि प्रेम पगाई।
आजु अचानक आइ लला डरवाइ के[३] कामिनी कठ लगाई ॥८२॥

[१] सु सखी—सा०। [२] केतिक कौन बुलावे कही—सा०। [३] उर चाँपि के—मा०।

दर्शन।

चित्र स्वप्न प्रत्यक्ष करि तिनके दर्शन तीनि।
तीन भाँति तिनके श्रवन देस काल भगीन[१] ॥८३॥

[१] गभीन—व्र०।

चित्रदर्शन-उदाहरण।

न्योते गई वृषभान लली ललिता के जहाँ पति प्रीति[१] पढी है।
भीति मे प्रीतम देखे लिखे नवला के हिये नव लाज वटी है।
आँखिन भीजी-सी अग पसीजी-सी छोभन छीजी-सी मोह मढी है।
चौकी चकी ससकी न सकी चितै मित्र की मूरति चित्र[२] चढी है ॥८४॥

[१] नव प्रीति—सा०। [२] चित्त—ग० सा०।

स्वप्न-दर्शन-उदाहरण।

धाइ कै अक मे सोई निसक ह्वै पकज-सी अँखियानि झकाझकी[१]।
त्यो सपने मे लखे अपने प्रिय प्रेमपने छवि ही की छकाछकी।
ठाढे ही ठाढे भरी भुज गाढे[२] सु वाढी दुहू के हिये मे सकामकी।
देव जगी रतियाहू गई[३] न तिया की गई छतिया की धकाधकी ॥८५॥

[१] छकाछकी—ग०। [२] बाट परी भुज ठाढे—ब्र०, भरी भुज ठाढे—ना०। [३] जगं —ग०।

प्रत्यक्ष दर्शन-उदाहरण।

माथे मनोहर मोर लसै पहिरे हिय मे गहिरे रँग हारनि।
कुडल मडित गोल कपोल सुधा सम बोल[१] बिलोल निहारनि।
सोहति री कटि पीत पटी मन मोहति मद महा पग धारनि।
सुन्दर नन्द कुमार के ऊपर वारिये कोटिक काम कुमारनि ॥८६॥

[१] चोल—सा०

देशश्रवण-उदाहरण।

साँवरो सुन्दर रूप अनूप विसाल रसाल वडे वडे नैन री।
या वग आवत गैयन[१] ले नित देव दिखैयन को सुख दैन री।
मै हूँ सुनी सो कहा कहौ लाज की वात कहूँ सखि तू कहिये न री।
वा जग वचक देखे विना दुखिया अँखियानि न रचक चैन री ॥८७॥

[१] गोपनि—सा०।

कालश्रवण-उदाहरण।

वरजौ जननी गरजौ गुरु वधु सो हौ कछुवै न विसेखिहौंगी[१]।
कल लोग रिसाहु सरीक हँसौ किन पै न[२] कछू लखि लेखिहौगी[३]।
नित ही इत आवति है सखि स्याम प्रभात समै पल[४] पेखिहौगी[५]।
कवहूँ तो कहूँ अव देव उन्हे अपनी अँखिया भरि देखिहौगी[६] ॥८८॥

[१] विसेखि लहौगी—ब्र०। [२] प्रेम—सा० [३] लेखि लहौगी—ब्र०। [४] पग—सा०, छवि —ग०। [५] पेखि गहौंगी—ब्र०। [६] देखि रहौगी—ब्र०।

रचनाश्रवण-उदाहरण।

आवत है घनश्याम बने इत अवर मे चपला की मरीचि है।
मोहत मोरपखा धरे सीस गरे बनमाल मनोहर वीचि है।

पानिप रूप अनूप प्रवाह हिया भरिकै अँखियान उलीचिहै।
जोवन कीव सुधा[1] बरसाइ के यौवन की बसुवा सब सीचिहै ।।८९।।

[1] जोवन की बरसा—व्र०।

यहि विधि दरसन श्रवन करि सुमिरे विधि हरि रुद्र।
पार लहति को बरनि के या साहित्य समुद्र[1] ।।९०।।

[1] या विधि सप्त समुद्र—सा०।

अपनी बुद्धि समान मै बरनि कह्यो रस सार।
रस विलास रस रूप नृप भोगीलाल उदार ।।९१।।

जोगीदास नदन भुवाल भोगीलाल को बिसाल जल जाल है प्रताप अति अतदर।
दीनन दरिद्र दाव दावानल वान नीर नीर झरनि[1] पूरे भिक्षुक छहर[2] कदर
मानी मनमथ मन मथन सुरूप मानिनीनु मानि सिंधु को मथान[3] मुदित मदर।
देवतसहू नयो न साह सुलतान ज्यो सराहै सुलतान सुलतानपुर पुरदर ।।९२।।

[1] वारि झरनि—व्र०, नीव झरनि—सा०। [2] छनि—व्र०। [3] प्रथान—व्र०।

सतन[1] बसत पाँवै चहुँ ओर चैत नाचै होरी लगी बैरिन के भौन[2] भये भसमी।
बाढी अखतीज सी असाढी अनबीज खेत दान दरसावनी सरस राखी रसमी।
दीपमाला साधुन असाधुन अमावस सु मानति सराध बैरी बधु ह्वै निखसमी।
जियो जुग जोगीदास जू को लाल भोगीलाल जाके द्वार सदाही बिराजै विजै दसमी[3] ।।९३।

[1] सतत—सा०। [2] बैरिहू के मान—सा०। [3] द्वार राजति सदाही विजै दसमी—व्र०।

सवत सत्रह से वरष और चौरासी[1] जान।
रस विलास दसमी विजय पूरन सकल कलान ।।९४।।

[1] तिरासी—ग० सा०।

इति श्री नृप भोगीलाल हित बानी देव प्रकास रस विलास शृगार रस नायिका नायक हाव भाव दशा दूती देश वर्णनो नाम अष्टमो विलासः।

सुमिल विनोद

भूमिका

देवकृत अनुपलब्ध कृतियो के साथ "सुमिल विनोद" का नामोल्लेख बहुत पुराने समय से होता आ रहा है। कहा जाता है कि आज से प्राय सौ वर्ष पूर्व मिश्रबधुओ के सम्बन्धी, गधौली, जिला सीतापुर, के प्रसिद्ध काव्यरसिक श्री ब्रजराज जी ने इस ग्रथ को स्वय कही देखा था। मिश्रबधुओ ने "मिश्रबधु विनोद" मे (पृष्ठ ५६७ पर) स्वर्गीय पडित कृष्ण विहारी जी मिश्र ने "देव और बिहारी" मे (पृष्ठ १९ पर) तथा देव काव्य के आधुनिक व्याख्याता डॉ० नगेन्द्र जी ने 'शिवसिह सरोज' के साक्ष्य पर अपने शोध-ग्रथ "देव और उनकी कविता" मे (पृष्ठ ३६ पर) "सुमिल विनोद" का उल्लेख किया है। फिर भी इस कृति की कोई हस्तलिखित प्रति आधुनिक समय मे देखने मे नही आयी थी।

सौभाग्य से इन पक्तियो के लेखक को "सुमिल विनोद" की एक प्रति का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के तत्त्वावधान मे सचालित "मध्य प्रदेश की खोज रिपोर्ट" की अद्यावधि अप्रकाशित पाडुलिपि मे देखने को मिला। रिपोर्ट मे इस ग्रथ का नाम "सुमिल विनोद" दिया गया है।

सभा की ओर से जिन महानुभाव ने यह प्रति देखी थी तथा उससे विवरण लिया था, वह भी उस समय सभा मे ही थे। उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि किसी को इस प्रति का मिलना तो दूर रहा, इसके दर्शन का पाना भी दुस्तर कार्य है। बाद मे प्रति के लिये यत्न करने पर इन सज्जन का कथन ही सत्य प्रमाणित हुआ। इस घटना के प्राय एक-दो माह के भीतर, एक सर्वथा अपरिचित सज्जन मेरे पास आए, जो देव के पाठ पर कार्य करने को इच्छुक थे। अपनी उपयोगी सूचना लेकर चलते समय एक पत्र वह मुझे देते गये कि कदाचित् इसमे निहित सूचना मेरे किसी उपयोग की हो। पत्र बीकानेर के श्री अगरचन्द जी नाहटा का था, तथा उसमे नाहटा जी के अभय जैन ग्रथालय मे विद्यमान देवकृत ग्रथो की हस्तलिखि ा प्रतियो की सूची थी। सूची मे "सुमिल विनोद" नाम था। कहना न होगा कि "सुमिल विनोद" की इसी प्रति का उपयोग इस ग्रथ के पाठ-सपादन मे किया गया है।

ग्रंथ की प्रामाणिकता

कवि देव द्वारा "मुमिल विनोद" की रचना होने का प्रथम प्रमाण है कि इस ग्रथ के विभिन्न विनोद सज्ञक अध्यायो के अत मे देव का नाम रचयिता के रूप मे आया है। वास्तव

मे इस कवि ने अपने ग्रथो की प्रामाणिकता की समस्या स्वय ही बहुत कुछ सुलझा दी है क्योकि इसके प्राय प्रत्येक ग्रथ मे इसी कवि के किसी न किसी अन्य ग्रथ के समान छद अवश्य मिलते है। इसी प्रकार "सुमिल विनोद" मे तथा देवकृत "प्रेम चन्द्रिका", "सुखसागर तरग" एव "भवानी विलास" मे समान छद मिलने से भी "सुमिल विनोद" देव की ही रचना प्रमाणित होती है। "सुमिल विनोद" मे तथा इन उपरोक्त ग्रथो मे उदाहरण छदो के अतिरिक्त लक्षण दोहे भी समान मिलने के कारण इस ग्रथ की प्रामाणिकता असदिग्ध हो जाती है। इस ग्रथ मे समान लक्षण दोहो तथा उदाहरण छदो के अतिरिक्त देवकृत अनेक छद ऐसे भी है जो देव के अन्य ग्रथो मे नही मिलते है। इससे यह सिद्ध होता है कि "सुमिल विनोद" कवि के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कवि की ही विभिन्न रचनाओ से तैयार सकलन न होकर स्वय कवि द्वारा प्रणीत स्वतन्त्र ग्रथ है।

ग्रंथ-परिचय

"सुमिल विनोद" का आकार मध्यम कोटि का है, अर्थात् यह "रस-विलास", "सुख-सागर तरग" अथवा "भाव-विलास" के समान न वृहत् है, न "देवचरित्र" अथवा "देवशतक" के समान सक्षिप्त। इसमे कुल ८ अध्याय है, अध्यायो का नाम अन्य ग्रथो के समान "विलास" न होकर "विनोद" है। सपूर्ण ग्रथ मे कुल २७६ छद है। उपलब्ध प्रतियो मे अंतिम "अष्टम विनोद" मे केवल ११ ही छद मिलते है। यही पर प्रतियाँ खडित है तथा नवरसो मे शृगार के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त शान्त तथा वीर रसो का ही वर्णन यहाँ तक हुआ है अत यह अनुमान किया जा सकता है कि इस स्थल के आगे भी कम से कम दस-पद्रह छद और रहे होगे।

"सुमिल विनोद" का मुख्य विपय रस-निरूपण है, यद्यपि नवरसो मे शृगार-रस का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसी के अतर्गत नायक-नायिका भेद का विवेचन प्रधान रूप से हुआ है। कवि ने ग्रथ के अन्तिम भाग, केवल "अष्टम विनोद", मे वीर आदि शृगारेतर रसो का भी वर्णन सक्षेप मे किया है।

आश्रयदाता

देव कवि की यह कृति हिमातुल्ला खान नामक किसी धनपति अथवा राजा को समर्पित है। यह हिमातुल्ला खान कौन थे, कहाँ के शासक अथवा निवासी थे अथवा उनका समय क्या था ?—अतस्साक्ष्य इस सम्वन्ध मे मौन है तथा इतिहास के विस्तृत गभीर सागर से, सकेत-सूचिका के सर्वथा अभाव मे, इन सूचनाओ का प्राप्त करना सरल कार्य नही है। फिर भी आशा है कि भविष्य मे इनके चरित्र, निवास-स्थान आदि पर अधिक प्रकाश पड सकेगा।

सम्पादन-सामग्री की बहिरंग परीक्षा

"सुमिल विनोद" की केवल दो हस्तलिखित प्रतियाँ देखने मे आयी है। इनका विवरण इस प्रकार है—

१ अ०—अभय जैन भडार, वीकानेर, राजस्थान, की प्रति। इस प्रति के अन्त मे प्रतिलिपि-सवत् नही है तथापि जिस "प्रेमतरग चद्रिका" की प्रति के साथ यह प्रति जिल्दवन्द है

उसकी पुष्पिका इस प्रकार है "श्रावण बुद ३० हरियाली को सम्पूर्ण लिखी गई सवत् १६४४।" इन दोनो प्रतियो का कागज भी पुराना, हाथ का बना तथा मटमैला है। "सुमिल विनोद" की अन्तिम पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि किन्ही धननाथ जोगी ने प्रतिलिपि तैयार की थी। श्री नाहटा जी के सग्रह की "सुजान-विनोद" की प्रति भी इन्ही धननाथ जोगी द्वारा सवत् १६४६ मे प्रतिलिपि हुई थी। "सुमिल विनोद" की इस प्रति का आकार लगभग आठ इच तथा बारह इच है। प्रति अपनी चौडाई मे लिखी है। लेखन-कार्य मे काली-लाल स्याही का उपयोग हुआ है। प्रति मे कुल ४१ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर १६ पक्तियाँ है।

स्वीकृत पाठ ८ ११ के पश्चात् इस प्रति मे ढाई पक्ति पाठ और था किन्तु इस पर नया सादा महीन कागज ऊपर से लगाकर लाल स्याही से पुष्पिका लिख दी गई है, जो इस प्रकार है—"इति श्री विनोद हेतवे कवि-देव विरचिते सुमिल विनोदे अष्ट सम्पूर्ण—

लिष्य धननाथ जोगी की जै पूरम देवास॥

अनुमान है कि कागज के नीचे का पाठ किसी छन्द का अश न होकर "सुमिल विनोद" की दूसरी प्रनि, खो० प्रति मे विद्यमान " ‥ ‥११ यह कवित्त प्रेम-तरग चद्रिका मे लिखे है यामे इहा नही लिखे है" पाठ ही था एव प्रतिलिपिकार अथवा प्रति के स्वामी ने अपनी प्रति का खण्डित रूप आवृत करने के हेतु इसे कागज से ढँक कर ऊपर से पुष्पिका लिख दी है।

सामान्य रूप से अ० प्रति का पाठ शुद्ध एव विश्वसनीय है। २ खो० अर्थात् नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित "मध्य-प्रदेश की खोज रिपोर्ट" से प्राप्त "सुमिल विनोद" की प्रति का उल्लेख—

इस प्रति के सम्बन्ध मे उपलब्ध सूचनाएँ उपरोक्त खोज-रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार है —

"ग्रथ-नाम 'सुविमल विनोद'—मिल का कागज—पत्र १६—आकार ८ इच, ६ इच—प्रति पृष्ठ पक्तियाँ २०—ग्रथ का आकार ४८० अनुष्टुप—कागज नवीन—सजिल्द—लिपिकाल १९४७ विक्रमी—ग्रथ स्वामी प० महेशप्रसाद पाण्डेय, ग्राम-पोस्ट निपनिया, रीवाँ, मध्य प्रदेश।"

ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यद्यपि विवरण मे ग्रथ-नाम "सुविमल विनोद" है तथापि इस प्रति मे विनोद के अन्त की पुष्पिका मे ग्रथ-नाम "सुमिल विनोद" ही मिलता है "इति श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे कवि देव विरचिते सुमिल विनोदे ··· 'सप्तम विनोद ।" अ० प्रति के समान इस प्रति मे भी अन्तिम अश त्रुटित है—८ ११ के पश्चात् इस प्रति मे भी पाठ नही मिलता है। अष्टम विनोद के ८, ९, १०, ११ सख्या के छद अ० प्रति मे पूर्ण है किन्तु ये ही छद इस प्रति मे इस रूप मे है "याही भौन भीतर ८ मोहि तुम्है अन्तर ९ सखिन बिसारि लाज १० जो न जी मै प्रेम ११ यह कवित्त प्रेम-तरग चद्रिका मे लिखे है यामे इहा लिखे नही है।"

वास्तव मे उपरोक्त सभी छद "प्रेम चद्रिका" मे भी मिलते है, निपनिया के इस सग्रह मे "अष्टयाम" के अतिरिक्त "प्रेम चद्रिका" की भी प्रति है अत ऐसा अनुमान होता है कि इस प्रति अथवा इसकी आदर्श प्रति के प्रतिलिपिकार ने कदाचित् शीघ्रता मे होने तथा "प्रेम चद्रिका" की सलग्न पोथी मे ये समान छंद विद्यमान होने के कारण यहाँ उन छदो का केवल प्रतीक लिख दिया है। इस सम्भावना पर इस कारण भी विश्वास होता है क्योकि अ० प्रति मे भी अनेक स्थलो पर सम्पूर्ण छद के स्थान पर केवल उसका प्रतीक मात्र मिलता है तथा इसका उल्लेख भी कर दिया गया है कि यह छद "प्रेम चद्रिका" मे है। उदाहरण के लिए ऐसे दो स्थल ४ १५ तथा ४ १७ है। इस प्रकार के स्थलो पर विस्तार से विचार हम आगे करेंगे।

"प्रेम चद्रिका" की प्रति से इस प्रति का सम्बन्ध इस प्रति का विवरण लेनेवाले सभा के प्रतिनिधि के निम्नलिखित नोट से भी पुष्ट होता है, "···कही-कही ग्रथ का नाम "सुविमल विनोद" के बजाय "प्रेम चद्रिका" लिखा है—"इति श्री देवकृते प्रेम-चद्रिकाया प्रेमवर्णनो नाम प्रथम प्रकाश ।"

इस प्रति की अन्तिम पुष्पिका से प्रतिलिपि सवत् तथा प्रतिलिपिकार का नाम इस प्रकार स्पष्ट होता है—

"इति श्री देव कवि रचिते सुमिल विनोद ग्रथम सभादी नगमत १८ सवत् १९४७ के मिती दुती भाद्रवदि [१] का लिखा लाला कुजविहारी ।।"

खेद है कि खो० प्रति सुलभ न हो सकी अत इस प्रति का उपयोग इस सम्पादन-कार्य मे नही किया जा सका है।

सम्पादन सामग्री की अन्तरंग परीक्षा

प्रतियो का सम्बन्ध—"सुमिल विनोद" की उपरोक्त दोनो प्रतियो की तुलना इनमे से दूसरी प्रति के अनुपलब्ध होने के कारण सम्भव नही है तथापि सुलभ सामग्री के आधार पर ही इन दोनो प्रतियो के परस्पर सम्बन्ध पर नीचे विचार किया जा रहा है।

दोनो ही प्रतियाँ अपूर्ण है तथा दोनो ही प्रति एक ही स्थल ८ ११ पर खण्डित होती है। अ० प्रति सम्भवत १९४४ की है तथा खो० प्रति निश्चित रूप से सवत् १९४७ की है, अत दोनो ही प्रतियाँ सम्भवत एक समान आदर्श की दो प्रतिलिपियाँ है। सवत् १९४७ की खो० प्रति से सवत् १९४४ की अ० प्रति का प्रतिलिपि होना तो सम्भव नही है परन्तु यह अवश्य सम्भव है कि अ० प्रति में खो० प्रति की प्रतिलिपि हुई हो। एक अन्य सहायक प्रमाण के द्वारा भी इन दोनो प्रतियो का पारस्परिक सम्बन्ध प्रमाणित होता है।

बहुधा एक सग्रह मे विद्यमान हस्तलिखित ग्रथो का दूसरे सग्रह मे भी प्राप्त होना इन दोनो सग्रहो की प्रतियो के परस्पर प्रतिलिपि-सम्बन्ध से सम्बन्धित होने की सम्भावना की ओर निर्देश करता है। विशाल सग्रहो की अपेक्षा छोटे सग्रहो के सम्बन्ध मे यह सम्भावना अधिक सगत है। "सुमिल विनोद" की इन दोनो प्रतियो का सग्रह ऐसी ही सम्भावना को पुष्ट करता है। कहना न होगा कि इन दोनो ही सग्रहो के ग्रथो मे देवकृत केवल "प्रेम चद्रिका" तथा "सुमिल विनोद" की प्रतियाँ है। रीवाँ के सग्रह मे "अष्टयाम" की भी प्रति है किन्तु अभय जैन

भण्डार मे नही है, अभय जैन भण्डार मे "सुजान विनोद" की भी प्रति है किन्तु निपनिया मे इस ग्रथ के होने का उल्लेख खोज-रिपोर्ट मे नही है। दोनो सग्रहो मे समान ग्रथो की उपस्थिति के सहायक प्रमाण के आधार पर भी हमारा मत है कि "सुमिल विनोद" की इन दोनो प्रतियो मे परस्पर प्रतिलिपि सम्बन्ध है तथा तिथियो के आधार पर खो० प्रति अ० प्रति की प्रतिलिपि है।

सम्पादन सिद्धान्त—किसी भी काव्य-कृति का पाठ-सम्पादन उसकी केवल एक प्रति मे उपलब्ध पाठ के आधार पर करना प्राय कठिन होता है। अधिक से अधिक सतर्क होने पर भी यदि सम्पादित पाठ मे कुछ न्यूनताएँ रह ही जायँ तो इसमे आश्चर्य नही है। कम से कम सम्पादक का उत्तरदायित्व तो ऐसे सम्पादन मे अत्यधिक बढ जाता है—परोक्ष रूप से वह सम्पादित पाठ के प्रत्येक शब्द के लिए उत्तरदायी होता है।

ऊपर के विवरण से यह प्रकट है कि "सुमिल विनोद" के पाठ-सम्पादन के लिए केवल एक हस्तलिखित प्रति का पाठ उपलब्ध किया जा सका है। फिर भी, केवल एक प्रति के आधार पर इस ग्रथ का पाठ-सम्पादन सन्तोपजनक रूप मे होना सम्भव हुआ है। किसी रचना का पाठ-सम्पादन केवल एक प्रति के आधार पर करते समय उस प्रति मे विद्यमान पाठ-विकृतियो का निवारण करना सम्पादक का प्रथम दायित्व होता है। वास्तव मे इन पाठ-विकृतियो का निवारण करना ही पाठ-सम्पादन की वैज्ञानिक विधि का प्रथम लक्ष्य है। इस मार्ग का अनुसरण करते हुए मूल पाठ के अपने गन्तव्य तक पहुँच सकना तो सम्पादन की आदर्श स्थिति है ही, रचना के प्राप्त रूप से पाठ-विकृतियो को विलग कर शुद्ध पाठ के एक सोपान के निकटतर पहुँचना भी सामान्य उपलब्धि नही है। अत केवल एक प्रति मे प्राप्त "सुमिल विनोद" के पाठ से पाठ-विकृतियो को पृथक् कर सकने मे भी हमने अपना लक्ष्य अशत सिद्ध माना है। पर हम इतने से ही सन्तुष्ट नही है। केवल एक प्रति के आधार पर देव की इस कृति का सम्पादन करना इस कारण भी अपेक्षाकृत सरल है क्योकि इस ग्रथ मे तथा देवकृत अन्य ग्रथो मे समान छन्द बहुतायत से मिलते है। इस प्रकार इस ग्रथ की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियो के रूप मे मुख्य सम्पादन-सामग्री का अभाव होने पर भी देवकृत अन्य ग्रथो मे प्राप्त समान पाठ का उपयोग सहायक सामग्री के रूप मे किया गया है।

सहायक सम्पादन-सामग्री के रूप मे देवकृत अन्य ग्रथो मे प्राप्त समान छदो के पाठ का उपयोग सतर्कता से किया गया है। ऐसे ग्रथो के सम्पादन मे, जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ आवश्यक सख्या मे प्राप्त हुई है, हम देवकृत अन्य कृतियो मे प्राप्त समान छदो के पाठ पर बहुत कम आश्रित रहे है। इसका कारण स्पष्ट है। हम समझते है कि जब कवि अपने एक ग्रथ का छद अपने दूसरे ग्रथ मे भरती करता है तो बहुत सम्भव है कि वह छद के पाठ मे भी कुछ सशोधन-परिवर्तन करता हो। कम से कम इस सम्भावना को अस्वीकृत नही किया जा सकता। दो भिन्न कृतियो मे विद्यमान समान छदो के पाठ का इस प्रकार अवैज्ञानिक रीति से परस्पर मिश्रण कर देने पर कवि द्वारा इस पाठ-सशोधन का अध्ययन करना सर्वथा असम्भव होगा, अत हमने ऐसा पाठ-मिश्रण कही भी नही होने दिया है। "सुमिल विनोद" के सम्पादन मे तथा देव की उन कृतियो के सम्पादन मे जिनकी केवल एक ही हस्तलिखित प्रति मिली है, केवल उसी

स्थल पर अन्य ग्रथ मे प्राप्त छद के पाठ से सहायता ली गई है जहाँ उपलब्ध प्रति का पाठ निश्चित रूप से अशुद्ध था। हमने ऐसे स्थलो पर अपनी ओर से पाठ-सशोधित करने की अपेक्षा कविकृत किसी अन्य ग्रथ मे विद्यमान उसी छद का सगत पाठ स्वीकृत करना उचित समझा है। केवल इन्ही थोडे से स्थलो पर सम्पादित कृति के मूल मे कवि द्वारा पाठ-सशोधन किये जाने की सम्भावना और भी कम है इसलिए कवि द्वारा पाठ-सशोधन की सम्भावना के उपरोक्त प्रश्न पर भी निर्भीक होकर अन्य ग्रथो से पाठ साभार स्वीकृत किया जा सकता है।

"सुमिल विनोद" की अ० प्रति के पाठ मे केवल उन्ही स्थलो पर पाठ-सशोधन किया गया है जहाँ अ० प्रति का पाठ निश्चित रूप से अशुद्ध था। इन पाठ-सशोधनो की दो कोटियाँ है। प्रथम, ऐसे पाठ-सशोधन जो अन्य ग्रथो मे छद के प्राप्त पाठ द्वारा पुष्ट है। इस प्रकार के पाठ-सशोधन के साथ इतर ग्रथ का उल्लेख किया गया है।

समान छदो का तुलनात्मक पाठ पाठातर के रूप मे नही दिया गया हे, क्योकि यह पृथक् अध्ययन का विस्तृत विषय है।

अ० प्रति के पाठ में प्राप्त अपूर्ण छंद

अ० प्रति की परीक्षा करते हुए हमने ऊपर देखा है कि प्रतिलिपिकार ने प्रति के पाठ मे कुछ स्थलो पर छद का पूरा पाठ न देकर प्रारभिक दो-तीन शब्द प्रतीक-स्वरूप दे दिये है। उदाहरण के लिये अ० प्रति मे ४ ७ पर "आली झुलावति" छदके सपूर्ण पाठ के स्थान पर केवल छद का सकेत इस प्रकार मिलता है, "आली झुलावति झूकनि सो इत्यादि।" अधिकतर ऐसे स्थलो पर अपूर्ण छद के साथ उस ग्रथ का नाम भी उल्लिखित है जिस ग्रथ मे छद का संपूर्ण पाठ मिलता है, जैसे ४ १५ पर "जागत जागत खीन" छद का सकेत इतर ग्रथ के उल्लेख सहित इस प्रकार है—"ध्यान को विरह निवेदन प्रेम तरग चद्रिका मे है। जागत जागत खीन।" अथवा ४ १७ पर "जे विनु देखे" छद का सकेत "वद्यहरण (?) चन्द्रिकाम्या ए विनु।" कहना न होगा कि अन्य ग्रथो मे इन छदो के मिलने का अ० प्रति मे प्राप्त यह उल्लेख सर्वदा सही निकला है, जैसे उपरोक्त दोनो स्थलो पर "जागत जागत खीन" छद अन्यत्र केवल "प्रेम चद्रिका" ग्रंथ मे ही २ ३७ पर तथा "जे विनु" छद भी अन्यत्र केवल उसी ग्रथ मे २ ३८ पर मिलता है।

केवल एक स्थल ५ ९ पर ग्रथ का उल्लेख अशुद्ध है। इस छद का सकेत अ० प्रति मे इस प्रकार है, "अथ वासक सज्जा अष्टयाम मै। देव सखी इक लीने फुलेल।" किन्तु यह छंद "अष्टयाम" मे नही, अन्यत्र केवल "सुखसागर तरग" मे छद सख्या ६३२ पर आया है।

इन छदो के अपूर्ण होने का क्या कारण है? क्या स्वय कवि ने इन छदो का पाठ सपूर्ण न देकर उनके प्रतीक मात्र दे दिये है? ये छद प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त है? अथवा प्रतिलिपिकार ने ही शीघ्रता के कारण इस रूप मे सक्षेप किया है? इन छदो के सम्बन्ध मे ये प्रश्न विचारणीय है।

इनमे से प्रथम, कवि द्वारा सपूर्ण छद के स्थान पर प्रथम छद दिये जाने की संभावना उचित नही है। सामान्यतया कोई भी कवि मूल ग्रथ मे छदो का सक्षेप इस रूप मे नही करेगा क्योकि इससे पाठक तक अपनी रचना पहुँचाने का उसका प्राथमिक उद्देश्य ही खडित होता है। उसे यदि

संक्षेप ही अभीष्ट होगा तो वह विषय-विवेचन मे कही सक्षेप करेगा, विवेच्य प्रसंग को इधर-उधर से काट-छाट कर नष्ट-भ्रष्ट नही करेगा। ग्रथ के आकार को सक्षिप्त करने की यह प्रवृत्ति लेखक की नहीं, पूर्णतया प्रतिलिपिकार की है।

प्रतिलिपिकार द्वारा इन छदो के प्रक्षिप्त होने की सम्भावना भी इसलिए अमान्य है क्योकि इस प्रति मे इन छदो का केवल प्रतीक मात्र मिलता है। पाठ-वृद्धि के रूप मे प्रक्षेप करने पर प्रतिलिपिकार का उद्देश्य रचना के कथ्य मे पाठ-परिवर्धन करना होता है अत. यदि ये छद प्रतिलिपिकार द्वारा ग्रथ मे सम्मिलित की गई पाठ-वृद्धि होते तो स्वभावत वह सपूर्ण छद देता, छद का केवल प्रतीक नही। छद का प्रतीक देने मे कवि के समान प्रतिलिपिकार का अभीष्ट भी सिद्ध नही होता है।

उपर्युक्त सभावनाओ मे अतिम, प्रतिलिपिकार द्वारा शीघ्रता के कारण सपूर्ण छद के स्थान पर केवल प्रतीक रखने की सभावना हमे सगत प्रतीत होती है तथा प्रतिलिपिकार द्वारा ऐसा किया जाने का कारण भी स्पष्ट है। इन विवेच्य छदो मे अधिकतर छद ऐसे है जो अन्यत्र "प्रेम चद्रिका" मे भी, अथवा केवल "प्रेम चद्रिका" मे ही आए है। प्रतिलिपिकार के पास "प्रेम चद्रिका" की प्रति विद्यमान थी तथा इस प्रति मे इन छदो का पूर्ण पाठ भी था अत उसने यहाँ उन छदो का पाठ पूरा-पूरा न देकर केवल उनका प्रतीक लिख लेना पर्याप्त समझा। ध्यान रहे कि यदि प्रतिलिपिकार का उद्देश्य केवल सक्षेप करना ही होता तो इस प्रति मे अनेक ऐसे छद भी अपूर्ण मिलते जो इस प्रति मे तथा "प्रेम चद्रिका" मे समान होने के अतिरिक्त "सुखसागर तरग", "सुजान विनोद" एव "भवानी विलास" मे समान है। "सुमिल विनोद" मे तथा इन अतिम तीन ग्रथो में अनेक छद समान मिलते है किन्तु सक्षेप केवल उन्ही छन्दो का हुआ है जो "प्रेम चद्रिका" मे तथा इस प्रति मे समान है।

ऊपर केवल एक स्थल ५ ६ पर "अष्टयाम" मे पूर्ण छन्द मिलने का अशुद्ध उल्लेख केवल प्रतिलिपिकार के भ्रम के कारण हुआ है। "अष्टयाम" के चतुर्थ पहर मे एकाधिक छन्दो मे "सुमिल विनोद" के इस छन्द के समान, सखियो द्वारा नायिका के शृगार का वर्णन है अत सम्भव है कि प्रतिलिपिकार को दोनो छन्द समान होने का मिथ्या भ्रम हुआ हो। "सुमिल विनोद" का छन्द इस प्रकार है—

"देव सखी इक लीन्हे फुलेल सुचोया के चोरनि येकै निचोरै।
एकै लिये कगही इक दर्पन चेरी लिये इक बीजन ढोरै॥" आदि

इससे तुलना के लिये "अष्टयाम" से केवल एक स्थल उदाहरणस्वरूप दिया जाता है—

"चोया सो चुपरि केस केसरि सुरग अग केसर उबटि अन्हवाई है गुलाब सो।
अतर तिलोछि आछे अम्बर लै पोछी ओछी छतिया अगोछि हसि हसि रस भाव सो।"

—"अष्टयाम"—४ . ६

"अष्टयाम" की प्रतिलिपि "सुमिल विनोद" की प्रतिलिपि के साथ बीकानेर के सग्रह मे नही है। श्री नाहटा जी के कथनानुसार यह प्रति उन्हे जयपुर मे प्राप्त हुई है। हमारा अनुमान है कि जयपुर मे "सुमिल विनोद" के साथ "अष्टयाम" की प्रति भी अवश्य रही होगी।

रीवाँ के सग्रह मे तो "मुमिल्न विनोद" के साथ "अष्टयाम" की प्रति है ही। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रतिलिपिकार ने "अष्टयाम" की प्रति भी अपने पास होने के कारण, उसमे तथा "मुमिल्न विनोद" मे एक छद भ्रमवश समान जानकर यहाँ इस छद का भी केवल प्रतीक लिख दिया है।

इन छद-प्रतीको पर भी क्रमानुसार छद-संख्या पडी है, इससे भी यही प्रमाणित होता है कि ये छन्द मूल-ग्रथ के हे। केवल एक स्थल पर छन्द-प्रतीक पर छन्द सख्या नही पडी है पर इसे हम प्रमादवश छूटा हुआ मान लेते हैं।

खेद है कि इन त्रुटित छदो का पाठ "सुमिल विनोद" की किसी उपलब्ध प्रति से प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ, है परन्तु सौभाग्य से इन छदो मे से अधिकतर छद देवकृत अन्य ग्रंथो मे भी मिलते है अत हमने इन इतर ग्रथो से ऐसे छदो का पाठ स्वीकार करना इस ग्रथ की पूर्णता के विचार से आवश्यक समझा है। यदि "सुमिल विनोद" की ही किसी प्रति से यह पाठ लिया जाता तो अत्युत्तम होता क्योकि "सुमिल विनोद" तथा देवकृत अन्य ग्रथो मे प्राप्त समान छदो की तुलना से यह प्रकट होता है कि कवि ने अन्य ग्रथो की अपेक्षा "सुमिल विनोद" के पाठ मे यत्र-तत्र सशोधन-परिवर्तन किया है, अत सम्भव हे कि उसने इन छदो के पाठ मे भी इसी प्रकार कुछ परिवर्तन किया हो। फिर भी हमने प्रति अपूर्ण होने के कारण इन स्थलो पर पाठ भी खडित छोड देने की अपेक्षा अन्य ग्रथो से पाठ साभार स्वीकृत करना श्रेयस्कर माना हे। हम इस तथ्य से आश्वस्त है कि ये छद सख्या मे केवल छ है अत इनमे किये हुए कवि-कृत पाठ-परिवर्तन ओर भी कम रहे होगे।

"सुमिल विनोद" के सम्पादित पाठ मे ऐसे स्थलो पर अन्य ग्रथो से प्राप्त पाठ का उल्लेख उस ग्रथ तथा उसमे इस छद के स्थल-निर्देश सहित कर दिया गया है। ये पाठ अ० प्रति मे प्राप्त छद प्रतीक से पृथक् कोष्ठको मे दिये गये है। "सुमिल विनोद" मे इन स्थलो की सूची, छद-प्रतीक तथा स्वीकृत पाठ के स्रोत का विवरण इस प्रकार है —

१—सुमिल विनोद ४ ७ "आली झुलावति"—"सुजान विनोद" ७ २५ से,
२— ,, ,, ४ १५ "जागत जागत खीन"—"प्रेम चद्रिका" २ ३० से,
३— ,, ,, ४ १७ "जे बिनु देखे"—"प्रेम चद्रिका" २ ३८ से,
४— ,, ,, ५ ९ "देव सखी इक"—"सुखसागर तरग" ६ ३२ से,
५— ,, ,, ५ २६ "सूझत न गात"—"सुजान विनोद" ४.३२ से,
६— ,, ,, ५ ४४ "लागत समीर लक"—"सुजान विनोद" ५ ४४ से

ऐसे पाठ-संशोधन जो देवकृत अन्य ग्रंथों में प्राप्त उसी छंद के पाठ द्वारा पुष्टहै

१ : ४ स्थायी भाव—

रति हाँसी अरु सोक रिस अरु उछाह छिन मानि।
आहचरज वैराग्य ये नवरस थाई जानि॥

उत्साह वीररस के स्थायी भाव के रूप मे प्रसिद्ध है। यहाँ उत्साह के अर्थ मे ही "उछाह" शब्द प्रयुक्त हुआ है किन्तु अ० प्रति मे "अरु उछाह" के स्थान पर, **"उतसव"** पाठ

है। प्रसग की दृष्टि से असगत होने के अतिरिक्त इस पाठ मे दो मात्राएँ न्यून होने के कारण दोहे के चरण की गति भी दूषित होती है। "काव्य रसायन" मे ३ १४ पर यह दोहा मिलता है, तथा इसमे भी "अरु उछाह" पाठ मिलता है। अत यहाँ "अरु उछाह" पाठ स्वीकृत हुआ है।

१ : ७

अर्थ **धर्म** ते होत अरु होत अर्थ ते काम।
ताते सुख सुख को सदा रस सिगार सुखधाम ॥

दोहे मे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चतुर्वस्तुओ का परस्पर सम्बन्ध वर्णित है। कवि ने इसी भाव को "भाव विलास" मे १ २ पर इस प्रकार प्रकट किया है—"अरथ धर्म ते होई अरु काम अरथ ते जानु।" अ० प्रति मे "अर्थ धर्म ते· " पाठ के स्थान पर "अर्थ दया ते· " पाठ मिलता है। जीवन की धर्म-अर्थादि चार अभिलाष्य वस्तुओ मे "दया" की गणना नही होती है अत अ० प्रति मे प्राप्त "दया" पाठ असगत है। इसके स्थान पर "भाव विलास" मे प्राप्त इस दोहे के पाठ से "धर्म" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ : १३

रति पूरन सिगार सो मिलि विभाव अनुभाव।
सात्विक सचारिन झलकि झलकावति है हाव ॥

" · झलकावति है हाव" के स्थान पर अ० प्रति मे पाठ है "झलकावति दस हाव।" स्मरण रहे कि नायिका के हृदय मे मिलन तथा सभोग की इच्छा के कुछ-कुछ प्रकट होने को हाव कहते है, अत "हाव" के प्रसग मे सख्यावाची "दस" शब्द यहाँ प्रयुक्त होना सर्वथा अनुचित है।" "भवानी विलास" मे १ १८ पर इस दोहे मे भी " झलकावत है हाव" पाठ है अत यहाँ अ० प्रति के "दस" पाठ के स्थान पर "है" पाठ स्वीकृत हुआ है।

१ : २४ प्रथम दो चरण—

छीजत रग पसीजत अग तरगित रोम हियो अभिलापै।
मोह मढे मग मै न कढै पग बोल बढै न पढै मुख भाखै ॥

इस छद मे कवि ने पूर्व गणित सात्विकादि अष्ट सचारियो के उदाहरण प्रस्तुत किये है। प्रथम चरण मे वैवर्ण्य, स्वेद तथा रोमाच सात्विक अनुभावो का एवं द्वितीय चरण मे केवल स्वरभग का उदाहरण है। द्वितीय चरण मे "···बोल बढै न पढै मुख भाखै" के स्थान पर अ० प्रति मे कदाचित् "म" मे "स" का भ्रम होने से पाठ है "· बोल बढै न पढै सुख भाखै।" बोल न फूटने तथा कठावरोध होने के प्रसग मे "सुख" की अपेक्षा "मुख" पाठ सगत प्रतीत होता है अत "सुखसागर तरग"—१०९ पर इस छद मे प्राप्त "मुख" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ : २५ संचारी भाव। प्रथम-द्वितीय तथा पंचम-षष्टम चरण—

है निर्वेद गिलानी सक असुया मद श्रम कहु।
आरस चिता **दैन्य** मोह सुमिरन धीरज रहु।
अववोध क्रोध अवहित्थ मति **त्रास** व्याधि उन्माद मृति।
चौविधि वितर्क उग्रता तैतीसो मानस प्रकृति।"

द्वितीय चरण के "दैन्य मोह" पाठ के स्थान पर कदाचित् प्रतिलिपिकार के मस्तिष्क मे "मोह" की प्रतिध्वनि होने के कारण पाठ है "द्रोह मोह"। "द्रोह" सचारी-नाम के रूप मे निरर्थक तथा असगत है। "प्रेम तरग" १ ६ पर इस चरण का पाठ इस प्रकार है,"आरस दैन्यरु मोह चित सस्मृति धृति हूँ क्रम।" इस पाठ मे प्राप्त "दैन्यरु" शब्द के सकेत पर यहाँ "द्रोह" के स्थान पर "दैन्य" शब्द रखा गया है।

इसी प्रकार अ० प्रति मे प्रथम चरण के "त्रास व्याधि" के स्थान पर "ग्राम व्याधि" पाठ है। सचारी-नाम के रूप मे "ग्राम" पाठ भी असगत है अत इसके स्थान पर "प्रेम तरग" मे प्राप्त "त्रास" सचारी-नाम यहाँ रखा गया है।

१ : २६

"बोली न आँखिन तानि कहूँ पट ओट तिरीछे कटाछनि कै रही।
डोली न आँखिन आँखि लगाइ अचानक आँखिन को सरु कै रही।
एहो वडी वडी आँखिनवारी निहारि की आँखिन मैं थरु कै रही।
नाखिन आँखिन ते निकर्‌यो अव प्यारे की आँखिन मै घरु कै रही॥"

प्रियतम से उसकी आँख लगी तो लज्जित होकर उसने अपने नेत्र झुका नही लिये वरन् वह कुछ ढिठाई से उसकी आँखो मे ही देखती रही। कदाचित् अपनी इसी प्रगल्भता से उसने अपने प्रिय की आँखो को जीत लिया। यहाँ "सरु कै रही" सर करने या विजित करने के अर्थ मे, मुहावरे के रूप मे आया है। अ० प्रति मे इसके स्थान पर "सह कै रही" पाठ मिलता है। यहाँ "सह" को "शह" का रूपान्तर मानना अनुचित होगा क्योकि प्रथम तो मुहावरा "शह करना" न होकर "शह देना" है और दूसरे "शह देने" से यहाँ विजित करने के अभीष्ट भाव से भिन्न, परास्त करने का भाव प्रकट होता है। "सुखसागर तरग" मे छद-सख्या ११६ पर इसी छद के पाठ मे "सरु कै रही" पाठ तथा छद-सख्या ३८८ पर इसी छद के पाठ मे "सठ कै रही" पाठ मिलता है। "सठ" पाठ असगत है तथा लिपिभ्रम से सम्भव है। इसी प्रकार अ० प्रति मे "सह" पाठ भी दृष्टि-भ्रम से सम्भव है। अत उपरोक्त स्थल पर "सरु" पाठ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार अ० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ है "निहारि की आँखिन मैं घरु कै रही।" "घरु कै रही" पाठ निरर्थक न होने पर भी यहाँ असगत है। तृतीय चरण का भाव है कि "यह वडी-वडी आँखोवाली नायिका का रूप-सौन्दर्य ऐसा है कि जिसकी भी दृष्टि उस पर पडती है उसी की आँखो मे वह थिरकती रह जाती है।" कहना न होगा कि "निहारि की आँखिन मै" का अर्थ "निहारने-वाले अथवा दर्शक की आँखो मे" है। प्रत्येक दर्शक की आँखो मे उसका घर कर लेना शब्दार्थ की दृष्टि से भले ही सार्थक हो परन्तु अगले चरण के "प्यारे की आँखिन मैं घरु कै रही" पाठ से यह पाठ असगत सिद्ध होता है। अर्थ के विचार से भी "घर" पाठ असगत है। यदि वह सभी सामान्य दर्शको के हृदय मे घर कर लेती है तथा उन्ही के समान अपने प्रिय की आँखो मे भी घर कर लेती है तो इससे उसके सौन्दर्य का कोई विशेष चमत्कार तथा उसके प्रियतम का विशेष महत्त्व प्रकट नही होता। कवि तो कहना चाहता है कि वडी-वडी आँखोवाली सुन्दरी नायिका दर्शको की आँखो मे तो थिरकती ही रहती है किन्तु घर करती है केवल अपने प्रियतम की आँखो

में इस विचार से अ० प्रति मे प्राप्त तृतीय चरण का "निहारि की आँखिन मैं घरु कै रही" पाठ असगत है। सम्भव है कि "थरु कै" मे दृष्टि-भ्रम से, अथवा अगले चरण के "घरु कै" पाठ पर भूल से दृष्टि पडने से इस प्रति मे यहाँ "घरु कै रही" पाठ आ गया हो। "सुखसागर तरग" मे भी उपरोक्त दोनो स्थलो पर इस छद के पाठ मे "थरु कै" पाठ आया है अत यहाँ "थरु कै रही" पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : ५

होत वियोग सयोग ते मान प्रवास ससोग।
एहि विधि मध्य वियोग के होत रिगार सयोग॥

विप्रलभ शृगार के भेदो के अन्तर्गत मान हेतुक वियोग तथा प्रवास हेतुक वियोग की गणना की जाती है। विप्रलभ शृगार के भेद होने के कारण ये दोनो ही हृदय की विरह-प्रधान स्थिति का द्योतन करते है अत यहाँ "···मान प्रवास ससोग" शब्दावली उचित ही प्रयुक्त हुई है। अ० प्रति मे इस स्थल पर पाठ है

"··मान प्रवास **संजोग**।" यह पाठ मान-प्रवास के सन्दर्भ मे अनुचित होने के अतिरिक्त अगले चरण का तुकान्त "· होत सिगार सयोग" होने के कारण अनुपयुक्त भी है। "भवानी विलास" मे २ ४ पर इसी दोहे मे "मान प्रवास ससोग" पाठ मिलता है अत यहाँ यही पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : १९ प्रथम-द्वितीय चरण—

अथ तिहूँ मध्य पति अनुकूल दच्छ सठ भावते सखी वाक्य।
देखे अनुकूल कहूँ दूलह हिये की फूल उलही अनूप रूप लही दुलही ठई।
दच्छिन ह्वै आवत ततच्छन सुहात तहाँ सुख दै **सिखावत** दिखावत हैं ईठई।

अपने लक्षण के अनुरूप, अनुकूल पति अपनी पत्नी को सर्वदा अपने सन्मुख रखता है किन्तु दक्षिण पति अन्य नायिकाओ मे अनुराग रखने पर भी नायिका के सन्मुख उसका प्रिय बन कर प्रकट होता है, उसे अपनत्व की शिक्षा देता है तथा उसके प्रति अपना अपनत्व प्रदर्शित कर नायिका को सुख प्रदान करता है। "ईठई" यहाँ "अपनत्व, स्नेह" के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

अ० प्रति मे "सुख दै सिखावत" पाठ के स्थान पर "सुख दै खिखावत" पाठ-विकृति मिलती है। यह विकृति लेखन-प्रमाद से निकटवर्ती शब्दो मे 'ख' वर्ण के आधिक्य के कारण सम्भव है। "सुखसागर तरग" मे छद-सख्या ८११ पर इस छद मे "सुख दै सिखावत ·" पाठ मिलता है अत. यहाँ यही पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : २६ ऊढ़ा उदाहरण—

दीरघ बस लिये कर मै डर मै न कहूँ भरमै भटकी सी।
धीर उपाइन पांइ धरै वरतै न परै लटकै लटकी सी।
साधति देह सनेह **निराट** कहै मति कोउ कहूँ अटकी सी।
ऊँचे अकास चढै उतरै सु करे दिन-राति कला नट की सी।

छद के दूसरे चरण का अर्थ होगा कि नायिका रस्से पर अपने पैर मद-मद, इस चतुरता

मे रखती है कि वह रस्से पर से गिरने नही पाती, ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह आकाश मे लटकी है। द्वितीय चरण का उपरोक्त पाठ "प्रेम चद्रिका" मे ३·४१ तथा "सुखसागर तरग" मे ७७८ पर इस छद के पाठ मे भी मिलता है। इस पाठ के स्थान पर अ० प्रति मे पाठ है "दौरि उपाइ झपाइ धरै ··।" यह पाठ प्रसग की दृष्टि से असगत है। अत उपरोक्त दोनो ग्रथो मे प्राप्त सगत पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार इस छद के तृतीय चरण का "निराट" शब्द किसी वस्तु की सहायता लिये विना, अकेले, निरवलम्व अपनी देह सतुलित रखने के अर्थ मे सर्वथा उपयुक्त है। "प्रेम चद्रिका" तथा "सुखसागर तरग" मे इस छद के पाठ मे यहाँ "निराट" पाठ मिलता भी है किन्तु अ० प्रति मे "निराट" के स्थान पर कदाचित् लेखन-प्रमाद से "निराति" पाठ है। यह पाठ प्रसग की दृष्टि से निरर्थक है अत इसके स्थान पर भी उपरोक्त दोनो ग्रथो मे प्राप्त "निराट" पाठ यहाँ स्वीकृत माना गया है।

३ : ४ पद्मिनि-लक्षण—

हस भेप भापा गमन लघु भोजन मृदु हास।
सती सत्यरुचि सील सुचि पदमिनि पद्म सुवास॥

अर्थात् ऐसी नायिका जिसका वेश हस के समान श्वेत हो, जिसकी वाणी भी हंस के समान सुमधुर हो, वह पद्मिनी नायिका कहलाती है। अ० प्रति मे "भापा" के स्थान पर लेखन-प्रमाद से "भूपा' पाठ है जो असगत है अत यहाँ "भवानी विलास" मे २ २२ पर प्राप्त "भापा" सगत पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ६ शखिनी उदाहरण। प्रथम-द्वितीय चरण—

पातरे लक **नचै से लचै** कर पल्लव **वेली ज्यो** वाल वनी ये।
कोकिल कूकनि पौन की भूकनि भूमति सी गति घूम घनी ये॥

जैसे वाटिका की छोटी लतिका वायु का तीव्र झोका आने पर उसके साथ वह नही जाती, धरनी के साथ जडो से वधी होने के कारण उसका ऊर्ध्व भाग झूमकर जैसे नाच उठता है उसी प्रकार यह क्षीण कटिवाली नायिका भी अपनी पतली कटि पर झुककर जैसे नाच-नाच जाती है। ध्यान रहे कि यहाँ प्रसग नायिका के नाचने का है, "पातरे लक नचै" मे "पर" अधिकरण कारक चिह्न लुप्त है, "स्वय" लक के नाचने पर नही—यदि ऐसा होता तो पाठ "पातरी लक" होता। नृत्य करती हुई नायिका की हथेलियाँ भी मुद्राओ को प्रकट करने के हेतु तीव्र वायु-दोलन मे वन-वेलि के पत्तो की भाँति झुक-झुक जाती है। इसी कारण कवि ने कहा है कि "वेली ज्यो वाल वनी ये"।

प्रथम चरण का सामान्य रूप से यही पाठ "सुखसागर तरग" मे ३५१ पर तथा "भवानी विलास" मे २ २६ पर मिलता है। किन्तु अ० प्रति मे चरण का पाठ इस प्रकार है— 'पातरे लक **नचै सि लचै** पल्लव **वैरि ज्यो** वाल वनी ये।" इस पाठ मे "वैरि ज्यो" पाठ सर्वथा असगत है, इस पाठ को स्वीकार करने पर छद से वेलि-वाला का रूपक ही छिन्न-भिन्न हो जाता है, अत यहाँ उपर्युक्त दोनो ग्रथो मे प्राप्त " ·नचै से लचै वेली ज्यो " पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ११ हस्थिनि उदाहरण। तृतीय-चतुर्थ चरण—

दै छतिया पर **पार परै पिय प्रेम** अपार समुद्र मै सोऊ।
काम की सागरि नागरि के उर गागरि से उचके कुच दोऊ॥

काम की सागर इस नागरी के वक्षस्थल पर उन्नत दोनो कुच गागरियो के समान है जिन्हे अपने वक्ष पर लगाकर वह प्रियतम के अपार प्रेम-समुद्र को तैर कर पार कर सकती है। जल पर तैरने के लिए गागरी जैसी वस्तुओ का उपयोग सर्वप्रसिद्ध है।

अ० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ है "दै छतिया पर पायरेई तरग अपार···।" इस पाठ की गति अशुद्ध है तथा इसकी सार्थकता भी सदिग्ध है अत यह पाठ अस्वीकृत तथा इसके स्थान पर "भवानी विलास" मे २ ३२ पर प्राप्त "दै छतिया पर पार परै पिय प्रेम अपार " पाठ स्वीकृत माना गया है।

३ : २३ सुरतान्त। तृतीय-चतुर्थ चरण—

गाहक **हौ जीके** जु कहा कहौ नीके नाह नाहक गमाइ आई लाज की लसनि यह।
अवहूँ उपाधि तजौ आधिक जियत पर वाधिक वधिक तेरी हा धिक हँसनि यह॥

सुरति मे अपनी दुर्दशा होने के कारण बेचारी नायिका यहाँ आने पर पश्चात्ताप करती हुई कठोर नायक से कहती है, "हम तुम्हे अच्छे नायक क्या कहे, तुम तो हमारी जान के ही ग्राहक मालूम देते हो। मै नाहक ही अपनी लाजभरी सुपमा का परित्याग कर यहाँ आयी।" नायक की क्रूरता पर पुन आक्षेप करती हुई वह कहती है कि "सुरति मे मेरा प्राणान्त नही हो गया, मै अधमरी होकर भी जीवित हूँ, इसलिए भला हो यदि तुम अपनी "वधिक" उपाधि त्याग दो। तुम्हे लज्जा नही आती ? तुम हँस रहे हो ?"

"भवानी विलास" मे ५ २१ पर तृतीय चरण का उपरोक्त पाठ ही मिलता है किन्तु अ० प्रति मे "गाहक हौ जी के जु" स्थान पर पाठ है "गाहक जो जाके जू ·।" इस पाठ का "जाके" शब्द प्रस्तुत प्रसग मे असगत है। "जाके" का सम्वन्ध "लाज की लसनि" से जोड कर नायक को नवेली नायिका की लाजभरी सौन्दर्य-सुपमा का ग्राहक वताना भी असगत लगता है क्योंकि इस व्याख्या को स्वीकार करने पर "कहा कहौ नीके नाह" पद सन्दर्भ से उच्छिन्न हो जाता है। "लाज भरी लसनि" का ग्राहक होने के कारण नायक को "नीके नाह" न कहना अधिक उपयुक्त नही लगता है। नायक को "नीके नाह" न कहने तथा अगले चरण की "···आधिक जियत पर वाधिक वधिक ·" आदि शब्दावली से यही प्रकट होता है कि नायिका क्रूर नायक को "जी" का ही ग्राहक समभती है।

"जीके" ध्वनि इसी चरण मे आगे चलकर "नीके" शब्द पर प्रतिध्वनित भी होती है। सम्भव है कि अ० प्रति मे सामान्य लेखन-प्रमाद से "जी" की मात्रा छूट गई हो। जो भी हो, प्रसग पर ध्यान रखते हुए "भवानी विलास" मे प्राप्त "जीके" सगत पाठ उपर्युक्त स्थल पर स्वीकृत हुआ है।

३ : २७ प्रगट मदना उदाहरण। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय चरण—

नन्द जू के वार देव आये वृपभान द्वार सौही पौरि दौरि सखी कह्यो वर वाम सो।
धाइ गही धाइ देख्यो चाहे चलि आइ पै **सद्यो न परै घूँघट** कढ्यो न परै धाम सो।
मदन **सदेह** जाग्यो सदन सदेह लाग्यो पाग्यो पन पूर्‌यो मन लाग्यो जाइ स्याम सो॥

द्वितीय चरण मे नायिका की उतावली तथा प्रिय-दर्शन की उसकी उत्कट अभिलाषा किन्तु शीघ्रता, सकोच के कारण उसकी परवशता, सिर पर घूँघट डालने मे उसकी असमर्थता से तथा घर से बाहर पैर रखने मे उसकी पराधीनता से प्रकट होती है। अ० प्रति मे द्वितीय चरण का पाठ है "प्रेम पैठ्यो नव वधू घूट ··।" कहना न होगा कि यह पाठ असगत है तथा एक वर्ण की पाठ-वृद्धि होने के कारण इस पाठ की गति भी अशुद्ध है, इसलिए इसके स्थान पर "सुख-सागर तरग" मे ४०२ पर प्राप्त "पै मढ्यो न परे घूँघट" पाठ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार छद के तृतीय चरण का पाठ अ० प्रति मे है "मदन सदेस जाग्यो"। नायिका के हृदय मे कामदेव का सन्देश जाग्रत होने की अपेक्षा स्वय कामदेव का और वह भी शरीरी होकर जागना हमे ऊपर वर्णित नायिका की उतावली के साथ अधिक सगत लगता है अत उपरोक्त स्थल पर भी "सुखसागर तरग" मे प्राप्त "मदन सदेह जाग्यो" पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ३० मध्या की सुरत। प्रथम-तृतीय चरण—

वातनि मै चूकति अचूक चित कूकति विभूकति औ **झूकति** सी लूकति लसति सी।
मोरति मरोरति बिथोरति औ जोरति सी तोरति निहोरति सकोरति ससति सी॥

छद मे सुरति के समय नायिका की अनेक कायिक चेष्टाओ का वर्णन है। अ० प्रति मे प्रथम चरण मे "झूकति" के स्थान पर "रुकति" पाठ मिलता है। यहाँ जितनी भी चेष्टाओ का वर्णन है वे प्राय एक-दूसरे से बहुत भिन्न नही है, जैसे मोडने-मरोडने, विथोरने-तोडने अथवा सिकुडने-ससाने की क्रियाएँ। इसी प्रकार प्रथम चरण मे विझुकने और झुकने की क्रिया मे भी विशेष अन्तर नही है क्योकि "विझुकने" का अर्थ "टेढा होना" है ("नेह उरझे से नैन देखिवे को विरूझे से विझुकी सी भौहे उझके से डर जात है"—केशव), तथा "झूकने" से भी तात्पर्य स्पष्टत "झुकने" से है। नायिका के अन्य कार्यो मे भी समानता होने के कारण "विझुकने" के साथ "झूकति" क्रियापद ही सगत है, रोकने के अर्थ मे (?) "रुकति" क्रियापद नही। "विझूकति औ झूकति" पाठ अनुप्रास-पुष्ट है तथा सम्पूर्ण छद मे प्रयुक्त प्राय अन्य सभी क्रियाओ के अकर्मक रूप के समान 'झूकति" भी क्रिया का अकर्मक रूप है परन्तु "रुकति" पाठ मे ये दोनो विशेषताएँ नही है इस कारण अ० प्रति मे प्राप्त "रुकति" पाठ के स्थान पर "सुख-सागर तरग" मे छद सख्या ४६६ पर प्राप्त "झूकति" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है। सम्भव है अ० प्रति का "रुकति" पाठ "झूकति" के 'झ' वर्ण के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने के कारण हुआ हो।

तृतीय चरण मे अ० प्रति मे "मोरति-मरोरति" के स्थान पर पाठ है "मोरन मरोरति"। यह पाठ-विकृति भी 'त' मे 'न' का भ्रम होने से अथवा लेखन-प्रमाद से सम्भव है। "मोरनि मरोरति" पाठ इस प्रसग मे असगत तथा निरर्थक है अत "सुखसागर तरग" मे इसी छद के पाठ मे प्राप्त "मोरति मरोरति" पाठ भी यहाँ स्वीकृत हुआ है।

३ : ३२ प्रथम-द्वितीय चरण—

"**घाइल** करत कर साइल मृगनि दृग कुटिल कटाछ सर भृकुटी धनुक के।
कज **कर** मजु रव ककन अनूप पग भू पर धरत बजे नूपुर **झनक** के॥"

अ० प्रति मे प्रथम चरण मे लेखन-प्रमाद से "घाइल करत" के स्थान पर विकृत पाठ है "**पाइल** करत," प्रसग-अनुसार पाठ "घाइल करत" ही होना चाहिए। इसी प्रकार अ० प्रति मे द्वितीय चरण का पाठ है "कज **वर** मजु रव" तथा "· वजे नूपुर **कनक** के"। इनमे से प्रथम पाठ "कज वर" असगत है। कवि का भाव है कि नायिका के कमल के समान सुदर हाथो मे पडे कगन हस्त-सचालन से मधुर-स्वर कर उठते है। "कर" के स्थान पर "वर" पाठ स्वीकृत करने मे आपत्ति इसलिये है क्योकि "कज" इस प्रसग मे "कर" का विशेषण है, "कर" के स्थान पर "वर" पाठ स्वीकृत करने पर "कज" की स्थिति सदिग्ध हो जाती है—"कज" फिर किसके लिये प्रयुक्त माना जाए ? इसी प्रकार "नूपुर कनक के" पाठ भी अनुचित है। चरण का भाव इस प्रकार है कि "नायिका के सुन्दर पैरो मे पडे नूपुर धरती पर पैर रखते ही झनक कर बज उठे।" किन्तु अ० प्रति मे प्राप्त पाठ के अनुसार चरण का भावार्थ इस प्रकार होगा—"नायिका के सुन्दर पैरो मे पडे सुवर्ण के नूपुर धरती पर पैर रखते ही बज उठे।" यहाँ पर "कनक" पाठ अस्वीकृत माना गया है क्योकि छद के चतुर्थ चरण के अत मे भी यही शब्द आया है "तनक-तनक वपु सुघर कनक के।" पैरो के नूपुर का सुवर्ण-निर्मित होना इसलिये भी कम सभव है क्योकि पैरो मे सुवर्णाभूषण प्राय नही पहने जाते है। "कनक" पाठ-विकृति "झनक" पाठ से 'झ' के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने के कारण सभव है।

उपरोक्त तीनो स्थलो पर स्वीकृत पाठ "सुखसागर तरग" मे छद-सख्या ३९९ पर इस छद के पाठ मे भी मिलते है।

४ : १४ : १

"हरि मूरति को धरि ध्यान रही रति **पूरति** प्रेम हिलोरन ही।"

अ० प्रति मे "प" मे "म" का भ्रम होने से पाठ है "रति-मूरति ·" इसके पहले ही "हरि मूरति" पाठ आ चुका है तथा अर्थ के विचार से भी यहाँ "मूरति" पाठ असगत है अत इसके स्थान पर सयोजित करने के अर्थ मे "पूरति" पाठ स्वीकृत किया गया है।

"भवानी विलास" मे ४ २४ पर तथा "सुखसागर तरग" मे ५४९ पर भी इस छद मे "पूरति" पाठ ही मिलता है।

४ : ३० : १ दशम दशा उदाहरण—

"ह्वै अभिलाष सचित भई हरि को धरि ध्यान कहै गुन गोते।"

कवि ने छद मे कृष्ण-विरह से उत्पन्न नायिका की मरणासन्न अवस्था का कारुणिक चित्रण किया है। नायिका के कुटुम्ब की स्त्रियो को नायिका के जीवित बच जाने की आशा है। कल-परसो से ही उसने पानी-पान-भोजन सवका परित्याग कर दिया था, किंतु आज आकाश मे चद्रमा के निकलते ही सपुटित कमल के समान श्रीरहित नायिका को देखकर वे अव नायिका के विपय मे पुन चितित हो गई है। "ह्वै अभिलाप सचित भई" से यही भाव है। अ० प्रति मे दृष्टि-भ्रम से "ह्वै" के स्थान पर "द्वै" पाठ है। "द्वै अभिलाप" पाठ असगत है अत अ० प्रति

के पाठ के स्थान पर "ह्वै" पाठ-सशोधन किया गया है। "सुखसागर तरग" मे भी सख्या ६१४ पर इसी छद के पाठ मे "ह्वै" पाठ मिलता है।

५ : १२ उत्का उदाहरण—

पलै पल पूछति विपल दृग मृगनैनी आए न कमलनैन आई ए अलपरी।
जीभ मै जलप देव देखिवे की तलप सु भूतल परी है पै सुहाति न तल परी।
रसिक रसिकलाल कलानिधि मिलै तौलौ कलानिधि मुख चितचाई की चल परी।
केलि के महल कलभाखिनि अकेली **संकलप विकलप** ही मै क्योहू **न कल** परी।।"

अ० प्रति मे अन्तिम चरण का पाठ है "सक कलप विकल ··**तकल परी**।" किसी भी विधि चैन न मिलने के अर्थ मे "क्योहू न कल परी" पाठ यहाँ उचित है तथा इसी पाठ मे "न" मे "त" का भ्रम होने के कारण "तकल" विकृत पाठ सभव है। दूसरा पाठान्तर विचारणीय है। अ० प्रति के "सक कलप विकल" पाठ मे ऊपर स्वीकृत पाठ के समान आठ वर्ण है तथा अ० प्रति के पाठ की गति भी सतर्क होकर पढते हुए शुद्ध की जा सकती है। इस पाठ के सहित चरण का अर्थ इस प्रकार होगा—"उस मधुर-भाषिणी नायिका के हृदय मे अपने नायक के न आने पर विभिन्न शकाए उठती है। वह इन शकाओ का ध्यान आने पर कलपती है, विकल होती है—उसे किसी विधि भी चैन नही मिलता।" इस पर भी अ० प्रति मे प्राप्त यह पाठ निम्नलिखित विश्लेपण को ध्यान मे रखते हुए अस्वीकृत हुआ है। इस प्रसग मे "सक" पाठ किसी प्रकार उचित माना जा सकता है किन्तु "कलप विकल" पाठ की सगति सदिग्ध है—दो कारणो से। प्रथम तो यह है कि ये दोनो ही शब्द यदि समानार्थी नही है तो प्राय एक ही भाव की व्यजना अवश्य करते है। दूसरे "क्योहू" शब्द जो इन्ही शब्दो से सम्बद्ध है, स्पष्ट सकेत करता है कि इन दो शब्दो के द्वारा व्यजना एक भाव की नही, बल्कि दो भावो की होनी चाहिए—तभी तो कवि कहता है कि "क्योहू न ··" न तो इस प्रकार, न उस प्रकार, किसी विधि भी उसके हृदय को शान्ति नही मिलती। इस कारण अ० प्रति के "सक कलप विकल" के स्थान पर यहाँ "सकलप विकलप" पाठ स्वीकार किया गया है। यह सकल्प-विकल्प एकाधिक वस्तुओ को लेकर सभव है। कमलनयन नायक के केलि-कुज मे न आने पर नायिका वहाँ उसकी और अधिक प्रतीक्षा करे अथवा वह अपने घर वापस लौट जाए अथवा वह स्वय ही नायक के पास जाए। इनमे से एक का सकल्प करना, फिर उसे त्याग देना उसके हृदय मे व्याकुलता की वृद्धि करता है।

उपरोक्त दोनो ही पाठ "सुखसागर तरग" मे छद-सख्या ६३९ पर मिलते है एव यहाँ स्वीकृत हुए है।

५ : १६ सखी सो

"गोरिन को गुन गर्व **सु सर्वसु ग्वारि गंवावन हारि** लखी तू।
वातन यो घर जात पने **उतपातन** की विधि मै न नखी तू।
ल्याइ भुलाइ सु मेरिय भूल चली अपने मुख मेलि मखी तू।
देव जू मीत अमीत सुने नहि होति सुनी भई सौति सखी तू।।"

छद का उपरोक्त पाठ "सुखसागर तरग" मे सख्या ६५७ पर भी प्राप्त है किन्तु अ०

प्रति मे प्रथम चरण का पाठ है "···**सु सर्व मुखारि गंवावत हारि लखी तू।**" तथा द्वितीय चरण मे "उतपातन" के स्थान पर पाठ है "उतपानन"। हम पहले प्रथम चरण के पाठ पर विचार करेगे। यदि "सुखारि" का सम्बन्ध "सुखारा" शब्द से माना जाए तो "मुखारि" का अर्थ होगा "सुख देने वाला"। (हेतु विचार हिये जग के मग त्यागि लखूँ निज रूप सुखारा।"—हिन्दी-शब्द-सागर) तव चरण का अर्थ इस प्रकार होगा—"गुण गौरी नायिका अर्थात् विवाहित स्त्री का गर्व ही सव को सुखदायी लगता है किन्तु री सखी, तू मुझे यहाँ लाकर इस गर्व रूपी लाख रुपये के हार को ही गवा रही है।" इस व्याख्या पर निम्नलिखित आपत्तियाँ है। प्रथम तो "सुख देने वाले" के अर्थ मे "सुखारि" शब्द का "सुखारा" से निर्मित होना निश्चित नही है, "सुखारु" शब्द का पुलिग विशेपण के रूप मे यहाँ प्रयुक्त होना और भी सदेह-पूर्ण है। दूसरी आपत्ति साधारण होते हुए भी इस चरण के दूसरे पाठान्तर से तुलना किये जाने पर महत्त्वपूर्ण है। यह आपत्ति "हारि" के इकारात रूप होने पर है। "हार" से "हारि" सामान्य तथा सामान्यतया प्रतिलिपि होते हुए भी सम्भव है। और यहाँ तो पहले ही "सुग्वारि" या "सुखारि" आ चुका है अत इनके अनुप्रास पर "हार" से "हारि" होना भी सम्भव है। फिर भी हम इस प्रश्न को उठाना इसलिये आवश्यक समझते है क्योकि अ० प्रति के अतिरिक्त "सुखसागर तरग" मे सख्या ६५७ पर इसी छद के पाठ मे भी "हारि" पाठ ही मिलता है इसलिये "हारि" केवल रूपान्तर न होकर कुछ और ही है। लाख रुपये के हार के अर्थ मे यहाँ पाठ "हार" होना चाहिये, "हारि" नही।

यो "हार" या "हारि" का विश्लेषण करना महत्त्वपूर्ण नही प्रतीत होता किन्तु इन शब्दो को दूसरे पाठ के "गवावत" के साथ रखकर विचार करने पर सर्वथा भिन्न अर्थ का उद्घाटन होता है। यह कहना अनावश्यक है कि यहाँ "गँवा देने वाली" के अर्थ मे "गवावन हारि" प्रयोग सर्वथा उचित तथा प्रसगसगत है। "गवावनहारि" के प्रसग मे सखी के लिए "ग्वालिन" "गवारिन" के अर्थ मे "ग्वारि" पाठ भी उचित है। यहाँ लखी का सम्बन्ध "हार" से कदापि नही है। "लखी" तो "देखने", 'पाने" के अर्थ मे "तू" के साथ सम्बद्ध है। इस पाठ के अनुसार चरण का अर्थ होगा—"गुण गौरी स्त्रियो के लिए उनका अपना गर्व ही सर्वस्व होता है किन्तु ए सखी, तू ग्वालिन गवारिन है, तू उसका महत्त्व नही जानती। मुझे यहाँ फुसलाकर ले आने के कारण तो मुझे तू मेरे इस सर्वस्व को भी गवा देने वाली दिखलाई देती है।" "सुग्वारि" से "सुखारि" तथा "गवावन" से "गवावत" पाठ-विकृति प्रतिलिपि के समय सामान्य दृष्टि-भ्रम से सम्भव है। उपरोक्त व्याख्या को विचारगत करते हुए, अ० प्रति मे प्राप्त चरण के पाठ को अमान्य तथा "सुखसागर तरग' मे प्राप्त इस चरण के पाठ को स्वीकृत माना गया है।

द्वितीय चरण मे "उतपातन" के स्थान पर अ० प्रति मे "उतपानन" पाठ है। 'उतपानन" पाठ अर्थहीन है तथा "उतपातन" से सामान्य दृष्टि भ्रम से सभव है अत इस पाठ के स्थान पर "सुखसागर तरग" मे उपर्युल्लिखित स्थल से इस छद का "उतपातन" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

६ : ४३ : २

पट पीत उतारि उढाइ दियो पट लाल जरी अपनोपन दै।

अ० प्रति मे "पट पीत" के स्थान पर लेखन-प्रमाद से "पठ पीत" पाठ है। "पीले वस्त्र" के अर्थ मे 'पठ पीत" की अपेक्षा "पट पीत" पाठ सगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है।

यह पाठ "सुखसागर तरग" मे छद सख्या ४६४ पर इस छद के पाठ मे भी प्राप्त होता है।

६ : ४४ तृतीय-चतुर्थ चरण—

"सग ही सग वसौ उनके अग अग वे देव तिहारे लुरीये।
साथ मै राखिये नाथ उन्है हम हाथ मै चाहती चारि चुरीये।।"

अ० प्रति मे तृतीय चरण मे "तिहारे" के स्थान पर "त" मे "न" का भ्रम होने के कारण पाठ है "निहारे"। कृष्ण के सुन्दर अग-प्रत्यगो को "देखकर" कृष्ण के प्रति प्रेम प्रकट करने के अर्थ मे भी "निहारे" पाठ इसलिए अशुद्ध माना गया है क्योकि इस अर्थ मे पाठ का रूप "निहारे" न होकर "निहारि" होना चाहिए था। इसी कारण अ० प्रति मे इस पाठान्तर का कारण प्रतिलिपिकार द्वारा सचेष्ट पाठ-विकृति न मानकर केवल लेखन-प्रमाद माना गया है। ऊपर के प्रसग मे "तिहारे" पाठ ही सगत है अतः यहाँ स्वीकृत हुआ है।

यह पाठ "सुखसागर तरग" मे सख्या ४६७ पर इस छद के पाठ मे भी मिलता है।

६ : ५३

सखी सो मानवती की उक्ति।

"प्रेम पढ़ाइ वढाइ के वंधुनि दीनो वढाइ चढाइ किये कर।
सो अभिलाष्यो न काहू सो भाख्यो इलाज सो लाज सो राख्यो हिये पर।
साँझ सखीन के माँझ हिरान्यो विरानो भयो अव जान्यो मुझे वर।
कीनो परोसु खरो सुनि देख्यो सु देव परो सु परोसिन के घर।।"

पत्नी कदाचित् अपने पति के स्वभाव से पहले से ही भली-भाँति परिचित थी इसलिये उसने देख-सुनकर, अच्छे पडोसवाला घर लिया परन्तु नायक पति अपने व्यवहार से वाज क्यो आने लगा। पडोस के घर की किसी सुन्दरी स्त्री पर मोहित होने पर उसने पहले उस स्त्री के घरवालो से घनिष्ठता वढाई, उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया और इस प्रकार उन्हे अपने वश मे कर लिया।

अ० प्रति मे प्रथम चरण का पाठ है "प्रेम वढाइ वढाइ के वधुनि ··कँपै कर।" यहाँ 'वढाइ वढाइ' की पुनरुक्ति अनावश्यक है—आगे भी देखे "वढाइ चढाइ" है। वास्तव मे उस घर के लोगो से अपनत्व वढाने के दो रूप है—उनसे प्रेम-भाव वढाना तथा इस प्रेम-भाव को उन पर सचेष्ट रूप से प्रकट भी करना। यही सचेष्ट रूप से उन पर प्रेम-भाव प्रकट करने या उसे उन पर आरोपित करने का भाव "प्रेम पढाइ" से प्रकट होता है। अ० प्रति मे "कपै" पाठ मूल मे था, हरताल की सहायता से तथा उसी कलम से 'कपै" से "किये" पाठ बनाया गया है। "कपै" पाठ प्रसग के विचार से निरर्थक तथा "किये" पाठ, कुटुम्बियो को अपने हाथ मे, मुट्ठी मे अथवा वश मे करने के अर्थ मे सर्वथा उचित है। सभव है कि प्रतिलिपिकार ने पहले "ये" मे "पे" का भ्रम होने के कारण "किये" के स्थान पर "कपै" पाठ दिया हो किन्तु वाद मे इस अशुद्धि को हरताल की सहायता से दूर किया हो।

अ० प्रति मे अतिम चरण मे "परोसु" के स्थान पर "खरोसु" पाठ मिलता है। यह पाठ भी असगत है। अच्छे, खरे अथवा परखे हुए के अर्थ मे भी "खरो" शब्द प्रयुक्त नही हुआ है क्योकि आगे इसी अर्थ मे "खरो" शब्द आया है। वास्तव मे "खरोसु" पाठ-विकृति प्रमादवश "परोसु" मे अथवा दूसरे "खरो" के पडोस के कारण हुई है।

इन स्वीकृत पाठो मे "किये कर" पाठ के अतिरिक्त अन्य दोनो पाठ "सुखसागर तरंग" मे ५१८ सख्या पर इस छद के स्वीकृत पाठ मे भी मिलते है। इस ग्रथ मे "किये कर" के स्थान पर "कै मोकर" पाठ है।

७ : ११ : ३ शठ उदाहरण—

"पूरी करी इतहूँ उत प्रीति भले खुलि खेलत बेलत पापर।"

यहाँ "भले खुलि खेलत" तथा "बेलत पापर" दोनो ही का प्रयोग मुहावरो के रूप मे हुआ है। "पापड बेलने" मुहावरे का अर्थ "हिन्दी शब्द-सागर" मे दिया है "(१) कठोर परिश्रम करना। भारी प्रयास करना। कडी मेहनत करना। जैसे, आपसे किसने कहा था कि इस काम मे आप इतने पापड बेले ? (२) कठिनाई या दु ख से दिन काटना।" "पापड बेलने" का अर्थ बोलचाल की भाषा मे कोष्ठ मे दिए अर्थो से भिन्न है। इस मुहावरे का अर्थ है ऐसा कर्म करना जिससे निकट के लोगो को दु ख तथा कष्ट हो। इस छद मे भी "पापड बेलने" से यही भाव प्रकट होता है। अ० प्रति मे "ब" मे "ख" का भ्रम होने से पाठ है "भले खुलि खेलत खेलत पापर।" "खेलत" शब्द की आवृति यहाँ निरर्थक है। "सुखसागर तरग" मे सख्या ८१८ पर इस छद के पाठ मे भी "खुलि खेलत बेलत पापर" पाठ मिलता है।

विशेष पाठ-संशोधन

१ : १७ दर्शन उदाहरण—

"को हौ कहाँ को कहा कहिये री भली भई हौ हूँ गहे नहि ओट सी।"

अ० प्रति मे पाठ है **"के हौ** कहाँ को· ·" पर प्रश्नकर्ता के "तुम कौन हो ?" प्रश्न का ब्रजभाषा मे शुद्ध रूप होगा "को हौ " कदाचित् अ० प्रति मे मात्रा की खडी रेखा प्रमादवश छूट गई है अत यहाँ "के हौ" के स्थान पर "को हौ" पाठ-सशोधन विशेष रूप से किया गया है।

१ : २२

"सात्विक भाव सु अग के सचारी चित माहि।
कहौ **आठ तैंतीस** अरु रसहि झलकि झलकाहि॥"

स्वेद स्तभादि सात्विक अनुभावो की सख्या आठ तथा निर्वेदादि सचारियो की सख्या तैंतीस प्रसिद्ध है। किन्तु "कहौ आठ तैंतीस" के स्थान पर अ० प्रति मे 'त' मे 'व' का भ्रम होने के कारण पाठ है "कहौ **आठवें तीस** अरु ··" सात्विक अनुभावो तथा सचारियो की सख्या क्रमश आठ तथा तैंतीस होने के कारण सपादक ने "आठ तैंतीस" पाठ-सशोधन अपनी ओर से किया है।

१ : २५

"लाज चपलता हर्ष वेग जडता अभिमानो ।
दुख उत्कठा नीद भूल सुप पुनि परिमानो ।"

सचारी नामो के प्रसग मे भा० प्रति का "भूख सुखु" पाठ निरर्थक है। कवि ने अपने अन्य लक्षण-ग्रथो मे जिन सचारियो का नामोल्लेख किया है उनमे से केवल अपस्मृति तथा सुपुप्ति ऐसे है जो उपरोक्त छप्पय मे नही आये है। यहाँ अपस्मृति से कवि का आशय अन्य पूर्ववर्ती-परवर्ती कवियो द्वारा मान्य अपस्मार नामक सचारी भाव से है अथवा उसने विस्मृति के अर्थ मे अपस्मृति का उल्लेख किया है, यह कहना कठिन है। देव की निम्नलिखित रचनाओ मे ये दोनो ही सचारी नाम मिलते है। "विस्मृति सुमृति नीद उन्माद सुपुप्ति सुबोध···"

"भवानी विलास" १ ३५, "विपाद उत्कठा उपसुमृति सुमृति है"—"कुशल विलास··" १ ४४, "अरु नीद अपस्मृति सुपन अवबोध क्रोध ··" "प्रेमतरग" १ ६ ।

इन सकेतो के आधार पर भा० प्रति के "भूख" पाठ की सहायता से इसके स्थान पर अपस्मृति के पर्याय-रूप मे "भूल" तथा "सुख" के स्थान पर सुपुप्ति के अर्थ मे "सुप" पाठ सपादक ने विशेप रूप से सशोधित किया है।

२ : ६ द्वितीय-तृतीय चरण—

"झारति चीर अबीर भरे गहि राखे उसारि सखीन के कोछै ।
ऊँची उनासनि ऐचि हियो उचि औचक ही उचके कुच ओछै ॥"

अ० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ है "··उचके कुच कोछै।" कुचो के लिए "कोछै" शब्द यहाँ निरर्थक प्रतीत होता है। उन्नत-उरोजो के लिए इस शब्द की अपेक्षा "ओछै" शब्द अधिक सगत है। द्वितीय चरण का तुकान्त भी "सखीन के कोछै" से होने के कारण तृतीय चरण के अन्त मे इसी शब्द का प्रयुक्त होना असगत है। सभवत द्वितीय चरण के अन्त मे विद्यमान "कोछै" शब्द भ्रमवश तृतीय चरण के अत मे भी प्रतिलिपि होते समय आ गया है अथवा "कुच" के अनुप्रास पर सचेष्ट या निश्चेष्ट रूप से "कोछै" पाठ हुआ है। प्रसग पर विचार करते हुए "कुच कोछै" के स्थान पर "कुच ओछै" पाठ-सशोधन विशेप रूप से किया गया है।

३ : २४ मध्या उदाहरण। प्रथम-द्वितीय चरण—

"वैरिनि या अनवैरु करे रहौ पीठि दिये रहौ डीठि अमैठी।
आठहू जामे जिठानी भई रहौ आठहू अंग अठा हठि ऐठी ॥"

अ० प्रति मे द्वितीय चरण का पाठ है "···जिठानी भई रहै।" प्रथम तथा द्वितीय चरण मे "रहौ" प्रेरणार्थक रूप मे मिलते है अत इस स्थल पर भी "रहौ" पाठ-सशोधन विशेप रूप से किया गया है।

५ · ५

"प्रिय आगम बीतत सभौ उत्कठित चित चीत।
खडित वार सु खडिता प्रातहि आवै मीत ॥"

"पति के शरीर पर अन्य स्त्री द्वारा किये हुए सभोग-चिह्नो को देखकर जो ईर्ष्या से जल उठे उस नायिका को खडिता कहते है।" यद्यपि दोहे मे वर्णित खडिता नायिका का लक्षण

पर्याप्त रूप से स्पष्ट नही है, फिर भी दोहे के दूसरे चरण का अर्थ इस प्रकार करना उचित होगा "जिसका प्रियतम अन्य स्त्री द्वारा खडित होकर अर्थात् उसके सभोग-चिह्नो सहित प्रात काल घर वापस आए वह नायिका खडिता कहलाती है।" अ० प्रति मे "खडित वार" के स्थान पर पाठ है "खंडिस वार"। यह पाठ अर्थ की दृष्टि से सर्वथा असगत है। "सवार" शब्द को प्रात.काल के अर्थ मे व्यवहृत मानना भी आगे समानार्थी शब्द "प्रातहि" होने के कारण संभव नही है। इस दृष्टि से अ० प्रति मे प्राप्त "खडिस वार" के स्थान पर "खडित वार" पाठ-सशोधन विशेष रूप से किया गया है।

५ : २४

"आवन की भनक अचानक ही कान परी आए सुनि देव सवही के सुख साज सो।
औधि गुन बाँधी देह अचल सनेह नाधी आनद की आधी मन गयो उडि वाज सो।।
पौरि ही ते "दौरि दुहूँ भुजन" मैं अंक भरि भेटतो जो प्यारो जो समेटतो समाज सो।
वारिधि विरह वडवागिनि की लपट वरि जाती अवलाजु अव लाज के जहाज सो।"

अ० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ है "दौरि कै दुहूँ भुजन अंक भरि···" इस पाठ की गति अशुद्ध होने के कारण सामान्य पाठ-परिवर्तन से इसे इस प्रकार शुद्ध किया गया है "···दौरि दुहूँ भुजन मै अक भरि"

६ : १० मान भेद दोहा।

"पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुरु मान।
मध्यम ता मुख नाम सुनि दरसन ता लघु जानि।।"

गुरु, मध्यम तथा लघु, मान के इन तीनो भेदो मे अतिम लघु मान केवल पर-स्त्री देखने मात्र के कारण होता है। अ० प्रति मे "दरसन ता लघु जानि" के स्थान पर पाठ है "दरसन लछिम सुजानि।" कहना न होगा कि अ० प्रति का पाठ निरर्थक है अत उपरोक्त स्थल पर "लछिम" के स्थान पर "ता लघु" पाठ-निर्माण सपादक की ओर से हुआ है।

६ : ३८ : ४

"कौने विधि कुबिजा पै पौडिवे को वन आवै खाट काटि देत है कि खाडो खोदि लेत है।"

गोपियाँ कृष्ण के अतरग सखा उद्धव से प्रश्न कर रही है कि कुब्जा की पीठ मे तो कूवड है, फिर उसके साथ कृष्ण का समागम किस प्रकार होता होगा? क्या कृष्ण कुब्जा के कूवड के लिए अपनी शैया के बीच का भाग काट देते है अथवा फिर भूमि पर रति करते समय धरती मे गढा खोद लेते है? यहाँ "गढे" के अर्थ मे ही "खाडो" शब्द प्रयुक्त हुआ है।

अ० प्रति मे इस चरण का पाठ है "खाट काढि देत है खाडो खोदि लेत है"। खाट काढ देने अर्थात् फेक देने से कुवडी कुब्जा के साथ कृष्ण का समागम सभव नही हो सकता है। प्रसग के अनुसार, वीच मे खाट काट देना ही, जिसमे कुब्जा का कूवड समा सके, सगत है। "काढि" पाठ-विकृति "काट" से लेखन-प्रमाद द्वारा भी सभव है अत अ० प्रति मे प्राप्त "काढि" पाठ के स्थान पर "काटि" पाठ-सशोधन विशेष रूप से किया गया है।

आलोच्य पाठ-विकृतियो की सूची

ऐसे पाठ-सशोधन जो देवकृत अन्य ग्रथो मे प्राप्त उसी छद के पाठ द्वारा पुष्ट है—

स्थल सकेत	सशोधित पाठ	प्रति का पाठ	विकृति का कारण-भूत प्रमाद	प्रति का पाठ अस्वीकृत करने का कारण
१ ४	अरु उछाह	उतसव	प्रक्षेप	प्रसग असगत
१ ७	धर्म	दया	प्रक्षेप	प्रसग असगत
१ १३	है	दस	प्रक्षेप	प्रसग असगत
१ २४	मुख	सुख	म स	अर्थ असगत
१ २५	दैन्य, त्रास	द्रोह, ग्रास	प्रमाद	अर्थ असगत
१ २६	सरु कै, थरु कै	सह कै, घरु कै	रु ह तथा थ ध	अर्थ असगत
२ ५	ससोग	सजोग	दृष्टि-भ्रम	प्रसग असंगत
२ १६	सिखावत	खिखावत	लेखन-प्रमाद	निरर्थक
२ २६	धीर उपाइन पाइ धरै, निरात	दौरि उपाइ भपाइ धरै, निराति	प्रक्षेप	प्रसग असगत तथा निरर्थक
३ ४	भापा	भूषा		अर्थ असगत
३ ६	नचै से लचै, वेली ज्यो	नचै सि लचै, वैरि ज्यो	लेखन-प्रमाद	अर्थ असगत
३ ११	पार परै पिय प्रेम	पर पाँयरेई तरग	प्रक्षेप	अर्थ असगत
३ १३	हौ जीके जु	जो जाके जू	लेखन-प्रमाद	प्रसंग असगत
३ २७	मढ्यो न परै घूँघट, सदेह	प्रेम पैठ्यो नववधू घूंट, सदेस	प्रक्षेप	प्रसग असगत
३ ३०	भ्रूकति, मोरति	रुकति, मोरन	भ्र र, ति न	प्रसग असगत
३ ३२	घाइल करत, कर, भनक	पाइल करत, वर, कनक	घ प, क व, भ्र क	प्रसग असगत
४ १४ १	पूरति	मूरति	प म	प्रसग असगत
४·३० १	ह्वै अभिलाप	द्वै अभिलाप	ह्व द्व	अर्थ असगत
५ १२	सकलप विकलप, न कल	सक कलप विकल, तकल	न त	प्रसग असगत
५ १६	सु सर्वसु ग्वारि गवावन हारि, उतपातन	सु सर्व सु खारि गवावत हारि, उतपानन	लिपि-भ्रम	अर्थ असगत

६	४४	तिहारे	निहारे	त न	प्रसंग असगत
६	५३	पढाइ, किये, परोमु	बढाइ, कँपै, खरोसु	लिपिभ्रम	प्रसग असगत
७	११.३	वेलत पापर	खेलत पापर	व ख	अर्थ असगत

विशेष पाठ-संशोधन

१	१७	को हौ	के हौ	लेखन-प्रमाद	अशुद्ध रूप
१	२२	आठ तैतीस	आठवे तीस	त व	प्रसग असगत
१	२५	भूल सुप	भूख सुखु	लिपिभ्रम	प्रसग असगत
२	६	उचके कुच ओछैं	उचके कुच कोछैं	लेखन-प्रमाद	प्रसग असगत
३	.२४	रहौ	रहै	लेखन-प्रमाद	अशुद्ध रूप
५	५	खडित वार	खडिस वार	प्रक्षेप	अर्थ असगत
५	२४	दौरि दुहूँ भुजन	दौरि कै दुहूँ भुजन	प्रक्षेप	पाठ-वृद्धि
६	१०	ता लघु जानि	लछिम सुजानि		निरर्थक
६	३८.४	काटि	काढि	ट ढ	प्रसग असगत

सुमिल विनोद

साहिव सुमिल विनोद हित कीनो सुमिल विनोद।
लहि सुमति सुख पाइ जेहि जस रस को आमोद ॥१॥
पहिले सुमिल विनोद मै बरन्यो रस सुख सार।
सव सुखदाइक नाइका नाइक रस सिगार॥२॥

नवरस नाम।

सिगार हास्य अरु करुन रस रौद्र वीर भयमान।
वीभत्साद्भुत शात ये नवरस काव्य प्रमान॥३॥

स्थायी भाव।

रति हाँसी अरु सोक रिस अरु उछाह[1] छिन मानि।
आहचरज वैराग्य ये नवरस थाई जानि॥४॥

[1] उतसव—अ०।

भाव सहित सिगार मै नवरस झलक अयत्न।
ज्यो ककन मनि कनक को वाही मै नवरत्न॥५॥
निर्मल स्याम सिगार हरि देव अकास अनन्त।
उडि-उडि खग ज्यो और रस विवस न पावत अत॥६॥
अर्थ धर्म[1] ते होत अरु होत अर्थ ते काम।
ताते सुख सुख को सदा रस सिगार सुखधाम॥७॥

[1] दया—अ०।

नोट 'भाव विलास' मे इस दोहे का पाठ इस प्रकार है—

"अरथ धर्म ते होइ अरु काम अरथ ते जानु।
ताते सुख सुख को सदा रस श्रृगार निदानु॥" १ २

ताही रस सिगार को अकुर प्रेम अनूप।
भुक्ति मुक्ति को द्वार है प्रेमानद स्वरूप॥८॥
काँच्यो जग राँच्यो विषै साँच्यो माच्यो रूप।
पाँच्यो वस आँच्यो सह्यो नाच्यो प्रेम अनूप॥९॥
प्रेम सार सिंगार रस ताको सुखद विचार।
सुख सपति जग-जगमगै दपति रूप अपार॥१०॥

देव सबै सुखदायक लायक सपति सर्वं सु दपति जोरी।
दपति दीपति प्रेम प्रतीति प्रतीति की रीति सनेह निचोरी।
प्रीति जहाँ रस रीति विचार विचार की वानी सुधारस वोरी।
वानी को सार बखान्यो सिंगार सिगार को सार किसोर किसोरी॥११॥

श्रृंगार रस लक्षण।

दपति प्रेमाकुर प्रथम सो रति रस थिति भाव।
ताहि विभाव वढावही प्रगट करै अनुभाव॥१२॥
रति पूरन सिगार सो मिलि विभाव अनुभाव।
सात्विक सचारिन झलकि झलकावति है[1] हाव॥१३॥

[1] दस—अ०।

रस भाव लक्षण।

मन वच कर्म विलास मै उपजत प्रेम सुभाव।
रस अकुर आवत उलहि सो कहिये रस भाव॥१४॥

श्रृंगार स्थायी भाव रति लक्षण।

प्रीतम जन को देखि सुनि आन भाति चित होइ।
थाई भाव सिगार को सुकवि कहत रति सोइ॥१५॥

श्रवण उदाहरण।

सुनि देव अनूप कला वजभूप की रूपकन्ना अकुलान लगी।
पहिचानन प्रीति अचान लगी कछु देखिवे को ललचान लगी।
भरि भाइक भौह कमान चढाइ कै तानन लोचन बान लगी।
कहुँ कान्ह कहानी सी कान परी तव ते तन प्रान बिकान लगी॥१६॥

दर्शन उदाहरण।

को हौ[1] कहाँ को कहा कहिये री भली भई हौहूँ गहे नहि ओट सी।
देव अचान सचान लौ आयो चलाइ गयो दृग खजन जोट सी।

लगर की इक वार छुटी जु छुटी छवि रूपछटानि की पोट सी।
तीखी चितौनि छुरी सी चलाइ छरी चरु चोटै करी चप चोट सी ॥१७॥

[1] के हौ—अ०।

शृंगार विभाव लक्षण।

आलम्बन अवलम्बि कै रति बढि होत सिगार।
उद्दीपन दीपति करै ससि सुगन्ध सुरसार ॥१८॥

आलम्बन उदाहरण।

बैरी वह वा दिन अचानक पर्यो री चित वनवारी बानक बन्यो ह्वै जात बन को।
कहत न आवत कहै बिनु बनै न सो तू जानै सब जी की पहिचानै प्रेमपन को।
भूलत न वाकी वहै बोलनि बिलोकनि हँसनि चारु चलनि चलाए लेत तन को।
कैसी करौ देव बुद्धि गाँठिहू की छोरे लेत चोरे लेत चपनि मरोरे लेत मन को ॥१९॥

उद्दीपन उदाहरण।

चदन हूँ चद हूँ सो चदन सी चाँदनी सो चाँदी से चदोवा हूँ सो धीर धरकत री।
फूली मलै मल्लिन हूँ मालती की बल्लिन इलायची लवग अग अग फरकत री।
बीना वर बानी सुनि प्रेम की कहानी कौन दसा हौ न जानी स्वाँस पौन सरकत री।
वडी अँखियानि सखियानि तै दिखायो देव सोई अब मेरी अँखियानि खरकत री ॥२०॥
सुनि कै धुनि चातक मोरन की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सो।
कवि देव नई उनई जु घटा बन भूमि भई दल दूकनि सो।
रगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर की झूकनि सो।
अनुराग भरे हरि बागनि मै सखि रागत राग अचूकनि सो ॥२१॥

शृंगार सात्विक संचारी।

सात्विक भाव सु अग के सचारी चित माहि।
कहौ आठ तैंतीस[1] अरु रसहि झलकि झलकाहि ॥२२॥

[1] आठवे तीस—अ०।

सात्विकादि अष्टनाम।

स्तभ स्वेद रोमाच अरु अग कप सुर भग।
विवरन आँसू मूरछा ये सात्विक रस अग ॥२३॥

उदाहरण।

छीजत रग पसीजत अग तरगित रोम हियो अभिलाषै।
मोह मढै मग मै न कढै पग बोल बढै न पढै मुख[1] भाखै।
रूप की सपति कपति छाती सु दपति ओट रहै नहि राखै।
ऊँची उसासै इतै उमडी सी मडी अँसुवानि वडी वडी आँखै ॥२४॥

[1] सुख—अ०।

सचारी भाव।

है निर्वेद गिलानी सक असुया मद श्रम कहु।
आरस चिता दैन्य[1] मोह सुमिरन धीरज रहु।

लाज चपलता हर्ष वेग जड़ता अभिमानो।
दुख उत्कंठा नींद भूल सुप[2] पुनि परिमानो।
अवबोध क्रोध अवहित्थ मति त्रास[3] व्याधि उन्माद मृति।
चौविधि वितर्क उग्रता तैंतीसो मानस प्रकृति ॥२५॥

[1] द्रोह—अ०। [2] भूख सुखु—अ०। [3] ग्रास—अ०।

उदाहरण।

दीन दुखी मद आरस नींद जो सुपनेऊ सुबुद्धि वकी सी।
ईर्षा रोष सहर्ष सचिंत चली चल चाह सगर्ब थकी सी।
धीरज ध्यान विराग सम्हारन लाजुन्माद सुबोध छकी सी।
मोह मलिन बिथा डरु मीच को कर्कस त्रास वितर्क जकी सी ॥२६॥
बढ़ि विभाव अनुभाव कढ़ि सात्विक सचारीन।
फलकि[1] होत रतिभाव ते पूरन रस परवीन ॥२७॥

[1] कलकि—अ०।

तोर्‌यो कुलनेम गुन जोर्‌यो पिय प्रेमगुन हेमगुन रूप हेरि गोहन गिरत है।
लाज को अमोल इन हिये हरि लियो देव साझ भए हसत रिसाहु तो भिरत है।
लो इन तिहारे अब लोइन निहारे नाहि चोरी करि घूँघट के घर मै घिरत है।
अलिन निगूढ़ गूढ़[1] गलिन मै ढूँढ़ि मुख चद के उज्यारे प्यारे ढूँढ़त फिरत है ॥२८॥

[1] गुरू गलिन—अ०।

बोली न आँखिन तानि कहूँ पट ओट तिरीछे कटाछनि कै रही।
डोली न आँखिन आँखि लगाइ अचानक आँखिन को सरु[1] कै रही।
ऐहो बडी बडी आँखिनवारी निहारि की आँखिन मै थरु कै[2] रही।
ना खिन आँखिन ते निकर्‌यो अब प्यारे की आँखिन मै घरु कै रही ॥२९॥

[1] सह—अ०। [2] घरु कै—अ०।

नीठि कहूँ मिलि ईठ करी ठिक दर्पन देखत वैठी सयानी।
ढाढस ढीठ वसीठ भए उठि कै उनकी चितकी पहिचानी।
पीठ की ओर मरोरि करी ठग डीठि सो डीठि लगाइ लजानी।
देव सखी ढिग ते दुरि कै दृग ही दुरि कै मुरि कै मुसक्यानी ॥३०॥
एहि विधि रति थिति भाव बढ़ि पूरन होत सिगार।
मिलि विभाव अनुभाव हूँ सात्विक होत सचार ॥३१॥

इति श्री परम सुजान श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे देवदत्त कवि-विरचिते सुमिल विनोदे सिंगार रस स्वरूप वर्णन नाम प्रथम विनोदः ॥

भाव सहित सिंगार को जो कहियत आधार।
सो है नाइक नाइका ताको करत विचार ॥१॥
रस सिंगार के भेद द्वै है वियोग सयोग।
सो प्रच्छन्न प्रकास ह्वै द्वै द्वै दुहूँ प्रयोग ॥२॥

शृंगार भेद।

सो पूरब अनुराग अरु मान प्रवास वियोग।
वियोग[1] चौविधि जानिये आनद एक सयोग॥३॥

[1] योग-सु—अ०।

प्रथम होत दपतीन के पूर्वनुराग वियोग।
जहाँ विरह की दस दसा ता पीछे सयोग॥४॥
होत वियोग सयोग ते मान प्रवास स सोग[1]।
एहि विधि मध्य वियोग के होत सिगार सयोग॥५॥

[1] सजोग—अ०।

प्रच्छन्न वियोग उदाहरण।

होरी को हेरि किसोरी रही दुरि देव सु रगित अग अगोछै।
झारति चीर अवीर भरे गहि राखे उसारि सखीन के कोछै।
ऊँची उसासनि ऐचि हियो उचि औचक ही उचके कुच ओछै[1]।
चचल नैनी दृगचल मोरि कै अचल सो अँसुवा गहि पोछै॥६॥

[1] कुच कोछै—अ०।

प्रकाश वियोग उदाहरण।

देव वियोगिनि के वध के हित देखत ही मधु के दिन दोखि न।
सूखि गई सुमुखी इप ईप विना उतपात विजात सु को खिन।
प्रानपती विनु प्रान उदास सु राखति भाखि सखी सुख योखिन।
हाँकत ही कलकठ चितौत सु झाकति ही दिन जात झरोखिन॥७॥

प्रच्छन्न संयोग उदाहरण।

जानै न कोई जनायो न कान्ह सो जानि गए जिय मै जन ही जन।
मोरती नाक मरोरती भौह हिलोरती तोरती हौ तन ही तन।
आनद लूटि कै ओट दै वैठी हौ देव सखी बिछुरी वन ही वन।
भोर ते भौन के कोन गहे मुस्क्याती हौ मौन गहे मन ही मन॥८॥

प्रकाश संयोग उदाहरण।

प्रीतम मीत को पीत पटा पहिरे गहिरे रग ओप उज्यासी।
देव जू नैननि वैननि मै तन मै मन मै तुमही त्रित न्यासी।
दैहौ महा दुख कैहौ कहा न जु पैहौ सिखावन हारि न यासी।
खेलती हौ मिलि कै तिन सो तिन सौतिन के अँसुवानि की प्यासी॥९॥

पातर सुद्ध सिगार को सुद्ध स्वकीया नारि।
प्रथम प्रेम बस सग के वरे परे दिन चारि॥१०॥

स्वकीयादि नायिका भेद।

अपनी सुकिया जानिये परनारी परकीय।
सामान्या सोइ मानिये धन दै आवत तीय॥११॥

ब्याही कुल आचार सो सुद्ध सुकीया वाम।
सुख सेवा सतान हित जस रस निर्मल नाम ॥१२॥

स्वकीया के मुख्य गौण भेद।

भोग भामिनी दूसरी स्वकिया भूपति भौन।
अरु सनेहनिधि तीसरी सुकिया सुभग सलोन ॥१३॥
पतिव्रता पहिली तहाँ पति अनुकूल सो ईठ।
भोग स्वकीया दच्छपति तीजी पति सठ ढीठ ॥१४॥
यह विचार राजान को त्रिविधि स्वकीया नारि।
कुल प्रभुता प्रभु मित्रता पातर नेह निहारि ॥१५॥

शुद्ध स्वकीया उदाहरण।

देवी दिव्य दीपति दिपति दिन राति देव सपति सुहगति जोति जगरमगर की।
पुन्यपन पीन परवीन पतिव्रत खीन जानत गली न द्वार दूसरी वगर की।
नागरी अनूप रूप जोवन उजागरी सकल गुन आगरी वसाई हे अगर की।
गृह की गुसाइनि सुभाइनि सुसील सुखदाइनि लला की ठकुराइनि नगर की ॥१६॥

द्वितीय राजपत्नी उदाहरण।

पॉड धरै कर दावि हियो रहै देवर के डर नेवर दावै।
देखि रहै ननदै मन दै सुनि सासुनि वैन उसास न आवै।
प्रान बसे पति प्रान के प्रान मैं भूपन भोजन पान न भावै।
आयु के अर्पन दर्पन से हिय प्रीतम को प्रतिविम्व दिखावै ॥१७॥

तीसरी राजपत्नी उदाहरण।

सो तिनहूँ सामने सुहाति अति सौतिन हूँ जो तिन निहारे रूप जोतिन जकत हे।
सिगरो महल जाकी प्रीति की टहल करै प्रीति की प्रतीति ही सो प्रीतम तकत है।
काहू सो ईरपा न हरत विरोध क्रोध रोध पथगामीन मनोरथ थकत है।
खजन नयन कज मुख मजु भापिन को आँखिन की ओट कोऊ राखि न सकत हे ॥१८॥

अथ तिहूँ मध्य पति अनुकूल दच्छ सठ भावते सखी वाक्य।

देखे अनुकूल कहुँ दूलह हिये की फूल उलही अनूप रूप लही दुलही ठई।
दच्छिन ह्वै आवत ततच्छन सुहात तहाँ सुख दे सिखावत[1] दिखावत है ईठई।
ऐसी गति जहाँ तहाँ को हम कहा किये खुलावत की वार द्वार वारन वसीठई।
देव कहुँ साधु कहुँ अगम अगाध सठ डीठई सुभावन सो राखत है ईठई ॥१९॥

[1] देखि आवत—अ०।

तैसिये मालती मल्लि मलैजनि त्यो सुर वल्लिन होत विसेख्यो।
केतकी हेत न नूत सो नेह कदव न कुद न लौग सो लेख्यो।
मौरसिरी हूँ रच्यो कचनार न वैर कनेरन हूँ सो न देख्यो।
भौर को और सुभाव न देव क्यो मानति रैनि पुरैनि परेख्यो ॥२०॥

एहि विधि स्वकिया तीन विधि राजरसिक पति भौन।
जहाँ होय अविवेकि तिय तहाँ रसिकता कौन ॥२१॥
परकीया सो हित करै तो पति उपपति होइ।
पतिव्रता अनुकूल पति रति सपति को जोइ ॥२२॥
सुद्ध साधुता और है सुद्ध रसिकता और।
पहिचानत चित प्रेम गति सुद्ध रसिक सिरमौर ॥२३॥

परकीया लक्षण।

गुपित प्रीति विपरीत गति परकीया परवीन।
गृहपति सेवति विपति सहि उपपति प्रेम अधीन ॥२४॥

परकीया भेद।

तासो परऊढा कहत और अनूढा नारि।
मात पिता आधीन जो तरुनि सु काम कुमारि ॥२५॥

ऊढ़ा उदाहरण।

दीरघ वस लिये कर मै डरमै न कहूँ भरमै भटकी सी।
धीर उपाइन पाइँ[1] धरै बरतै न परै लटकै लटकी सी।
साधति देह सनेह निराट[2] कहे मति कोउ कहूँ अटकी सी।
ऊँचे अकास चढे उतरे सु करे दिन राति कला नट की सी ॥२६॥

[1] दौरि उपाइ झपाइ—अ०। [2] निराति—अ०।

प्रेम चरचा है कुल नेम अरचा है चित और अर चाहै नैन चाहै चितचारी को।
छाड्यो परलोक नरलोक वरलोक कहा हरष न शोक न अलोक नर नारी को।
घाम तप मेह न निहारे दुख देह हू को प्रीतम सनेह डर वन न अध्यारी को।
भूलेहू न भोग वडी विपत्ति वियोग विथा जोगहूँ ते कठिन सजोग परनारी को ॥२७॥

ऊढ़ा को पछितायबो।

वीसो विसे रस लालची लोचन सोचन ही इनके सरि जैवी।
हेरि मिल्यो मन बैरी इन्है तजि लाजनिहूँ विन काज विकैवी।
देव जू वानि परी मुस्क्यानि गए कुलकानि कहा फिरि पैवी।
गारी चढे कुलनारिन मै वहुर्‌यो कवहूँ की वहू कहिवैवी ॥२८॥

ऊढ़ा को संदेश।

साकरी खोरि बखोरि हमै किनि खोरि लगाइ खिसैवो करो कोइ।
... . ॥२९॥

कन्यका परकीया को उदाहरण।

झाकति झरोखा सुकुमारि झलकति चद तारिकानि करतार रूप रतनाई सी।
सरद के वादर मै दामिनि सलाका-सी सराका रजनीस जोति जागति जुन्हाई सी।
हीरा लाल जटित जरी पट लपेटी छरी हाटक की छोर छवि-पुज छहराई सी।
देव दुति सदन विराजत वदन सोभा रूप की हदन फिर मदन दुहाई सी ॥३०॥

परकीया को विरह-निवेदन।

वेई वन कुजनि मै गुजत भवर पुज काननि रही है कोकिला की धुनि लाग सी।
गोकुल गुसैयाँ जे चराई ही कन्हैया वेई गोपी गैया ते विलोपी दु ख दाग सी।
वेई जमुना तट निकट वेई वसी वट रही है पुलिन भूमि धूमि अनुराग सी।
कालीदह कूलनि पलास लाली फूलनि की आली वनमाली विन लागी वन आग सी ।।३१।।
नोट द्वितीय चरण मे दो वर्ण न्यून है।

× × ×

इति द्वितीय विनोद

जाति कर्म वय अवस्था अरु स्वभाव तिय भेद।
कहत अनेक प्रकार कवि पार न पावत वेद ।।१।।
पद्मिनि आदि सुजाति अरु कर्म भेद सुकियादि।
मुग्धादिक वय अवस्था भेद सु स्वाधीनादि ।।२।।
सत्व प्रकृति गुन भेद हू प्रेम भेद वहु पन्थ।
सव स्वभाव जानत रसिक वरनत वाढत ग्रन्थ ।।३।।

पद्मिनि लक्षण।

हस भेप भापा[1] गमन लघु भोजन मृदु हास।
सती सत्यरुचि सील सुचि पद्मिनि पद्म सुवास ।।४।।

[1] भूपा—अ०।

उदाहरण।

मौन गह्यो कल कठ कपोतनि सारस हस सु चालहि हेरे।
सार्‌यो सुवानि सु वानि परी जु सुवानि मुने नित साझ सवेरे।
चौकत से चकई चकवा कहि देव उदै मुख चन्द उजेरे।
भारिये भीर करे रहै भौर सु मोर चकोर रहै घर घेरे ।।५।।

चित्रिणी लक्षण।

मोर भेप भूपन वचन गजगति अति सुकुमारि।
चचल नैनी चित हरनि चतुर चित्रिनी नारि ।।६।।

उदाहरण।

ह्वै रहै कमल कमलाकर कमलमुखी फूलनि मै फूलि कै खरीये खिलि जाति है।
चित्रनि मैं चित्र तै विचित्र होत चित्रिनि अनूप चित्रसारी के सरूप हिलि जाति है।
दीपनि समीप दीपसिखा ह्वै न पैये देव चदमुखी चादनी महल मिलि जाति है।
द्‌योसहू न दीसे सीसमन्दिर मै सुन्दरि प्रकासि प्रतिमानि की प्रभानि पिलि जाति है ।।७।।

शंखिनि लक्षण।

दीरघ सिर कर चरन कटि लघु नितम्व कुच नैन।
सुलप छिमा सतोप मृदु सखिनि तीछन वैन ।।८।।

उदाहरण ।

पातरे लक नचै से लचै[1] कर पल्लव बेली ज्यो[2] बाल बनीये ।
कोकिल कूकनि पौन की भूकनि भूमति सी गति घूम घनीये ।
न्यारो न होत भर्‌यो रस भौर ज्यो भामरि सी भरे प्यारो घनीये ।
काननि लौ दृग वानन ताने रहै जिहि भौह कमान तनीये ।।६।।

[1] नचै सि लचै—अ० । [2] बैरि ज्यो—अ० ।

हस्थिनि लक्षण ।

थूल चरन कर अधर कटि भारी कुच भुज जानु ।
ठिगनी वहु भोजन गमन हस्थिनि त्रिय पहिचानु ।।१०।।

उदाहरण ।

सचि सरूप विरचि सुनार ज्यो साचे मै दै भरि काढि है कोऊ ।
देव उबीठै न ओठ सुधा भरे आठहु जाम मिठाई समोऊ ।
दै छतिया पर पार परै पिय प्रेम[1] अपार समुद्र मै सोऊ ।
काम की सागरि नागरि के उर गागरि से उचके कुच दोऊ ।।११।।

[1] पर पायरेई तरग—अ० ।

कर्म भेद स्वकियादि के ।

मन वच कर्मनि पतिहिरत सुकिया अरु परकीय ।
वचन कर्म पति मन अनत वेश्या धनपति तीय ।।१२।।

वयक्रम भेद ।

मुग्ध मध्य प्रौढा स्वकिय पाच चारि क्रम चारि ।
तेरह विधि अरु परकिया द्विविध एक पुरनारि ।।१३।।
सोरह ए दस अवस्था गनै एक सौ साठि ।
सात्विक प्रकृति गुन भेद हूँ वहु विधि तिय रस गाठि ।।१४।।

मुग्धा-भेद स्वकीया को ।

नवमुग्धा अज्ञात वय ज्ञात नवेली बाम ।
वयससधि नवयौवना है नवोढ नव नाम ।।१५।।
है विश्रब्ध सलज्जरति मुग्धा पाचौ भाति ।
नव मत अरु प्राचीन मत नाम दोइ इक काति ।।१६।।

नवमुग्धा लक्षण ।

उर अकुर मुख भलक सी लाज ललक सी जासु ।
नवमुग्धा चितवति सकुचि खेलति सभय उदास ।।१७।।

उदाहरण।

जोवन की झाई लरिकाई मैं दिखाई अग सुवरन रूप रग ओपनि चढाये तें।
दून्यो दिन दीपति नदीपति ज्यों पून्यो देह सरद के मेह दुति नेह उवटाये तें।
देव गुन गाइये नगर मैं वगर वैठे अगर कपूर वास वाढे ज्यो वढाये तें।
इदु ज्यो मुखारविंदु विदु विदु वाढत त्यो घटत है लक विंदु विंदुहि घटाये ते ॥१८॥

नववधू लक्षण।

तज्यो खेल गुडियान को चितवनि चित गडि जाति।
नवल वधू नव देह की वातनि मैं मडि जाति ॥१९॥

उदाहरण।

दूलहै निहारि फूलो फूलहै हिये मैं हिय भूलहै अन्तक वक रचना विरच की।
लोइन चपल कुल लोइन चँपत चोप कोइन चढावै ओप को इन मुरचु की।
देव दुलखी न सुलखी न रुचि खेलहि सो खीन होति सीख लै सवीन परपचु की।
कचन कली से[1] कुच रचक उचोहै चित सोचि रहे सकुचि सकोचि रही कचुकी ॥२०॥

[1] सी—अ०।

नवल अनंगा उदाहरण।

भाल पर भागु लाल वेंदी मैं सुहाग देव भृकुटी अराग अनुराग हुलस्यो परै।
सखिन कै सग मैं सुहाग राग रग रुचि रग भरे अंगनि अनग उघस्यो परै।
तन मैं सुभाउ दोउ तुलि के रहे हैं पग डुलि के परै न पैन खुलि के हस्यो परै।
आनन्द सुगध ते सुगध जैसे फूलनि ते फूल से दुकूलनि तें रूप निकस्यो परै ॥२१॥

प्रथम प्रसंग।

आमोद विनोद इदु वदनी गुविंद गोद उदित उदार मोद आनी आदरीक लौं।
पी की सुख सेज स्वाइ सखी सुख पाइ ओट गई सुख औसर ते सरक सरीक लौं।
अचर उचकि कर कोरे कुच कोर लागि औचक उचकि परी छवि की छरीक लौं।
देव देखी वावरी सुहाग की विभावरी मैं डावरी डरनि भई घावरी घरीक लौं ॥१२॥

सुरतांत।

हिरदै कठोर ऐसे निरदै निठुर तेरे सिर दै गई ये फासि फासी की फसनि यह।
सोच न सकोच तुम्है लोचन न सोहै होत कैसी उकसाइ डारी केस की कसनि यह।
गाहक हौ जीके[1] जु कहा कहौ नीके नाह नाहक गमाइ आई लाज की लसनि यह।
अवहूँ उपाधि तजौ आधिक जियत पर वाधिक वधिक तेरी हा धिक हँसनि यह ॥२३॥

[1] गाहक जो जाके जू—अ०।

मध्या उदाहरण।

वैरिनि या अनघेरू करे रहौ पीठि दिये रहौ डीटि अमैठी।
आठहू जामे जिठानी भई रहौ[1] आठहू अंग अठा हठि ऐंठी।

प्यारे की ओर चितौनि न देति सरीकिनि ह्वै दृग मै दुरि बैठी।
देव जू कोटि इलाज कियेहू हौ देखति लाज हिये हू मै पैठी ।।२४।।

[1] रहै—अ०।

मध्याभेद।

प्रगट यौवना अरु प्रगट मदना प्रगलभ बैन।
सुरति विचित्रा चारि विधि मध्या लाज समैन ।।२५।।

प्रगट यौवना उदाहरण।

को है वह देखि महा मोहनी को भेख धरै नखसिख देव-देवता को अवरेख सो।
डगमगे पग मग रूप रसमगे अग जगमगे जोवन को जागत बिसेख सो।
या मुख भयक जीत्यो लक मृगराज हू को मृगदृग देखे दृग लग्यो न निमेख सो।
मद मृदु हास सोभा सुन्दर विलास आसपास ते प्रकास को परत परिवेख सो ।।२६।।

प्रगट मदना उदाहरण।

नद जू के वार देव आए बृषभान द्वार सौही पौरि दौरि सखी कह्यो वर बाम सो।
धाइ गही धाइ देख्यो चाहै चलि धाइ पै मढचो न परै घूंघट[1] कढचो न परै धाम सो।
मदन सदेह[2] जाग्यो सदन सदेह लाग्यो पाग्यो पन पूर्‍यो मन लाग्यो जाइ स्याम सो।
त्रिकुटी चढाइ कौ लौ भृकुटी भराइ गहै लागि रही लोइन लराई लाज काम सो ।।२७।।

[1] प्रेम पैठ्यो नववधू घूंट—अ०। [2] सदेस—अ०।

प्रगल्भ वचना उदाहरण।

लागी प्रेम डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढि आई नेह सो निहोरि जोरि आली मन मानती।
उत तो उताल देव आपु नद लाल इत सौहे भई बाल नव लाल सुख सानती[1]।
कान्ह कह्यो टेरि कै कहाँ ते आई को हौ तुम लागती हमारे जानि कोई पतिवानती।
प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरि जू चलेई जाहु हमै तुम जानत तुम्हेहूँ हम जानती ।।२८।।

[1] मुख सानती—अ०।

विचित्र सुरता उदाहरण।

ह्वै रहै अचल दुति दीपक समीप घेर आगेही ते जीतै मुखचद की उज्यारी के।
पिजरनि मजु रव सार्‍यो सुक चार्‍यो ओर केकी कुल कोकिल कपोत किलकारी के।
अग अग नाचत अनग रगभूमि नची भृकुटी नटी ले सग नैन नृत्यकारी के।
चित्रनि चतुर मित्र सुरत विचित्र चितै चातुरी चरित्र चित्र मोहै चित्रसारी के ।।२९।।

अथ मध्या की सुरत।

बातनि मै चूकति अचूक चित कूकति बिभूकति औ भूकति[1] सी लूकति लसति सी।
डोलति अडोल मन खोलति न बोलति त्रिलोल दृग लोल तनु तोलति त्रसति सी।
मोरति[2] मरोरति बिथोरति औ जोरति सी तोरति निहोरति सकोरति ससति सी।
सोवति सतावति न दूसति[3] न तूसति सी रोवति रिसाति रसरूसति हँसति सी ।।३०।।

[1] रूकति—अ०। [2] मोरनि—अ०। [3] रूसति—अ०।

प्रौढ़ा चतुर्विधि लक्षण।

लब्धापति रतिकोविदा वस वल्लभ सविलास।
चौविधि प्रौढा सुरति सुख सम्मुख मोहन हास ॥३१॥

उदाहरण।

घाइल करत[1] कर साइल मृगनि दृग कुटिल कटाछ सर भृकुटी धनुक के।
कज कर[2] मजु ग्व ककन अनूप पग भू पर धरत वजे नूपुर झनक[3] के।
देव सोधि सुधारी अगाध सुधा सिंधु सुद्ध मुधा सी सुधाई वैन सुधा की वनक के।
वदन सुधाधर सुधाधरै अधर कुच तनक तनक वपु मुधर कनक के ॥३२॥

[1] पाइल करत—अ०। [2] वर—अ०। [3] कनक—अ०।

रति कोविदा उदाहरण।

आरभन थभन सदभ परिरभ कुच हनन सरभ अरु चुवन घनेरेई।
सोखन विमोहन वसीकरन सी करन डाटन उचाटन सु चाटु चित चेरेई।
रीति रति प्रीति अनरीति विपरीत अति भीति हार जीतिहू रहति हिय हेरेई।
भौर ज्यो सुवास विसवास वस वस्यो रसमस्यो निसि वासर विलास वस तेरेई ॥३३॥

वशवल्लभा उदाहरण।

कचन किनारी जरतारी के पटवरानि छाति छहराति छिति छवि को पहल सी।
चमकत चामीकर रचित चवारो चार्‌यो ओर कोर कोर वर तोरन तहल सी।
जगमगी सेज पै सुहाग रगमगे दोऊ दपति को देखै देव सपति सहल सी।
सुख की टहल मुकुताहल महल वीच केसर कपूर कीच चदन चहल सी ॥३४॥

हुलास भरे भौहनि विलास भरे भाल मृदुहास भरे अधर सुधारस धुरे परै।
अग-अग आतुरी महातुरी नचावै मैन वैन कर सैन चित चातुरी चुरे परै।
सुखद सुभाव देव कोमल विभाव हाव भावनि के लाल चलि लालच लुरे परै।
सोचनि ही सोचे चित चोर मृग लोचन के लाज भरे लोचन सकोचन मुरे परै ॥३५॥

प्रौढ़ा को सुरत।

दोऊ रति पडित अखडित करत काम स्याम स्यामा मडित कला कुहू पुरनि की।
चूकि चूकि चकनि अचूक उचकनि चौकि चारुताई मोतिन के चौकन पुरनि की।
गभीर सुरत परिरभ संभरै न देव कौन गनै रति दभ रभारु पुरनि की।
किकिनी समाजनि की साजनि मधुर सुर भाजनि विराजनि अनूप नूपुरनि की ॥३६॥

प्रौढ़ा सुरतांत।

जागे सव जामिनि जम्हात जोर जोवन के जोरि गात अगिरात भुज कोरी कोरी लै।
सोधे की सुवास आसपास ते मधुप पुज गुजि गुजि भामरे भरत सग भौरी लै।
भीतरे भवन देहरी तरे न पाउ धरे झाकत सहेली द्वार केली गृह पौरी लै।
नायिका सुघर वर नायक प्रपच पच सायक रच्यो री सुनि दौरी कर चौरी लै ॥३७॥

प्रौढा को सुहाग-शिक्षा ।

मदन सदन सुख सनमुख नूपुरनिनाद रस निदरि अनादर अरेरि मारु ।
देव हसि हरे हरे हेरि हरुई सु करि गरुई गिरा सो गुन गान न गरेरि मारु ।
तामरस मुख पै तर्‌योननि तमकि तौलौ तरल चितौनि तीखे चलनि तरेरि मारु ।
बालम की गोद चहुँ कोद को विनोद मोद सुमननि मानि दुसमननि दरेरि मारु ।।३८।।

सखी की सिच्छा ।

जो रस माने सु रोस करै रस मै हसि रोस करे मटको मति ।
देव मिही गुन प्रेम को तागु पुह्यो मन मानिक सो झटको मति ।
है सुख की अँखियानि लै पै सखियानि की बातनि सो अटको मति ।
द्वै दिन पी के सुहाग सो फूलिकै भाग सो भूलि भटू भटको मति ।।३९।।

जाके सुहाग को भाग भर्‌यो अनुराग भर्‌यो जग मै जसु गैयै ।
रोसहु मै रिस मै सुनिहारे समै असमै वस मै हरि है यै ।
देव जु सौतिन सो चलि पूछिये सो तिनको सपनेहु न पैयै ।
तासो रिसात लजैये जु क्यो नहि जाके रिसात रसातल जैयै ।।४०।।

इति तृतीय विनोद ।

इनहीं के भेदान्तर ।

दसा अवस्था हाव दस जद्यपि सकल त्रियानि ।
तदपि सुकवि क्रम ते कहत मुग्ध मध्य प्रौढानि ।।१।।
मुग्धनि पूर्वनुराग मै कह्यो दसा दस भाति ।
अरु मध्यनि की अवस्था भेद कहौ दस काति ।।२।।

हाव भाव प्रौढानि मैं सहज निरतर होत ।
चेष्टा मुग्धा मध्य मै भय लज्जा रस पोत ।।३।।
मुग्धा नवल किशोर के प्रथम पूर्वअनुराग ।
मिलन हेत हिय दुहुनि के विरह दसा दस भाग ।।४।।

दस दसा नाम ।

होय प्रथम अभिलाप अरु चिता सुमिरन भाखु ।
अरु गुनकथा उद्वेग दुख तब प्रलाप चितु राखु ।।५।।
होत् व्याधि उन्माद ह्वै जडता मरन निदान ।
विरह दसा दस प्रगट ए पूर्वनुराग प्रमान ।।६।।

पूर्वनुराग उदाहरण ।

आली झुलावति झूकनि सो इत्यादि ।।७।।

"आली झुलावति झूकनि सो झुकि जाति कटी झननाति झकोरे ।
चचल अचल वीच चलाचल बेनी बडी सु गडी चित चोरे ।

या विधि भूलत देखि गयो तव ते कवि देव सनेह के जोरे।
भूलत है हियरा हरि को हिय माह तिहारे हरा के हिंडोरे ।।"
—सुजान विनोद, ७:२५

मिलनेच्छाभिलाष उदाहरण ।

पहिले सतराइ रिसाइ सखी जदुराइ पै पाइ गहाइये तौ।
फिरि भेटि भटू भरि अक निसक वडे खन लौ उर लाइये तौ।
अपनो दुख औरन को उपहास सवै कवि देव वताइये तौ।
घनस्यामहि नेकहु एक घरी कहु ह्या लगि जो करि पाइये तौ ।।८।।

प्रेम कहानिन सो पहिले हरि काननि आनि समीप किये तैं ।
छाडि सकोचन लोचन लालची लोचत ही रहे सोच लिये तैं ।
देवजु दूरि ते दौरि दुराइ कै मोहन मोहि दिखाइ दिये तैं ।
वारिज से विकसे मुख वै निकसे इत ह्वै निकसे न हिये तैं ।।९।।

चिता उदाहरण ।

छ्वैवे के छोभन छीजत ही[1] छतिया सु छिपाइ करै वहुतेरे।
जीवित नाथ सो जीव सनाथ सो साजति लाज के साज घनेरे।
तेरो कछू न लगै विलगै जिन देव अज्यो जिय जान जियेरे।
पा परि देव रट्यो मरि रे मति मेरो कह्यो करि रे मन मेरे ।।१०।।

[1] छाजत ही—अ० ।

विरह-निवेदन नायिका सो ।

आखिन देख्यो नही दुख जो कहु काननि जो न सुनी दुचिताई ।
देव कहा कहौ देह दहै सोइ नेह नयो कै अनोखी मिताई ।
भोजन पान कहा सुख सोइवो सैन घरीक न रैनि रिताई ।
चद्रिका मदिर चद्र मै चित्त दै चैत की राति अचेत विताई ।।११।।

ध्यान लक्षण ।

चिता वढि चित विकल ह्वै करै मित्र को ध्यान।
आठो सात्विक भाव तह होत तत्व विज्ञान ।।१२।।

उदाहरण ।

राधिका कान्ह को ध्यान धरै तव कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै ।
त्यो[1] अँसुवा वरसै वरसाने को पाती लिखै लिखि राधिके ध्यावै ।
राधे ह्वै जाइ तेही छिन देव सु प्रेम की पाती लै छाती लगावै ।
आपु ते आपुही मै उरझै सुरझै विरझै समुझै समुझावै ।।१३।।

[1] तौ—अ० ।

हरि मूरति को धरि ध्यान रही रति पूरति[1] प्रेम हिलोरन ही।
ब्रज चंद जू को चित सुदर आनन चद चितै चितचोरन ही॥
कवि देव रही रस घूमि घनी हिये हेरि हनी दृग कोरनि ही।
सुकुमारि सु मारि सु मार करी मरूरी मरै मार मरोरन ही॥१४॥

[1] मूरति—अ०।

ध्यान को विरह निवेदन 'प्रेम तरग चद्रिका' मे है।
जागत जागत खीन॥१५॥

"जागत जागत खीन भई अब लागत सग सखीन को भारो।
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सो बसिबो बिसो बीस बिसारो॥
प्यो सुधि द्यौस गँवावति देव जू जामिनि जाम मनो जुग चारो।
नीरज नैनी निहारिए नैनन धीरज राखत ध्यान तिहारो॥"
—प्रेम-चद्रिका, २ ३७

गुण कथन।

सुमिरि परसपर दपती रहत सरस रस पागि।
विरह मथन पिय गुन कथन बरनत अति अनुरागि॥१६॥

वद्य हरण। चद्रिकाम्या 'ए बिनु'॥१७॥
जे बिनु देखे गये दिन बीति न को पछिताउ अरो हिय हैए।
देव जू देखि उन्है हौ दुखी भई या जिय को दुख काहि दिखैए।
देखे विना दिख साधन ही मरि देखुरी देखत ही न अघैए।
देखत देखत देखत ही रही आपनी देहौ न देखन पैए॥"
—प्रेम-चद्रिका, २ . ३८

उद्वेग लक्षण।

वरनि वरनि गुन मित्र के वाढत विरह अनेग।
भली वस्तु नागा लगै प्रगट होइ उद्वेग॥१८॥

उदाहरण।

रग भौन भीतर उभीतर अतर रग रावटी उसीरन ते ढाढस ढह्यो परै।
झझरी झरोखा झाँकि झाँकति दृगनि देव द्वार देहरीनि देखि देह री दह्यो परै॥
कूकि कोकिला कुल करत वन आकुल निकुज मजु गुज अलि पुज उमह्यो परै।
गोपै पग धीरज विलोपै ये समीर धीर राती हरी कोपै हरि मोपै न रह्यो परै॥१९॥

जीके सुख नीके काहू जानत नजीके जो तिहारे जाय तापन नजीके जरि जायगी।
नीर विन मीन ज्यो समीर बिन छीन जन दुखी देखिबे की भूरि भूख भरि जायगी॥
देव घनसार वपुरैनि को बितावै लीपि येकहु तुसार ज्यो पुरैनि परि जायगी।
खजरीट नैनी मृदु मजरी सहज मार झार सो रझि उरझि कै मु मरि जायगी॥२०॥

प्रलाप लक्षण ।

दपति के उद्वेग हू वाढै विरह अलाप ।
चित उतकठा प्रेम पिय पेख्यो प्रगट प्रलाप ॥२१॥

उदाहरण ।

जीभ कुजाति न नेकु लजाति गने कुल जाति न वात वह्यो करै ।
देव नयो हिय नेह लगाइ विदेह की आँचनि देह दह्यो करै ॥
जीभ अजान न जानत ज्यान जु आन अयान के ध्यान रह्यो करै ।
काहे को मेरो कहावत मेरो जु पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै ॥२२॥

नाखिन टरत टारे आँखि न लगत पल आँखिन लगेरी स्याम सुदर सलोन से ।
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस भरि भरि रूप लेत लोचन अचौन से ॥
एरी कहि कोहौ हौ कहा हौ कहा कहति हौ कैसे वन कुज देव देखियत भौन से ।
राधे हौ सदन वैठी कहती हौ कान्ह कान्ह हाहा कहि कान्ह वे कहाँ हैं कोहै[१] कौन से॥ २३॥

[१] कैसे—हाशिये पर दूसरे हस्ताक्षर मे—अ० ।

सखी को वाक्य ।

मै न कही री कहा भयो तोहि कहूँ मति मानिक सो मन खोलै ।
आई गमाइ कमाइ कहा कहौ वातन ही उतपातन तोलै ॥
वाहिर पौरि न दीजिये पाँउ री वाउरी होइ सु डावरी डोलै ।
तेरी वलाइ वकै री वलाइ ल्यो चूमति तो मुख तू मति वोलै ॥२४॥

अथोन्माद लक्षण ।

प्रेम विकल वकि-त्रकि थकी वाढचो विरह विपाद ।
विन विचार जो कछु करै ताहि कहौ उन्माद ॥२५॥

उदाहरण ।

आन की कहति आन आनति न आन आन कान आने अनाकानी करे ध्यान ताहू को ।
बावरी सयानी की सुभाउ री न जानी जाति वासर विभावरी सुभावै कौन जाहू को ॥
कहि कहि उठति कहाँ हे री कहाँ है कान्ह दौरि-दौरि भेटै देव सेवक सभाहू को ।
मानति न काहू उर आनति न काहू जिय जानति न काहू पहिचानति न काहू को ॥२६॥

ये अपनी करनी किनि देखत देव कहा न वनाइ कछू मै ।
घाइल ह्वै कर साइल ज्यो मृग त्यो उतही उतराइल घूमै ॥
मेटिवे को तन ताप दुहूँ भुज भेटिवे को झपटै झुकि झूमै ।
चित्र के मदिर मित्र तुम्है लखि चित्र की मूरति को मुख चूमै ॥२७॥

व्याधि ज्वरादि विकार उदाहरण ।

फूल से फैलि परे सब अग दुकूलनि मैं दुति दौरि दुरी-सी ।
आँसुन के जल पूरति साँसनि सो सनि लाज इलाज लुरी सी ॥

देव जू देखिये दौरि दसा व्रज पौरि पै रौरि कथा विथुरी सी।
हेम की वेलि भई हिमरासि घरी पल घाम मैं जाति घुरी सी ॥२८॥

दसम दसा लक्षण।

दसम दसा सो मूरछा कहूँ मरन ह्वै जात।
ताहू तो विधि वरनिये जामै रस न नसात ॥२९॥

उदाहरण।

ह्वै[1] अभिलाप सचित भइ हरि को धरि ध्यान कहै गुन गोतें।
पानी न पान न पौन हूँ चैन भई वकि बावरी कालि परो तैं ॥
आरति सौ न सम्हारति आजु भई अरविद ज्यो इदु उदोतैं।
केलि के भौन सहेलिनि की हिलकी सुनि कै किलकी सब सौतैं ॥३०॥

[1] ह्वै—अ०।

कान न सुनति आन आनन चितौति कहूँ आनन अनूप रूप छवि की छुधा भरे।
लोचन कमल कुम्हिलाने कुल कमला के विलखि बिलाने बिरहागि वसुधा भरे ॥
डीठि विष डासी ह्वै बिसासी विषधर स्याम सेवत सुधाही देव दूभर दुधा भरे।
ज्याइ लीजे जाइ प्याइ पीतम सुधाधर सो सुने है तिहारे अधराधर सुधा भरे ॥३१॥

आए अचान सुने पति प्रान भयो सुख प्रान गयो दुख भारी।
त्यो सुखदाइक को मुख देखि जगी नवला नव लाज सम्हारी ॥
मोह समुद्र मै बूडति ही गहि बाँह हियो भरि नाह निकारी।
राहु के आनन ते निकसी बिकसी मनो देव ससी की उज्यारी ॥३२॥

एहि विधि मुग्ध वधूनि मै विरह पूर्व अनुराग।
अभिलापादिक दस दसा तव सयोग सुहाग ॥३३॥

इति चतुर्थ विनोद।

अथ मध्या विषय दशा वर्णनम्।

मुग्धनि पूर्वनुराग मै कही दसा दस भाँति।
अब मध्यनि की अवस्था भेद कहो दस काति ॥१॥

अवस्था नाम।

स्वाधीना वासकवती उत्का खडित वार।
विप्रलब्ध कलहतरति गतपति कृत अभिसार ॥२॥
आठ अवस्था भेद ये वरनत मत प्राचीन।
पिय विदेस गमनागमन जुत दस कहत नवीन ॥३॥

क्रम तें लक्षण।

सो कहिये स्वाधीनपति जाके पति आधीन।
वासकसज्जा सेज को साजै वार प्रवीन ॥४॥

प्रिय आगम बीतत समौ उत्कठित चित चीत ।
खडित वार[1] मु खडिता प्रातहि आवै मीत ॥५॥

[1] खडिस वार—अ० ।

विप्रलब्ध पति मिली नही जिहि संकेत बुलाइ ।
कलहतरिता कलह करि पति सो फिरि पछिताइ ॥६॥
अभिसारिक पिय गृह चलै समै समान सरूप ।
प्रोषितपति परदेस पति दै गयो अवधि अनूप ॥७॥

स्वाधीनपतिका उदाहरण।

जाकी सवै विनु मोल की चेरी मु वोलनि के वल मोल लियो तै ।
साधन जो दिख साधन को सु महा धन लै भरि राख्यो हियो तै ॥
जोरे रहै दृग तो दृग देव जू दर्पन को प्रतिविंव कियो तै ।
जो मधुराधर आनन सो मधुराधर आनन ओठ पियो तै ॥८॥
अथ वासकसज्जा अष्टयाम मैं ।
देव सखी एक लीने फुलेल इति ॥९॥
"देव सखी इक लीन्हे फुलेल सु चोया के चोरनि येकै निचोरै ।
येकै लिये कगही इक दर्पन चेरी लिये इक वीजन डोरै ॥
चौकी पै चद्रमुखी विनु कचुकी अंचर मैं उचकै कुच कोरै ।
वारन गौनी वधू वडी वार की वैठी वडे वडे वारनि छोरै ॥
—सुखसागर तरग, ६३२

सेज के[1] समीप दीप दीपति जगमगाति दीपनि मैं चद रुचि चंद मुख चद की ।
भीति छिति छातिन छहरि उठै सोधो मद पौन मै लहरि मालती के मकरद की ॥
नागरि नवीनै परवीनै कर वीनै देव गान रस लीने उर उमग अनद की।
कान लगी आवनि धनी के धन ध्यान लगी प्रान लगी प्रीति प्रानप्यारे नद नंद की ॥१०॥

[1] सेज की—अ० ।

उत्का उदाहरण।

आए न दवे सु आन दसा भई आनद साहस की मति मूंदी ।
खजननैनी उठी अकुलाइ धरे अगुरी पर अजन वूदी ।
पौरि लौ दौरि के देखो री देखो कहै कर दावै रहै पट फूदी ।
आली अगोछत अग छुटी गज मोतिन मग छुटी अधगूदी ॥११॥

पलै पल पूछति विपल दृग मृगनैनी आए न कमलनैन आई ए अलपरी ।
जीभ मै जलप देव देखिवे की तलप सु भूतल परी है पै सुहाति न तल परी ।
रसिक रसिकलाल कलानिधि मिलै तौलौ कलानिधि मुख चितचाई की चलपरी ।
केलि के महल कलभाखिनि अकेली सकलप विकलप[1] ही मैं क्योहू न कल[2] परी ॥१२॥

[1] सक कलप विकल—अ० । [2] तकल—अ० ।

खंडिता उदाहरण।

साझ ससी ह्वै कै हसि विहसि कुमुदिनी के रहै चलि नीके नलिनी के उर सूल ते।
कीनी निहचित हौ दुरत चित चिता मेटि देव सेवकिनि के सदाही अनुकूल ते।
सिसिर मयक सो ससक पकजनि जानि रजनी गमाइ भले भली भई भूल ते।
लाल लाल अम्बर उदित बाल भानु हेरि भोर बिनु लाइन कमल के से फूल ते ।।१३।।

मध्या धीरा खंडिता को व्यंग्य वचन।

है परमेसुर ते पतिनी को सदा पति नीको जु लोक लहावै।
देव जू दोस कहा कहिये दुख औ सुख औ सहिये जु सहावै।
दूरिहू ते रहिये कर जोरि निहोरि पगौ गहिये जु गहावै।
काहे को रारि बढाइ वृथा कुल नारि चढाइ कुनारि कहावै ।।१४।।

विप्रलब्धा उदाहरण।

निपट निठुर हठि कठिन वसीठी के पढाइ नव लग्यो आई गई दिन दूक ह्वै।
लै गई भुलाइ गुरू बधु ते दुराइ चित बातनि चुराइ कीनी चातुरी अचूक ह्वै।
वै उत मिले न मिले पचसर ताने सरदेव परपच रही पूछति कछूक ह्वै।
केलि वन कुज ते अकेली उठि चलि रूठि नागिनि लौं फूकि मदनागिनि की ऊक ह्वै ।।१५।।

सखी सों।

गौरिन को गुन गर्व सु सर्वसु ग्वॉरि गॅवावन हारि[१] लखी तू।
बातन यो घर जात पने उतपातन[२] की विधि मै न नखी तू।
ल्याइ भुलाइ सु मेरिय भूल चली अपने मुख मेलि मखी तू।
देव जू मीत अमीत सुने नहि होति सुनी भई सौति सखी तू ।।१६।।

[१] सु सर्वसु खारि गवावत हारि—अ०। [२] उतपानन—अ०।

कलहंतरिता उदाहरण।

मेरे मन तेरे गुन औगुन घनेरे कहा औगुन गनाऊ गुन गाऊ गहि बीन को।
देख्यो सीख्यो देव तू दिखायेहू सिखाये बिनु तोही को दिखावे को सिखावे परवीन को।
तव क्यो रिसान्यो अब पीछे पछितान्यो तै न जान्यो जड जीव या विचारे दुख दीन को।
तेरो कै पत्यारो प्यारो प्रीतम मै न्यारो कियो प्रानधन जीवन उज्यारो जुवतीन को ।।१७।।

प्रेम पयोधि पर्‌यो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहि रे मन।
कोप तरगन सो बहि रे पछिताइ पुकारत क्यो बहिरे मन।
देव जू लाज जहाज ते कूदि भज्यो मुख मूदि अजौ रहिरे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही यह तेरी अनीति तुही सहि रे मन ।।१८।।

प्रोषितपतिका भेद।

चलनहार परदेस पिय अरु पिय आवनहार।
अरु विदेस पति तीनि ये गतपति भेद विचार ।।१९।।

प्रवसत्पतिका उदाहरण।

प्रानपती कहु जान कह्यो उड्यो चाहत प्रान रहे न अडे अडे।
सो सुनि देखि घटे न वढे जु उसासनि ओप हिये उमड़े मडे।
लोक विलोकि लजात से जात है गोरी के गातनि गात गड़े गडे।
देव जू नाखिन सूखत री ए वडी अखियानि ते बूद वडे वडे ॥२०॥

जान कह्यो काहू सो अचानक ही कान सुनि जानत न प्यारी को कहावी विधि होनेई।
देखौ दुख दूखि के उसासनि ही सूखि गई कैसी निसि नीद स्वेद[1] बूद दृग कोनेई।
देव जू चले है प्रात चिरैया चुहुचुहात चद मुखी चुप ह्वै रही है मुख मौनेई।
हाथ पाइ काइ साथ काय हाथ प्रान प्रान प्राननाथ साथ जान कहत अगौनेई ॥२१॥

[1] खेद—अ०।

विदेस पतिगत पतिका उदाहरण।

प्रानपती को प्रभात पयान प्रभाकर कोटिहू तें प्रतिकूल सों।
क्यो रहै प्रान चले पहिले पल दूसरो द्योस दसा दुख मूल सो।
नेह रच्यो विरहागि तच्यो प्रिय प्रेम पच्यो पजरे तन तूल सो।
आसुनि दूखि उसासनि रूखि गयो मुख सूखि गुलाव के फूल सो ॥२२॥

आगत्पतिका उदाहरण।

कान पर्यो पति प्रान को आगम प्रान को पाइहै आनद लूटि सी।
देखि सुहागिनि को सुख सौति मरी विनु मौति हलाहल घूटि सी।
ज्याइ[1] लई पिय प्याइ पियूख गई जिय की जम फासियो टूटि सी।
लाल को भेटत ही वरवाल परी सफरी जल जाल ते छूटि सी ॥२३॥

[1] जाइ—अ०।

आवन की भनक अचानक ही कान परी आए सुनि देव सवही के सुख साज सो।
औधि गुन वाधी देह अचल सनेह नाधी आनद की आधी मन गयो उडि वाज सो।
पौरि ही ते दौरि दुहूँ भुजन मैं अक भरि[1] भेटतो जो प्यारो जो समेटतो समाज सो।
वारिधि विरह वडवागिनि की लपट वरि जाती अवला जु अव लाज के जहाज सो ॥२४॥

[1] दौरि के दुहू भुजन अक भरि—अ०।

अभिसारिका।

प्यो सुखदैनि चली पिय पै मृगनैनी निहारि कै रैनि अधेरी।
स्याम तमालनि के वन वास रच्यो तन मैं[1] मृगमेद घनेरी।
अवर नील मिली तम तोम खिली उखिली मुख सोम उजेरी।
देव सु भौरनि घेरि लई अरु मोरनि घेरि चकोरनि घेरी ॥२५॥

[1] रचा तन मैं—अ०।

सूझत न गात ॥२६॥

"सूझत न गात बीति आई अधरात अरु सोये सबै गुरुजन जानि कै बगर के।
छिपि कै छबीली अभिसार को किंवार खोले खुलिगे सुगध चहुँ चदन अगर के।
देव कहै भौर गुजि आए कुज कुजनि ते पूछि पूछि पाछे परे पाहरु डगर के।
देवता कि दामिनि मसाल किधौ जोति जाल झिगरे मचत जागे सिगरे नगर के।
—सुजान विनोद, ४३२।

सुदरि सिगार करि आई अभिसार करि चहु ओर सुर भौर भीर करि राख्यो है।
मद मृदु हास मुखचद को उज्यास सुख सेज आसपास ते प्रकास भरि राख्यो है।
केसरि कुरगसार देव घनसार मिलै चदन अगर को पसार करि राख्यो है।
महल सुहाग बाग भरि कै सुहाग अनुराग भरि राग भरि भाग भरि राख्यो है ॥२७॥

प्रौढ़ा विशेष दस हाव कथन।

लीला और विलास कहि विच्छित्त अरु बिव्वोक।
विभ्रम किलकिंचित कह्यो मोट्टाइत अवलोक ॥२८॥
कह्यो कुट्टमित अरु विहृत ललित ललित दस हाव।
त्रिय प्रिय सन्मुख पूर्ण रस सरसत सहित सुभाव ॥२९॥

क्रमतें लक्षण।

कपट भेप भापानु करि लीला मै रसहास।
सरस भाव तनमन वचन रुचिर सु रचन विलास ॥३०॥
लघु मडन विच्छित्ति मै मन अभिमान विशेप।
विभ्रम सो जु प्रमाद तें उलटे भूषन भेप ॥३१॥
किलकिंचित इकबार भय मुद रस रिस अरु मान।
मिले कपट मोट्टाइत सु वचन आन मन आन ॥३२॥
मन मै सुख सकट प्रगट कपट कुट्टमित हाव।
पिय सदोप बिव्वोक कहि दृग भौहनि के भाव ॥३३॥
अपनो गौ मिस लाज छल विहृत आन मन आन।
ललित सरस रचना ललित बरनत सुकवि सुजान ॥३४॥

लीला उदाहरण।

छलकै अति राख्यो छिपाइ छपा मै छपाकर की छवि हौ छहराऊ।
देव जू गोहन लागे फिरै गहि के गहिरे रग मै गहिराऊ।
वासुरी की बनि ताननि सो ब्रज की बनितानि सबै बहिराऊ।
पीत पटा पहिरौ हौ भटू उन्है नील पटा दुपटा पहिराऊ ॥३५॥

विलास उदाहरण।

हास हुलास विलास विलासनिहू प्रिय प्रेम प्रकासनि मोहै।
गाए लगाए लिए फिरे गोहन मोहन को गुन सो मन पोहै।

देव कहा कहौ देखत ही बनै सुदरताई को मदिर सो है।
चीकनी चौकनि चालि चितौनि वरावर बारन गौन को को है।।३६।।

विच्छित्त उदाहरण।

भूषन भेप बिसेष बनावै न देखत देख महासुख दैनी।
चारु चितौनि बिलोचन बाननि सान चढाइ करी अति पैनी।
देव दिपै दुति मोतिन ते अति जोवन जोतिन सो जग जैनी।
मोहन के मन रजन को करै अजन दै दृग खजन नैनी ।।३७।।

विभ्रम उदाहरण।

सोवत ते उठि आई प्रभात प्रभा तकि प्रीतम पेम सो पागे।
देव इतो इतराति अहो इत राति लसै अखिया निसि जागे।
लक लटे उलटे पट भूषन ऊलटि ओर छुटि लट आगे ।
रूप को मूल अनूप दुकूलनि भूल भई सु भलै अति लागे।।३८।।

किलकिंचित उदाहरण।

देव इती अनरीति अनीति की प्रीति की वातन ही पहिचानती।
आवती हौ जु बुलाए विना अनवोले ते वोल कुबोल वखानती।
खेल मै को गनै छोटो वडो अरु क्यो हू गडो कत भौहनि तानती।
रोवति सी हसती सी रिसाती खिस्याती कहै पर मान सु ठानती।।३९।।

मोट्टाइत उदाहरण।

भाग वडोई वडो अनुराग सुहाग वडो जग जानत जैसो।
तापर तूठी सी रूठी रहो अहो तूठी न रूठी न मूठी मै है सो।
देव जू प्रीति की रीति न वैरु न प्रीतिन वैरु कहौ मतु तैसो[१]।
मेरो अयान सयान तिहारो कि मान विना अपराध सु कैसो ।।४०।।

१ तुम तैसो—अ०।

कुट्टमित उदाहरण।

स्वारथ ही के हितू हित ही के हितारथ ही जिय जीवत जीके।
लगरु अग ही अग मिले रति संग सरै विसरै मुख फीके।
हानि गनै न मिटै कुलकानिहू जानि लुटावत लोक की लीके।
देव जू देखे महा सुखदानि हमैं दुख दै सुख पावत नीके।।४१।।

बिव्वोक उदाहरण।

आए है पैन्हि प्रभातहि प्रीतम सौति की मोहन माल गढाई।
देव निहारि सु दूरही ते बर नारि सखोन सो रारि वढाई।
टेढी करी भृकुटी त्रिकुटी भरि डीठि छुटी दृग मान कढाई।
प्यो हियो रोपि निसानो नखच्छत कोपि ज्यो काम कमान चढाई।।४२।।

विहृत उदाहरण ।

प्यो सुखदैन सौ वोली न बैन गई करि कै कर सैन सहेली ।
ताहि निहारि कै लाज निवाहति चाहत चित्त कियो रस केली ।
काम कमान सी भौहै चढाइ कै वान से नैन नचाइ नवेली ।
देव सु दामिनि सी दुरि दौरि कै भामिनि भौन के कोन अकेली ।।४३।।

ललित उदाहरण ।

लागत समीर लक ।।४४।।
"लागत समीर लक लहकै समूल अग फूल से दुकूलनि सुगध बिथुर्‌यो परै ।
इदु सो वदन मदहासी सुधाविंदु अरविंद ज्यो मुदित मकरदनि मुर्‌यो परै ।
ललित लिलार श्रम झलक अलक भार मग मै धरत पग जावक घुर्‌यो परै ।
देव मनि नूपुर पदम पद दू पर ह्वै भू पर अनूप रग रूप निचुर्‌यो परै ।।"
—सुजान विनोद, ५ ४४

गोरे गोरे गात नवजोवन जगमगात उदित अनूप रुचि रूप छवि सो लसो ।
पेखनो सो पेखत विलास हास देव दुति देखत उठत हिये होत अति हौल सो ।
नख सिख खोजत मनोज के विसिख खोज ओज चित चोजनि को नेह नित नौल सो ।
झीने झिलमिले पट घूघट मै झलकति ललित लुनाई सो कलित मुख कौल सो ।।४५।।
जगमगी जोतिन जराऊ मनि मोतिन की चद्रमुख मडल पै मडित किनारी सी ।
वेदी वर वीरनि गहीरनि की देव झूम झूमका झमक झमकत भीर भारी सी ।
अग अग उमड्यो परत रूप रग नव जोवन अनूप की तरग चटकारी सी ।
आगे आगे मनिन ते जगर मगर होत सखिन सजोए पीछे आवति दिवारी सी ।।८६।।

इति श्री सुमिल विनोदे पंचम विनोदः ।

अथ वियोग शृंगार विषय मानप्रकास करुणात्मक वर्णन—

पिय को दच्छिन वाम लखि तिय हिय मान सदेह ।
पूरन मान बखानिये पति सठ धृष्ट सनेह ।।१।।
ज्येष्ठा और कनिष्ठका दुखित अन्य सभोग ।
विप्रलब्ध हू खंडिता मान बखानत लोग ।।२।।
मुग्धा मध्या प्रौढ तिय ऊढा और अनूढ ।
क्रम ते इनकी मानविधि बरनत गूढ अगूढ ।।३।।
गुरु मध्यम लघु मानि पति गुरु मध्यम लघु दोष ।
धीर अधीरा मध्यमा धीरादिक वय पोष ।।४।।
गुरु मध्यम लघु भेद ये अरु धीरादिक भाइ ।
मान अवस्था तियनि की सूछम सहज सुभाइ ।।५।।
स्वकिया सर्वसु मान है परकीया बस प्रेम ।
समुझत रसिक सुनार ज्यो कस्यो कसौटी हेम ।।६।।

ऊन तें लक्षण ।

अधिक नेह पिय जेष्ठ तिय ऊन सनेह कनिष्ट ।
नेह निवाहे चातुरी रहै दुहू को इष्ट ॥७॥
दासी सखी की दूति सो गुपित करे पति नेह ।
दुखित अन्य सभोग लखि होत मान संदेह ॥८॥

सौंतिन के सपति सुने रूप सील गुन सर्व ।
करति मान को अग लै प्रेम रूप को गर्व ॥९॥
पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुरु मान ।
मध्यम ता मुख नाम सुनि दरसन ता लघु जानि[1] ॥१०॥

[1] लच्छिम सुजानि—अ० ।

साम दाम नति गुरु छुटे मध्यम सो गहि पाइ ।
लघु छूटे पति प्रेम गति कथा कुतूहल भाइ ॥११॥
गुरु मध्यम लघु मान को मुग्धा सूछम भाव ।
अरु धीरादिक भाव नौ मध्या प्रौढ सुभाव ॥१२॥

प्रौढा धीरा कोप करि कोप अधीर अधीर ।
धीरा धीरा मध्य रुप रोदन वचन गहीर ॥१३॥
मध्या धीरा व्यग रुख सो अधीर अव्यगि ।
धीराधीरा लच्छना लच्छित दोऊ इगि ॥१४॥

क्रम तें उदाहरण । ज्येष्ठा कनिष्ठा उदाहरण ।

खेलत आख मिहीचिनि खेल मिहीचत आखि वतावै न वाहू ।
दूसरी की पट लेत उठाइ छिपावै मिलै छतिया छतियाहू ।
देव इतै कर दावत याहि कहै उत वाहू सो ढूढन जाहू ।
पूछि कछू मति काहू सो घूमत झूठे ही झूमत चूमत काहू ॥१५॥

अन्य संभोग दुःखिता उदाहरण ।

देव को वावरी धावरी होइ कहा धवरैवो जु पै मरिवे ही को ।
जानि के कौन मरै विनु मीच मरैहू न काम कछू सरिवेही को ।
खेलो हसो खुलिकै खलु सोई इलाज करै सु करो लरिवेही को ।
जापै मया करै ताही को भाग जो लाइक होइ मया करिवे ही को ॥१६॥

प्रेम-गर्विता उदाहरण ।

राग रगीले सो री कहिये कत रागहि के मृग रावरे ह्वैहो ।
देव दवे रहो देखे विना दिखसाधन ही दुख वावरे ह्वैहो ।
घेर घरै घर ग्वालिन के घर ही घर डोलत डावरे ह्वैहो ।
घोर घनी घनघोर सुनै घनस्याम घरीक मै घावरे ह्वैहो ॥१७॥

रूपगर्विता उदाहरण ।

भूलै मति बधु हे मदध मधुकरनि को तो मै तो बधु मुख सुगध सरसाते हौ ।
रहिरे कमल जल गहिरे गुमान तजि गहि रे चरन सोभा सवही सुहाते हौ ।
वृन्दावन चद देव भए तौ अनद करौ चदमुखी मोहू सो अकह कहि ताते हौ ।
एरे मुख मेरे की बराबरी करत हिमकर भोर होत ही हमारी तेरी बाते हौ ।।१८।।

मान उदाहरण । मुग्धा को मान उदाहरण ।

ओठनि ते उठि बैठि कधानि पै अैठि मुर्‌यो न कहूँ मुख मोरन ।
देव कटाछनि तें कढि कोप लिलार चढ्यो बढि भौह मरोरन ।
अक मै आई मयक मुखी लई लाल को वक चितै दृग कोरन ।
आसुनि बूडयो उसास उडयो किधौ मान गयो हिलकी की हिलोरन ।।१९।।

मुग्धा की सखी ।

सुदर जोवन रूप अनूप निहारत काहि न लागत नीको ।
देव जू दोस कहा मुख देख्यो परोस पछावर की रमनी को ।
पै इनही को सुभाव अनैसो हिये धरि राखती धोखो धनी को ।
आसुनि बूद दुहू दृग कोरनि धाम गडयो धन ज्यो निधनी को ।।२०।।

अथ प्रौढ़ा को गुरु मान ।

प्रीतम आए प्रभात प्रभा तकि रग रगे कहु सग किये तैं ।
दूरि ते आवत देखि हसी ढिग ते उकसी न बिराग लिये तैं ।
थाके मनाइ परे पिय पाइ मनोहर भाल गमाइ दिये तैं ।
नैकु मुर्‌यो बहुर्‌यो विहस्यो मुख मान तरु निकस्यो न हिये तैं ।।२१।।

मध्यमान उदाहरण ।

दपति सोवत है सुख सेज महा सुख सो मुख सो मुख मौननि ।
ताही को नाम लै टेरि उठे सपने पिय जाके बसे रग भौननि ।
लौटि परी सुनि प्यारी करौट लै सूखत ओठ उसास के पौननि ।
नैकु गिरे न फिरे बरुनीन रहे असुवा बसिकै दृग कोरनि ।।२२।।

लघु मान यथा ।

ऊचे अटा चढि प्यारी परोस की लोइन लाल उतै लहराये ।
देव सु देखत देखि दुखी भई आपु सो देखि हिये हहराए ।
न्यारी ह्वै प्यारी परी उठि सेज दुहू दृग ते असुवा ढहराए ।
हासी के कारन दास भए हरवाइ लला तरवा सहराए ।।२३।।

धीरादि दोहा ।

मान समै सुकियानि के व्यग वचन परधान ।
सकल लच्छना लच्छिये वाचकहू परमान ।।२४।।

तिनकै व्यौरो

व्यग सुचेष्टा धीर तिय वच अव्यग अधीर।
व्यग लच्छना कर्म रुख प्रगट सुधीरा धीर ॥२५॥
प्रौढ धीर गुरु मानिनी सादर धीर उदास।
साम दाम पति सो प्रनति मानै जानै दास ॥२६॥
प्रौढा धीरा धीर को व्यग वाक्य रुख जानि।
केवल वाच्यहि पुरुप सो प्रौढ अधीरा मानि ॥२७॥
व्यग वचन पति सो कहै मव्या धीरा नारि।
धीराधीरा[1] करि रुदन अधीर नेह निरवारि ॥२८॥

[1] धीराधीर—अ०।

वाच्य व्यंग लक्षणा के लक्षण।

वाचक सूधे शव्द मैं वाच्यक अर्थ सुभाव।
झलकत व्यजक शव्द मैं व्यग्य अर्थ को भाव ॥२९॥
वाच्यक व्यजक शव्द हू वाच्य व्यग के वीच।
लच्छ अर्थ लाच्छनिक मैं प्रगटै लौटि नगीच ॥३०॥
अभिधा सूधी वात है लौटि लच्छना फेरु।
तातपर्ज धुनि व्यजना तिहू वृत्ति को हेरु ॥३१॥

अथ वाचक शव्द अर्थ की वृत्ति अभिधा के स्थान।

अभिधा सूधी वात कै जाति कर्म गुन काम।
सम्मुख वचननि वूझिये अरु निज संज्ञा नाम ॥३२॥
रूढि प्रयोजन कछु करै वाच्य अर्थ की भूल।
लच्छ लौटि प्रगटत निकट होत व्यग को मूल ॥३३॥

अथ लच्छना के स्थान।

स्वपर अर्थ सारोप अरु कहिये अध्यवसान।
सदृग भाव विपरीतिता आछेपक अनुमान ॥३४॥
कारज कारनहू कहौ सकल लच्छना इगु।
धुनि सज्ञा सुर चेप्टा पुनि तातपर्जहू विगु ॥३५॥

इन तिहू शव्द को प्रस्तार है। अथ अभिधा के स्थान ॥१॥ अथ लच्छना के स्थान ॥२॥ अथ व्यजना के स्थान ॥३॥ जाति वर्णन ॥१॥ सदृग भाव वर्णन ॥१॥ ध्वनि विकार ॥१॥ कर्म वर्णन ॥२॥ विपरीत भाव वर्णन ॥२॥ सज्ञा विकार ॥२॥ गुण वर्णन ॥३॥ कार्य कारण भाव वर्णन ॥३॥ स्वर विकार ॥३॥ सज्ञा नाम वर्णन ॥४॥ आक्षेप गुणनाम ॥४॥ चेप्टा विकार ॥४॥ तातपर्ज ॥५॥३६॥

मध्या धीरा उदाहरण ।

आजु हौ नाथ सनाथ करी इत आइ कियो चित तै हित भारो।
देव सुखी चित ह्वै थिर ह्वै रहै भागवती जेहि नैकु निहारो।
धन्य अवास निवास कियो जिन अग सुवास सुवासनि गारो।
सीखनि लै गुरु बधुनि की मन लेत है मोल सुगध तिहारो[1] ।।३७।।

[1] तेहारो–अ० ।

सोलह सहस ब्रजनारी सब यो कहत जाते हौ निकट जहा जिनके सकेत है।
केहि विधि दंपति परसपर लेत रस दासी पटरानी पर कैसे मुख लेत है।
तुम तो सखा हौ अब साची कहौ ऊधो मोसो काम के उमाहे राम कैसे रस लेत है।
कौने विधि कुबिजा पै पौढिवे को बन आवै खाट काटि[1] देत है कि खाडो[2] खोदि लेत है ।।३८।।

[1] काढि–अ०। [2] कि खाटो–मूल मे, उसी हस्ताक्षर से 'कि खाटो' का 'कि खाडो' वनाया गया है–अ० ।

सादृश्यरूप लक्षणा स्वर विकार व्यंग । मध्या अधीरा उदाहरण ।

सोवतहू नहि भूलै तुम्है सपनेहू मै वाके बियोग कराहो।
जागत मै दिनराति कहा कहौ वाही के ध्यान न सूझत राहौ।
देवजू और को ओर कहा तुम तो हरि वाके हिये के हरा हौ।
सो वडभागिनि सो अनुरागिनि सोइ सुहागिनि जाहि सराहौ ।।३९।।

विपरीत लक्षण रूप में ध्वनि व्यंग । अथ मध्या धीराधीरा उदाहरण ।

देव कहू बरसै गरजै कहुँ पार न काल कहू उमडेई।
सीतल साझ प्रभात के भानु मै जानि महा तप तेज मडेई।
भागु बडो जग जानिये ताही को जाके रहौ प्रभु प्रीति गडेई।
वूड़ वडी लघु लोगनि ही कै बडे सब बातनि गात वडेई ।।४०।।

अभिधा ध्वनि व्यंग । प्रौढ़ा धीरा उदाहरण ।

मौन धरे रगभौन मे भामतो भोर ही आवत भौहनि अैठी।
दूरि तै आदर दै उठि पीठि दै दासी सो रोस कै डीठि अमैठी।
स्वावन को पग दाबन को कह्यो सुदरि मान के मदिर पैठी।
चित्त चलै न हलै महलै न कहू टहलै ठहलै करै बैठी ।।४१।।

प्रौढ़ा सों नायक की उक्ति नायिका की प्रत्युक्ति ।

कैसे रूठि बैठी कब रूठी धौ रुठाई किहि झूठी मति कहो मालाधारी बिरकत हौ।
माला यह लीजै मत्र दीजे दडवत करौ मत्र लै रहौ न गुरुदेव सिरकत हौ।
क्रोध आच तचे नेह पचे तो हिये कराहि तो बचन सीत जल बूदे छिरकत हौ।
हाथ डारि सोधि देउ हाथ थिर राख्यो नाथ लीन्ही है सो साथ थो थरेई थिरकत हौ ।।४२।।

कोप व्यंग गुरुमान प्रौढ़ा अधीरा उदाहरण ।

खुल खेल खिलारनि लाल भले पर छाप दै छाडि दए तन दै।
पट[1] पीत उतारि उढाइ दियो पट लाल जरी अपनोपन दै।

अब दास पराए उदास ह्वै आए जू दाहिनो पीपर को बन दै।
तबही बिनु मोल बिकाने है देव सु बोलत मोल लिये मन दै ।।४३।।

१ पठ—अ०।

अभिधा आदर अनादर व्यंग मध्यम मान प्रौढ़ा धीराधीरा उदाहरण।

माथे महावर पाइ को देखि महावर पाइ मुढार ढुरीये।
ओठनि पै बनिकै अखिया अखिया उन ओठन पीक घुरीये।
सग ही सग बसौ उनके अग अग वे देव तिहारे[१] लुरीये।
साथ मैं राखिये माथ उन्है हम हाथ मैं चाहती चारि चुरीये ।।४४।।

१ निहारे—अ०।

मानवती के वाक्य नायक सो।

अजन अधर पीक पलक कपोल लीक सेंदुर झलक सीक भाल भरमीले से।
एहो बलवीर बलि गई बलवीर की सौ बोलत बिचल बोल साचे सकुचीले से।
देव हित बधनि पढाइ परबधनि सुगधनि बसाई प्रेम बंधन ते ढीले से।
ढीले ढले पेचनि छबीले छकि छाके लाल लोइन लजीले ए रसीले रस गीले से ।।४५।।

निर्मल आरसी हौ ही तिहारी सिपारसी जाके हौ ताहू बुलाऊ।
देव दोऊ मिलि रूप अनूप निहारिये मो मैं महा सुख पाऊ।
लाल भए, रगि लोइन लाल सु आजिवेहू को कपूर मगाऊं।
प्रेम पियूख पियो जिनको खिन ही खिन आखिन को अन्हवाऊ ।।४६।।

हौ तुम तो जुतही जु तही तुम वे इतही हित ही नित तेरे।
है कहिवेई को वे इनहो उनही के बसे सहवास बसेरे।
मो दृग की पुतरी तुम स्याम तहा अभिराम तिन्है तुम हेरे।
दच्छिन वाम मिले रहो देव सु दच्छिन वाम दोऊ दृग मेरे ।।४७।।

प्रौढ़ा मानवतीन की उक्ति।

सेवक जानि के सेव कराइये देव हौ आतम देव विहारी।
दूरि ही ते कर जोरे रहो बरजो न कछू वर कुज विहारी।
लायक हौ न कहौ हिय लाइ बुलाइ कहौ सु करौ हितकारी।
पाइ कहौ सुख पाइ कहौ पिय पाइ कहौ उनही की तिहारी ।।४८।।

राखनि जीव सदा रटि पीव सो जानत पीर पपीहा कहा को।
देखि समुद बढै दुग्ध दुद समुद सुधाजल बुद जहा को।
देव जू काम दुधा बकरी औ करी परि एक छरी सो न हाको।
प्रेम घटा घुमडे घनस्याम जितै उमडे फिरौ भागु तहा को ।।४९।।

टेरि कहौ हमतो हियरा हरि हेरि तिहारेई हाथ हरायो।
सो तुम लै अनतै कहू हार्यो निहारिकै हारि को नाउ धरायो।
काहू की पीर तुम्है न तऊ अब लोकनि मैं अवलोक लरायो।
देव दुभाव सुभाव तज्यो न सुभाव तज्यो दुख दोष परायो ।।५०।।

अथ सखीन की सिच्छा मानिनी सों।

न्यारो न कीजिये प्यारो धनी न सदा धन काहू के भौन भर्‌यो रहै।
देव सु धन्य घरी घर ज्यो मुख आंखिन को खिन आइ अर्‌यो रहै।
तासो न कीजै अयानपनो अपनो मन को पन क्यो न पर्‌यो रहै।
भादो नदी पिय को अनुराग सराहिये भाग सुहाग धर्‌यो रहै ।।५१।।
भूलेहू सो न गमाइये हाथ ते जो गुन पाइये साथ किये के।
देव तहा मुख मोरिये क्यो सुख जाइ सबै जग माहि जिये के।
आपु ते डोलि के बोलि बसाइये वारक खोलि किवार हिये के।
... ... ।।५२।।

सखी सों मानवती की उक्ति।

प्रेम पढाइ[१] बढाइ के बधुनि दीनी बढाइ चढाइ किये[२] कर।
सो अभिलाख्यो न काहू सो भाख्यो इलाज सो लाज सो राख्यो हिये पर।
साझ सखीन के माझ हिरान्यो बिरानो भयो अब जान्यो मुअे वर।
कीनो परोसु[३] खरो सुनि देख्यो सु देव परो सु परोसिन के घर।।५३।।

[१] बढाइ—अ०। [२] कप—मूल मे, हरताल की सहायता से 'किये'—अ०। [३] खरोसु—अ०।

एहि विधि मानवतीन के धीरादिक बहु भाइ।
लघु गुरु मध्यम मानहू व्यग लच्छ अधिकाई ।।५३।।

इति षष्ठम विनोद।

प्रोपितपतिक वधून मै बरन्यो बिरह प्रवास।
करुणातम करुणा मिल्यो सो सिगाराभास ।।१।।

करुणात्मक उदाहरण।

सूर न पावत सो पदवी मुनि पूरन हौ सुमिरे अबहू।
अगनगारो ते जाने कहा रन रग नगारो बजावतहू।
देव कहै सतमतिन सो जु सुहाग सती सो न कीजो अहू।
नाविक दै निकसे पग पै सर पावक दै निकसे न कहू ।।२।।
पतिनायक स्वकियानि को उपपति परकीयानि।
सामान्या बनितानि को नायक वैसिक जानि ।।३।।

लक्षण।

सुद्ध इष्ट अरु चतुर पति गुप्त सु प्रगट अनिष्ट।
पति चौविधि अनुकूल अरु क्रम दक्षिण सठ धृष्ट ।।४।।
एक नारि अनुकूल व्रत सकल तिया सम दच्छ।
सब झूठी अनुकूलता लपट धृष्ट समच्छ ।।५।।
पति अनुकूल सु दच्छिनो उपपति सब कहुँ दच्छ।
वैसिक धृष्ट सु क्रम अधम प्रकृति देव नर रच्छ ।।६।।

अथ अनुकूल पति मुग्धा स्वीया।

राज करो हित काज न बूझत लाज अकाजनि को घर घेरेई।
तू पट घूघट ओट किये न निहारति मारत मार दरेरेई।
नाह के नाते न हाते करो हित लोग सबै दुलही कहि टेरेई।
ऊलहै प्रेम दोऊ अनुकूल है दूलहे तो त्रिन तूल है तेरेई ॥७॥

मध्या अनुकूल उदाहरण।

लाजि मरौं गुरु लोगनि मै इनके मन मै सुनि आवति है घिनि।
देव कहा कहौ सेवक ह्वै रहे कैसेहूँ कोई चवाव करो किनि॥
चौर डुलावत दावत पाँव बिसासिनि ठाढी हँसैये सवासिनि।
देखो वधू वर जोरी घनी बरजेहू मै तो बरजोरी करो जिनि ॥८॥

प्रौढा अनुकूल उदाहरण।

होत न उदास यह जाको रिन दास कहे जान्यो देवता सु भरतार भरती रहै।
प्रेम के प्रकास छिनु छाँडत न पासु निसिवासर निवास विसवास डरती रहै॥
एते दुख जासु कैसे नीद परै तासु आसपास सब बैरी सो उसास भरती रहै।
कैसो रग रास कैसो सग को विलास जहाँ ननद सो सासु उपहास करती रहै ॥९॥

अथ दक्षिण उदाहरण।

चोरी कै राखी चुराइ घने दिन वा चितचोर दुहूनि सो ह्वै कै।
होरी के औसर गोरी गुमानिनि आनि भिटाइ हियो हि छ्वै कै॥
आपुस मै मनिमाल दै लाल दई वदलाई मिलाइनि ह्वै कै।
सौति दोऊ पिय प्रीति उमाहिनी पाहुनी ह्वै मिलि साहुनी ह्वै कै ॥१०॥

शठ उदाहरण।

लाज तिहारी हौ आवनि पै वलिहारी हौ देव वने कहौ कापर।
पैये कहा तुमसो वहु नायक लायक होइ कृपा करौ तापर॥
पूरी करी इतहूँ उत प्रीति भले खुलि खेलत वेलत[1] पापर।
धन्य सुहाग धनी तुम सो धनि ताही को भागु दया करौ जापर ॥११॥

[1] खेलत—अ०।

धृष्ट उदाहरण।

चोर हौ कि चार जोर हो जु निसिचारक हूँ सोचन विचार हार हीरनि हिरैबे की।
आवत सवारही खुलावत किवार उठि धावत कि वार तकि वार उत जैवे की॥
जैसे पापरत तैसे पापरत देव इत आये पा परत वलिहारी विहँसैवे की[1]।
ऐसे असुमारन कुमारनि को मारे मार मारी हौ सुमार तुम्है हौस मार खैवे की ॥१२॥

[1] चरण का पाठ—कैसे पार परत वलि गई विहँसैवे की—अ०।

नायक सखा। नर्म सचिव।

हितकारी बातन चातुर सेवक होय जो ढीठ।
पीठमर्द विट चेट क्रम विदूषको सु वसीठ ॥१३॥

चारिहूँ को उदाहरण।

प्रान पियारे सो रूठि रही अपनी मति तूठि कै आपु लजौगी।
आपुही आपु मनाइ कै साजनै सेज के साजन ही को सजौगी॥
भोजन पान बिसारि कै भामिनि मान ते जोजन[१] एक भजौगी।
कालिही देखि विदूषक को मुख मान कहा अभिमान तजौगी॥१४॥

[१] मानत जोजन—अ०।

नायक की दूती।

अहे कहै क्यो न वह कौन सी कुरगनैनी कामिनि कही है कुलकानि मै।
लाज को जहाज गुन जोवन गरब भर्‌यो कौन कोन बूड्यो सोभा सिधु सुखदानि मै॥
ऐठि अठि बैठति अमैठि भृकुटी कुटिल सूधी ह्वै रहोगी वा सुधानिधि सी बानि मै।
देव दुति पून्यो चदहू को न गुमान रह्यो मान रहै कैसे मृदु मद मुसकानि मै॥१५॥

नायिका की सुहित सखी उदाहरण।

मान करि वैठी मनभावन सो मौन धरि नोखी नई मानिनि मिलावो मन त्यो नही।
कैसी हौ सुघर घर घरिनी निहारि देखौ घरी घरी रूसनो करति कोई यो नही॥
जीवहू को जीवन जनम जगमग्यो जासो ऐसी जीवतेसु बिनु जनमन त्यो नही।
ताहि सुख सृष्टि सो बिहारि पति क्यो नही दया देव दृष्टि सो निहारियत क्यो नही॥१६॥

मान मोचन उदाहरण।

हारी मनाइ मनावनहारि पै पीठि दै प्यारी न डीठि उकासी।
देव कहै पिय प्यारे की ओर चितै दृग कोर मिली मृदु हासी॥
मैन के सग मिले उठि नैन सु वैन मिलैवे की नाह निकासी।
जोवन जोर अकोर लिये तन आइ मिल्यो मन मान मवासी॥१७॥
घूंघट घाट चलैबे की बाट चल्यो दल भामिनि भीरु अमीर सो।
चोट करी भृकुटी भट पै त्रिकुटी नट पै वर खोलत वीर सो॥
पार भयो उर भेदि विथा वढि सौतिन को तन प्रान अधीरु सो।
मैन के सग दिमान को देखि गयो छुटि मान कमान को तीर सो॥१८॥

संयोग शृंगार उदाहरण।

मूरति सिंगार रति रामा सग स्यामा चैत पूनो की त्रियामा ससि ज्यो निहारियत है।
तीर तीर तरुनि अनत तारिका सी देव दिव्य दारिका सी दीपो देखि हारियत है॥
एरी उठि गैल ऐल पारी छवि छैल वा बदन दुति बसुधा सुधा सुधारियत है।
रसिक रसाल नव लाल अग अग पर अग वारे कोटिक अनग वारियत है॥१९॥

मूरति रति सिंगार की दपति नवल सरूप।
जगमगात जग मै सुभग जागत जगत अनूप॥२०॥

इति श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे कवि देव विरचिते सुमिल विनोदे सिंगार रस निरूपण नाम सप्तम विनोदः।

अथोत्साह वर्धनो वीर रस उदाहरण।

धनवत सोई धन सोई सपूत लसै जस भूप अथाइन मैं।
कर ऊँचोई जाको करोरनि वीच रहै रनदान के दाइन मैं॥
कुल जाके समीप सोई कुलदीप महीपति देव सुभाइनि मै।
धन जाको वसै मुख भूसुर के मन जाको वसै प्रभु पाइनि मैं॥१॥

शांत रस।

अग नग नाग नर किन्नर असुर मुर प्रेत पसु पच्छी कोटि कीटनि कढचो फिरै।
माया गुन तत्व उपजत विन सत सत्व काल की कला को ख्याल खाल मैं मढचो फिरै।
आपुही भखत भख आपु आपुही अलख देव कहूँ मूढ कहूँ पडित पटचो फिरै।
आपुही हथ्यार आपु मारत मरत आपु आपुही कहार आपु पालकी चढचो फिरै॥२॥

वधु को वधु हितू को हितू सुत वामनि जे धन धाम भरे पर्‌यो।
लाखन लोग लगे अभिलाखन लाखनि भाखनि भेप भरे पर्‌यो॥
बूढो भयो वढिते ते गयो अव वैठि परी वटि तेज तरे पर्‌यो।
श्री महाराज गरीवनिवाज हौ आजु तिहारेई आनि गरे पर्‌यो॥३॥

भोग भुलाइ सजोग डुलाइ कै जोग लै लै सुनि लोग लरेई।
भूपति यो धन भार भडार गए गडि दाम सु धाम घरेई॥
देव कहे दिन चारि के ख्याल मै खेलि गए खल खोड खरेई।
काहू के सग कछू न गयो सव सेत मरे अकसेत मरेई॥४॥

अग मैं अजूत सव जग मैं सजूत देव एकै सूत मोतिन पुह्यो है वेह वेह मैं।
गहिरो गुनन गहिवे को निरगुनि गह्यो परत न गह्यो गहि रह्यो गेह गेह मैं।
हार्‌यो हेरि हेरि चुनि हार्‌यो फेरि फेरि सुनि हार्‌यो टेरि टेरि सु निहार्‌यो नेह नेह मैं।
सोखन सिरावत भिरावत सदेह मैं रहे तो देह देह मैं लहै तो देह देह मैं॥५॥

माया गुन वधन अचानक ही आनि जुर्‌यो जाको नाउ ठाउ रूप रेख गुन मूनतो।
गगन मै तारो ज्यो उज्यारो ह्वै अध्यारो होत ताको कौन गौन भयो हेत ऐसो तूनतो॥
आवत वढ्‌यो न जग जातहू घट्यो न कछू देव को विलास देव एसोई अनून तो।
एकै सौ तरग नच्यो वीच गयो वीच ही ते आगेहू कछू न ऐसे आगेहू कछू नतो॥६॥

कथा मैं न कथा मै न तीरथ के पथ मै न पाथ मैं न गाथ मै न साथी की वसीति मैं।
जरा मै म मुडन न तिलक त्रिपुडन न नदी कूप कुडन न न्हान दान रीति मैं॥
पीठ मठ मडल न कुडल कमडल मै मल्ला दड मैं न देव धौहरे की भीति मैं।
आपुही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो पेखिके प्रगट परमेसुर प्रतीति मै॥७॥

याही भौन भीतर रह्यो न हौ न जानो जव कौन कौन ढूंढे कौन कौन भाँति लीने जानि।
इत मैं निहारे सुने नित मै तिहारे गुन चित मैं विहारे पै न परे प्यारे पहिचानि।
देव जू सु गहि गहि गहिवे की गोहै अव सौहै क्यो न राखो कोई भौहै क्यो न तानि तानि।
कैसी लाज कैसो काज कैसे धौ सखी समाज कैसो घर कैसो वर कैसो डर कैसो कानि॥८॥

मोहि तुम्है अतर गनै न गुरुजन तुम मेरे हौ तुम्हारिये तऊ न पिघलत हौ।
पूरि रहे या तन मैं मन मै न आवत हौ पच पूछि देखे कहूँ काहू ना हिलत हौ ।।
ऊँचे चढि रोइ कोइ देत न दिखाई देव गातन की ओट बैठे बातनि गिलत हौ।
ऐसे निरमोही महामोही मै रहत अरु मोही ते निकरि नेकु मोही न मिलत हौ ।।९।।
सखिन बिसारि लाज काज डर डारि मिली मोहि मिलो लाल डहकाए डहकत नाहि ।
पात ऐसी पातरी विचारी चग लहकति पाहन पवन लहकाए लहकत नाहि ।।
हिलि मिलि फूलनि फुलेल वासु फैली देव तेल की तिलाई महकारो महकत नाहि ।
जौही लौ न जान्यो अनजाने रही तौ ही लौ सु अब मेरो मन वहकाए वहकत नाहि ।।१०।।
जो न जी मै प्रेम तव कीजै व्रत नेम जव कजमुख भूले तव सजम विसेपिये ।
आस नही पी की तब आसनही वाँधियतु सासन के सासन को मूँदि पति पेखिये ।।
नख ते सिखा लौ सव स्याम मई वाम भई वाहिर हू भीतर न दूजो देव देखिये ।
जोग करि मिलौ जो वियोग होइ वालम सो ह्या न हरि होइ तव ध्यान धरि देखिये ।।११।।

[इति सुमिल विनोद]